*

यजुर्वेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

*

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अपने आराध्य के चरणों में

परम पूज्य गुरुदेव ने जो गुरुतर भार कन्धों पर डाला, उनमें अपने वेदों का आज के परिप्रेक्ष्य में बुद्धिसंगत एवं विज्ञानसम्मत प्रतिपादन सर्वथा दुःसाध्य कार्य था। लोगों के पास योग्यता रहती होगी, जिससे वे बड़े-बड़े कार्य सम्भव कर पाते होगें; पर मुझ अकिंचन के लिए तो यह सौभाग्य ही क्या कुछ कम था कि अपने आराध्य के चरणों पर स्वयं को सर्वतोभावेन समर्पित करने का सन्तोष प्राप्त हुआ। होंठ कौन सा गीत निकालेंगे, भला बाँसुरी को क्या पता? कौन सा राग आलापित होगा - यह पता वादक को हो सकता है, सितार बेचारा उसे क्या समझे?

वेदों के भाष्य जैसे कठिन कार्य में मेरी स्थिति ऐसे ही वाद्य यंत्र की रही। यदि गायन सुन्दर हो, तो श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिए, जिन्होंने इनका भाषानुवाद प्रारम्भ (सन् १९६० ई०) में किया और दुबारा करने का आदेश मुझे दिया। कलम मेरी हो सकती है, पर चलाई उन्होंने ही। अक्षर मेरे हो सकते हैं, पर भावाभिव्यक्ति एक मात्र उन्हीं की है।

आज यह सुरभित पुष्प अपने उन्हीं आराध्य गुरुदेव-आचार्य जी के चरणों में समर्पित कर स्वयं को कृत-कृत्य हुआ अनुभव करती हूँ।

जिन मनीषियों के ग्रन्थ हमने इस अवधि में पढ़े, उनसे कुछ दिशा बोध मिला, उनका तथा जिन्होंने इस गुरुतर कार्य के संकलन से प्रकाशन तक में सहयोग दिया, उनका मैं विशेष रूप से आभार मानती हूँ। आशा करती हूँ कि इस सृजन से अपनी संस्कृति और इस महान् देश की विराट् बौद्धिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा गौरवान्वित होगी।

ॐ

शतपत ब्राह्मण (१०.३.५.१-२) में 'यजुः' को स्पष्ट करते हुए उसे 'यत्+जूः' का संयोग कहा है। 'यत्' का अर्थ होता है–'गतिशील' तथा 'जूः' का अर्थ होता है– आकाश। सृष्टि के निर्माण से पूर्व 'जूः' आकाश रूप में सर्वत्र एक ही चेतन तत्त्व फैला हुआ था। चेतना में संकल्प उभरा तथा आकाश में सूक्ष्म कण (सब एटॉमिक पार्टिकल्स) उत्पन्न हुए। यह गतिशील थे, इसलिए 'यत्' कहे गये। इसे (आकाशात् वायुः) आकाश से वायु की उत्पत्ति कह सकते हैं। इन प्रवहमान सूक्ष्म कणों में गति के कारण सूक्ष्म विद्युत् विभव (फीबिलइलेक्ट्रिक पोटेंशियल) उत्पन्न हुआ। इस विद्युत् ऊर्जा को ही 'अग्नि' की उत्पत्ति (वायोः अग्निः) कहा जा सकता है। इन तीनों (जूः - आकाश, यत् - सूक्ष्म प्रवहमान कण तथा उस गति से उत्पन्न विद्युत् विभव) के संयोग से ही परमाणुओं की रचना हुई। केन्द्रक में धन विद्युत् विभव युक्त सूक्ष्म कण (न्यूक्लियस में प्रोटॉन्स) तथा उनके आस-पास के आकाश को घेरते हुए गतिशील ऋण विभव युक्त सूक्ष्म कण (इलेक्ट्रांस) ; यही है विभिन्न पदार्थों के परमाणुओं की संरचना। इन्हीं का अनुपात बदल जाने से पदार्थ बदल जाते हैं।

'यत्' और 'जूः' के संयोग से पंचभूतात्मक जगत् की सृष्टि के इस प्रकरण से यह स्पष्ट होता है कि यह प्रक्रिया सृष्टि निर्माण के यज्ञीय चक्र की ही द्योतक है।

* * *

अनुक्रमणिका

* * *

संकेत - विवरण

अ० = अष्टाध्यायी
अथर्व० = अथर्ववेद
आप० परि० = आपस्तम्ब परिभाषा
आश्व० श्रौ० = आश्वलायन श्रौतसूत्र
आश्व० गृ० = आश्वलायन गृह्यसूत्र
उ० भा० = उवट भाष्य
ऋ० = ऋग्वेद
ऐत० आर० = ऐतरेय आरण्यक
ऐत० ब्रा० = ऐतरेय ब्राह्मण
क० भा० = कर्क भाष्य
कपि० क० सं० = कपिष्ठल कठ संहिता
काठ० सं० = काठक संहिता
का० श्रौ० = कात्यायन श्रौतसूत्र
का० सं० = काण्व संहिता
कौषी० ब्रा० = कौषीतकि ब्राह्मण
गा० र० उ० = गायत्री रहस्य उपनिषद्
गो० ब्रा० = गोपथ ब्राह्मण
जैमि० उ० ब्रा० = जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
जैमि० ब्रा० = जैमिनीय ब्राह्मण
ता० म० ब्रा० = ताण्ड्य महाब्राह्मण
तैत्ति० आ० = तैत्तिरीय आरण्यक
तैत्ति० ब्रा० = तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्ति० सं० = तैत्तिरीय संहिता
दे० प० = देवयाज्ञिक पद्धति
नारा० वृ० = नारायण वृत्ति
नि० = निरुक्त
नि० दु० = निरुक्त दुर्ग वृत्ति

पृ० = पृष्ठ
बृह० = बृहद्देवता
बृह० उप० = बृहदारण्यक उपनिषद्
बौ० शु० = बौधायन शुल्व सूत्र
बौ० श्रौ० = बौधायन श्रौतसूत्र
ब्रह्मा० पु० = ब्रह्माण्ड पुराण
भ० पु० = भविष्य पुराण
म० ब्रा० = मन्त्र ब्राह्मण
म० भा० = महाभाष्य
महा० शा० = महाभारत शान्ति पर्व
मही० भा० = महीधर भाष्य (यजुर्वेद)
मैत्रा० उ० = मैत्रायणी उपनिषद्
मैत्रा० सं० = मैत्रायणी संहिता
यजु० = यजुर्वेद (शुक्ल)
य० स० = यज्ञ सरस्वती
वा० = वाचस्पत्यम्
वाज० सं० = वाजसनेयि संहिता
वे० र० पू० = वेद रहस्य पूर्वार्द्ध
वै० य० अ० = वैदिक यन्त्रालय अजमेर
श० क० = शब्दकल्पद्रुम
शत० ब्रा० = शतपथ ब्राह्मण
शां० श्रौ० = शांखायन श्रौतसूत्र
श्रौ० को० = श्रौतकोश
सर्वा० = सर्वानुक्रमसूत्र (यजुर्वेद)
साम० = सामवेद
सा० भा० = सायण भाष्य
हरि० भा० = हरि स्वामी भाष्य

* * *

'वेद' दीर्घकाल तक भारतीय जन-जीवन के अंग रहे हैं। आज यह समझा जाता है कि भारतीय जन-जीवन भी वेद विज्ञान से बहुत दूर जा पड़ा है, किन्तु 'यजुर्वेद' वेद का एक ऐसा प्रभाग है, जो आज भी जन-जीवन में अपना स्थान किसी न किसी रूप में बनाये हुए है। देव-संस्कृति के अनुयायी पश्चिमी सभ्यता से कितने भी प्रभावित क्यों न हो गये हों, जन्म से लेकर विवाह एवं अन्त्येष्टि तक संस्कारपरक कर्मकाण्डों से उनका सम्बन्ध थोड़ा-बहुत बना ही रहता है। संस्कारों एवं यज्ञीय कर्मकाण्डों के अधिकांश मंत्र यजुर्वेद के ही हैं। उनकी मंत्र शक्ति एवं प्रेरणाओं का सम्पर्क भारतीय जन-जीवन के साथ निरन्तर बना ही हुआ है।

यजुः – यज्ञार्थक

यजुर्वेद के मंत्रो को 'यजु' (यजुष्) कहते हैं। ऋग्वेद एवं सामवेद के मंत्र पद्यात्मक हैं, यजुर्वेद के मंत्र उन बन्धनों से मुक्त हैं। 'गद्यात्मको यजुः' के अनुसार वे गद्यपरक हैं। अन्य उक्ति के अनुसार 'अनियताक्षरावसानो यजुः' अर्थात् जिनमें अक्षरों की संख्या निर्धारित नहीं है, वे 'यजु' हैं। यह निर्धारण मंत्रों की रचना को लेकर किये गये हैं। यों यजुर्वेद में भी बड़ी संख्या में पद्यात्मक छन्दों में मन्त्र हैं। ऋग्वेद के लगभग ६६३ मंत्र यथावत् यजुर्वेद में हैं। भले ही उन्हें परम्परा के अनुसार गद्यात्मक शैली में बोला जाता हो।

यजुर्वेद को 'यज्ञ' से सम्बन्धित माना जाता है। 'पाणिनि' ने 'यज्ञ' की व्युत्पत्ति 'यज्' धातु से की है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'यजुष्' को यज् धातु से सम्बद्ध कहा गया है। इस प्रकार 'यजुः' 'यज्' तथा 'यज्ञ' तीनों एक दूसरे के पर्याय हो जाते हैं। जैसे:—

यच्छिष्टं तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमयुञ्जत।
यजनात् स यजुर्वेद इति शास्त्रविनिश्चयः ॥

(ब्रह्म० पु० २.३४.२२)

अर्थात् यजुर्वेद में जो कुछ भी प्रतिपादित है, उसी से यज्ञ का यजन किया गया। यज्ञों के यजन के कारण ही उसे यजुर्वेद नाम दिया गया है, ऐसा शास्त्र का निश्चय है। इसी तथ्य की पुष्टि निरुक्तकार ने **'यजुर्यजतेः'** कथन से की है (नि० ७.१२)। **'यजुर्भिर्यजन्ति'** (काठ० सं० २७.१), **'यजुस्तस्माद् (यज्ञात्) अजायत**(काठ० सं० १००.२१), **'यज्ञो ह वै नामैतद्यद्यजुरिति'**(शत० ब्रा० ४.६.७.१३) इत्यादि श्रुतिवचनों से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यज्ञ अथवा यजन को केवल लौकिक अग्निहोत्रपरक कर्मकाण्ड तक ही सीमित नहीं माना जा सकता। पाणिनि ने 'यज्' धातु का अर्थ देवपूजन, संगतिकरण एवं दान किया है। इस आधार पर अपने से उत्कृष्ट चेतन सत्ता के प्रति श्रद्धा का विकास एवं उसकी अभिव्यक्ति, उस दिव्य अनुशासन में संगठित होकर कर्म का अनुष्ठान तथा इस प्रकार प्राप्त विभूतियों को कल्याणकारी प्रयोजनों के लिए समर्पित करना, यह सब क्रियाएँ यज्ञ के अन्तर्गत आ जाती हैं। वेदोक्त यज्ञ को ऐसे ही व्यापक सन्दर्भों में लिया जाना चाहिए। 'यज्ञ' को व्यापक अर्थ में लेने के सन्दर्भ में पुराने, नये, सनातनी, आर्यसमाजी सभी विद्वान् एक मत हैं। गीताकार ने भी **'सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा'**(३. १०) कहकर यज्ञ के व्यापक भाव को ही उभारा है।

यज्ञ की मुख्य धाराएँ

यज्ञ की मुख्य दो धाराएँ कही जा सकती हैं—(१) यज्ञ का वह सनातन रूप, जो अनादि काल से अबाध गति से चल रहा है, उससे (क) विश्व की सृष्टि हुई और (ख) उसी के अन्तर्गत सृष्टि का पोषण-परिवर्त्तन चक्र चल रहा है। (२) यज्ञ का लौकिक रूप, जो संकल्पपूर्वक किया जाता है। उसके अन्तर्गत (क) अग्निहोत्रादि विविध यजन-कर्मकाण्ड आते हैं तथा (ख) लोकव्यवहार में जीवन यज्ञ के रूप में जो अनिवार्यतः प्रयुक्त होता है। इस लौकिक यज्ञीय प्रक्रिया का मूल सूत्र है—अपने अधिकार क्षेत्र की श्रेष्ठतम वस्तु को देवकार्यों अथवा लोकमंगल के लिए समर्पित कर देना। मीमांसा आदि शास्त्रों ने यज्ञ के लौकिक कर्मकाण्ड को ही विशेष रूप से महत्त्व दिया है, किन्तु वेद तो यज्ञ की सनातन, सृजनात्मक एवं पोषणपरक धारा से ओतप्रोत हैं।

पुरुष सूक्त में तो विराट् यज्ञ पुरुष से ही सारी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। ऋक्, यजु, साम आदि भी उसी यज्ञ से प्रकट हुए हैं—

तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत ऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा- सि जज्ञिरे तस्माद् यजुः तस्मादजायत ॥

(ऋ० १०.९०.९, यजु० ३१.७)

अर्थात् 'उस सर्वहुत यज्ञ से ऋचाओं एवं साम आदि की उत्पत्ति हुई। उसी से छन्द आदि तथा 'यजुः' भी उत्पन्न हुए।' यह सर्वहुत यज्ञ जैसे-जैसे विकसित होता है, वैसे-वैसे सृष्टि का विकास भी होता जाता है। पुरुष सूक्त के अनुसार जो हो चुका है **(यद् भूतं)** तथा जो होने वाला है **(यत् च भाव्यं)** , वह सब यह विराट् पुरुष ही है (**पुरुष एव इदं सर्वं**) । सृष्टि के पोषण-संचालन के लिए भी उसी विराट् सत्ता का यजन किया जाता है। वह विराट् यज्ञ प्रकृति में चलता ही रहता है—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो ऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽ इध्मः शरद् हविः।

(यजु० ३१.१४)

जब देवगणों ने उस विराट् चेतना से यजन किया, तो (उस यज्ञ में) वसन्त ऋतु आज्य के रूप में, ग्रीष्म ऋतु ईंधन के रूप में तथा शरद् ऋतु हवि के रूप में प्रयुक्त हुए। वेद में यज्ञ के विराट् स्वरूप के दर्शन बहुत स्पष्टता से स्थान-स्थान पर होते ही रहते हैं। लौकिक सन्दर्भ में भी शास्त्रकारों ने यज्ञ को दिव्य अनुशासन में किये गये श्रेष्ठ कर्म की संज्ञा दी है। **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** (श्रेष्ठतम कर्म ही यज्ञ है) उक्ति से यह भाव स्पष्ट होता है।

मनुस्मृति के अनुसार वेदाध्ययन-ज्ञानविस्तार ब्रह्मयज्ञ है; तर्पण पितृयज्ञ है; होमादि कर्म देवयज्ञ है, बलिवैश्वादि कर्म भूतयज्ञ है तथा अतिथि आदि को तृप्त करना मनुष्य यज्ञ है।

यज् धातु के अनुसार 'देवपूजन'(उच्चतम आदर्शों के लिए), 'संगतिकरण' (सहयोगात्मक प्रवृत्ति के साथ) एवं दान (अपने अधिकार की प्रिय वस्तु को समर्पित करना) यज्ञ है। इस दृष्टि से निर्धारित अथवा स्वीकृत श्रेष्ठ कर्त्तव्यों को भी यज्ञ ही कहा जाता है। यह भाव विभिन्न ग्रन्थों में जगह-जगह बहुत स्पष्टता से मिल जाते हैं; जैसे—

आरम्भयज्ञाः क्षत्राश्च हविर्यज्ञा विशः स्मृताः।
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञा द्विजास्तथा ॥

(महा० शा० ३६७.१२)

अर्थात् क्षत्रियों के लिए पराक्रम-उद्योग करना यज्ञ है। होम आदि (अनादि साधनों से यजन) करना वैश्यों का यज्ञ है। शूद्रों का यज्ञ श्रेष्ठ सेवा कार्य है तथा ब्राह्मणों के लिए जप आदि (आत्म चेतना को परमात्म चेतना से युक्त करने वाले) कर्म यज्ञ हैं।

जहाँ अग्निहोत्रपरक यज्ञ की बात आती है, उसे भी अग्नि में सामग्री डाल देने जैसी छोटी क्रिया तक ही सीमित नहीं माना जा सकता। उसके साथ भी प्रवृत्तियों के शोधन, पर्यावरण के सन्तुलन तथा श्रेष्ठ सामाजिक परम्पराओं के विस्तार जैसे श्रेष्ठ लक्ष्य जोड़कर रखे जाते हैं। यज्ञीय कर्मकाण्ड के साथ श्रेष्ठ भावनाओं, विचारणाओं एवं प्रेरणाप्रवाहों को जोड़कर रखना अनिवार्य है। इन्हीं सब बातों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए मीमांसा दर्शन के अष्टम पाद के सूत्र ९, १०,११ में स्पष्ट कहा गया है कि यज्ञ केवल धन का व्यय कर देने से ही सिद्ध नहीं होता, उसके लिए तप आदि करना भी आवश्यक है।

विद्वानों का मत है कि विधिवत् किये गये यजन कार्य से प्रकृति के संतुलन चक्र (इकोलॉजिकल साइकिल) को सहयोग मिलता है। इसी दृष्टि से वेद में यजन कर्म का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है— **'इयं वेदिः परोअन्तः पृथिव्याऽ अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः** (यजु० २३.६२) अर्थात् यह यज्ञ वेदिका पृथ्वी का अन्तिम छोर है और यह यज्ञ इस भुवन की नाभि-केन्द्र स्थल है। यज्ञ वेदी पृथ्वी का अन्तिम छोर कैसे है ? अन्तिम छोर तक पहुँचना पुरुषार्थ की उत्कृष्टता का द्योतक है। पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ यज्ञानुष्ठान है, यह भाव है। ब्रह्माण्ड का संचालन यज्ञीय प्रक्रिया से हो रहा है, इसलिए यज्ञ को उसकी नाभि (**यज्ञो भुवनस्य नाभिः**) कहा गया है। यजुर्वेद के मंत्रों का सम्बन्ध यज्ञ से जोड़ते समय यज्ञ के इन्हीं व्यापक सन्दर्भों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

यजुः के अन्य सन्दर्भ

शतपथ ब्राह्मण (१०.३.५.१-२) में यजुः का दूसरा भाव स्पष्ट करते हुए उसे 'यत् + जूः' का संयोग कहा गया है। यत् का अर्थ होता है-गतिशील तथा जूः का अर्थ होता है-आकाश। इस सन्दर्भ से 'यजुः' का अर्थ होता है, आकाश में विचरण करने वाला-गतिशील। यह भी सूत्ररूप में सृष्टि के विकास के यज्ञीय क्रम का ही संकेत है। सृष्टि के निर्माण से पूर्व जूः आकाश रूप में सर्वत्र एक ही चेतन तत्त्व फैला हुआ था। चेतना में संकल्प उभरा तथा आकाश में सूक्ष्म कण(सब एटॉमिक पॉर्टिकल्स) उत्पन्न हुए। यह गतिशील थे, इसलिए 'यत्' कहे गये। भारतीय वेदविज्ञान में अदृश्य, सूक्ष्म प्रवहमान तत्त्व को वायु कहा है।

अस्तु, उक्त प्रक्रियाः को **'आकाशात् वायुः'** आकाश से वायु की उत्पत्ति कह सकते हैं। इन प्रवहमान सूक्ष्म कणों में गति के कारण सूक्ष्म विद्युत् विभव (फीबिल इलेक्ट्रिक पोटेंशियल) उत्पन्न हुआ। इस विद्युत् ऊर्जा को ही 'अग्नि' की उत्पत्ति कहा जा सकता है। **'वायोः अग्निः'** के अनुसार वायु से अग्नि का विकास हुआ। इन तीनों (जूः-आकाश, यत्-सूक्ष्म प्रवहमान कण तथा उस गति से उत्पन्न विद्युत् विभव) के संयोग से ही परमाणुओं की रचना हुई। केन्द्रक में धन विद्युत् विभवयुक्त सूक्ष्मकण (न्यूक्लियस में प्रोटॉन्स) तथा उनके आसपास के आकाश को घेरते हुए गतिशील ऋण विभवयुक्त सूक्ष्मकण (इलेक्ट्रॉन्स) यही है विभिन्न पदार्थों के परमाणुओं की संरचना। इन्हीं का अनुपात बदल जाने से पदार्थ बदल जाते हैं।

विश्व ब्रह्माण्ड में पदार्थ के निर्माण की उक्त प्रक्रिया विज्ञान सम्मत भी है। 'यत्' (गतिमान्) और 'जूः' (स्थिर—आकाश) के संयोग से पंच भूतात्मक जगत् की सृष्टि के इस प्रकरण से भी यह स्पष्ट होता है कि यह प्रक्रिया सृष्टि निर्माण के यज्ञीय चक्र की ही द्योतक है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी यजु मंत्रों को ब्रह्माण्डव्यापी यज्ञीय प्रक्रिया से सम्बद्ध माना जाना उचित है।

यजुर्वेद की परम्परा एवं शाखाएँ

वेद को 'श्रुति' कहा जाता है। दिव्य ज्ञान का यह प्रवाह गुरु के श्रीमुख से सुनकर शिष्यों द्वारा विस्तार पाता रहा। महर्षि वेदव्यास ने उसे चार प्रभागों में संपादित करके व्यवस्थित किया। उस क्रम में ऋग्वेद—पैल को, यजुर्वेद—वैशम्पायन को, सामवेद— जैमिनि को तथा अथर्ववेद—सुमन्तु को सौंपा गया। उक्त विषय ऋग्वेद की भूमिका में विस्तार से दिया गया है। यजुर्वेद की शाखाओं का विस्तार महर्षि वैशम्पायन के शिष्यों के द्वारा होता रहा। इन शाखाओं की संख्या तो बहुत कही जाती है; किन्तु अभी तक उनके प्रामाणिक सूत्र प्राप्त नहीं हो सके हैं।

महाभाष्यकार पतंजलि के कथन **'एकशतमध्वर्युशाखा'** के अनुसार यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ हैं। चरणव्यूह परिशिष्ट में यह संख्या ८६ कही गयी है। इनका थोड़ा-बहुत उल्लेख पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के यजुर्वेद की भूमिका में मिलता है; किन्तु अलग-अलग चरणव्यूहों में इनकी संख्या भिन्न-भिन्न मिलती है। इतिहास ग्रन्थ भी इस सन्दर्भ में मौन हैं, इसलिए उक्त शाखाओं का निर्धारण अभी

शोध का ही विषय कहा जा सकता है। प्रामाणिक रूप से उपलब्ध छह शाखाओं का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

यजुर्वेदाध्यायी परम्परा में दो सम्प्रदाय* प्रमुखतया परिलक्षित होते हैं— (१) ब्रह्म सम्प्रदाय अथवा कृष्ण यजुर्वेद (२) आदित्य सम्प्रदाय अथवा शुक्ल यजुर्वेद।

(१) ब्रह्म सम्प्रदाय में 'वेद' के अन्तर्गत मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को एक साथ स्थान दिया जाता है-'**मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**' (आप० परि० ३१)। मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग का एकत्र मिश्रण ही 'कृष्णत्व' का मुख्य आधार है। 'सर मोनियर विलियम' ने भी अपने प्रसिद्ध कोष ग्रन्थ (संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी) में लिखा है कि 'कृष्ण यजुर्वेद' ब्राह्मणभाग से मिश्रित होने से 'कृष्ण' कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण में 'यज्ञ' को कृष्ण की संज्ञा प्रदान की गई है और 'कृष्ण यजुर्वेद' मुख्यतः यज्ञीय विधान प्रस्तुत करता है, कदाचित् इसी कारण इसे 'कृष्ण-यजुर्वेद' का अभिधान प्राप्त हुआ—**यज्ञो हि कृष्णः। स यः स यज्ञः। तत्कृष्णाजिनम्**।(शत० ब्रा० ३.२.१.२८ — यज्ञ ही कृष्ण है। यज्ञ कृष्णाजिन है।) इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्त्रों के साथ ही साथ तन्नियोजक ब्राह्मणों का जिसमें सम्मिश्रण पाया जाता है, वह 'कृष्ण यजुर्वेद' कहा जाता है।

(२) आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत शुक्ल यजुर्वेद की गणना की जाती है। शतपथ ब्राह्मण में इस सम्बन्ध में लिखा है— **आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते** (१४.९.५.३३) अर्थात् ये आदित्य-यजुः—शुक्ल-यजुः के नाम से प्रसिद्ध तथा वाजसनेय याज्ञवल्क्य के द्वारा आख्यात हैं। इस 'यजुः' में दर्शपौर्णमासादि अनुष्ठानों के लिए केवल मन्त्रों का ही संकलन है।

यही मन्त्रों का विशुद्ध तथा अमिश्रित रूप ही 'शुक्ल यजुः' के 'शुक्लत्व' का मुख्य हेतु है। शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयि-संहिता भी कहा जाता है। 'वाज' अन्न को कहते हैं और 'सनि' दान को।

इस प्रकार अन्न का दान करने के स्वभाव वाले महर्षि की सन्तान होने के कारण 'याज्ञवल्क्य' को ही 'वाजसनेय' कहा जाता है और इनके द्वारा आख्यात होने से 'वाजसनेयि-संहिता' नाम पड़ना स्वाभाविक है— **(वाजस्यान्नस्य सनिर्दानं यस्य स वाजसनिस्तदाख्यः कश्चिन्महर्षिः तदपत्यं वाजसनेयो याज्ञवल्क्यः, तेन प्रोक्तानि यजूंषि तन्नाम्ना व्यवह्रियन्ते)** ।

कृष्णयजुर्वेद की शाखाएँ–संहिताएँ

वर्तमान में इस शाखा की ४ संहिताएँ ही उपलब्ध हैं—(१) तैत्तिरीय (२) मैत्रायणी (३) कठ और (४) कपिष्ठल कठ।

(१) **तैत्तिरीय संहिता**—यह शाखा अपने में परिपूर्ण कही जा सकती है; क्योंकि इस शाखा के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र आदि सभी ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। महाराष्ट्र का कुछ हिस्सा तथा आन्ध्र-द्रविड़ का बहुशः भाग इसी का अनुयायी है। सबसे बड़ी बात तो यह कि वेदों के एक मात्र सर्वातिशायी भाष्यकार आचार्य सायण इसी शाखा के अनुयायी थे और यही कारण था कि उन्होंने सर्वप्रथम तैत्तिरीय संहिता पर ही अपना वैदुष्यपूर्ण भाष्य लिखा है। इनसे पूर्व का इस संहिता पर केवल एक ही भाष्य सुना जाता है, वह है भट्ट

---

* (क) शुक्ल यजुर्वेदे केवलं मन्त्रा निगदिताः, पृथक् शतपथ ब्राह्मणे विहितम्, कृष्णयजुर्वेदशाखासु स्वयं विशेषो यन्मन्त्रभागेन सहैव तद् व्याख्यानात्मको ब्राह्मणभागोऽपि विन्यस्तः। अयमेव वस्तुतो यजुर्वेदस्य शुक्लत्वकृष्णत्वे भेदः। (भूमिका-शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता-प्रथम संस्करण १९७१ मोतीलाल बनारसीदास)

(ख) इस सम्बन्ध में एक प्राचीन आख्यान प्रसिद्ध है। गुरु वैशम्पायन के शाप से भयभीत याज्ञवल्क्य ने स्वाधीत यजुषों का वमन कर दिया और गुरु के आदेश से अन्य शिष्यों ने तित्तिर का रूप धारण करके उस वान्त यजुष् को ग्रहण कर लिया। पुनः सूर्य को प्रसन्न करके, उनके ही अनुग्रह से योगी याज्ञवल्क्य ने शुक्ल-यजुष् की उपलब्धि की। (काठ० सं० की सा० भा० भूमिका श्लोक ६-१२)

भास्कर मिश्र (११वीं शती) कृत । 'ज्ञान-यज्ञ' नामक यह भाष्य भी पर्याप्त 'गुरु-गम्भीर' है । तैत्तिरीय संहिता में ७ काण्ड, ४४ प्रपाठक तथा ६३१ अनुवाक हैं, जिसका वर्ण्यविषय यज्ञीय कर्मकाण्ड (पौरोडाश, याजमान, वाजपेय, राजसूय इत्यादि नाना यागानुष्ठान) का विशद वर्णन है ।

(२) **मैत्रायणी संहिता**— यह संहिता वर्तमान में सर्वप्रथम जर्मनी से डा० श्रोदेर के सौजन्य से प्रकाश में आई है, बाद में स्वाध्याय मण्डल, औन्ध (सतारा) से सन् १९४१ में श्री सातवलेकर जी ने प्रकाशित की है । इसके वर्ण्य विषय भी तैत्तिरीय संहिता जैसे-दर्शपूर्णमास, आधान, पुनराधान, चातुर्मास्य, वाजपेय काम्येष्टि, राजसूय, अग्निचिति, सौत्रामणी इत्यादि हैं । चूँकि यह संहिता कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है, इसलिए इस संहिता के मन्त्र तथा ब्राह्मण तैत्तिरीय तथा काठक संहिता में भी उपलब्ध होते हैं ।

(३) **कठ संहिता**—पुराणों में काठक लोगों को 'मध्यप्रदेशीय या माध्यम' कहा गया है, जिससे उनका मध्यप्रदेशीय होना सिद्ध होता है । महर्षि पतंजलि ने इस स०ता के गाँव-गाँव में प्रचलित होने का उल्लेख अपने महाभाष्य में किया है- **'ग्रामे-ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते ।'** (म० भा० ४.३.१०१) परन्तु वर्तमान में इस संहिता के अध्येताओं की संख्या नगण्य ही है । इस संहिता में ५ खण्ड हैं, जिनके नाम हैं- इठिमिका, मध्यमिका, ओरेमिका, याज्यानुवाक्या तथा अश्वमेधाद्यनुवचन । इन खण्डों के उपखण्डों को 'स्थानक' कहा जाता है, जो वैदिक साहित्य में अन्यत्र अनुपलब्ध हैं । कठसंहिता में स्थानक ४०, अनुवाचन १३, अनुवाक ८४३, मन्त्र ३०९१ तथा मन्त्र ब्राह्मण की संयुक्त संख्या १८ हजार है । इनके वर्ण्य विषय भी अन्यों (कृष्णयजुर्वेद की अन्य संहिताओं) की तरह ही दर्शपौर्णमास, अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, आधान, निरूढ पशुबन्ध, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध इत्यादि हैं ।

(४) **कपिष्ठल कठ संहिता**—महर्षि पाणिनि के सूत्र—**कपिष्ठलो गोत्रे** (८.३.९१) तथा निरुक्त टीकाकार दुर्गाचार्य के **'अहं च कापिष्ठलो वासिष्ठः'** (दुर्गवृत्ति ४.४) कथनानुसार 'कपिष्ठल' किसी ऋषि का नाम सिद्ध होता है; परन्तु कतिपय विद्वानों की गवेषणा इसे 'स्थान' मानने के पक्ष में है । उनके अनुसार 'कपिष्ठल' ही आज कुरुक्षेत्र का सरस्वती नदी के पूर्वी तट पर विद्यमान 'कैथल' नामक स्थान है, इसका उल्लेख 'काशिका' (८.३.९१) तथा वराहमिहिरकृत 'बृहत्संहिता' (१४.४) में भी प्राप्त होता है । इस संहिता की कोई भी सम्पूर्ण प्रति आज उपलब्ध नहीं है । इसकी एक अधूरी प्रति 'वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' के पुस्तकालय 'सरस्वती भवन' में सुरक्षित है । यह संहिता ऋग्वेद के समान अष्टक तथा अध्यायों में प्रविभक्त है । इसमें कुल ६ अष्टक और ४८ अध्यायों का उल्लेख मिलता है; किन्तु उपलब्ध प्रति में प्रथम अष्टक के ८ अध्याय के अतिरिक्त कोई भी अष्टक पूर्ण नहीं है, सभी में कुछ न कुछ अध्याय गायब हैं । फिर भी यह अधूरा ग्रन्थ भी इस (कृष्ण यजुर्वेद) शाखा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है । इस संहिता का वर्ण्यविषय तथा शैली कठसंहिता के ही समान है ।

कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं का विस्तृत विवेचन-**शाखाज् ऑफ दि कृष्णयजुर्वेद पुराणम्** (vii-२, पृ० २३५- २५३) में डा० गंगासागर राय ने प्रस्तुत किया है ।

शुक्ल यजुर्वेद की शाखाएँ—संहिताएँ

शुक्ल यजुर्वेद की शाखाओं की दो ही प्रधान संहिताएं वर्तमान में उपलब्ध होती हैं- (१) माध्यन्दिन संहिता (२) काण्व संहिता ।

(१) **माध्यन्दिन संहिता**— यह शाखा उत्तर भारत में विशेष रूप से प्रतिष्ठित हुई । महर्षि वैशम्पायन से यजुर्वेद का अध्ययन महर्षि याज्ञवल्क्य आदि ने किया । शुक्ल यजुर्वेद महर्षि याज्ञवल्क्य से महर्षि मध्यन्दिन ने अधिगत किया । इसी कारण यजुर्वेद का अपरनाम 'माध्यन्दिन-संहिता' भी है । यद्यपि महर्षि याज्ञवल्क्य के एकाधिक शिष्यों ने 'यजुष' को आत्मसात् किया; परन्तु इसमें विशिष्टता प्राप्त की । मध्यन्दिन ने तथा उस ज्ञान को विशेष रूप से प्रवर्तित भी किया, इसलिए कालान्तर में वह 'माध्यन्दिन-संहिता' कहलाई (**यद्यपि याज्ञवल्क्येन बहुभ्यः शिष्येभ्यः उपदिष्टः तथापि ईश्वरकृपया मध्यन्दिनसम्बन्धितया लोके प्रख्यायते**-मही० भा० यजु० भूमिका) । आजकल प्रायः उपलब्ध होने वाला यजुर्वेद 'माध्यन्दिन संहिता' ही है, अर्थात् इस संहिता

को ही यजुर्वेद का पर्याय मानना चाहिए। यह संहिता दो भागों में प्रविभक्त है- (१) पूर्वविंशति: (२) उत्तरविंशति:। पूर्वविंशति: भाग प्रथम से विंशति अध्याय पर्यन्त है। प्रत्येक अध्याय में कण्डिकाएँ हैं और प्रत्येक कण्डिका कुछ मन्त्रों से मिलकर बनी है। जन-सामान्य कंडिका को ही मन्त्र समझते हैं; परन्तु एक कंडिका कई भागों में यागादि अनुष्ठान कर्मों में प्रयुक्त होने से कई मन्त्रों वाली होती है। पूर्वविंशति में कुल १२११ कण्डिकाएँ और मन्त्र संख्या २५८५ है। उत्तरविंशति भाग एकविंशति से चत्वारिंश अध्याय पर्यन्त है। इसमें भी प्रत्येक अध्यायों में कुछ कण्डिकाएं और प्रत्येक कण्डिका कुछ मन्त्रों का समुच्चय है। इस प्रकार उत्तरविंशति भाग ७६४ कंडिकाओं और १४०३ मन्त्रों से युक्त है।

सम्पूर्ण माध्यन्दिन संहिता में ४० अध्याय, १९७५ मंत्र हैं। इसका वर्ण्य विषय यज्ञीय कर्मकाण्ड के लिए मन्त्र प्रस्तुत करना है। कृष्ण यजुर्वेद में कर्मकाण्ड और मन्त्र दोनों हैं, इसमें कर्मक. ्ड विधायक ब्राह्मण भाग नहीं है, केवल विशुद्ध मन्त्रभाग ही है; परन्तु इन मन्त्रों का उपयोग यज्ञीय कर्मकाण्डों-दर्शपौर्णमास, अग्न्याधान, यूप निर्माण, वाजपेय, राजसूय, उखा सम्भरण, शतरुद्रिय, चित्यारोहण, वसोर्धारा, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध, प्रवर्ग्य, महावीर सम्भरण इत्यादि के लिए होता है। इसका अन्तिम ४०वाँ अध्याय विशुद्ध ज्ञान-परक है, उसका नाम 'ईशावास्योपनिषद्' है। इसे आदि उपनिषद् होने का गौरव प्राप्त है—

ईशकेनकठप्रश्नमुंडमांडूक्यतित्तिरि:।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश॥

इसी संहिता के ३४वें अध्याय के छह मन्त्र भी उपनिषद् की कोटि में माने गये हैं, उन्हें 'शिव संकल्पोपनिषद्' की संज्ञा प्राप्त हुई है।

(२) **काण्व संहिता**— इस संहिता का प्रचलन वर्तमान में महाराष्ट्र प्रान्त में ही देखा जाता है; परन्तु प्राचीनकाल में इस शाखा का प्रचार क्षेत्र उत्तर भारत ही था। इस शाखा के प्रमुख आचार्य महर्षि कण्व रहे हैं। उनका आश्रम 'मालिनी' नदी के तट पर स्थित था। यह स्थान उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में है। 'मालिनी' नदी आजकल 'मालन' के नाम से एक लघुकाय नदी के रूप में विद्यमान है। महर्षि कण्व का सम्पूर्ण उपाख्यान महाभारत (आदि० ६३.१८) तथा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' (कालिदास) में प्राप्त होता है।

इस शाखा का उत्तर भारत से सम्बन्ध होने का एक प्रमाण आन्तरिक भी है। इसी संहिता के ११वें अध्याय के ११वें मन्त्र में कुरु तथा पाञ्चालदेशीय राजा का नामोल्लेख पाया जाता है— **एष व: कुरवो राजा एष पाञ्चालो राजा**। इससे भी इस शाखा के उत्तर-भारत में प्रचलित होने का प्रमाण मिल जाता है।

'काण्व संहिता' मद्रास के 'आनन्दवन' नामक नगर से प्रकाशित हुई है। इसमें भी ४० अध्याय हैं, साथ ही ३२८ अनुवाक तथा २०८६ मन्त्र हैं। इसकी मंत्र संख्या, माध्यन्दिन संहिता से १११ अधिक है। इस संहिता के वर्ण्य विषय भी माध्यन्दिन संहिता के समान ही हैं। शुक्ल यजुर्वेद की शाखाओं का विशद वर्णन डा० गंगासागर लिखित '**शाखाज् ऑफ दि ह्वाइट यजुर्वेद पुराणम्**' नामक ग्रन्थ में (vii१-पृ० ६-१७) में उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत प्रयास के सन्दर्भ में

यजुर्वेद के मंत्रों के अर्थ प्राचीन आचार्यों ने यज्ञीय कर्मकाण्ड के सन्दर्भ में किये हैं। यजुर्वेद (शुक्ल यजुर्वेद) पर प्राचीन आचार्यों में 'उवट' (१०४३ ईसवी के आस-पास) तथा महीधर (१५८८ ई० के लगभग) के भाष्य प्रमुख रूप से उपलब्ध हैं। यजुर्वेद (माध्यन्दिन संहिता) पर आचार्य उवट का भाष्य उपलब्ध होने से आचार्य सायण (१३२५-१३८७ई०) ने उस पर लेखनी नहीं चलायी। इन आचार्यों ने अपने भाष्यों का आधार यज्ञीय कर्मकाण्ड को ही प्रमुख रूप से बनाया है। कहीं-कहीं संक्षिप्त संकेत यज्ञ के विराट् सन्दर्भों की ओर भी हुए हैं, किन्तु मुख्यत: कात्यायन श्रौतसूत्र के सन्दर्भ देते हुए यज्ञीय कर्मकाण्ड ही उनका प्रमुख आधार रहा है।

उक्त आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कर्मकाण्ड परक अर्थों में अनेक प्रसंग अत्यन्त विवादास्पद हैं।

अश्वमेध प्रकरण के अन्तर्गत अश्लील प्रकरण तथा अश्व छेदन, अंगों की आहुतियों आदि के प्रसंग विद्वानों को वेद की मूलभावना एवं गरिमा के अनुरूप नहीं लगते।

आचार्य उवट और महीधर ने यज्ञशाला में पशु-पक्षियों के बाँधे जाने के प्रसंग में यह टिप्पणी की है कि उन्हें यज्ञ में काटने के लिए नहीं, यज्ञ पशु के रूप में छोड़ देने के लिए लाया जाता है— **तेष्वारण्या: सर्वे उत्स्रष्टव्या न तु हिंस्या:** (यजु० २४.४० उ०, मही० भा०) । यह क्रिया वृषभोत्सर्ग (चिह्न लगाकर साँड़ छोड़ने) जैसी कोई क्रिया रही हो, तो किसी को उस पर क्या आपत्ति हो सकती है।

अश्व के अंगों की आहुति प्रसंग में उन्होंने लिखा है कि आज्य (घृत) में अंगों की शक्तियों की अवधारणा करके आहुतियाँ की जाएँ— **आज्यमवदानानि कृत्वा आज्यमेवाश्वांगत्वेन परिकल्प्य .. आज्याहुतीर्जुहोति संकल्पिताश्वांगभवा घृताहुती: श्वादादिभ्यो ददाति** (यजु० २५.१ मही० भा०) । इस प्रकार यज्ञ के अध्वर (हिंसारहित कर्म) होनेके भाव की रक्षा की है; किन्तु समाधान के इन सब प्रयासों के बाद भी सूचिका वेधन एवं अश्लील प्रकरण जैसे प्रसंगों के सन्दर्भ में कोई उचित समाधान मिल नहीं पाते।

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर एवं आर्य समाज के वेदज्ञ विद्वानों ने पर्याप्त श्रम करके यजुर्वेद के मंत्रों के आध्यात्मिक अर्थ कर दिये हैं। इस प्रकार उक्त विवादास्पद प्रसंगों से उसे बचा लिया है। अध्येताओं को एक नयी दृष्टि भी इससे मिली है; किन्तु यह अर्थ यज्ञीय कर्मकाण्ड से बिलकुल हटकर होने के कारण 'यजु' के 'यज्ञीय' होने के भाव की तुष्टि नहीं होती। यज्ञपरक व्याख्याएँ खोजने के लिए पूर्व आचार्यों के ही भाष्य देखने पड़ते हैं, जो विवादास्पद प्रसंगों से मुक्त नहीं हैं।

इसके लिए उक्त सम्माननीय आचार्यों को भी दोष नहीं दिया जा सकता। सर्वविदित है कि भगवान् बुद्ध के आविर्भाव के समय तक वैदिक कर्मकाण्डों में पशु हिंसा आदि अनेक विकृतियाँ प्रवेश कर गयी थीं। उनके साथ अनेक वाममार्गी तंत्र के प्रयोग जुड़ गये थे। समाज को उन विकृतियों से मुक्ति दिलाने के लिए ही जैन तीर्थंकरों एवं भगवान् बुद्ध ने उस समय प्रचलित यज्ञों का विरोध किया था। उनके प्रभाव से वह परिपाटी लुप्त-प्राय हो गयी थी।

भगवान् बुद्ध लगभग ५०० वर्ष ईसा पूर्व हुए थे। आचार्य उवट ईसा के लगभग १००० वर्ष बाद तथा महीधर लगभग १५०० वर्ष बाद हुए। उन्हें कम से कम १५०० से २००० वर्ष पूर्व लुप्त परिपाटी को खोजना था। जो सूत्र, ग्रन्थों या कुल-परम्पराओं में मिले होंगे, उनमें बुद्धकाल के समय फैली वाममार्गी तंत्र परम्पराओं का मिश्रण भी अवश्य रहा होगा। **सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडित:** (सर्वनाश की स्थिति में आधा बचा लेने) की दृष्टि से उन्होंने जो कुछ किया, वह अभिनन्दनीय एवं वन्दनीय ही कहा जा सकता है; किन्तु वर्तमान सन्दर्भ में यजुर्वेद के यज्ञीय परिपाटी युक्त अर्थ की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता।

इस भावार्थ में उक्त असमञ्जस का समाधान निकालने का विनम्र प्रयास किया गया है। ऋषि जब कार्य कराना चाहते हैं, तो दृष्टि भी प्रदान करते हैं। स्पष्ट है कि वेद ने 'यज्ञ' को सदैव व्यापक अर्थों में ही प्रयुक्त किया है। सृष्टि सृजन यज्ञ, सृष्टि पोषण यज्ञ, प्राणियों का जीवन यज्ञ, कर्मयज्ञ एवं यज्ञीय कर्मकाण्ड, सभी उनकी दृष्टि में रहते हैं। उनके कथन कभी एक यज्ञ पर, कभी अन्य यज्ञ पर तथा कभी बहुअर्थक होकर एक साथ अनेक प्रसंगों पर घटित होते हैं। किसी सीमित संदर्भ के प्रति पूर्वाग्रही होकर उन्हें सही अर्थों में नियोजित नहीं किया जा सकता। अत: खुले हृदय और मस्तिष्क के साथ मंत्रों की स्वाभाविक धाराओं के अनुरूप अर्थ करने पर ही वे सटीक बैठते हैं। यही नहीं कुछ ऐसे उपयोगी सूत्रों को भी प्रकट कर देते हैं, जिन्हें जानना-समझना आज के मानस के लिए नितान्त आवश्यक है।

समुचित अर्थ के लिए स्मरणीय सूत्र

मंत्रार्थ करते समय जहाँ 'यज्ञ' के विभिन्न रूपों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है, वहीं मंत्र से सम्बद्ध ऋषि, देवता एवं छन्द की प्रकृति को भी जानना आवश्यक होता है। कहा गया है—'ऋषि , देवता, छन्द

आदि को जाने बिना जो भी वेदाध्ययन, अध्यापन आदि करता है, वह निरतिशय पाप का भागी होता है। इसके विपरीत जो ऋषि, देवता, छन्दादि की विधिवत् जानकारी के साथ स्वाध्याय-अध्यापन आदि करता है, वह सफल मनोरथ होता है, साथ ही यदि अर्थबोधपूर्वक अध्ययनादि करता है, तो अधिक सफल-सफलतर प्रयलवाला होता है- **एतान्यविदित्वा योधीतेऽनुब्रूते..तस्य ब्रह्मनिर्वीर्यं.... पापीयान् भवत्यथ विज्ञायैतानि योऽधीते, तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित् तस्य वीर्यवत्तर भवति**— (कात्यायन प्रणीत सर्वा० १.१) ।यही तथ्य बृहद्देवताकार महर्षि शौनक ने इस प्रकार व्यक्त किया है... **अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च। योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः** ।(बृह० ८.१३२)

उक्त कथन का भाव बड़ा विवेक-सम्मत है। ऋषि, देवता एवं छन्दों के नाम रट लेने या न रटने से उसका उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता। थोड़ा विचार करने से उसका भाव स्पष्ट हो जाता है।

ऋषि— किसी कथन का वास्तविक भाव वक्ता के व्यक्तित्व को जाने बिना निकालना कठिन है। सामान्य दृष्टि से **'मो सम कौन कुटिल खल कामी'** कहने वाला निश्चित रूप से कोई अधम व्यक्ति ही लगेगा; किन्तु उक्त वाक्य कहने वाले 'संत सूरदास' हैं, यह बात स्पष्ट होते ही उक्त कथन को गहन आत्मचिंतन युक्त आध्यात्मिक संदर्भ में ले लिया जायेगा।

अस्तु, ऋषि के व्यक्तित्व और दृष्टि को ध्यान में रखकर ही उनके कथन का अर्थ किया जाना उचित है।

देवता— ऋषि किसी छोटी सी क्रिया या छोटे से उपकरण के पीछे सन्निहित किसी दिव्य चेतन शक्ति की सक्रियता देखते हैं। उस देवशक्ति के सम्बन्ध में कोई अवधारणा न होने पर उस कथन का सही भाव पकड़ में नहीं आ सकता। **'सोमेनादित्यः बलिनः'** (सोम से आदित्य को शक्ति मिलती है) इस कथन से यदि सोम को सोमवल्ली का रस भर मान लिया जाय, तो कैसे काम चलेगा ? यहाँ सोम के दिव्य प्रवाह का वह स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए , जो सूर्य को करोड़ों वर्षों से ऊर्जा का अविरल स्रोत बनाये हुए है।

अस्तु, वस्तुओं अथवा क्रियाओं से सम्बद्ध देव प्रवाहों की अवधारणा के बिना भी ठीक-ठीक अर्थ नहीं निकाले जा सकते।

छन्द— अभीष्ट भावों को व्यक्त करने वाले शब्दों को किसी विशेष अनुशासन में बाँध देने से छन्द बनते हैं। संस्कृत बड़ी समर्थ भाषा है, उसमें एक भाव के लिए अनेक शब्द तथा एक शब्द के अनेक अर्थ उपलब्ध हैं। छन्द में मात्राओं की मर्यादा के अनुरूप शब्दों का चयन किया जाता है। उससे भिन्न मात्राओं वाला दूसरा समानार्थक शब्द वहाँ नहीं रखा जा सकता; किन्तु यदि वह शब्द अनेकार्थक है, तो भी छन्दकार के भाव के अनुरूप ही उसका अर्थ वहाँ लेना होगा।

छन्द रचना में शब्दों के स्थान बहुत बार बदलने पड़ते हैं, अन्वय में यदि उन्हें इधर से उधर रख दिया जाए, तो भाव बदल जाता है। जो छन्द की मर्यादा नहीं समझते, वे अन्वय के साथ न्याय कर पाएँ, यह कठिन है। फिर छन्द का सम्बन्ध उच्चारण एवं स्वर विज्ञान से भी है। मंत्र प्रयोग में उसके भाव के अनुरूप ही उच्चारण का ढंग अथवा पाठ के स्वर रखने चाहिए। एक ही वाक्य **'हम तो धन्य हो गये'** श्रद्धापरक, प्रसन्नता परक अथवा व्यंग्य परक ढंग से बोला जा सकता है। इसलिए मंत्रों के सार्थक प्रयोग में छन्द की मर्यादा का ज्ञान होना भी आवश्यक होता है।

ऋषि, देवता एवं छन्दों के निर्धारण का प्रकरण तो अलग से दिया जा रहा है, यहाँ तो मन्त्रार्थ के सन्दर्भ में ही उनका उल्लेख किया गया है।

इस भावार्थ में उक्त सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखकर मंत्रों के सहज, स्वाभाविक, जन-सुलभ अर्थ किये गये हैं; वे यज्ञीय प्रक्रिया से दूर भी नहीं हैं; किन्तु उन्हें केवल कर्मकाण्ड या केवल अध्यात्म की सीमा में बाँधे रखने का ही पूर्वाग्रह न रखने से वे सहज प्रवाह में आ सके हैं। इतना अवश्य है कि कुछ शब्दों-सम्बोधनों के अर्थ प्रचलित परम्परा से हटकर किये गये हैं; किन्तु वे अर्थ शास्त्र-सम्मत भी हैं तथा यजुर्वेद की मूल घोषणाओं तथा वेद की गरिमा के अनुरूप भी हैं। अध्ययन करने वालों को इस सन्दर्भ में असमंजस का सामना न करना पड़े, इसलिए कुछ उदाहरण समीक्षा सहित प्रस्तुत किये जाते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों की समीक्षा

लौकिक सन्दर्भ में संज्ञाओं, सम्बोधनों का अधिकांश उपयोग व्यक्तिपरक अथवा जातिपरक होता है, जैसे 'इन्द्र' से किसी व्यक्ति अथवा देवता के नाम एवं 'गौ' या 'अश्व' से जाति विशेष के पशुओं के नाम का बोध होता है; किन्तु वेद का क्रम इससे भिन्न है। वहाँ संज्ञाएँ गुणवाचक या भाववाचक अर्थों में प्रयुक्त होती हैं। व्यक्ति या जातिवाचक अर्थ उनके लिये तो जा सकते हैं; किन्तु वे अर्थ वेद मन्त्रों के स्वाभाविक प्रवाह में स्थापित नहीं हो पाते।

यजुर्वेद में जगह-जगह देवताओं, गौ, अश्व, वाजी, अज, अवि, इष्टका आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते हैं। ये सभी अनेकार्थक शब्द हैं तथा इनके यदि गुण या भावपरक अर्थ लिये जाएँ, व्यक्ति या वस्तुपरक अर्थों का पूर्वाग्रह न रखा जाए, तो वेदमन्त्रों के अर्थ अधिक स्वाभाविक और गरिमामय बन पड़ते हैं। कुछ समीक्षात्मक उदाहरणों से यह तथ्य सुविधापूर्वक समझा जा सकता है।

देवता—आज की धारणा यह है कि इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र आदि कोई सूक्ष्म देहधारी देवता हैं। पौराणिक सन्दर्भ में वे माने जाएं तो ठीक भी है, किन्तु वेद में तो उन्हें विशिष्ट शक्तिधाराओं—दिव्य प्रवृत्तियों के रूप में लिया गया है।

कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति घर में स्वामी, कार्य क्षेत्र में डाक्टर या वकील तथा खेल के मैदान में खिलाड़ी या कैप्टिन के सम्बोधन से बुलाया जा सकता है। एक ही व्यक्ति के लिए अलग-अलग सम्बोधन गलत नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार वेद में एक ही शक्ति धारा को विभिन्न भूमिकाओं में विभिन्न देवपरक सम्बोधनों से सम्बोधित किया जाता है। जैसे सूर्य को कहीं इन्द्र (सौरमण्डल को बाँधकर रखने वाले), कहीं पूषा (पोषण देने वाले), कहीं रुद्र (तेज से रुला देने वाले) कहा जाता है, तो कोई भी सम्बोधन अनर्थक नहीं कहा जायेगा।

अग्नि को अनेक स्थानों पर 'जातवेदा' (उत्पन्न करने के विशेषज्ञ), कहीं पूषा (पोषण देने वाले), कहीं यम (अनुशासन बनाने वाले) कहा गया है। सभी सम्बोधन युक्तिसंगत हैं।

देवताओं को प्राण की विभिन्न धाराओं के रूप में माना गया है— जो सन्दर्भ विशेष में विशिष्ट भूमिका में प्रवृत्त देखे जाते हैं— **प्राणा वै देवा मनुजाता: (मनोजाता मनोयुज:)** (तै० सं० ६.१.४.५; काठ० सं० २३.५) प्राण ही देवगण हैं, (जो) मन से उत्पन्न और उसी से संयुक्त हैं। **प्राणा वै देवा धिष्ण्यास्ते हि सर्वा धिय इष्णन्ति** (शत० ब्रा० ७.१.१.२४)। 'प्राण' ही धिष्ण्य देव हैं; क्योंकि यही (प्राण) सब बुद्धियों को प्रेरित करते हैं। **प्राणा वै देवा द्रविणोदा:** (शत० ब्रा० ६, ७, २, ३) । धन देने वाले देव ये प्राण हैं। **प्राणा वै मरीचिपा:। तानेव प्रीणाति** (काठ० सं० २७.१)। प्राण ही तेजस् की रक्षा करने वाले हैं (और) उनको ही प्रसन्नता (समृद्धि) प्रदान करते हैं। **प्राणेन वै देवा अन्नमदन्ति। अग्निरु देवानां प्राण:** (शत० ब्रा० १०.१.४.१२)। प्राण के माध्यम से देवगण अन्न ग्रहण करते हैं। 'अग्नि' देवों के प्राण हैं। **प्राणैर्वै देवा स्वर्गं लोकमायन्** (जै० ब्रा० २.३०१)। प्राणों के द्वारा ही देवगण स्वर्ग में पहुँचे। **प्राण एव सविता** (शत० ब्रा० १२.९.१.१६) प्राण ही सविता है। **ऐन्द्र: खलु वै देवतया प्राण:** (तै० सं० ६.३.११.२) देवता के रूप में प्राण ही इन्द्र हैं। **प्राणेन यज्ञ: सन्तत:** (मैत्रा० सं० ४.६.२) प्राण के द्वारा ही सतत यज्ञ चलता रहता है। **तस्मात्प्राणा देवा:** (शत० ब्रा० ७.५.१.२१) इसलिए प्राण ही देव हैं। **प्राणा वै रुद्रा:** (जै० उप० ४.२.१.६) प्राण ही रुद्र हैं। **प्राणा वै साध्या देवा:** (शत० ब्रा० १०.२.२.३) प्राण ही साध्य देव हैं। **प्राणो वै ब्रह्म** (शत० ब्रा० १४.६.१०.२) प्राण ही ब्रह्म (व्यापक शक्ति) है।

वेद में यज्ञीय उपकरणों को भी देवपरक संज्ञा दी है। उपकरणों में निहित विशेषता के रूप में वे एक विशिष्ट चेतन शक्ति के दर्शन करते हैं। वही चेतन शक्ति उन्हें अनेक स्थलों पर संव्याप्त दिखती है, अस्तु, वे उस देव शक्ति की महिमा व्यक्त करने लगते हैं। जैसे **'इष्टका'** का सीधा अर्थ है—ईंट; किन्तु वेद की दृष्टि में 'इष्टका' किसी भी निर्माण की इकाई है। **तत् यदिष्टात् समभवत्तस्माद् इष्टका:** (शत० ब्रा० ६.१.२.२२)। चूँकि वह इष्ट (चेतना या पदार्थ) से बनी है, इसलिए इष्टका है। अन्न से शरीर बनता है, इसलिए **'अन्नं वा इष्टका:'** (तै० सं० ५.६.२.५) अन्न इष्टका है। वर्ष के निर्माण में दिनरात्रि इष्टका रूप हैं, **अहोरात्राणि वाऽइष्टका:** (शत० ब्रा० ९.१.२.१८) इत्यादि।

इसी प्रकार 'यूप' 'वनस्पति देव', 'उपयाम पात्र' आदि सभी में देव शक्तियों को सन्निहित देखकर उन्हें वेद में देवपरक सम्बोधन दिये गये हैं। मंत्रों के सही भाव समझने के लिए ऋषियों की उक्त गहन दृष्टि को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। गौ, अश्व, अवि आदि पशुपरक सम्बोधनों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार विचार करना होता है। जैसे—

गौ— वेद में गौ सम्बोधन पोषण प्रदायक दिव्य शक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। पशु रूप में 'गौ' पर भी यह परिभाषा भली प्रकार लागू होती है; किन्तु वेद के गौपरक सम्बोधन को व्यापक अर्थों में ही लेना होगा। जैसे—**इमे लोका गौः** (शत० ब्रा० ६.५.२.१७) ये लोक गौ कहे जाते हैं। **अन्तरिक्षं गौः** (ऐत० ब्रा० ४.१५) अन्तरिक्ष को गौ कहा गया है। **गावो वा आदित्याः** (ऐत० ब्रा० ४.१७) गौ ही आदित्य है। **अन्नं वै गौः** (तै० ब्रा० ३.९.८.३)। अन्न ही गौ है। **यज्ञो वै गौः** (तै० ब्रा० ३. ९. ८. ३) यज्ञ ही गौ है। **प्राणो हि गौः** (शत० ब्रा० ४.३.४.२५) प्राण ही गौ है। **वैश्वदेवी वै गौः** (गो० ब्रा० २.३.१९) वैश्वदेवी (सम्पूर्ण दैवी शक्तियों की पुञ्ज) गौ है। **आग्नेयो वै गौः** (शत० ब्रा ७.५.२.१९) अग्नि से उद्‌भूत (यज्ञीय ऊर्जा) ही गौ है।

यजु० १३.४९ में ऋषि प्रार्थना करते हैं "हे अग्ने! सैकड़ों, हजारों धाराओं से लोकों के मध्य घृत (तेजस्) को स्रवित करने वाली, परम व्योम में स्थित अदिति रूप इस 'गौ' को आप हानि न पहुँचाएँ।" स्पष्ट है कि परम व्योम में स्थित सहस्रों धाराओं में दिव्य पोषण देने वाली 'गौ' कोई पशु नहीं, प्रकृति की पोषण क्षमता ही कही जा सकती है। ऋषि चाहते हैं कि अग्नि (ऊर्जा) के ऐसे प्रयोग न हों, जिससे प्रकृति की पोषण-क्षमता पर बुरा असर पड़े। अस्तु, वेद में गौ सम्बोधन का अर्थ, प्रयोग विशेष के अनुरूप ही किया जाना अभीष्ट है।

अश्व— अश्व सम्बोधन लौकिक सन्दर्भ में घोड़े के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु गुण वाचक संज्ञा के रूप में उसका अर्थ होता है **'अश्नुते अध्वानम्'** (तीव्र गति वाला) **'अश्नुते व्याप्नोति'** (शीघ्रता से सर्वत्र संचरित होने वाला) तथा **'बहु अश्नानीति अश्वः'** (बहुत आहार करने वाला होने से अश्व संज्ञा दी जाती है) आदि।

इस परिभाषा के अनुसार वेद ने किरणों को, अग्नि को, सूर्य को, यहाँ तक कि ईश्वर को भी अश्व की संज्ञा दी है। देखें—**'सौर्यो वा अश्वः'** (गो० ब्रा० २.३.१९) सूर्य का सूर्यत्व (तेज) अश्व है। **'अग्निर्वा अश्वः'** अग्नि अश्व है (शत० ब्रा० ३. ६. २.५); **'अश्वो न देव वाहनः'** (ऋ० ३.२७.१४) अश्व (अग्नि) देवों का वाहन है— अग्नि को हव्यवाहन कहते हैं। **'असौ वा आदित्योऽश्वः'** (तै० ब्रा० ३. ९. २३. २) यह आदित्य अश्व है। **'अश्वो यत ईश्वरो वा अश्वः'** (शत. ब्रा० १३.३.३.५) 'सारे संसार में संचरित होने के कारण ईश्वर भी अश्व है।'

बृहदारण्यक उपनिषद् (१.१.१) में कहा गया है—'उषा' यज्ञ सम्बन्धी अश्व का शिरोभाग है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, वैश्वानर अग्नि उसका खुला हुआ मुख है और संवत्सर यज्ञीय अश्व की आत्मा है। द्युलोक उसका पृष्ठ भाग है, अन्तरिक्ष उदर है, पृथिवी पैर रखने का स्थान है, दिशाएँ पार्श्व भाग हैं, अवान्तर दिशाएं पसलियाँ हैं, ऋतुएँ अंग हैं, मास और अर्द्धमास पर्व (सन्धि स्थान) हैं, दिन और रात्रि प्रतिष्ठा (पाद) है, नक्षत्र अस्थियाँ हैं, आकाश (आकाशस्थ मेघ) मांस है,... उसका जम्हाई लेना बिजली का चमकना है और शरीर हिलाना मेघ का गर्जन है...। इस उपनिषद् वचन से क्या 'अश्व' नामक कोई पशु हो सकता है? निश्चित रूप से वह अश्व सम्बोधन किसी पशु के लिए नहीं, सूर्य के तेज या यज्ञीय ऊर्जा के लिए ही हो सकता है। इसी प्रकार **'अयꣳ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ...'** (यजु० २३.६२) 'यह सोम वर्षण करने वाले अश्व का रेतस् (तेज) है' इस उक्ति में 'अश्व' सूर्य या मेघ को ही कहा जा सकता है।

घोड़े के लिए प्रयुक्त अन्य सम्बोधन भी वेद में हैं; किन्तु वे सभी गुणवाचक संज्ञा के रूप में व्यापक अर्थों में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—अर्वा या अर्वन् का अर्थ होता है, चंचल। 'वाजी' का अर्थ होता है—वीर्यवान्। 'अत्य' का अर्थ होता है—अतिक्रमण कर जाने वाला, लाँघ जाने वाला। यह सभी सम्बोधन अग्नि के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। **'अग्निर्वा अर्वा'** (तै० ब्रा० १.३.६.४) अग्नि ही 'अर्वा' है, से यह भाव स्पष्ट होता है।

इसी प्रकार **'अज'** बकरा न होकर **'वाक् वा अजः'** (शत० ब्रा० ७.५.२.२१) वाणी अज है।

'आग्नेयो वा अजः' (शत० ब्रा० ६.४.४.१५) अग्नि से उत्पन्न (धूम्र आदि) अज है।

अवि 'भेड़' को भी कहते हैं और रक्षण क्षमता को भी। शत० ब्रा० ६.१.२.३३ में कहा गया है कि यह पृथ्वी अवि है, क्योंकि यह प्रजाओं की रक्षा करती है। यजु० १३.४४ में ऋषि कहते हैं—"हे अग्निदेव ! उत्तम आकाश में स्थापित विभिन्न रूपों का निर्माण करने वाली, वरुण की नाभि रूप, उच्च व्योम से उत्पन्न, असंख्यों की रक्षा करने वाली इस महिमामयी 'अवि' को हिंसित न करें।" स्पष्ट है कि उक्त अवि 'भेड़' नामक पशु नहीं हो सकती। इसे पृथ्वी की रक्षा करने वाले आयनोस्फियर (अयन मण्डल) अथवा पर्यावरण की सुरक्षा की प्राकृतिक व्यवस्था कहना अधिक युक्तिसंगत लगता है।

इस प्रकार वेद की दृष्टि से अनेक सम्बोधनों-शब्दों के अर्थ इस भाषानुवाद में इसी दृष्टि से किये गये हैं। जहाँ इस प्रकार ढर्रे से हटकर अर्थ किये गये हैं, वहाँ यथासंभव संक्षिप्त टिप्पणियाँ देकर उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास भी किया गया है।

यजुर्वेद में मेध प्रकरण

वेद में 'मेध' शब्द 'यज्ञ' का पर्याय है। निघण्टु में यज्ञ के १५ नाम दिये गये हैं। उनमें 'अध्वर' तथा 'मेध' भी सम्मिलित हैं। 'अध्वर' का शाब्दिक अर्थ किया जाए तो होता है **'ध्वरति वधकर्मा' 'न ध्वरः इति अध्वरः'** अर्थात् हिंसा का निषेध करने वाला कर्म। 'मेध' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए धातुकोश में लिखा है— **'मेधृ-मेधा, हिंसनयोः संगमे च'** अर्थात् मेध शब्द का उपयोग तीन संदर्भों में किया जा सकता है। (१) मेधा-संवर्धन (२) हिंसा (३) संगम, संगतिकरण, एकीकरण, संगठन। अस्तु, यज्ञ जब 'अध्वर' है, तो उस प्रकरण में 'मेध' का अर्थ हिंसा तो हो ही नहीं सकता। 'मेधा-संवर्धन' एवं 'संगतिकरण' के संदर्भ में ही लिया जाना उचित है।

यह सर्वमान्य है कि वेदों का चार भागों में संपादन 'वेदव्यास' जी ने किया। वे यज्ञ में हिंसा का निषेध करते हुए स्पष्ट लिखते हैं—

सुरामत्स्या मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्॥

(महा. शा. २६५.९)

मद्य, मछली, पशुओं का मांस, द्विजातियों का बलिदान आदि धूर्तों द्वारा यज्ञ में प्रवर्तित हुआ, वेदों में इस प्रकार का विधान नहीं है। अस्तु, मेध का हिंसापरक अर्थ करने का आग्रह किसी भी विवेकशील को नहीं करना चाहिए। यज्ञ जैसी पारमार्थिक प्रक्रिया को इस लाञ्छन से मुक्त ही रखना उचित है।

यजुर्वेद तो यज्ञपरक कहा ही गया है। दर्शपूर्णमास, सोम यज्ञ, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी आदि यज्ञों में यजुर्मन्त्रों का विनियोग होता है। **'मेध'** सम्बोधन सहित जिन यज्ञों का प्रकरण उसमें है, वे हैं- अश्वमेध (अध्याय २२ से २५ एवं २९) पुरुषमेध (अ० ३०) सर्वमेध (अ० ३२) तथा पितृमेध (अ० ३५) आदि। इनमें भी 'मेध' का हिंसापरक अर्थ सिद्ध नहीं होता। यदि मेध का अर्थ वध हो तो 'पितृमेध' कैसे संभव है। पितरों के तो शरीर पहले ही समाप्त हो चुकते हैं। सर्वमेध में आत्मा को परमात्मा में समर्पित करके मुक्ति प्राप्त करने को सर्वमेध कहा गया है। पुरुषमेध में आदर्श समाज व्यवस्था के अन्तर्गत किस प्रकार के व्यक्ति को कहाँ नियोजित किया जाए, इसका वर्णन है।

बत्तीसवें अध्याय में 'आलभन' शब्द का प्रयोग हुआ है। मेध की तरह आलभन शब्द का भी एक अर्थ वध होता है; किन्तु उसके मान्य अर्थ प्राप्त करना, जोड़ना आदि भी हैं। अस्तु, 'अध्वर' वधरहित यज्ञ कर्म में उसके भी हिंसापरक अर्थ का आग्रह नहीं किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में सनातनी, आर्यसमाजी सभी धाराओं के विद्वान् एक मत हो चुके हैं कि 'मेध' और 'आलभन' का हिंसा परक अर्थ यज्ञीय संदर्भ में तो नहीं ही लिया जाना चाहिए।

विवादित प्रसंगों से मुक्ति

उक्त संदर्भों से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ में हिंसापरक प्रक्रियाएँ कभी प्रविष्ट हो गयी हों, यह बात और है; अन्यथा वेद, यज्ञ में हिंसा के पक्षधर नहीं हैं। आश्वमेधिक यज्ञीय प्रक्रिया के अन्तर्गत कुछ मंत्रों के जो हिंसापरक अथवा अश्लील अर्थ किये गये हैं, वे वेद की मूल भावना के साथ मेल नहीं खाते, यह तथ्य आगे कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

अध्ययन-अन्वेषण से पता लगता है कि अश्वमेध वास्तव में शुद्ध-सात्त्विक आध्यात्मिक प्रयोग ही है। शतपथ ब्राह्मण १३.३.१.४ के अनुसार पहला अश्वमेध प्रयोग प्रजापति ने किया था। अपनी कामना पूर्ति के लिए वे इच्छुक हुए। उन्होंने अश्वमेध देखा। उससे यजन करने से उनकी कामनाएँ पूर्ण हुईं...।

पूर्व पृष्ठों पर स्पष्ट किया जा चुका है कि अश्व का अर्थ है— सर्वत्र संचरित होने में सक्षम तथा 'मेध' का अर्थ 'मेधा', संगम-संगतिकरण है। प्रजापति ने सर्वत्र संचरित दिव्य मेधा को देखा, उसे सृष्टि में होमा-प्रविष्ट कराया, तो सृष्टि का क्रम चल पड़ा, प्रजापति की कामना पूरी हुई। **'वीर्यं वा अश्वः'** के अनुसार मनुष्य का पुरुषार्थ अश्व है, उसे दिव्य मेधा से संचालित करने से 'अश्वमेध' होता है। यह प्रयोग जब विराट् स्तर पर - राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है, तब आदर्श राष्ट्र बनता है। इसीलिए **'राष्ट्रं वा अश्वमेधः'** (राष्ट्र अश्वमेध है) कहा गया है। **'सूर्यं वा अश्वमेधः' 'अश्वमेधः यच्चन्द्रमाः'** के अनुसार सूर्य एवं चन्द्र भी अश्वमेध हैं। आज के भौतिक विज्ञान ने भी यह स्वीकार कर लिया है कि सूर्य एवं चन्द्रमा की परिस्थितियों से मनुष्यों की मानसिकता तथा उसकी क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। उक्त आधारों पर अश्वमेध मानवी पुरुषार्थ को दिव्य चेतना से संचालित करने की एक सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उसके अन्तर्गत विविध यज्ञीय प्रयोग किये जाते हैं।

'अश्वमेध' की परम्परागत प्रक्रियाओं में 'सूचीवेध' प्रक्रिया को भी विवादास्पद माना जाता है। उसमें सोने, चाँदी, ताम्बे आदि की सलाइयों से रानियों द्वारा अश्व के शरीर को वेधे जाने की क्रिया दर्शायी गयी है। महीधर भाष्य में २३ वें अध्याय के ३३वें मंत्र के अन्तर्गत यह विवेचन दिया गया है; किन्तु यजुर्वेद के उक्त मंत्र का सीधा अर्थ केवल इतना है कि गायत्री, त्रिष्टुप्...आदि छन्द तुम्हें सूचिकाओं द्वारा शान्ति पहुँचाएँ।

आर्य समाज की परम्परा में इस मंत्र का अर्थ कुछ इस प्रकार किया गया है- 'जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ को ठीक से बताकर मनुष्यों के अज्ञान जनित भेदों को दूर करते हैं, वे सुई से सिलाई करने वाले की तरह सबका कल्याण करते हैं।'

महीधर भाष्य के आधार पर मृत अश्व के शरीर को सलाइयों से छेद कर उसे शान्ति पहुँचाने की बात विवेक ग्राह्य नहीं लगती। आर्य समाज पद्धति की उक्त व्याख्या यज्ञीय कर्मकाण्ड से हटकर तो है ही, सूची प्रयोग को बलात् दूसरी ओर खींचा जा रहा है, ऐसा लगता है। इस भावार्थ में उक्त मंत्र का स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया गया है—बड़े यज्ञ बड़े कुण्डों में होते थे। यज्ञ का नियम है कि समिधाएँ किनारे-किनारे लगायी जाती हैं तथा आहुतियाँ बीच में समर्पित की जाती हैं। उन आहुतियों का एक पिण्ड सा बन जाता है। उसे तोड़ा तो नहीं जाता; किन्तु उसे अग्नि में पूरी तरह पच अवश्य जाना चाहिए। इसके लिए उस पिण्ड को सलाइयों से छेदा जाना उचित है। हवन की गयी ओषधियों के धूम्र का लाभ पूरी तरह प्राप्त करने के लिए रानियाँ उक्त पिण्ड को सलाइयों से छेदें तथा गायत्री आदि वेदोक्त छन्दों से उस पिण्ड को शमित करें, तो बात युक्ति संगत लगती है। उक्त मंत्र में तो अश्व का नाम भी नहीं है, ब्राह्मण ग्रंथों ने उस यज्ञ पिण्ड को 'अश्व' कहा तो 'यज्ञ' या 'अग्नि' को अश्व की संज्ञा देना शास्त्र सम्मत ही है। **'अग्निरेष यदश्वः'** (शत० ब्रा० ६. ३. ३. २२)। **सोऽग्निरश्वो भूत्वा प्रथमः प्रजिगाय**(गो० ब्रा० २.४.११)। **अश्वो ह वा ऽ एष (अग्निः) भूत्वा देवेभ्यो यज्ञं वहति** (शत० ब्रा० १.४.१.३०)

इसी प्रकार एक उदाहरण अश्लील प्रकरण का देखें— यजु० २३.२५ में 'यज्ञ के ब्रह्मा के प्रति कहा गया है " **माता च ते पिता च ते ऽ ग्रे वृक्षस्य क्रीडतः**" इसका सीधा अर्थ होता है कि तुम्हारे माता और पिता वृक्षाग्र पर चढ़कर क्रीड़ा कर रहे हैं। महीधर भाष्य में 'वृक्षाग्र' का अर्थ काष्ठ से बने पलंग के अग्रभाग पर करके माता-पिता की काम क्रीड़ा का संकेत किया गया

है । वृक्षाग्र को पलंग और क्रीड़ा को कामक्रीड़ा कहना एक प्रकार की जबरदस्ती ही है । उक्त मन्त्र के आध्यात्मिक अर्थ (दयानन्द भाष्य) यज्ञीय व्याख्या से दूर हट जाते हैं ।

इस भावार्थ में इसका समाधान इस प्रकार किया गया है- 'वृक्षाग्र' का अर्थ संसार वृक्ष के ऊपरी भाग पर किया जाय, तो यज्ञ-पिता और माता-वाणी (मंत्र शक्ति) की क्रीड़ा चल रही है । वृक्षाग्र से काष्ठ ही लेना है, तो काष्ठ-समिधाओं के अग्रभाग पर पिता अग्निदेव तथा माता हवि की क्रीड़ा चल रही है । यह भाव वेद की गरिमा तथा यज्ञीय परिपाटी दोनों की रक्षा करता है ।

इसी प्रकार सभी प्रसंगों में वेद-मंत्रों के स्वाभाविक यज्ञीय अर्थ ऋषियों के अनुग्रह से संभव हुए हैं । वैज्ञानिक टिप्पणियाँ भी स्थान-स्थान पर प्रस्तुत की गयी हैं ।

ऋषि, देवता, छन्दादि का निर्धारण

वेद के अध्ययन क्रम में ऋषि, देवता एवं छन्दादि का महत्त्व पहले वर्णित किया जा चुका है । निर्धारण प्रक्रिया पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है । यजुर्वेद के सन्दर्भ में यह कार्य कुछ अधिक श्रम साध्य है—

ऋषि— ऋषि का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है कि मन्त्र के प्रवक्ता को ऋषि कहा जाता है—'**यस्य वाक्यं स ऋषिः**' (ऋ० १०.१० सा० भा०) । यजुर्वेद के सन्दर्भ में जब ऋषियों के सम्बन्ध में विचार किया जाता है, तो यहाँ ऋषियों के तीन रूप परिलक्षित होते हैं—

१. प्रथम तो इस वेद के आदिद्रष्टा-प्रत्नद्रष्टा 'ऋषि विवस्वान्' हैं, जैसा कि 'यजुः सर्वा०' में उल्लिखित है—**इषेत्वादि खं ब्रह्मान्तं विवस्वान् अपश्यत्**' (पृ० १) । यह वेद ज्ञान 'सूर्य' के द्वारा क्रमशः याज्ञवल्क्य आदि के माध्यम से पृथ्वी पर प्रसरित हुआ—यह सर्वविदित तथ्य है ।

२. दूसरे स्तर पर इस वेद के वे ऋषि हैं, जो 'दर्शपौर्णमास' आदि प्रकरण विशेष के सामूहिक ऋषि के रूप में प्रसिद्ध हैं, जो प्रायः देवस्तर के हैं । इसका उल्लेख सर्वा० सू० में इस प्रकार है— '**ततः प्रतिकर्म-विभागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋषयो वेदितव्याः** । (सर्वा० पृ० १) । यहाँ देवस्तर के ऋषियों के दो अपवाद भी हैं— (i) याज्ञवल्क्य (ii) दध्यङ् आथर्वण ।

३. तीसरे स्तर में वे सभी ऋषि आते हैं, जिन्होंने वेदमन्त्रों का देवों की स्तुति-प्रार्थना आदि रूपों में प्रयोग किया है—सिद्धि प्राप्त की है । इन्हें वैयक्तिक स्तर का यथावसर सम्बद्ध ऋषि रूप में मान्यता प्राप्त है ।

प्रस्तुत यजुर्वेद संहिता में अन्तिम एक स्तर अर्थात् वैयक्तिक स्तर के ऋषियों का उल्लेख प्रत्येक अध्याय के समापन पर कर दिया गया है । प्रथम और द्वितीय स्तर के ऋषियों की सूची इस प्रकार है—

प्रथम स्तर— अध्याय १ से अध्याय ४० अर्थात् सम्पूर्ण शुक्ल यजुर्वेद के ऋषि विवस्वान् हैं ।

द्वितीय स्तर—

प्रकरण —	अध्याय- कंडिका —	ऋषि नाम
दर्शपूर्णमास	१.१- २.२८	परमेष्ठी प्रजापति या देवगण प्रजापति
पितृयज्ञ	२.२९-२.३४	प्रजापति
अग्न्याधेय	३.१-३.८	प्रजापति, देवगण, अग्नि या गंधर्वा
अग्निहोत्र	३.९-३.१०	प्रजापति
यजमानाग्नि-उपस्थान	३.११-३.३६	देवगण
आगतोपस्थान	३.३७-३.४३	आदित्य
चातुर्मास्य	३.४४-३.६३	प्रजापति
अग्निष्टोम	४.१-८.३२	प्रजापति
सत्रोपस्थान	८.५१-८.५३	देवगण
नैमित्तिक	८.५४ -८.६३	वसिष्ठ
वाजपेय	९.१-९.३४	बृहस्पति-इन्द्र
राजसूय	९.३५-१०.३०	वरुण
चरकसौत्रामणी	१०.३१-१०.३४	अश्विनीकुमार
अग्निचयन	११ अ०-१८ अ०	प्रजापति या साध्यगण
सौत्रामणी	१९ अ०-२१ अ० एवं २८ वाँ अ०	प्रजापति, अश्विनीकुमार सरस्वती

अश्वमेध	२२ अ०-२५ अ० एवं २९ वाँ अ०	प्रजापति
आग्निकोऽध्याय	२७ वाँ अ०	प्रजापति
पुरुषमेध	३० अ०-३१ अ०	नारायणपुरुष
सर्वमेध	३२ वाँ अ०	ब्रह्म स्वयंभू
अनारभ्याधीत	३३.५५-३४.५८	आदित्य-याज्ञवल्क्य
पित्र्योऽध्याय	३५ वाँ अ०	आदित्य अथवा देवगण
प्रवर्ग्याग्निकाश्वमेधोपनिषत्	३६ वाँ अ०	दध्यङ् आथर्वण
महावीर सम्भरण-प्रोक्षणादि	३७ वाँ अ०	दध्यङ् आथर्वण
महावीर निरूपणे-घर्मधुग्दोहनम्	३८ वाँ अ०	दध्यङ् आथर्वण
प्रवर्ग्ये घर्मभेदे-प्रायश्चित्त	३९ वाँ अ०	दध्यङ् आथर्वण
ईशावास्योपनिषद्	४० वाँ अ०	दध्यङ् आथर्वण

देवता— मंत्र द्रष्टा ऋषियों ने अपने साक्षात्कृत मन्त्रों में जिसकी स्तुति की है, जिसका वर्णन किया है, वे उस मंत्र के देवता कहे जाते हैं— **या तेनोच्यते (ऋषिणोच्यते) सा देवता**। (ऋ० १०.१० सा० भा०)। इस परिप्रेक्ष्य में जब यजुर्वेद के मन्त्रों के देवता-निर्धारण पर विचार किया जाता है, तो कम से कम दो विचारधाराएँ सामने उपस्थित होती हैं। एक सनातन धारा है, जिसने यजुर्वेद को अश्वमेधादि यज्ञीय सन्दर्भ में माना और व्याख्यायित किया है। दूसरी धारा अति विचारशीलों की है, जिसने यजुर्वेद को आदर्श समाज-व्यवस्था का सूत्रधार माना और उसी परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया है। यही कारण है कि दोनों विचारधाराओं के कारण दो प्रकार के देवताओं का निर्धारण उपलब्ध संहिताओं में दिखाई पड़ता है। इस दिशा में पर्याप्त अध्ययन-शोध की आवश्यकता है। यहाँ औचित्य की कसौटी पर समीचीन सिद्ध होने वाले तथ्य को ही स्वीकार किया गया है और उसी का प्रतिपादन किया गया है।

यजुर्वेद के प्रतिमन्त्र देवताओं की सूची प्रत्येक अध्याय के समापन पर दिये गये 'ऋषि, देवता, छन्द-विवरण' में दी गई है और उसी का अकारादिक्रम से संक्षिप्त परिचय परिशिष्ट-२ में दिया गया है।

छन्द — छन्दों के निर्धारण में पर्याप्त कठिनाइयाँ सामने आयी हैं। छन्दों के निर्धारण की जो सूचियाँ यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, उनमें मन्त्रों के जो छन्द निर्धारित हैं, वे छन्दों के व्याकरणपरक निर्धारणों से अनेक स्थानों पर मेल नहीं खाते। हो सकता है, पूर्व आचार्यों ने पहले यजुष् मन्त्रों के छन्दों के कुछ और सूत्र निर्धारित किये हों? बाद में वैयाकरणों द्वारा निर्धारित सूत्रों से उनकी संगति न बैठ पायी हो।

उक्त अंतर की दृष्टि से यह प्रकरण पर्याप्त शोधात्मक अध्ययन-निर्धारण की अपेक्षा रखता है। इस भावार्थ के साथ परम्परा एवं विवेक का संयोग करते हुए छन्दों की सूचियाँ परिश्रमपूर्वक बनायी गयी हैं। जिन्हें अध्यायों के अन्त में स्थान दिया गया है। इस निर्धारण में (क) कात्यायन प्रणीत यजु: सर्वानुक्रम सूत्र (ख) वैदिक यन्त्रालय, अजमेर (संवत् २००७) की यजुर्वेद संहिता एवं (ग) निर्णय सागर प्रेस बम्बई (सन् १९२९) की शुक्ल यजुर्वेद संहिता का सहारा प्रमुख रूप से लिया गया है।

यज्ञ प्रधान होने से इसमें एक परिशिष्ट यज्ञीय पात्रों (अदाभ्य, अभ्रि, अन्तर्धानकट, उपवेष आदि) पदार्थों (आज्य, इध्म, इष्टका, आसन्दी आदि) तथा व्यक्तियों (अध्वर्यु, उद्‌गाता, होता आदि) के परिचय का अतिरिक्त जोड़ा गया है और उससे सम्बद्ध चित्र भी यथा-सम्भव दिये गये हैं।

आशा है, सुधीपाठक इस यजुर्वेद का स्वाध्याय, यदि मनोयोगपूर्वक करेंगे और इसकी उस गहराई तक पहुँचेंगे, जिसको ध्यान में रखकर यह प्रयास किया गया है, तो नि:सन्देह उन्हें एक नयी दृष्टि के साथ हर्ष भी प्राप्त होगा।

— भगवती देवी शर्मा

वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल

यजुर्वेद - संहिता

* * *

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

१. ॥ॐ॥ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्या ऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा ऽ अयक्ष्मा मा व स्तेनऽ ईशत माघश ꣳसो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१ ॥

ये कण्डिकाएँ यज्ञकर्म से सम्बन्धित हैं, यज्ञ के साधनों-उपकरणों तथा यज्ञकर्त्ताओं दोनों पर घटित होती हैं । प्रस्तुत कण्डिका में पलाश शाखा को काटना तथा उसे शुद्ध करना, बछड़े को गाय से अलग करना , गाय को संप्रेषित करना एवं शाखा को अग्न्यागार में स्थापित करना आदि क्रियाएँ सम्पन्न करने का विधान है —

हे यज्ञ साधनो ! अन्न की प्राप्ति के लिए सवितादेव आपको आगे बढ़ाएँ । सृजनकर्त्ता परमात्मा आपको तेजस्वी बनने के लिए प्रेरित करें । आप सभी प्राण स्वरूप हों । सृजनकर्त्ता परमेश्वर श्रेष्ठ कर्म करने के लिए आपको आगे बढ़ाएं। आपकी शक्तियाँ विनाशक न हों, अपितु उन्नतिशील हों । इन्द्र (देव-प्रवृत्तियों) के लिए अपने उत्पादन का एक हिस्सा प्रदान करो । सुसंतति युक्त एवं आरोग्य-सम्पन्न बनकर क्षय आदि रोगों से छुटकारा पाओ । चोरी करने वाले आपके निर्धारक न बनें। दुष्ट पुरुष के संरक्षण में न रहो । मातृभूमि के रक्षक की छत्र-छाया में स्थिर बनकर निवास करो । सज्जनों की संख्या में वृद्धि करो तथा याजकों के पशु-धन की रक्षा करो ॥१ ॥

२.वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा ऽ असि। परमेण धाम्ना दृ ꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥२ ॥

प्रस्तुत कण्डिका दर्भ (पवित्राधिष्ठित देवता) , दुग्ध पात्र एवं उखा पात्र को सम्बोधित करती है—

हे यज्ञ साधनो ! आप (अपने यज्ञादि कर्मों से) वस्तुओं को पवित्र करने के माध्यम हो, द्युलोक और पृथ्वी (के संतुलन कर्त्ता) हो । आप ही प्राणों की उष्णता हो, सबके धारक हो । महान् शक्तियों को धारण कर प्रगतिशील बनो, इन्हें बिखरने मत दो । आप से सम्बन्धित यज्ञपति (सेवा का दायित्व सँभालने वाले) भी कुटिल न बनें ॥२ ॥

३. वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥३ ॥

प्रस्तुत कण्डिका में गोदुग्ध रूपी हवि को शुद्ध करने की क्रिया का विधान है —

आप (दर्भमय पवित्र वसु) सैकड़ों-सहस्रों धाराओं वाले, (वस्तुओं को) पवित्र करने वाले साधन हो। सबको पवित्र करने वाले सविता, अपनी सैकड़ों धाराओं से (वस्तुओं को पवित्र करने वाले साधनों से) तुम्हें पवित्र बनाएँ। हे मनुष्य ! तुम और किस (कामना) की पूर्ति चाहते हो ? अर्थात् किस कामधेनु को दुहना चाहते हो ? ॥३॥

[द्रष्टा ऋषि गोदुग्ध में सन्निहित पोषक तत्वों को अंतरिक्ष से पृथ्वी पर सहस्रों धाराओं में प्रवाहित होते देखते हैं। यज्ञ की प्रक्रिया को इसी विराट् दर्शन से जोड़ना चाहते हैं ।]

४. सा विश्वायु: सा विश्वकर्मा सा विश्वधाया:। इन्द्रस्य त्वा भाग ँ॥ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्य ँ॥ रक्ष ॥४॥

प्रस्तुत कण्डिका पूर्वोक्त प्रश्न के उत्तर में दोहनकर्त्ता पुरुष, दुग्ध रूपी हवि एवं पोषणकर्त्ता विष्णु को सम्बोधित है—

हे मनुष्य ! पूर्ण आयुष्य, कर्तृत्वशक्ति एवं धारक शक्ति (रूपी तीन कामधेनु) आपके पास हैं। इनसे प्राप्त (दुग्ध) पोषण-क्षमताओं में से हम (अध्वर्यु) इन्द्र के हिस्से में सोम को मिलाकर उसे स्थिर करते हैं। पोषणकर्त्ता (विष्णु) इन हव्य पदार्थों को सुरक्षित रखें ॥४॥

५. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

प्रस्तुत कण्डिका में कर्म के अनुष्ठान की प्रतिज्ञा की गई है —

हे व्रतों के पालनकर्त्ता, तेजस्वी अग्निदेव ! हम व्रतशील बनने में समर्थ हों। हमारा, असत्य को त्यागकर सत्यमार्ग पर चलने का व्रत पूरा हो ॥५॥

६. कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥

प्रस्तुत कण्डिका प्रणीत (यजमान द्वारा विशेष विधि से लाये गये) जल धारण करने वाले पात्र को सम्बोधित है —

(प्रश्न) हे यज्ञ साधनो ! तुम्हें किसने नियुक्त किया है ? किसलिए नियुक्त किया है ? (उत्तर) उसने (स्रष्टा ने) तुम दोनों (सबल-निर्बल) को (यज्ञादि) कर्म करने के लिए नियुक्त किया है, (उत्तम कर्मों से) दिव्य स्थान में संव्याप्त होने के लिए नियुक्त (प्रवृत्त) किया है ॥६॥

७. प्रत्युष्ट ँ॥ रक्ष: प्रत्युष्टाऽ अरातयो निष्टप्त ँ॥ रक्षो निष्टप्ताऽ अरातय:। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥७॥

प्रस्तुत कण्डिका के साथ काष्ठपात्रों को यज्ञाग्नि में तपाकर विकाररहित करने का विधान है—

यज्ञ ऊर्जा के प्रभाव से, सम्बन्धित उपकरणों में सन्निहित राक्षस एवं शत्रुगण (विकार) जल-भुन चुके हैं। सताने वाले (विकार) झुलस कर जल चुके हैं। अत: अन्तरिक्ष में (यज्ञार्थ) ये यज्ञीय साधन, बिना किसी रुकावट के प्रवेश करते हैं ॥७॥

८. धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वाम:। देवानामसि वह्नितम ँ॥ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥८॥

यह कण्डिका यज्ञ के संसाधन लाने वाले वाहन 'शकट' एवं हवि-वाहक 'अग्नि' दोनों पर घटित होती है। अग्नि के अतिक्रमण का अपराध दूर करने के लिए 'शकट-धुर' के स्पर्श की क्रिया का विधान है—

आप अपनी विध्वंसकारी शक्ति से दुष्टों एवं हिंसकों का विनाश करें। जो अनेक लोगों को कष्ट पहुँचाता है, उस हत्यारे को नष्ट करें। जिस दुरात्मा को सभी नष्ट करना चाहते हैं, उसे नष्ट करें। (हे शकट-देवशक्तियों तक हवि पहुँचाने वाले यज्ञाग्ने !) आप दैवी शक्तियों के वाहक, बलवर्द्धक, पूर्णता तक पहुँचाने वाले, सेवन-योग्य तथा देवगणों को आमंत्रित करने वाले हैं ॥८॥

१.अह्रुतमसि हविर्धानं दृ ꣳ ह्स्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् । विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहत ꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९ ॥

प्रस्तुत कण्डिका में शकट पर चढ़ना, हवि को देखना, तृण आदि को निकालना तथा हवि ग्रहण करना आदि क्रियाओं का विधान है—

आप देवशक्तियों को धारण करने के दृढ़ और सुयोग्य पात्र(माध्यम) हैं । आप और आपके यज्ञ संचालक कुटिल न बनें । पोषक विष्णुदेव ही आप पर आरूढ़ रहें । विशाल वायुमंडल में विचरण करते हुए वायु-सेवन (प्राण-संवर्द्धन) करें । राक्षसी वृत्तियाँ दूर करने के बाद पाँचों (अँगुलियाँ अथवा पंचविध शक्तियाँ-कर्मशक्ति, ज्ञानशक्ति, मनःशक्ति, बुद्धिशक्ति और आत्मशक्ति) ईश्वरीय प्रयोजनों में लगें ॥९ ॥

१०.देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥१० ॥

प्रस्तुत कण्डिका में हवि ग्रहण करने की क्रिया का विधान है —

सृजनकर्ता परमात्मा द्वारा रची गई सृष्टि में,(मानो) अश्विनी कुमारों की बाहुओं तथा पूषादेव के हाथों से तुझे (साधक के हविष्यान्न को) ग्रहण करता हूँ । अग्नि को जो प्रिय लगे, हम (अध्वर्यु) वही (हविष्यान्न) स्वीकार करते हैं । अग्नि तथा सोम के लिए प्रिय पदार्थ ही ग्रहण करते हैं ॥१० ॥

११.भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृ ꣳ हन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्य ꣳ रक्ष ॥११ ॥

इस कण्डिका में 'व्रीहि-शेष' का विचार, पूर्वाभिमुख हो यज्ञ भूमि का दर्शन, शकट से उतरना, अन्तरिक्ष में हवि स्थापन आदि क्रियाओं का विधान है —

आपको अनुदारता के लिए नहीं, उन्नति के लिए निर्मित किया है । हमें आत्मा में विद्यमान ज्योति दिखाई दे । इस पृथ्वी पर सज्जनता का बाहुल्य हो । समस्त भूमण्डल में बिना किसी बाधा के विचरण कर सकें । हे अदिति पुत्र अग्निदेव ! पृथ्वी की नाभि* (यज्ञस्थल) में स्थापित इस हविष्यान्न की आप रक्षा करें ॥११ ॥

[* यज्ञ कुण्ड को पृथ्वी की नाभि कहा गया है (यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः तै० ३.९.५.५) । नाभि से ही गर्भस्थ शिशु को पोषण मिलता है । पृथ्वी पर स्थित प्रकृति चक्र (इकोलॉजिकल सर्किल) का संतुलन यज्ञीय प्रक्रिया से ही होता है ।]

१२.पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवो ग्रऽ इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपति ꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥१२ ॥

इस कण्डिका में पवित्र-छेदन, जल को पवित्र करने तथा उसे अग्निहोत्र-हवणी पर छिड़कने का विधान है—

यज्ञार्थ प्रयुक्त आप दोनों (कुशाखण्डों या साधनों) को पवित्रकर्ता वायु एवं सूर्य-रश्मियों से दोषरहित तथा पवित्र किया जाता है । हे दिव्य जल-समूह ! आप अग्रगामी एवं पवित्रता प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ हैं । यज्ञकर्ता को आगे बढ़ाएँ और भलीप्रकार यज्ञ को सँभालने वाले याज्ञिक को, देवशक्तियों से युक्त करें ॥१२ ॥

१३.युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिताः स्थ । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥१३ ॥

यह कण्डिका यज्ञीय संसाधनों पर जल सिंचन के पूर्व जल को संस्कारित करने, उपकरणों तथा हवि को पवित्र करने के लिए है —

हे जल* ! इन्द्रदेव ने वृत्र (विकारों) को नष्ट करते समय आपकी मदद ली थी और आपने सहयोग दिया था । अग्नि तथा सोम के प्रिय आपको, हम शुद्ध करते हैं । आप शुद्ध हों । (हे यज्ञ उपकरणो !) अशुद्धता के कारण आप ग्राह्य नहीं हैं, अतः यज्ञीय कर्म तथा देवों की पूजा के लिए हम आपको पवित्र बनाते हैं ॥१३ ॥

[* जल 'रस' तत्त्व है । असुर वृत्तियों (वृत्रासुर) का विनाश तभी हो सकता है, जब श्रेष्ठ प्रवृत्तियों में रस आए । रस तत्त्व के शोधन के बिना असुर वृत्तियाँ नष्ट नहीं होतीं । इसलिए रस रूप जल का सहयोग अनिवार्य है ।]

१४.शर्मास्यवधूत रक्षोवधूता ऽ अरातयो दित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥१४ ॥

यह कण्डिका कृष्णाजिन (आसन) और ओखली से सम्बन्धित है । इसके द्वारा मृगचर्म ग्रहण करने एवं उस पर उलूखल रखने की क्रिया सम्पन्न होती है —

इस सुखकारक आसन (आधार) से राक्षस (दुष्ट) एवं अनुदार वृत्ति वाले हटाये गये हैं । यह पृथ्वी का आवरण है । यह पृथ्वी द्वारा स्वीकृत हो । आप वनस्पतियों से निर्मित नींव के पत्थर की तरह दृढ़ हों । पृथ्वी का आवरण (आधार) आपको प्राप्त हो ॥१४ ॥

१५.अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स ऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥१५ ॥

प्रस्तुत कण्डिका द्वारा ओखली में हवि डालने, कूटने, मूसल धारण करने आदि क्रियाओं को सम्पन्न करने का विधान है-

(हविष्यात्र के प्रति कथन) आपका, वाणी (मंत्रों) के साथ विसर्जित होने वाला शरीर अग्नि का बाह्य आवरण है । (मूसल के प्रति) सुदृढ़ पत्थर के समान वनस्पतियों से निर्मित, दैवी शक्तियों की कीर्ति बढ़ाने के उद्देश्य से हम आपको ग्रहण करते हैं । अतः देव प्रयोजन के लिए इस हविष्यात्र को उत्तम ढंग से पवित्र बनाकर हमें प्रदान करें । हे हविष्यात्र को तैयार करने वाले (मूसल) ! आप पधारें ॥१५ ॥

१६.कुक्कुटोसि मधुजिह्व ऽ इषमूर्जमावद त्वया वय संघात संघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूत रक्षः परापूता ऽ अरातयोपहत- रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥१६ ॥

यह कण्डिका शम्या (यज्ञ उपकरण) , शूर्प (यज्ञ उपकरण) एवं हविष्यात्र को लक्ष्य करके कही गयी है । इसके द्वारा हविष्यात्र को कूटने-साफ करने की क्रिया का विधान है—

हे शम्ये ! आप कुक्कुट (सदृश असुरों को खोजकर मारने वाले) और (देवताओं के प्रति मधुर वाणी बोलनेवाले होने से) मधुजिह्व हैं । आप अन्न एवं बल प्रदायक ध्वनि करें । आपके सहयोग से हम संघात (संघर्ष) में पशुओं पर विजय प्राप्त करें । (हे शूर्प और हविष्यात्र !) आप वर्षा से (प्रतिवर्ष) बढ़ने वाले हैं । (शूर्प जिस सरकण्डे की सींक से बनता है, वह तथा हविष्यात्र रूप वनस्पतियाँ वर्षा से बढ़ती हैं ।) वर्षा को बढ़ाने वाला (यज्ञ) आप को स्वीकारे । राक्षसी एवं अनुदार तत्त्व हटा दिए गये हैं—नष्ट हो गये हैं, अब वायु आपको शुद्ध करे और सविता देवता (जिसमें से गिर न सके-ऐसे) स्वर्णिम हाथों से आपको धारण करें ॥१६ ॥

[ऋषियों ने वृक्ष-वनस्पत्यादि के अंकुरण एवं विकास में वायु, जल तथा प्रकाश (सूर्य रश्मि) के सहयोग की बात बहुत पहले ही जान ली थी, जिसे वनस्पति विज्ञानी फोटोसिन्थेसिस की क्रिया कहते हैं ।]

१७. धृष्टिरस्यपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्याद सेधा देवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृ ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥१७ ॥

यह कण्डिका उपवेष (अग्निधारण करने वाला विशेष काष्ठ पात्र) एवं अग्नि के प्रति है । इसके साथ उपवेष-पात्र धारण करने एवं उससे गार्हपत्य-अग्नि के अंगारों को अलग करने की क्रिया होती है—

हे उपवेष ! आप दृढ़ हैं । कच्चे पदार्थों को पकाने वाली (लौकिक) अग्नि और मांस जलाने वाली (चिताग्नि) का निषेध करें और देवपूजन योग्य गार्हपत्य अग्नि को धारण करें । हे यज्ञाग्ने ! आप पृथ्वी को दृढ़ करके कपाल (पात्र) में स्थिर रहें । ब्राह्मणों (ज्ञानी जनों), क्षत्रियों (शौर्यवानों) एवं सजातियों (तेजस्वी नागरिकों) का हित करने वाले आपको, हम शत्रु (पापवृत्तियों) के विनाश के लिए धारण करते हैं ॥१७ ॥

१८. अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृ ᳬह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृ ᳬह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽ उपदधामि चित: स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥१८ ॥

इस कण्डिका द्वारा गार्हपत्य अग्नि को स्थापित करने एवं उसको कपालों (पात्रों) से ढकने की क्रिया सम्पन्न होती है—

ज्ञानीजनों, शौर्यवानों तथा मानव जाति की उन्नति में सहयोगी जनों का हित करने वाले हे अग्निदेव ! आप ज्ञान को धारण करने वाले (धारक) हैं । द्युलोक तथा अन्तरिक्ष को दृढ़ करके, बलशाली (सामर्थ्ययुक्त) करें । ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा सजातियों को आप चेतना देने वाले हैं । अतः आपको अपने निकट स्थापित करते हैं । (कपालों के प्रति) भृगु और अंगिरस् के तप (रूप अग्नि) से तेजस्वी बनकर हमें ऊर्ध्वगामी चेतना प्रदान करें ॥

१९. शर्मास्यवधूत ᳬ रक्षोवधूता अरातयो दित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिव: स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥

यहाँ यज्ञार्थ मृगचर्म, उस पर स्थापित वनौषधियाँ तैयार करने वाले शिलाखण्ड एवं दोनों के बीच में स्थित शाम (लोहे का घेरा) को स्थापित करने की क्रिया सम्पन्न करने का विधान है —

इस सुखकारक आधार मृगचर्म से राक्षस एवं अनुदार वृत्ति वाले हटाये गये हैं । यह पृथ्वी का आवरण है । यह पृथ्वी द्वारा स्वीकृत हो । आप पर्वत से उत्पन्न हुई कर्मशक्ति (यज्ञीय पदार्थ तैयार करने वाली) हैं । पृथ्वी के आवरण अपने आधार से परिचित रहें । जिस तरह अन्तरिक्ष ने द्युलोक को धारण किया है, उसी प्रकार शिलाखण्ड को धारण करने वाली आप उसे (शिलाखण्ड को) जानें (सँभालें) । आप उस पर्वतपुत्री को कर्मशक्ति देने वाली हैं ॥१९ ॥

[उक्त वर्णन-मृगचर्म, उस पर स्थित शिलाखण्ड तथा दोनों के बीच स्थित 'शाम' के अन्दर का पोला भाग-ब्रह्माण्ड की स्थिति का परिचायक है – मृगचर्म पृथ्वी , शिलाखण्ड द्युलोक तथा बीच की शाम का पोला भाग अन्तरिक्ष का द्योतक है ।]

२०. धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो व: सविता हिरण्यपाणि: प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोसि ॥२० ॥

प्रस्तुत कण्डिका में शिला पर चावल रखने, पिष्ट (पिसे हुए चावलों) को मृगचर्म पर गिराने तथा उसमें घृत मिलाने की क्रिया सम्पन्न करने का विधान है—

हे हविष्यान्न ! आप देवगणों को तुष्ट करें । प्राण, उदान, व्यान आदि प्राणों के संवर्धन एवं पात्रता से (मृगचर्म के ऊपर) आपको धारण करते हैं । आप पृथ्वी के 'पय' (दूध-घी की तरह पोषक) हैं । सविता देव आपको छिद्ररहित स्वर्णमय हाथों (निर्दोष—सुनहली किरणों) से धारण करें ॥२० ॥

२१. देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सं वपामि समाप ऽओषधीभि: समोषधयो रसेन । स ᳬ रेवतीर्जगतीभि: पृच्यन्ता ᳬ सं मधुमतीर्मधुमतीभि: पृच्यन्ताम् ॥२१ ॥

यह क... में सेवन योग्य ओषधियों के प्रति है । इसके साथ पवित्र जल में पिसे चावलों को डालने तथा आग्नीध्र द्वारा उपसर्जनी ज... ाने की क्रिया सम्पन्न होती है —

सविता द्वारा उत्पन्न प्रकाश में अश्विनीदेव (रोग निवारक देव शक्तियों) की बाहुओं एवं पोषणकर्त्ता (पूषा) देव शक्तियों के हाथों से आपको विस्तार दिया जाता है । ओषधियों को जल प्राप्त हो, वे रस से पुष्ट हों । गुण-सम्पन्न ओषधियां प्रवहमान जल से मिलें । मधुरता युक्त तत्त्व परस्पर मिल जाएँ ॥२१ ॥

२२. जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेधि नाके॥

यह कण्डिका पुरोडाश के प्रति है । इसके साथ पुरोडाश को पकाने की क्रिया सम्पन्न करने का विधान है—

याजकों में उत्पादक क्षमता और पूर्णायुष्य की वृद्धि के लिए तुम्हें (जल और पिसे हुए चावल को) संयुक्त करते हैं । यह प्रयोग अग्नि के लिए , अग्नि-सोम के लिए है । (हे पुरोडाश !) आप विस्तार-क्षमता से युक्त हो, विस्तृत बनें, जिससे यज्ञ-कर्त्ताओं के यश का विस्तार हो । अग्निदेव आपको क्षति न पहुँचाएँ , सवितादेव आपको देवलोक की अग्नि से परिपक्व करें (पकाएँ) ॥२२ ॥

२३. मा भेर्मा संविक्थाऽ अतमेरुर्यज्ञोतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥२३ ॥

यह कण्डिका यज्ञ में पकने वाले पुरोडाश एवं यज्ञकर्त्ताओं के प्रति समानरूप से प्रयुक्त है—

भयभीत मत होओ, पीछे मत हटो । त्रित (तीन), द्वित (दो) अथवा एकत (एक) किसी के लिए भी किया गया यज्ञ कर्म क्लेश रहित होता है । यज्ञकर्त्ताओं की प्रजा (संतति—आश्रित जन) क्लेश रहित हों ॥२३ ॥

[त्रित-अर्थात् आचार्य, यजमान एवं प्रजा अथवा पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं द्युलोक । द्वित अर्थात् आचार्य एवं यजमान अथवा पृथ्वी एवं अंतरिक्ष । एकत अर्थात् केवल यजमान अथवा केवल पृथ्वी।]

२४. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेध्वरकृतं देवेभ्यऽ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतोवधः ॥२४ ॥

(हे स्फ्य !) सर्जनकर्ता परमात्मा की सृष्टि में अश्विनीदेवों की बाहुओं तथा पूषादेव के हाथों से; अर्थात् देवों को तृप्त करने वाले यज्ञ कर्म के निमित्त हम आपको धारण करते हैं । आप इन्द्र (व्यवस्थापक देव सत्ता) के दाहिने हाथ (की तरह सम्मानित) हैं । हजारों विकारों को जला देने वाले, अत्यधिक प्रकाशमान, तीक्ष्ण-तेजयुक्त अग्नि को प्रदीप्त करने वाले वायु के समान आपकी क्षमता है । आप यज्ञ में बाधा पहुँचाने वालों को नष्ट करने में समर्थ हैं ।

२५. पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या ꣳ शतेन पाशैर्योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥

यज्ञ वेदी या कुण्ड के 'भू-संस्कार' के संदर्भ में यह कण्डिका है —

हे पृथिवि ! आप पर देवों के लिए हवन किया जा रहा है । (भूमि के उपचार की प्रक्रिया में) आप पर उगने वाली ओषधियों के मूल को हमारे द्वारा क्षति न पहुँचे । (निकाली गयी) हे मृत्तिके ! आप गौओं के निवास स्थान में जाएँ । द्युलोक आप पर यथेष्ट वर्षा करे । हे सर्जनकर्ता सवितादेव ! जो दुष्ट, हम सभी को कष्ट पहुँचाता है, जिससे सभी द्वेष करते हैं, उसे विशाल पृथिवी में अपने सैकड़ों बन्धनों से बाँध दें ; उसे कभी मुक्त न करें ॥२५ ॥

२६. अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या ꣳ शतेन पाशैर्योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या ꣳ शतेन पाशैर्योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२६ ॥

यह कण्डिका विभिन्न दिशाओं के 'भू-उपचार' क्रम का संकेत करती है —

हमने दुष्ट अररु को यहाँ से निष्कासित कर दिया है । हे विस्थापित मिट्टी ! तुम गौओं के निवास स्थान पर जाओ । द्युलोक आप पर वर्षा करे । हे सर्जनकर्त्ता देव ! आप द्वेष करने वालों को सैकड़ों फंदों से बाँध दें; ताकि वे कभी छूट न पाएँ ॥२६ ॥

[अररु का शाब्दिक अर्थ —शत्रु, अस्त्र भेद , कोई राक्षस— "शब्द कल्पद्रुम"]

२७. गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृहणामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृहणामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृहणामि । सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥२७ ॥

प्रस्तुत कण्डिका द्वारा यज्ञवेदी पर स्फ्य पात्र से ३ रेखाएँ खींचने की क्रिया सम्पन्न होती है —

हे यज्ञ वेदिके ! हम गायत्री छन्द, त्रिष्टुप् छन्द एवं जगती छन्द वाले मंत्रों से आपको प्राप्त करते (बनाते) हैं । आप कल्याणकारिणी, आनन्ददायिनी, पोषक-खाद्य एवं पेय से युक्त, बैठने के लिए श्रेष्ठ स्थान देने वाली और सुन्दर भू-भाग हैं ॥२७ ॥

२८. पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम्। यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोसि ॥२८ ॥

इस कण्डिका द्वारा सामग्री को शुद्ध करने, प्रोक्षणी पात्र को स्थापित करने एवं स्फ्य पात्र को स्पर्श करने की क्रिया सम्पन्न होती है —

हे विष्णो (विज्ञानवेत्ता ईश्वर) ! वीर पुरुष क्रूर युद्धों के लिए अपना सर्वस्व होमें, इसके पहले ही विवेकवान् उन (शक्ति-साधनों) को यज्ञ के लिए प्रयुक्त करते हैं ; मानो वे स्वधा (स्वयं धारण करने में समर्थ) शक्तियों के माध्यम से भूमि को चन्द्रमा की ओर प्रेरित करते हैं । हे विज्ञानवेत्ता साधको ! पवित्र करने वाले यज्ञपात्र (प्रोक्षणी आदि) को समीप रखो (यज्ञ उपकरणों को लक्ष्य करके कहते हैं ।) तुम द्वेषकर्त्ताओं (वृत्तियों) के विनाशक हो ।

[१. प्राचीन आख्यान है कि देवासुर संग्राम के पूर्व देवों ने पृथ्वी का सार भाग चन्द्रमा में स्थापित किया; ताकि अवसर पड़ने पर वहाँ यज्ञ करके शक्ति अर्जित कर सकें । २. यह रूपक पृथ्वी के अंश से चन्द्रमा की उत्पत्ति की वैज्ञानिक मान्यता (पृथ्वी का उपग्रह चन्द्रमा) के अनुरूप है ।]

२९. प्रत्युष्ट ऽ रक्षः प्रत्युष्टाऽ अरातयो निष्टप्त ऽ रक्षो निष्टप्ताऽ अरातयः । अनिशितोसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि । प्रत्युष्ट ऽ रक्षः प्रत्युष्टाऽ अरातयो निष्टप्त— रक्षो निष्टप्ताऽ अरातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥

इस कण्डिका द्वारा स्रुवा एवं स्रुची को धोकर अग्नि पर तपाने व विकाररहित करने की क्रिया सम्पन्न होती है —

राक्षसी एवं अनुदार वृत्ति वाले जलकर नष्ट हो गये हैं, अतः हम (याजकगण) व्यापक क्षेत्र में यज्ञार्थ प्रविष्ट होते हैं । तुम पैने न होने पर भी शत्रु का नाश करने में समर्थ हो । तुम अन्न देने में (यज्ञ के माध्यम से) समर्थ हो । तुम्हें अन्न-बल प्राप्ति के लिए पवित्र करते हैं ॥२९ ॥

३०. अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोस्यूर्जे त्वादब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥३० ॥

इस कण्डिका में घी को तपाते हुए कहा गया है—

तुम पृथ्वी के रस (सारतत्त्व) हो । तुम अग्नि की जिह्वा (अग्नि में लपटें उठाने वाले) हो । हमारे प्रत्येक यज्ञ में तथा घर-घर में देवों का आवाहन करने वाले बनो । तुम सर्वव्यापी परमात्मा के निवास स्थल हो । हम अपलक दृष्टि से अन्न और बल की प्राप्ति के लिए तुम्हें देखते हैं ॥३० ॥

३१. सवितु:ᳬ प्रसवऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसव ऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥३१ ॥

इस कण्डिका के द्वारा आज्य एवं प्रोक्षणी-पात्र के जल के शोधन की क्रिया सम्पन्न होती है —

हम याजक सवितादेव की प्रेरणा से, तेजस्वी सूर्य रश्मियों के माध्यम से, तुम्हें शुद्ध करते हैं । तुम तेजरूप हो, प्रकाशरूप हो, अमृतरूप हो, दिव्य आवास हो तथा किसी दबाव में न रहने वाले देवताओं के प्रिय, यज्ञ के साधनरूप हो ॥३१ ॥

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि — परमेष्ठी प्रजापति अथवा देवगण प्रजापति १-२७, २९-३१ । अघशंस २८ ।

देवता — शाखा, वायु, इन्द्र १ । वायु, उखा २ । वायु, पय, प्रश्न ३ । गौ, इन्द्र, पय ४ । अग्नि ५, १८ । प्रजापति, स्रुक्, शूर्प ६ । राक्षस, ब्रह्म राक्षसघाती ७ । धू (जुआ), अन (प्राणवायु) ८ । अन (प्राणवायु) , हवि, रक्ष (राक्षस) ९ । सविता , लिंगोक्त देवता १० । हवि, सूर्य, गृह ११ । लिंगोक्त, आपः (जल) १२ । आपः, लिंगोक्त, पात्र समूह १३ । कृष्णाजिन, राक्षस, उलूखल १४ । हवि, मुसल, वाक्, पत्नी १५ । वाक्, शूर्प, हवि, राक्षस, तण्डुल (चावल) १६ । उपवेष, अग्नि, कपाल १७ । अग्नि १८ । कृष्णाजिन, दृषत्, शम्या, उपल १९ । हवि, आज्य २० । सविता, हवि, आपः (जल) २१ । हवि, आज्य, पुरोडाश २२ । पुरोडाश, त्रित, द्वित, एकत २३ । सविता, स्फ्य २४ । वेदिका, पुरीष (पूरक), सविता २५ । असुर, वेदिका २६ । विष्णु, वेदिका २७ । चन्द्रमा, प्रैष (निर्देश), आभिचारिक २८ । राक्षस, स्रुव, स्रुक् २९ । योक्त्र (जुआ बाँधने की रस्सी), आज्य ३० । आपः, आज्य ३१ ।

छन्द — स्वराट् बृहती, ब्राह्मी उष्णिक् १ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् २ । भुरिक् जगती ३ । अनुष्टुप् ४ । आर्ची त्रिष्टुप् ५ । आर्ची पंक्ति ६ । प्राजापत्या जगती ७ । निचृत् अतिजगती ८ । निचृत् त्रिष्टुप् ९ । भुरिक् बृहती १० । स्वराट् जगती ११, १४ । भुरिक् अत्यष्टि १२ । निचृत् उष्णिक्, भुरिक् आर्ची गायत्री, भुरिक् उष्णिक् १३ । निचृत् जगती, याजुषी पंक्ति १५ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्, विराट् गायत्री १६ । निचृत् ब्राह्मी पंक्ति १७ । ब्राह्मी उष्णिक्, आर्ची त्रिष्टुप, आर्ची पंक्ति १८ । निचृत् ब्राह्मी त्रिष्टुप् १९ । विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २०, २५ । गायत्री, निचृत् पंक्ति २१ । भुरिक् त्रिष्टुप्, गायत्री २२ । बृहती २३ । स्वराट् ब्राह्मी पंक्ति २४ । स्वराट् ब्राह्मी पंक्ति, भुरिक् ब्राह्मी पंक्ति २६ । ब्राह्मी त्रिष्टुप् २७ । विराट् ब्राह्मी पंक्ति २८ । त्रिष्टुप् , त्रिष्टुप् २९ । निचृत् जगती, ३० । जगती अनुष्टुप् ३१ ।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

३२. कृष्णोस्याखरेष्ठोग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥१ ॥

यज्ञीय उपकरणों एवं साधनों को संबोधित करके कहा गया है—

हे यज्ञीय कार्य में प्रयुक्त होने वाली समिधाओ ! यज्ञ के निमित्त हम आपको पवित्र करते हैं । हे यज्ञवेदिके ! यज्ञ कार्य की सफलता के लिए आपको पवित्र करते हैं । स्रुचाओ (यज्ञ पात्र) के प्रयोग की प्रेरणा देने वाले आधार रूप हे बर्हि (कुशाओ) !हम आपको पवित्र करते हैं ॥१ ॥

३३. अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोः स्तुपोस्यूर्णम्म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ॥२ ॥

प्रस्तुत कण्डिका द्वारा प्रोक्षण से बचे जल को कुशाओं की जड़ पर डालने की क्रिया सम्पन्न होती है—

हे यज्ञावशेष जल !यज्ञ, पृथ्वी तथा विविध औषधिगुण युक्त पदार्थों को आप सींचने वाले हैं । हे स्तूप आकार (पूले की तरह बंधी) कुशाओ ! देवों के लिए ऊन जैसे कोमल आसन रूप में आपको फैलाते हैं । हे याजको ! आप पृथ्वी के, सब लोकों के तथा प्राणिमात्र के पालनकर्त्ता के लिए सर्वस्व समर्पण करें ॥२ ॥

३४. गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः ॥३ ॥

इस कण्डिका में यज्ञ कुण्ड एवं यज्ञशाला की तीन परिधियों को लक्ष्य करके कहा गया है—

संसार के अनिष्ट-निवारण के लिए (यज्ञार्थ) अग्नि की स्तुति करते हैं । (प्रथम परिधि) आप याजकों की सुरक्षा करने वाली हैं, विश्वावसु गंधर्व आपको चारों ओर से सँभालें । (दूसरी परिधि) आप याजकों की रक्षक, इन्द्रदेव की दाहिनी भुजा हैं । (तीसरी परिधि) हे यजमानों की रक्षक ! मित्रावरुण (सूर्य एवं वायु) धर्मपूर्वक उत्तम साधनों से आपको धारण करें ॥३ ॥

३५. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्त ँ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥४ ॥

भूत-भविष्य के ज्ञाता हे क्रान्तदर्शी अग्निदेव ! ऐश्वर्य प्राप्ति की कामना करने वाले तेजस्वी, महान् याजक यज्ञ में आपको प्रज्वलित करते हैं ॥४ ॥

३६. समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्बाहू स्थऽ ऊर्णम्म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्य ऽआत्वा वसवो रुद्राऽ आदित्याः सदन्तु ॥५ ॥

इस कण्डिका में समिधाओं एवं कुशाओं को संबोधित करते हुए कहा गया है—

हे समिधे ! आप अग्नि को प्रदीप्त करने वाली हैं । सविता देवता आपकी रक्षा करें (सूर्य रश्मियों से कीटाणु रहित करें) । हे तृणयुगल (कुशाद्वय) ! आप दोनों सविता देवता की भुजाएँ हो । ऊन के बने कोमल आसन के रूप में देवताओं के सुखपूर्वक बैठने के लिए आपको फैलाते हैं । वसुगण, मरुद्गण तथा रुद्रगण आपके ऊपर स्थापित हों ॥५ ॥

३७. घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय ँ सदऽ आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय ँ सदऽ आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय ँसदऽ आसीद प्रियेण धाम्ना प्रिय ँ सदऽ आसीद। ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६ ॥

यह कण्डिका जुहू, उपभृत्, ध्रुवा तथा विष्णु को संबोधित करती है—

(जुहू के प्रति) आपका नाम जुहू है। आप अपने प्रिय घृत से पूर्ण होकर-घृत देने वाली होकर इस यज्ञ-स्थल में स्थापित हों। (उपभृत् के प्रति) आपका नाम उपभृत् है। आप घृत से युक्त होकर अपने प्रिय यज्ञस्थल पर स्थापित हों ।(ध्रुवा के प्रति) आपका नाम ध्रुवा है। आप अपने प्रिय घृत द्वारा सिंचित होकर यज्ञ-स्थल पर स्थापित हों। हे यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित विष्णुदेव ! आप यज्ञ-स्थल पर स्थापित सभी साधनों, उपकरणों, यज्ञकर्ताओं एवं हमारी (यज्ञ संचालकों की) रक्षा करें ॥६ ॥

३८. अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजित ँ सम्मार्ज्मि। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥७ ॥

अन्न प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! अन्न प्राप्ति के माध्यम तथा पुरुषार्थी आपका शोधन करते हैं। देवों एवं पितरों को अन्न देकर (सहायता प्राप्ति हेतु) नमन करते हैं। आप हमारे लिए सहायक सिद्ध हों ॥७ ॥

३९. अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽआज्य ँ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णोः स्थानमसीतऽ इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर ऽआस्थात् ॥८ ॥

हे यज्ञाग्ने ! यज्ञस्थल को हम अपने पैरों से अपवित्र नहीं करेंगे। देवों को समर्पित करने के लिए आज हम पवित्र घृत लाये हैं। हे अग्निदेव ! इन्द्रदेव ने अपने पराक्रम से यज्ञ को उन्नत किया था। यज्ञस्थल में स्थित, अन्न प्रदान करने वाले (हम याजकगण) आपके सान्निध्य में सर्वदा रहें ॥८ ॥

४०. अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽ इन्द्र ऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! हवन कार्य की विधि-व्यवस्था को आप भली-भाँति जानते हैं। आप ही दैवी-शक्तियों तक हवि-भाग पहुँचाते हैं। द्युलोक तथा पृथ्वीलोक की आप रक्षा करें। देवों सहित इन्द्र, हमारे घृतरूपी हवि से सन्तुष्ट हों। ज्योति से ज्योति का एकीकरण हो ॥९ ॥

[यज्ञीय ऊर्जा चक्र पृथ्वी और अन्तरिक्ष का सन्तुलन बनाये और सन्तुलित प्रकृति इस यज्ञीय ऊर्जा चक्र को सुरक्षित रखे— यह भाव है।].

४१. मयीदमिन्द्रऽ इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माक ँ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष ऽउपहूता पृथिवी मातोपमां पृथिवी माता ह्वयता-मग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी मनोकामनाएँ पूरी हों, हम सभी ऐश्वर्यों से युक्त हों । हम पराक्रमी हों । हमारी इच्छाएँ सत्य फल वाली हों। यह माता के समान पृथ्वी, जिसकी हमने स्तुति की है; हमें यज्ञाग्नि प्रदीप्त करने वाला होने से (अग्नि सदृश) तेजस्वी बनाकर (लोकहित के लिए) समर्पित होने की अनुमति दें ॥१० ॥

४२. उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥११ ॥

द्युलोक के पालनकर्त्ता सवितादेव की हमने (अध्वर्यु ने) स्तुति की है। अतः द्युलोक के प्रभु यज्ञावशेष को ग्रहण करने की अनुमति दें। अग्नि की अनुकूलता से हम यज्ञावशेष को ग्रहण करते हैं। यह आहुति रूप (यज्ञावशेष) उन्नति करने वाला हो। सविता देव की प्रेरणा से, अश्विनीकुमारों की बाहुओं तथा पूषादेव के दोनों हाथों की मदद से इस यज्ञावशेष (अन्न) को हम ग्रहण करते हैं। अग्नि के मुख से (अग्नि द्वारा वायुभूत हुए हविष्यान्न का) हम भक्षण करते हैं ॥११ ॥

[विज्ञान यह मानने लगा है कि वायुभूत प्रदूषण तथा वायुभूत पोषक तत्त्व, हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर हमें प्रभावित करते हैं।]

४३. एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥१२

हे सृष्टिकर्त्ता सवितादेव ! यजमानगण आपके निमित्त यह यज्ञानुष्ठान कर रहे हैं । अतः आप इस यज्ञ की, यजमान की तथा हमारी (यज्ञ-संचालकों की) रक्षा करें ॥१२ ॥

४४. मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञᳬ समिमं दधातु। विश्वे देवास ऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥१३ ॥

हे सवितादेव ! आपका वेगवान् मन आज्य (घृत) का सेवन करे। बृहस्पतिदेव इस यज्ञ को, अनिष्टरहित करके इसका विस्तार करें-इसे धारण करें । सभी दैवी शक्तियाँ प्रतिष्ठित होकर आनन्दित हों-संतुष्ट हों। (सविता देव की ओर से कथन) तथास्तु-प्रतिष्ठित हों ॥१३ ॥

४५. एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाᳬसं वाजजितᳬ सम्मार्ज्मि ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! आपको प्रज्वलित करने के लिए यह समिधा है। हम (याजक) आपको प्रदीप्त करते हुए स्वयं भी समृद्धि की कामना करते हैं। हे अन्न के उत्पादक अग्निदेव ! हम आपका मार्जन (जलाभिषिंचन) करते हैं ॥१४ ॥

४६. अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि। इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥१५ ॥

(यज्ञ से प्राप्त पोषण रूप) अन्न से प्रेरित होकर हम वैसी ही विजय प्राप्त करने के लिए तत्पर हुए हैं, जैसी विजय सोम और अग्निदेव ने प्राप्त की है। जो हमसे द्वेष रखते हैं एवं जिनसे हम सभी द्वेष रखते हैं, उन्हें अग्नि और सोम दूर हटा दें । अन्न से प्रेरित हुए हम वैसी ही विजय के लिए तत्पर हैं, जैसी विजय इन्द्र और अग्निदेवों ने प्राप्त की है। जो हमसे द्वेष करने वाले हैं तथा जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन्हें इन्द्र एवं अग्निदेव दूर हटा दें। हम हविष्यान्न की प्रेरणा से शत्रुओं को दूर करते हैं ॥१५ ॥

४७. वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तᳬ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पा ऽ अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥१६ ॥

तीन परिधियाँ क्रमश: वसु को, रुद्र को और आदित्य को समर्पित की जाती हैं । इस तथ्य को द्युलोक और पृथ्वीलोक की शक्तियाँ जानें । मित्रावरुण वर्षा से उनकी रक्षा करें । घृतयुक्त हव्य का स्वाद लेते हुए पक्षी (यज्ञीय ऊर्जा) मरुतों का अनुगमन करते हुए स्वाधीन किरणों में परिवर्तित होकर द्युलोक में पहुँचें । वहाँ से वर्षा लेकर आएँ । हे यज्ञाग्ने ! आप नेत्रों के रक्षक हैं, हमारे नेत्रों की रक्षा करें ॥१६ ॥

[यज्ञीय ऊर्जा से प्रकृति चक्र (इकॉलॉजिकल-सर्किल) के संतुलन का संकेत इस मंत्र में है]

४८. यं परिधिं पर्यधत्थाऽ अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः । तं त ऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाता* ऽअग्नेः प्रियं पाथोपीतम् ॥१७ ॥

हे अग्निदेव ! आपके द्वारा 'पणि' नामक शत्रुओं (दस्यु व्यापारियों) से बचाव के लिए जो परिधि चारों ओर बनायी गयी है, उसे आपके अनुकूल बनाते हैं, ताकि यह परिधि आपसे दूर न हो । यह प्रिय हविष्यान्न आपको प्राप्त हो ॥१७ ॥

[* नेत्त्वदपचेतयाता (वै०य०आ०) ॥]

४९. स ꣳ स्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः । इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त ऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्व ꣳ स्वाहा वाट् ॥१८ ॥

हे विश्वेदेवागण ! आप अपनी परिधि (मर्यादा) के आश्रय में रहें । अपने आसन पर ही मधुर रसमय अन्न-भाग को ग्रहण करके पुष्ट बनें और आनन्दित हों । आप इस घोषणा के अनुरूप कार्य करें ॥१८ ॥

५०. घृताची स्थो धुर्यौ पात ꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् । यज्ञ नमश्च त ऽउप च यज्ञस्य शिवे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥१९ ॥

यह कण्डिका जुहू, उपभृत्, शकट वाहक तथा यज्ञवेदी को लक्ष्य करके कही गयी है—

(हे जुहू तथा उपभृत् !) आप दोनों घृत से पूर्ण हों । (हे शकटवाहक !) आप धुरा में नियुक्त (जुहू और उपभृत् को घृत से युक्त) हुए लोगों की रक्षा करें । हे यज्ञवेदिके ! यह हविष्यान्न आपके समीप लाया गया है । आप सुख स्वरूप हैं । अत: यज्ञार्थ हमारे इष्ट के रूप में हमें सुख प्रदान करते हुए स्थापित हों ॥१९ ॥

५१. अग्नेदब्धायोशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्या अविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥२० ॥

हे तेजस्वी आयुष्य (प्रखर बनकर रहने का गुण) प्रदान करनेवाले व्यापक अग्ने ! शत्रु के शस्त्र से तथा उसके जाल से हमारी रक्षा करें, हमें विनाश से बचाएँ । हमें विषैले भोजन से बचाएँ । हमारे अन्न को पवित्र करें । अपने निवास (घर) में सुख और आनन्द से रहने का हमारा मार्ग प्रशस्त करें—यह हमारी प्रार्थना है । हमारे सान्निध्य में रहने वाले आप (अग्नि) के लिए यह आहुति समर्पित है । यज्ञभगिनी (वाणी) सरस्वती के लिए यह आहुति समर्पित है ॥२० ॥

५२. वेदोसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽ इमं देव यज्ञ ꣳ स्वाहा वाते धाः ॥२१ ॥

हे वेद ! आप ज्ञान स्वरूप हैं । देवों को ज्ञानवान् बनाने की भाँति हमें भी ज्ञान प्रदान करें । हे मार्गदर्शक देवगणो ! सन्मार्ग को समझकर सत्यमार्ग पर आरूढ़ हों । हे मन के परिपालक प्रभो ! यह यज्ञ आपको समर्पित करते हैं, आप इसे वायु के माध्यम से विस्तार प्रदान करें ॥२१ ॥

५३. संबर्हिरङ्क्ता$\smile$ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः। समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥२२॥

यह कण्डिका यज्ञ के समय प्रयुक्त कुशाओं को घृत से सिंचित करने का विधान प्रस्तुत करती है—

हे इन्द्रदेव ! इस कुश-समूह को यज्ञार्थ लाये गये घृत से युक्त कर समर्पित करते हैं । इन्हें आदित्यों, वसुओं, मरुतों तथा सभी देवगणों के साथ दिव्य आकाश में स्थापित करें ॥२२॥

५४. कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोसि ॥२३॥

यह कण्डिका यज्ञ से बचे हुए पदार्थों के लिए है—

तुम्हें किसने छोड़ा है ? तुम्हें उसने (स्रष्टा ने) छोड़ा है । तुम्हें किस हेतु छोड़ा गया है ? तुम्हें उनके (याजकों और उनके परिजनों के) लिए छोड़ा गया है । (जो अवशिष्ट पदार्थ बिखर गया है) वह राक्षसों के भाग रूप में त्यागा गया है ॥२३॥

[ईशोपनिषद् (यजु० ४०.१) में 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' – यज्ञरूप प्रभु द्वारा छोड़े गये पदार्थों का भोग करो, का निर्देश दिया गया है । इस कण्डिका में वही भाव स्पष्ट किया गया है ।]

५५. सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स$\smile$ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥२४॥

हमारे शरीर तेजस्विता (वर्चस्) एवं (पयसा) पोषक तत्वों से युक्त हों । हमारे मन शिवत्व से युक्त हों । शरीरों में जो भी कमी हो, वह पूरी हो जाए । श्रेष्ठदाता त्वष्टा हमें अनेक प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२४॥

५६. दिवि विष्णुर्व्यक्र$\smile$स्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्र$\smile$स्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्र$\smile$स्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया ऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥२५॥

विष्णु (पोषण के देवता-यज्ञ) ने जगती छन्द से द्युलोक में, त्रिष्टुप् छन्द से अन्तरिक्ष लोक में तथा गायत्री छन्द से पृथ्वी पर विचक्रमण (परिभ्रमण) किया है । इस कारण जो हम सबसे द्वेष करता है और जिससे हम सभी द्वेष करते हैं, उसे द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी से समाप्त कर दिया गया है । हविष्यान्न के स्थान से— पूजा स्थल से ऐसे शत्रुओं को हटा दिया गया है । इस प्रकार स्वर्गधाम को प्राप्त कर हम तेजस्वी बन गये हैं ॥२५॥

५७. स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा ऽ असि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२६॥

हे सविता देवता ! आप तेजस्वरूप हैं । स्वयं सिद्ध-समर्थ हैं । श्रेष्ठ तेज की रश्मियों वाले हैं । अतः हमें भी तेजस्वी बनाएँ । हम सूर्य के आवर्तन (संचार / परिक्रमा) के अनुरूप स्वयं भी आवर्तन (व्यवहार/परिक्रमा) करते हैं ॥२६॥

५८. अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेहं गृहपतिना भूयास$\smile$सुगृहपतिस्त्वं मयाग्ने गृहपतिना भूयाः। अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शत$\smile$हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२७॥

हे गृहपति अग्ने ! आपके गृहपालक रूप के सामीप्य से हम श्रेष्ठ गृहस्वामी बनें । गृहस्वामी की स्तुति से आप उत्तम गृहपालक बनें । हे अग्निदेव ! हम दाम्पत्यजीवन का निर्वाह करते हुए सौ वर्ष तक यज्ञकर्म करते रहें । हम सूर्य के द्वारा स्थापित अनुशासनों का अनुगमन करें ॥२७॥

५९. अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेराधी दमहं य ऽएवास्मि सोस्मि ॥२८ ॥

हे व्रतों के पालक अग्निदेव ! हमने जो नियमों का पालन किया है, उससे हम सामर्थ्यवान् बने हैं । हमारे यज्ञकर्म को आपने सिद्ध किया है । यज्ञीय कर्म करते समय हमारी जो भावनाएँ थीं, वही अब भी हैं ॥२८ ॥

६०. अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहताऽ असुरा रक्षाᳬंसि वेदिषदः ॥२९ ॥

पितरों तक कव्य (पितरों का हव्य) पहुँचाने वाले अग्निदेव के लिए यह आहुति समर्पित है । पितरों के सहचर सोमदेव के लिए यह आहुति अर्पित है । यज्ञभूमि में विद्यमान आसुरी शक्तियाँ नष्ट हो गई हैं ॥२९ ॥

६१. ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽ असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥३० ॥

.(हे कव्यवाहनाग्नि देवता !) जो आसुरी शक्तियाँ पितरों को समर्पित अन्न का सेवन करने के लिए अनेक रूप बदलकर सूक्ष्म या स्थूलरूप से आती और नीच कर्म करती हैं, उन्हें इस पवित्र स्थान से दूर करें ॥३० ॥

६२. अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्। अमीमदन्त पितरो यथाभाग-मावृषायिषत ॥३१ ॥

हे पितृगण ! जैसे बैल, इच्छित अन्नभाग प्राप्त कर तृप्त होता एवं पुष्ट होता है, वैसे ही आप अपना कव्य भाग प्राप्तकर बलिष्ठ हों, हर्षित-आनन्दित हों ॥३१ ॥

६३. नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासऽ आधत्त ॥३२ ॥

हे पितृगण ! आपके रसरूप (वसन्त), शुष्कता रूप (ग्रीष्म), जीवन रूप (वर्षा), अन्न रूप (शरद) पोषणरूप (हेमन्त) तथा उत्साह रूप (शिशिर ऋतुओं) को नमस्कार है । हे पितरो ! हमारे पास जो कुछ भी है, वस्त्रादि सहित वह सभी समर्पित करते हैं । आप हमें पुत्र-पौत्रादि से युक्त गृह प्रदान करें ॥३२ ॥

६४. आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोसत् ॥३३ ॥

हे पितृगण ! पुष्टिकर पदार्थों से बने शरीर वाले (इस) सुन्दर बालक का पोषण करें; ताकि वह इस पृथ्वी पर वीर पुरुष बन सके ॥३३ ॥

६५. ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥३४

हे जलसमूह ! अन्न, घृत, दूध तथा फूलों-फलों में आप रस रूप में विद्यमान हैं । अतः अमृत के समान सेवनीय तथा धारक शक्ति बढ़ाने वाले हैं, इसलिए हमारे पितृगणों को तृप्त करें ॥३४ ॥

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— परमेष्ठी प्रजापति अथवा देवगण प्रजापति १-३, १४, १५, २० । विश्वावसु ४-१० । विश्वावसु, बृहस्पति आंगिरस ११ । बृहस्पति आंगिरस १२, १३ । परमेष्ठी प्रजापति, कपि १६ । देवल १७ । सोमशुष्म १८ । परमेष्ठी प्रजापति, शूर्प, यवमान, कृषि, उद्वालवान्, धानान्तर्वान् १९ । परमेष्ठी प्रजापति, मनसस्पति २१ । मनसस्पति २२-२८ । प्रजापति २९-३४ ।

देवता— इध्म, लिंगोक्त १ । आपः (जल), प्रस्तर, वेदिका, अग्नि २ । परिधि (मेखला) ३ । अग्नि ४, १४,१७,२८ । अग्नि, लिंगोक्त, विधृती, प्रस्तर ५ । जुहू, उपभृत्, ध्रुवा, हवि, विष्णु ६ । अग्नि, देवगण, पितर, स्रुची ७ । स्रुची, विष्णु, अग्नि, इन्द्र ८ । इन्द्र, आज्य ९ । आशीर्वाद, पृथिवी १० । द्यौ, सविता, प्राशित्र ११ । विश्वेदेवा १२, १३,१८ । अग्नि-सोम, इन्द्राग्नी आदि लिङ्गोक्त १५ । परिधि (मेखला), प्रस्तर, अग्नि १६ । स्रुची, यज्ञ १९ । गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, लिंगोक्त २० । वेद, वात २१ । लिंगोक्त २२ । प्रजापति, राक्षस २३ । त्वष्टा २४ । विष्णु, भाग, भूमि, देवगण, आहवनीय २५ । सूर्य २६ । गार्हपत्य, सूर्य २७ । देवगण, असुर २९ । कव्यवाहन अग्नि ३० । पितर ३१, ३३ । लिंगोक्त, पितर ३२ । आपः (जल) ३४ ।

छन्द— निचृत् पंक्ति १ । स्वराट् जगती २ । भुरिक् आर्ची त्रिष्टुप्, भुरिक् आर्ची पंक्ति, पंक्ति ३ ।निचृत् गायत्री ४,३३ । निचृत् ब्राह्मी बृहती ५ । ब्राह्मी त्रिष्टुप्, निचृत् त्रिष्टुप् ६ । बृहती ७, ३१ । विराट् ब्राह्मी पंक्ति ८ । जगती ९ । भुरिक् ब्राह्मी पंक्ति १० । ब्राह्मी बृहती ११ । भुरिक् बृहती १२ । विराट् जगती १३ । अनुष्टुप्, भुरिक् आर्ची गायत्री १४ । ब्राह्मी बृहती, निचृत् अतिजगती १५ । भुरिक् आर्ची पंक्ति, भुरिक् त्रिष्टुप् १६ । निचृत् जगती १७ । स्वराट् त्रिष्टुप् १८ । भुरिक् पंक्ति १९,३० । भुरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २० । भुरिक् ब्राह्मी बृहती २१ । विराट् त्रिष्टुप् २२, २४ । निचृत् बृहती २३ । निचृत् आर्ची पंक्ति, आर्ची पंक्ति, भुरिक् जगती २५ । उष्णिक् २६ । निचृत् पंक्ति, गायत्री २७ । भुरिक् उष्णिक् २८, ३४ । स्वराट् आर्षी अनुष्टुप् २९ । ब्राह्मी बृहती, स्वराट् बृहती ३२ ।

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

६६. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥१ ॥

(हे ऋत्विजो ! आप घृतसिक्त) समिधा से (यज्ञ में) अग्नि को प्रज्वलित करें । घृत की आहुति प्रदान करके, सब कुछ आत्मसात् करने वाले अग्निदेव को प्रदीप्त करें । इसके बाद अग्नि में हवि-द्रव्य की आहुतियाँ प्रदान करें ॥१ ॥

६७. सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२ ॥

(हे ऋत्विजो !) श्रेष्ठ, भली-भाँति प्रज्वलित, जाज्वल्यमान, सर्वज्ञ (जातवेद) देदीप्यमान यज्ञाग्नि में शुद्ध पिघले हुए घृत की आहुतियाँ प्रदान करें ॥२ ॥

६८. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥३ ॥

हे (ज्वालाओं से) प्रदीप्त अग्निदेव ! हम आपको घृत (और उससे सिक्त) समिधाओं से उद्दीप्त करते हैं । हे नित्य तरुण (तेजस्वी) अग्निदेव !(घृत आहुति प्राप्त होने के बाद) आप ऊँची उठने वाली ज्वालाओं के माध्यम से प्रकाशयुक्त हों ॥३ ॥

६९. उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आपको हवि-द्रव्य और घृत-सिक्त समिधा की प्राप्ति (निरन्तर) हो । हे दीप्तिमान् अग्नि देव ! आप हमारे द्वारा समर्पित समिधाओं को स्वीकार करें ॥४ ॥

७०. भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥५ ॥

(हे अग्निदेव !) आप भूः (पृथिवीलोक में अग्निरूप), भुवः (अन्तरिक्षलोक में विद्युत्‌रूप) एवं स्वः (द्युलोक में सूर्यरूप) में सर्वत्र विद्यमान हैं । देवताओं के निमित्त यज्ञ सम्पादन के लिए उत्तम स्थान प्रदान करने वाली हे पृथिवि ! हम देवों को हवि प्रदान करने के लिए आपके ऊपर बनी हुई यज्ञ-वेदी पर अग्निदेव को प्रतिष्ठित करते हैं । (इस अग्निस्थापन के द्वारा) हम (पुत्र-पौत्रादि तथा इष्ट-मित्रों से युक्त होकर) द्युलोक के समान सुविस्तृत तथा (यश, गौरव, ऐश्वर्यादि से) पृथिवी के समान महिमावान् हों ॥५ ॥

[अग्नि, विद्युत् तथा सूर्य मण्डल में संव्याप्त ऊर्जा की एकरूपता को विज्ञान भी मानने लगा है ।]

७१. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥६ ॥

(त्रिलोक में) विचरण करने वाले,(लाल-पीली) विविध प्रकार की ज्वालाओं से प्रकाशित, अग्निदेव मेघ-समूह एवं अन्तरिक्ष लोक में विद्युत्‌रूप से प्रतिष्ठित हो गये हैं । पृथ्वी माता के पास (यज्ञवेदी में) यज्ञाग्नि रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं । इसके बाद (यज्ञरूप) ये अग्निदेव (ज्वालाओं के द्वारा सूर्य किरण के माध्यम से) द्युलोक पिता के पास पहुँच गये हैं ॥६ ॥

७२. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥७ ॥

इस अग्नि का प्रकाशित तेज (वायुरूप) प्राण और अपान वायु के माध्यम से सम्पूर्ण प्राणियों में गतिशील रहता है । अत्यधिक सामर्थ्यशाली अग्निदेव (सूर्य के माध्यम से) द्युलोक को आलोकित करते हैं ।

७३. त्रि ॐ शद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥८ ॥

(निरन्तर मानवीय व्यवहार के लिए) यह वाणी (अहोरात्र के तीस मुहूर्त या मास के तीस दिन रूपी) तीस स्थानों पर सुशोभित होती है । सामान्य (व्यवहार के) दिन और विशेष (यज्ञीय अवसर के) दिनों में भी (स्तुति रूपी) ज्योति से (गार्हपत्य, आहवनीय आदि) अग्नि के लिए (स्तोत्र रूपी) वाणी प्रयोग में लायी जाती है ॥८ ॥

७४. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥९ ॥

अग्नि तेज है तथा तेज अग्नि है, हम तेजरूपी अग्नि में हवि देते हैं । सूर्य ज्योति है एवं ज्योति सूर्य है, हम ज्योतिरूपी अग्नि में आहुति देते हैं । अग्नि वर्चस् है और ज्योति वर्चस् है, हम वर्चस् रूपी अग्नि में हवन करते हैं । सूर्य ब्रह्म तेज का रूप है तथा ब्रह्मवर्चस सूर्यरूप है, हम उसमें हवि प्रदान करते हैं । ज्योति ही सूर्य है और सूर्य ही ज्योति है, हम उसमें (इस मंत्र से) आहुति समर्पित करते हैं ॥९ ॥

७५. सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा । सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥१० ॥

सविता देवता एवं इन्द्रयुक्त रात्रि के साथ रहने वाले अग्निदेव इस आहुति को ग्रहण करें । सवितादेव के साथ इन्द्रयुक्त उषा से जुड़े हुए सूर्यदेव को यह आहुति समर्पित है ॥१० ॥

७६. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचे माग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥११ ॥

यज्ञ के समीप उपस्थित होते हुए (जीवन में यज्ञीय सिद्धान्तों का समावेश करते हुए) हम सुदूर स्थान से भी कथन (भाव) को सुनने वाले अग्निदेव के निमित्त स्तुति मंत्र समर्पित करते हैं ॥११ ॥

[सुनने का अर्थ है, ध्वनि तरंगों का भाव ग्रहण करना । यहाँ मंत्रों (ध्वनि तरंगों) से अग्नि (ऊर्जा-चक्र) के प्रभावित होने का तथ्य प्रकट किया गया है ।]

७७. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽअयम् । अपा ॐ रेता ॐ सि जिन्वति ॥१२ ॥

यह अग्निदेव ! (आदित्यरूप में) द्युलोक के शीर्षरूप सर्वोच्च भाग में विद्यमान होकर, जीवन का संचार करके, धरती का पालन करते हुए , जल में जीवनीशक्ति का संचार करते हैं ॥१२ ॥

[सौर ऊर्जा से पृथ्वी पर जीवन संचार के वैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन इस मंत्र में है ।]

७८. उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै । उभा दाताराविषा ॐ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३ ॥

हे इन्द्राग्नी ! हम आप दोनों का (यज्ञ में) आवाहन करते हैं । आप को (हविष्यान्नरूपी) धन प्रदान करके प्रसन्न करते हैं । आप अन्न एवं धन प्रदान करने वाले हैं । हम अन्न एवं धन-प्राप्ति के लिए आप दोनों को यज्ञ में आवाहित करते हैं ॥१३ ॥

७९. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्नऽ आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥१४ ॥

यह ऋचा गार्हपत्याग्नि से उत्पन्न हुए आहवनीय अग्नि के विषय में है —

हे अग्निदेव ! समयानुसार (प्रातः -मध्याह्न-सायं) उस (गार्हपत्य) अग्नि को अपना जनक मानते हुए पुनः प्रदीप्त होने के लिए , यज्ञ कार्य के अन्त में उसी (गार्हपत्य अग्नि) में आप पुनः प्रविष्ट हो जाएँ । तदनन्तर पुनः यज्ञ करने के लिए आप हमें समृद्ध करें ॥१४ ॥

८०. अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः । यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१५ ॥

यह (आहवनीय) अग्नि, देवों का आवाहन करने वाले, श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले तथा सोमयागादि में ऋत्विजों द्वारा स्तुत्य, अग्न्याधान करने वाले पुरोहितों द्वारा यज्ञ में स्थापित की गयी है । सर्वव्यापी और विलक्षण अग्नि को यजमानों के उपकार के लिए अप्नवान्* आदि भृगुवंशीय मुनियों ने जंगलों में प्रज्वलित किया है ॥१५ ॥

[* ऋ० ४.७.१ के अनुसार यह नाम भृगुओं के साथ उल्लिखित हुआ है । लुडविग् ने इन को भृगुवंशी ऋषि माना है ।]

८१. अस्य प्रत्नामनु द्युतᳬशुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१६ ॥

चिरन्तन काल से उत्पन्न इस अग्नि की दीप्ति का अनुसरण करके, संकोचरहित याज्ञिकों ने दुग्ध, दधि, घृत तथा हवि आदि के द्वारा हजारों यज्ञों को सम्पन्न करने वाले ऋषियों के समान गौ से दुग्ध का दोहन किया है ॥

[यहाँ कान्तिमान् अग्नि से धवल प्रकाशरूप दुग्ध (तेजस्वी रश्मियों) के प्रवाहित होने का आलंकारिक वर्णन है ।]

८२. तनूपाऽअग्नेसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेस्यायुर्मे देहि वर्चोदा ऽअग्नेसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृण ॥१७ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्वभाव से ही होताओं के शरीर के रक्षक हैं । अतएव आप हमारे शरीर का पालन करें । हे अग्निदेव ! आप आयु-दाता हैं, इसलिए आप हमें आयु प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप वैदिक अनुष्ठान से प्राप्त तेज को प्रदान करने वाले हैं, अतः हमें वर्चस् प्रदान करें तथा हे अग्निदेव ! हमारे शरीर के अङ्गों की अपूर्णता को दूरकर आप हमें सर्वाङ्ग सम्पन्न करें ॥१७ ॥

८३. इन्धानास्त्वा शतᳬहिमा द्युमन्तᳬसमिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृतᳬसहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥

इस कण्डिका का पूर्वार्द्ध अग्नि देवता के लिए एवं परवर्ती रात्रि देवता के लिए है—

दीप्तिमान् , धन-सम्पन्न, अहिंसक, किसी के द्वारा न दबाये जाने वाले हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से आयुष्मान्, शक्ति-सम्पन्न, किसी से भी दमित न किये जाने वाले, हम याजकगण आपको प्रदीप्त करके, सौ वर्ष तक जाज्वल्यमान रखेंगे । हे रात्रि देवि ! हम याजकगण कल्याण प्राप्ति के लिए आपके निकट रहें ॥१८ ॥

८४. सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाᳬस्तुतेन । सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सᳬरायस्पोषेण ग्मिषीय ॥१९ ॥

इस मंत्र के साथ अग्निस्थापन किया जाता है —

हे अग्निदेव ! आप सूर्य की तेजस्विता के साथ, ऋषियों के अनेक स्तोत्रों के साथ तथा प्रिय आहुतियों (प्रियधाम) के साथ युक्त होते हैं । उसी प्रकार हम भी आपकी कृपा, दीर्घायु, विद्या तथा ऐश्वर्ययुक्त तेज, पुत्रादि तथा धन-धान्यादि पोषण से युक्त हों ॥१९ ॥

८५. अन्धस्थान्धो वो भक्षीय महस्थ महो वो भक्षीयोर्जस्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोषस्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥२० ।

यह कण्डिका यज्ञ ऊर्जा, सौर-ऊर्जा आदि में विद्यमान पोषक गुणों को 'गौ' के रूपक द्वारा प्रस्तुत कर रही है —

(हे गौओ !) आप अन्नरूप हैं । आपकी कृपा से हम (दुग्ध) घृतादि रूप (पोषक) अन्न का सेवन करें । आप पूज्य हैं । हम आप से पूज्यत्व अथवा प्रसिद्धि प्राप्त करें । आप बलवान् हैं । हम आपकी कृपा से बलयुक्त हों । आप धन-पुष्टिरूप हैं । हम आपकी कृपा से (धन-धान्यादि) पोषण प्राप्त करें ॥२० ॥

८६. रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेस्मिँल्लोकेस्मिन् क्षये । इहैव स्त मापगात ॥२१॥

गाय जब स्वतंत्र रूप से घूमने के लिए छोड़ी जाती है, उस समय यजमान गाय का स्पर्श करते हुए मंत्र पाठ करता है —

(हे धनवती गौओ !) आप अग्निहोत्र के समय यज्ञस्थल पर आनन्दपूर्वक रहें । दुग्ध दुहने के पूर्व आप गौशाला में संचरण करें । सर्वदा यजमान के दृष्टि-पथ में ही आप अवस्थित रहें । रात्रि में आप यजमान के घर में सुखपूर्वक निवास करें । आप यजमान के घर में ही रहें । दूर न जाएँ ॥२१॥

८७. सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जामाविश गौपत्येन । उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्तऽ एमसि ॥२२॥

हे गौ ! आप शुक्ल-कृष्ण आदि अनेक रूपों से युक्त होती हुई दुग्ध आदि (हवि-द्रव्य) प्रदान करके, यज्ञ-कार्य से संयुक्त हैं । आप दुग्धादि के (रस के) द्वारा बल प्रदान करने वाली होकर यजमान में गोस्वामित्व भाव से प्रतिष्ठित हों । रात्रि-दिन (सर्वदा) वास करने वाले हे (गार्हपत्य) अग्निदेव ! प्रत्येक दिन हम यजमान श्रद्धाभाव से नमन करते हुए आप के पास आते हैं ॥२२॥

८८. राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानꣳ स्वे दमे ॥२३॥

दीप्तिमान् यज्ञों के रक्षक, सत्य वचन रूप व्रत को आलोकित करने वाले, यज्ञ-स्थल में वृद्धि को प्राप्त करते हुए हम गृहस्थ लोग स्तुतिपूर्वक आपके निकट आते हैं ॥२३॥

८९. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! जिस प्रकार पुत्र के लिए पिता बिना किसी बाधा के सहज प्राप्य होता है, उसी प्रकार आप भी (हम यजमानों के लिए) बाधारहित होकर सुखपूर्वक प्राप्त हों । आप हमारे कल्याण के लिए सदा हमारे निकट रहें ॥२४॥

९०. अग्ने त्वं नो अन्तमऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥२५॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! आप हमारे लिए समीपवर्ती, पालनकर्ता, शान्त तथा पुत्रादि से युक्त घर प्रदान करने वाले हों । लोगों को निवास प्रदान करने वाले, आहवनीय आदि विविध रूपों में गमनशील, धन एवं कीर्ति प्रदान करने वाले, आप हमारे यज्ञ स्थान को प्राप्त हों तथा हमें प्रभावी धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२५॥

९१. तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः । स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥२६॥

हे सर्वाधिक कान्तिमान् तथा सभी को प्रकाशित करने वाले अग्निदेव ! हम सुख प्राप्ति एवं अपने मित्रों के कल्याण की कामना करते हैं । आप हमें अपना सेवक समझकर हमारी प्रार्थना सुनें एवं सभी दुष्ट शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥२६॥

९२. इडऽ एह्यदितऽ एहि काम्याऽएत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥२७॥

यह कण्डिका गौ (गाय एवं प्राण तत्त्व) को लक्ष्य करके कही गयी है—

हे इडा रूपी गौ ! आप इडा और मनु के समान हमारे यज्ञ स्थान पर आएँ । हे अदितिरूपी गौ ! आप अदिति और आदित्य के समान हमारे यज्ञ स्थल में आगमन करें । हे अभीष्ट गौ ! आप यहाँ आएँ एवं हमारे मनोरथ पूर्ण करें ॥२७॥

९३. सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं यऽ औशिजः ॥२८ ॥

हे ब्रह्मणस्पते (सम्पूर्ण ज्ञान के अधिपति प्रभु) ! सोम का सेवन करने वाले यजमान को, आप श्रेष्ठ तेजस्विता से युक्त करें । जिस प्रकार दीर्घतमा ऋषि एवं उशिज् के पुत्र कक्षीवान्* को आपने सोमयागयुक्त एवं स्तुत्य बना दिया था, उसी प्रकार हमें भी (धनादि प्रदान करके) धन्य बनाएँ ॥२८ ॥

[* ऋग्वेद में बहुशः चर्चित, ऋषि दीर्घतमा तथा उशिज् नामक दासी से जन्मे कक्षीवान् ऋषि अपनी प्रतिभा से प्रतिष्ठित हुए हैं; परन्तु वेबर ने इन्हें 'क्षत्रिय' माना है, ब्राह्मण नहीं ।]

९४. यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥२९ ॥

साधन-सम्पन्न, व्याधियों के विनाशक, ऐश्वर्य-दाता, पुष्टिवर्धक तथा अविलम्ब कार्य सम्पन्न करने वाले हे ब्रह्मणस्पते ! कृपापूर्वक आप हमारे सन्निकट रहें ॥२९ ॥

९५. मा नः शꣳसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥३० ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! यज्ञ न करने वाले तथा अनिष्ट-चिन्तन करने वाले दुष्ट शत्रुओं का हिंसक दुष्प्रभाव हम पर न पड़े । आप हमारी रक्षा करें ॥३० ॥

९६. महि त्रीणामवोस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥३१ ॥

मित्र (आत्मा), अर्यमन् (हृदय) तथा वरुण देवताओं का तेजस्वी अमोघ संरक्षण हमें प्राप्त हो ॥३१ ॥

९७. नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशꣳसः ॥३२ ॥

(मित्र, अर्यमन् तथा वरुण से संरक्षित यजमान को) घर, गमन-मार्ग अथवा अन्य दुर्गम स्थल में पापी शत्रु अभिभूत करने में सक्षम नहीं होता ॥३२ ॥

९८. ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३३ ॥

अदिति पुत्र (मित्र, अर्यमन् और वरुण) मनुष्य को अक्षय ज्योति प्रदान करते हैं, जो दीर्घ जीवन का आधार है ॥३३ ॥

९९. कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन् भूयऽ इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥३४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हिंसक नहीं हैं । आप हविर्दान करने वाले यजमान की धनदान द्वारा सेवा करने वाले हैं । हे ऐश्वर्य-युक्त इन्द्रदेव ! आपका प्रचुर मात्रा में दिया गया दान शीघ्र ही यजमान को प्राप्त होता है ॥३४ ॥

१००. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३५ ॥

सम्पूर्ण जगत् के जन्मदाता सविता (सूर्य) देवता की उत्कृष्ट ज्योति का हम ध्यान करते हैं, जो (तेज सभी सत्कर्मों को सम्पादित करने के लिए) हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है ॥३५ ॥

[सूर्य को सम्पूर्ण जगत् का जन्मदाता कहकर-सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋ० १.११५.१) ऋषियों ने न केवल सूर्य में पदार्थ की पूर्णता दिखाई है, जैसा कि वैज्ञानिकों ने भी माना है, अपितु सारे गुण-सूत्र मानव को सूर्य भगवान् से ही प्राप्त हुए हैं - ऐसा (आध्यात्मिक दृष्टि से) स्पष्ट मत व्यक्त किया है ।]

१०१. परि ते दूडभो रथोस्माँ२ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥३६ ॥

किसी से प्रभावित न होने वाला आपका वह रथ, जिससे आप (लोकहित हेतु) दान देने वालों की रक्षा करते हैं; हम सबकी, चारों ओर से (चतुर्दिक्) रक्षा करे ॥३६ ॥

१०२. भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्या ँ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः । नर्य प्रजां मे पाहि श ँ स्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥३७॥

गायत्री और सावित्री इष्टि के लिए अग्नि स्थापन विषयक मंत्र है —

हे सच्चिदानन्द प्रभो ! (अग्निदेव हम) श्रेष्ठ प्रजाओं (सन्तानों) से, श्रेष्ठ वीरों से तथा पुष्टिकारक अन्नादि से सम्पन्न हों । हे मानव हितैषी ! हमारी सन्तानों की रक्षा करें । हे प्रशंसनीय ! हमारे पशुओं (सहयोगियों) की रक्षा करें तथा हे गतिमान् ! हमारे (पोषणकर्त्ता) अन्न की रक्षा करें ॥३७॥

१०३. आ गन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् । अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ॥३८॥

आहवनीय अग्नि की स्थापना का मंत्र है —

हे दीप्तिमान् आहवनीय अग्निदेव ! आप सर्वज्ञ और यजमान के निमित्त सर्वाधिक सम्पत्ति धारण करने वाले हैं, हम आपके पास आ रहे हैं । (हे अग्नि देवता !) हमें बल और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३८॥

१०४. अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अग्ने गृहपतेभि द्युम्नमभि सह आ यच्छस्व ॥३९॥

गार्हपत्य अग्नि का उपस्थापक मंत्र है —

यह सामने अवस्थित अग्निदेव गृहपति हैं, पुत्र-पौत्रादि प्रजाओं को (अनुग्रहपूर्वक) धन-धान्य देने वाले है । हे अग्ने ! आप हमें शक्ति एवं वैभव प्रदान करें ॥३९॥

१०५.अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ॥

दक्षिणाग्नि का उपस्थापक मंत्र है —

पशुओं आदि से संबन्धित यह दक्षिणाग्नि है । यह अग्नि ऐश्वर्य और समृद्धिवर्धक है । हे पृथ्वी स्थानीय दक्षिणाग्नि ! आप हमें शक्ति और सम्पदा प्रदान करें ॥४०॥

१०६. गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रतऽ एमसि । ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥४१॥

प्रवास से वापस आने पर यजमान गृह प्रवेश के समय तीन मन्त्रों का पाठ करता है, जिसका यह प्रथम मंत्र है —

हे घर ! भयभीत मत हो । (शत्रु के भय से) प्रकम्पित मत हो । हम शक्तियुक्त (सहायतार्थ) आपके पास आते हैं । हम ओज सम्पन्न, श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त, दुःख रहित तथा हर्षित होते हुए (आप में) प्रविष्ट होते हैं ॥४१॥

१०७. येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः । गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥४२॥

गृह प्रवेश के समय बोला जाने वाला दूसरा मन्त्र —

देशान्तर गमन के समय, जिसके विषय में निरन्तर सोचा करते थे, जो हमें अत्यधिक प्रिय था, ऐसे उस अपने घर को (अपनी उपस्थिति से) प्रसन्न कर रहे हैं ।घर के अधिष्ठातादेव ज्ञानवान् हैं, वे हमारे इस भाव को ग्रहण करें ॥

१०८. उपहूताऽ इह गावऽ उपहूता ऽ अजावयः । अथो अन्नस्य कीलालऽ उपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिव ँ शग्म ँ शंयोः शंयोः ॥४३॥

गृह प्रवेश के समय बोला जाने वाला तीसरा मंत्र —

हमारे घरों में गाय एवं बैल, भेड़ एवं बकरियाँ सुखपूर्वक रहने के लिए सम्मानपूर्वक आवाहित की गयी है । घर की समृद्धि के लिए अन्न-रस का आवाहन किया गया है । कल्याण के लिए तथा सभी अनिष्टों के शमन के लिए हम घरों को प्राप्त करते हैं , जिससे लौकिक एवं पारलौकिक सुख की प्राप्ति हो ॥४३॥

१०९. प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ॥४४ ॥

चातुर्मास्य याग का प्रारंभ यहाँ से हुआ है । इसमें चार पर्व हैं — वैश्वदेव, वरुण प्रघास, साकमेध तथा शुनासीरीय । वरुण प्रघास पर्व में उत्तरी तथा दक्षिणी वेदियों पर जब हवन सामग्री रख दी जाती है, तो प्रतिप्रस्थाता नामक अध्वर्यु यजमान पत्नी को वेदी पर लाता हुआ इस मंत्र का पाठ करता है —

हे मरुद्‌गणो ! शत्रुओं को हिंसित करने वाले,(प्रघास नामक विशिष्ट) हवि का भक्षण करने वाले तथा दधि मिश्रित यवमय (सत्तूरूप करम्भ) हवि का सेवन करने वाले, आपका हम आवाहन करते हैं ॥४४ ॥

११०. यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा॥

पिसे हुए जौ से गोल आकृति के बने करम्भ पात्र को यजमान सूप में रखकर सिर में रख लेता है । यजमान दक्षिणाग्नि में हवन करने जाता है । इस समय पूर्व की ओर मुख करके यजमान भार्या इस मंत्र से करम्भ पात्रों की आहुति देती है —

गाँव में रहते हुए (उपद्रव जन्य), जंगल में (मृगवधादि जन्य) तथा सभास्थल पर (श्रेष्ठ पुरुषों के तिरस्कार जन्य), जिह्वा आदि इन्द्रियों द्वारा (निन्दित पदार्थों के सेवन से) उत्पन्न, जिन पापों का आचरण हमने किया है, उन सम्पूर्ण-पापों को हम इस आहुति द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४५ ॥

१११. मो षू णऽ इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः । महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥४६ ॥

हे शक्तिसम्पन्न इन्द्रदेव ! इस जीवन संग्राम में देवों का पक्ष ग्रहण करने वाले आप हमारा विनाश न करें । आप ज्ञानी हैं । (कामनापूर्तिरूप) वृष्टिकर्ता तथा हवि द्रव्य को ग्रहण करने वाले इन्द्रदेव (इस) यवमय हवि के समान आपका माहात्म्य है । हमारी वाणी (आपके मित्र) मरुतों की भी स्तुति करती है ॥४६ ॥

११२. अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः॥

(वरुणप्रघास* नामक) कर्म करने वाले (ऋत्विग्गण), सुख प्रदान करने वाली वाणी के मंत्रों का पाठ करें । परस्पर सहभाव से रहने वाले हे ऋत्विजो ! देवताओं के लिए अनुष्ठान करके अपने घर के लिए प्रस्थान करें ॥४७ ॥

[* प्रजापति ने वैश्वदेवयज्ञ से प्रजा की सृष्टि की, उस प्रजा ने वरुण के जौ खा लिए (वरुणप्रघास) । तत्पश्चात् वरुण ने उस प्रजा को निःश्चेष्ट कर दिया, तब प्रजापति ने पुनः यज्ञ के द्वारा उसे स्वस्थ कर दिया तथा सम्पूर्ण प्रजा को वरुण के जाल से मुक्त कर दिया । प्रजापति द्वारा किया गया यह यज्ञ तथा यजमान के द्वारा चौथे मास किया जाने वाला यज्ञ 'वरुणप्रघास यज्ञ' कहलाता है । इसका विस्तृत विवेचन शतपथ ब्राह्मण के २/५/२/१ में उपलब्ध है ।]

११३. अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥४८ ॥

वरुणप्रघास पर्व की समाप्ति पर यजमान एवं उसकी पत्नी के अवभृथ स्नान में इस मंत्र का विनियोग किया जाता है—

नीचे प्रवाहित होने वाले (अवभृथ यज्ञरूप) हे जल प्रवाह ! यद्यपि आप अति वेगवान् हैं; तथापि अत्यधिक मंथर गति से प्रवाहित हों । चैतन्य इन्द्रियों द्वारा देवताओं के प्रति किये गये पाप को, इस जल में धोने के लिए आए हैं । हे (अवभृथ नामक यज्ञ) देव ! दुःखदायी शत्रुओं से आप हमारी रक्षा करें ॥४८ ॥

११४. पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥४९॥

साकमेध पर्व में थाली में रखे हुए भात को दर्वी नामक चमस से निकालकर यजमान इस मंत्र से आहुति देता है —

हे (काष्ठनिर्मित) दर्वि ! आप समीपवर्ती अन्न से पूर्ण होकर, उत्कृष्ट होती हुई इन्द्रदेव की ओर गमन करें । कर्मफल से भली-भाँति परिपूर्ण होती हुई, पुनः इन्द्रदेव के पास गमन करें । अनेक श्रेष्ठ कार्यों के सम्पादक हे इन्द्रदेव ! हम दोनों निर्धारित मूल्य में इस हविरूप अन्नरस का परस्पर विक्रय करें । (अर्थात् हम आपको हविर्दान करें और आप हमें सु-फल प्रदान करें) ॥४९ ॥

११५. देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥५० ॥

साकमेध पर्व के ओदन की द्वितीय आहुति का मंत्र है —

(इन्द्रदेव कहते हैं हे यजमान !) आप हमें सर्वप्रथम हवि प्रदान करें । तत्पश्चात् हम आपको उपयुक्त- अपेक्षित फल प्रदान करेंगे । आप (यजमान) निश्चितरूप से हवि प्रदान करें , हम आपको निश्चितरूप से अभीष्ट फल प्रदान करेंगे । (यजमान कहता है — हे इन्द्रदेव !) हम आपके लिए निश्चितरूप से हवि प्रदान करते हैं, आप हमें उसका प्रतिफल अवश्य प्रदान करें ॥५० ॥

[इस प्रकार दो बार इन्द्र और यजमान की वार्ता कराने का उद्देश्य इस सिद्धांत के प्रति आदर और महत्त्व का प्रदर्शन है ।]

११६. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽ अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५१ ॥

(पितृ यज्ञ में हमारे द्वारा समर्पित हवि को पितरों ने) सेवन कर लिया, (जिसकी सूचना) हर्षयुक्त पितरों ने सिर हिलाकर दी है । स्वयं दीप्तिमान् मेधावी ब्राह्मणों ने नवीन मन्त्रों से स्तुति प्रारम्भ कर दी है । हे इन्द्रदेव ! आप 'हरी' नामक अपने दोनों अश्वों को रथ में नियोजित करें । (क्योंकि अभीष्ट पितरों की तृप्ति के लिए आपको शीघ्र ही आना है ।) ॥५१ ॥

११७. सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५२ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हम, सभी प्राणियों के प्रति अनुग्रह दृष्टि रखने वाले आपकी अर्चना करते हैं । स्तुत्य, स्तोताओं को देने वाले धन से परिपूर्ण रथ वाले, कामनायुक्त यजमानों के पास आप शीघ्र ही आते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप 'हरी' नामक दोनों अश्वों को रथ में नियोजित करें ॥५२ ॥

११८. मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ॥५३ ॥

वीर पुरुषों की प्रशंसा करने वाले मंत्रों से (गाथा नाराशंसों) तथा पितरों के तर्पण करने वाले स्तोत्रों से, (पितृ यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए) पितृलोक में गये हुए मन को हम शीघ्र ही यहाँ बुलाते हैं ॥५३ ॥

[मन विभिन्न प्रयोजनों में बिखरा रहता है, उसे एक स्थान पर आवाहित-एकाग्र करने से ही मंत्र एवं यज्ञ में शक्ति आती है, यहाँ इसी तथ्य पर ध्यान दिलाया गया है ।]

११९. आ नऽ एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥५४ ॥

(यज्ञरूप) सत्कर्म के लिए , कार्यों में दक्षता के लिए तथा चिरकाल तक सूर्यदेव का अवलोकन करने के लिए मेरा मन पुनः -पुनः (पितृलोक से वापस) आकर (यज्ञकर्म में) संलग्न हो ॥५४ ॥

१२०. पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातꣳ सचेमहि ॥५५ ॥

हे पितरो ! आपकी अनुज्ञा से देव-पुरुष हमारे मन को पुनः श्रेष्ठता के लिए प्रेरित करें ; जिससे हम पुत्र, पशु आदि समूहों की सेवा कर सकें ॥५५ ॥

१२१. वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥५६ ॥

हे सोम (पोषण प्रदान करने वाले) पितर ! हम (याजक) आपके (प्रसन्नतादायी) कर्मों-व्रतों में संलग्न रहते हुए , आपके शरीर (स्वरूप के ध्यान) में चित्त को लगाये हुए , अपने प्रजाजनों सहित जीवित (व्यक्तियों, पशुओं आदि) सदस्यों की सेवा करते रहें ॥५६ ॥

१२२. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग ऽ आखुस्ते पशुः॥

हे रुद्रदेव ! यह (पुरोडाश का) भाग आपके लिए समर्पित है, इसे अपनी बहिन अम्बिका* के साथ सेवन करें। यह आपके पशु चूहे को दिया गया भाग भी आपका है ॥५७॥

[*अम्बिका का, रुद्र की बहिन होना श्रुति प्रमाणित है - 'अम्बिका ह वै नामास्य स्वसा तयास्यैष सहभागः'। (शत० ब्रा० २.६.२.९) रुद्र के पशु को तृप्त करके अपने पशुओं की रक्षा का भाव यहाँ सन्निहित है ।]

१२३. अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥५८॥

हे तीन नेत्र वाले (त्रिकालदर्शी) रुद्र (दुष्टों का दमन करने वाले) देव ! आपको अर्पित करने के बाद हम (प्रसाद रूप में) अन्न ग्रहण करते हैं; ताकि हमें श्रेष्ठ आवास, व्यवसाय में सफलता एवं श्रेय की प्राप्ति हो ॥५८॥

१२४. भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥५९॥

हे रुद्रदेव ! आप कष्ट निवारण करने वाली औषधि के समान सम्पूर्ण आपदाओं को दूर करने वाले हैं । अतएव हमारे अश्व एवं पुरुषों (पारिवारिक जनों) के लिए सभी व्याधियों की चिकित्सा करने वाली औषधि हमें प्रदान करें । हमारे भेड़ आदि पशुओं को आप सुखी करें ॥५९॥

१२५. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥६०॥

तीनों दृष्टियों (आधिभौतिक आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) से युक्त रुद्रदेव की उपासना हम करते हैं। वे देव जीवन में सुगन्धि (सदाशयता) एवं पुष्टि (समर्थता) अथवा (पतिवेदनम्) संरक्षक सत्ता का प्रत्यक्ष बोध कराने वाले हैं। जिस प्रकार पका हुआ फल स्वयं डण्ठल से अलग हो जाता है, उसी प्रकार हम मृत्यु भय से मुक्त हों; किन्तु अमृतत्व से दूर न हों; साथ ही यहाँ (भवबन्धन) से मुक्त हो जाएँ, वहाँ (स्वर्गीय आनन्द) से नहीं ॥६०॥

१२६. एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोतीहि । अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा ऽ अहिꣳसन्नः शिवोतीहि ॥६१॥

हे रुद्रदेव ! आप अपने शेष हवि अंश को साथ लेकर (विरोधियों के न रहने से) धनुष की प्रत्यञ्चा को शिथिल करके, (सम्पूर्ण प्राणियों को भय से बचाने के लिए) पिनाक नामक धनुष को वस्त्रों से ढँककर, अपने निवास स्थान मूजवान् पर्वत के उस पार चले जाएँ । हे रुद्रदेव ! आप चर्माम्बर धारण किए हुए, कष्ट न देते हुए, कल्याणकारक होकर (हमारी पूजा से संतुष्ट होने के कारण क्रोध रहित होकर) पर्वत को लाँघकर चले जाएँ ॥६१॥

[मूजवान् जिसके अपर नाम 'मूजवन्त' तथा 'मुञ्जवन्त' हैं, हिमालय का एक पर्वत शिखर है, जो रुद्र देवता का निवास स्थल माना जाता है - मूजवान्नाम कश्चित् पर्वतो रुद्रस्य वासस्थानम् (यजु० ३.६१ महीधर भाष्य) । बहुधा इसी पर्वतश्रेणी से 'सोमलता' की प्राप्ति होती थी, तभी सोम का अन्य नाम मौजवती (ऋग्वेद १०.३४.१) भी है।

१२७. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥

जो जमदग्नि की (बाल्य, यौवन और वृद्ध) त्रिविध आयु (तेजस्वी जीवन) है, जो कश्यप की तीन अवस्थाओं वाली आयु है तथा जो देवताओं की तीन अवस्थाओं वाली आयु है । उस (तेजस्वी) त्रिविध आयु को हम भी प्राप्त करें ॥६२॥

१२८. शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ।
नि वर्त्तयाम्यायुषेन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥६३ ॥

यज्ञ में यजमान के मुण्डन के समय (धार वाले उपकरण को लक्ष्य करके) इस कण्डिका का प्रयोग किया जाता है —

आप (क्षुर या उस्तुरा) नाम से ही शिव-कल्याणकारी हैं, स्वयं धारयुक्त शस्त्र आपके पिता हैं । हम आपको नमन करते हैं, हमें पीड़ित न करें । हम आयु, पोषक अन्नादि, सुसन्तति, ऐश्वर्य वृद्धि, उत्तम प्रजा एवं श्रेष्ठ वीर्य लाभ के लिए विशिष्ट संदर्भ में (मुण्डन-कृत्य में) प्रयास करते हैं ॥६३ ॥

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि — विरूप आंगिरस १ । वसुश्रुत २ । भरद्वाज ३-५, १३ । सार्पराज्ञी ६-८ । प्रजापति, तक्षा, जीवल-चैलकि ९ । प्रजापति १०, ४४, ४५ । देवगण, गोतम राहूगण ११ । विरूप १२ । देवश्रवा—देववात भारत १४ । वामदेव १५, ३६ । अवत्सार १६, १७ । अवत्सार, ऋषिगण १८ । ऋषिगण १९-२१ । ऋषिगण, मधुच्छन्दा वैश्वामित्र २२-२४ । बन्धु, सुबन्धु २५ । श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु २६ । बन्धु आदि २७ । ब्रह्मणस्पति अथवा मेधातिथि २८-३० । सत्यधृति वारुणि ३१-३३ । मधुच्छन्दा ३४ । विश्वामित्र ३५ । आसुरि, आदित्य ३७ । आदित्य ३८-४० । शंयु बार्हस्पत्य ४१-४३ । अगस्त्य ४६-४८ । और्णवाभ ४९-५० । गोतम ५१, ५२ । बन्धु ५३-५९ । वसिष्ठ ६०, ६१ । नारायण ६२, ६३ ।

देवता — अग्नि १-४, ६-८, ११, १२, १४, १५, १७, १९, २३-२६, ३६, ४७ । अग्नि, वायु, सूर्य, यजमान आशीर्वाद ५ । लिंगोक्त ९, १० । इन्द्राग्नी १३ । गौ, अग्नि अथवा पय १६ । अग्नि, रात्रि १८ । गौ २०, २१, २७ । गौ, अग्नि २२ । ब्रह्मणस्पति २८-३० । आदित्य ३१-३३ । इन्द्र ३४, ४९-५२ । सविता ३५ । अग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि ३७ । आहवनीय ३८ । गार्हपत्य ३९ । अन्वाहार्यपचन ४० । वास्तु ४१-४३ । मरुद्गण ४४, ४५ । इन्द्र-मरुद्गण ४६ । यज्ञ ४८ । मन ५३-५५ । सोम ५६ । रुद्र ५७-६१ । यजमान आशीर्वाद ६२ । क्षुर, लिंगोक्त ६३ ।

छन्द— गायत्री १-२, ४, ८, १६, २९, ४४, ५६ । निचृत् गायत्री ३, ६, ११, १२, ३०, ३२, ३५, ३६, ५५ । दैवी बृहती, निचृत् बृहती ५ । पंक्ति, याजुषी पंक्ति ९ । गायत्री, भुरिक् गायत्री १० । विराट् त्रिष्टुप् १३ । निचृत् अनुष्टुप् १४, ४० । भुरिक् त्रिष्टुप् १५ । त्रिष्टुप् १७ । निचृत् ब्राह्मी पंक्ति १८ । जगती १९ । भुरिक् बृहती २०, २५, ३९ । उष्णिक् २१, ६२ । भुरिक् आसुरी गायत्री, गायत्री २२ । विराट् गायत्री ७, २३, २४, २७, २८, ३१, ३३, ५४ । स्वराट् बृहती २६ । पथ्या बृहती ३४ । ब्राह्मी उष्णिक् ३७ । अनुष्टुप् ३८, ४२, ४९, ५७ । आर्षी पंक्ति ४१ । भुरिक् जगती ४३, ६३ । स्वराट् अनुष्टुप् ४५ । भुरिक् पंक्ति ४६ । विराट् अनुष्टुप् ४७ । ब्राह्मी अनुष्टुप् ४८ । भुरिक् अनुष्टुप् ५० । विराट् पंक्ति ५१, ५२, ५८ । अतिपाद निचृत् गायत्री ५३ । स्वराट् गायत्री ५९ । विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ६० । पंक्ति ६१ ।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

१२९. एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्तविश्वे। ऋक्सामाभ्या ᳪ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम। इमाऽ आपः शमु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व स्वधिते मैन ᳪ हि ᳪ सीः ॥१ ॥

जिस यज्ञस्थल पर सभी देवगण आनन्दित होते हैं, उस उत्कृष्ट भूमि पर हम यजमानगण एकत्रित हुए हैं । ऋक् तथा सामरूपी मंत्रों से यज्ञ को पूर्ण करते हुए धन एवं अन्न से हम तृप्त होते हैं । यह (दिव्य) जल हमारे लिए सुख-स्वरूप हो । हे दिव्य गुणयुक्त ओषधे ! आप हमारी रक्षा करें । हे शस्त्र ! आप इस (यजमान अथवा ओषधि) की हिंसा न करें ॥१ ॥

१३०. आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्व ᳪ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा ᳪ शग्मां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥२ ॥

यह कण्डिका पवित्रतादायी जल एवं यज्ञ परिधान क्षौम-वस्त्र को सम्बोधित कर रही है —

(जगत् निर्माण में सक्षम) हे माता के समान जल ! हमें आप पवित्र करें । घृत (क्षरित) से पवित्र जल हमें यज्ञ के योग्य पवित्र बनाए । तेजयुक्त होता हुआ जल हमारे सभी पापों का निवारण करे । शुद्ध स्नान और पवित्र आचमन के उपरान्त हम जल से बाहर आते हैं । (हे क्षौम वस्त्र !) आप दीक्षणीयेष्टि* तथा उपसदिष्टि** के देवताओं के लिए शरीर के समान प्रिय हैं । कोमल होने के कारण सुखकर, मंगल करने वाली कान्ति से युक्त (श्रेष्ठ रंगवाले) परिधान को हम (यजमान) धारण करते हैं ॥२ ॥

[* यजमान की दीक्षा के समय यह इष्टि (यज्ञ) की जाती है - 'दीक्षा प्रयोजना इष्टिः' । इसमें 'आग्नावैष्णव' पुरोडाश का याग होता है । ** सोमयाग में होने वाले प्रवर्ग्यसंज्ञक अनुष्ठान में इस इष्टि का विधान है । इसमें अग्नि, सोम और विष्णु प्रधान देवता होते हैं ।]

१३१. महीनां पयोसि वर्चोदाऽ असि वर्चो मे देहि। वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽ असि चक्षुर्मे देहि ॥३ ॥

प्रस्तुत कण्डिका में नवनीत तथा अंजन को सम्बोधित किया गया है —

(हे नवनीत !) आप गौओं के दूध से निर्मित हैं । आप कान्तिप्रद हैं । अतः हमें कान्ति प्रदान करें । (हे अंजन !) आप वृत्र की कनीनिका (आँख की पुतली) हैं । आप दृष्टि प्रदान करने वाले हैं । अतएव हमें दृष्टि शक्ति-दर्शनशक्ति प्रदान करें ॥३ ॥

१३२. चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥४ ॥

ज्ञान के अधिपति (मनोदेवता) हमें शुद्ध करें । वाणी के स्वामी हमारी वाणी पवित्र करें । छिद्रों (दोषों) से रहित पवित्र सविता देवता हमें शोधित करें । हे पवित्रपते ! शोधित पवित्री (पवित्रता के साधन) के द्वारा यजमान का अभीष्ट पूर्ण हो । सोमयाग अनुष्ठान की कामना से हम पवित्र होना चाहते हैं, हमें यज्ञानुष्ठान की सामर्थ्य प्राप्त हो ॥४ ॥

१३३. आ वो देवासऽईमहे वामं प्रयत्यध्वरे । आ वो देवासऽआशिषो यज्ञियासो हवामहे ।

हे देवगण ! यज्ञ के प्रारम्भ होने पर हम यज्ञफल की कामना से आपका आवाहन करते हैं । हे देवगण ! हम यज्ञ के आशीर्वाद रूपी फल की प्राप्ति के लिए आपको बुलाते हैं ॥५ ॥

१३४. स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात्स्वाहा द्यावापृथिवीभ्या ꣳ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥६ ॥

हम अन्तःकरण (पूर्ण मनोयोग) से यज्ञ-अनुष्ठान करते हैं ।विस्तीर्ण अन्तरिक्ष के लिए यज्ञ करते हैं । द्युलोक और पृथ्वीलोक के लिए हम यज्ञ कार्य करते हैं । सभी कर्मों के प्रेरक वायुदेव की कृपा से हम यज्ञ प्रारंभ करते हैं ॥

१३५. आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥७ ॥

यज्ञ करने के मानसिक सङ्कल्प के प्रेरक अग्निदेव के लिए यह आहुति है । मंत्र धारण की शक्ति-मेधा तथा मन के उत्प्रेरक अग्निदेव को यह आहुति समर्पित है । दीक्षा एवं तप की सिद्धि के लिए अग्निदेव को यह आहुति दी जाती है । मन्त्रोच्चारण की शक्ति युक्त सरस्वती (वाणी) तथा वाक् इन्द्रिय का पोषण करने वाले पूषादेव को प्रेरणा देने वाले अग्निदेव को यह आहुति दी जा रही है । हे द्युलोक एवं पृथ्वीलोक ! हे अति विस्तृत अन्तरिक्ष ! द्युतिमान् विशाल, संसार के सुख की कामना करने वाले हे जल ! श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के लिए हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं । यह आहुति बृहस्पति देव के लिए समर्पित है ॥७ ॥

१३६. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥८ ॥

सभी मनुष्यों को कर्मफल देने वाले, दानादि गुणयुक्त सविता देवता की मित्रता प्राप्त करने की हम प्रार्थना करते हैं । प्रजापालन के लिए द्युतिमान् (यशस्वी) वैभव की हम कामना करते हैं । सभी मनुष्यों के धन-प्राप्ति के निमित्त हम सविता देवता की प्रार्थना करते हैं । इसी निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८ ॥

१३७. ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः । शर्मासि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा मा हि ꣳ सीः ॥९ ॥

यज्ञकर्म में इस कण्डिका के द्वारा कृष्णाजिन (मृगचर्म) स्थापित करने का विधान किया गया है —

हे शिल्प रूपात्मक ऋक् और साम के अधिष्ठाता देवताओ ! हम आपका स्पर्श करते हैं । आप उत्तम ऋचाओं के उच्चारण काल तक हमारी रक्षा करें । हे शिल्पपते ! आप हमारे शरणदाता हैं, अतएव हमें आश्रय दें । (ऋक्, सामरूप) आप को नमस्कार है । आप यजमान को कष्ट न दें ॥९ ॥

१३८. ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्य ꣳ हसऽ आस्य यज्ञस्योदृचः ॥१० ॥

यह कण्डिका यज्ञ मेखला तथा उससे सम्बन्धित उपकरणों को सम्बोधित कर रही है —

(यज्ञ मेखला के प्रति) हे अंगों को शक्ति देने वाली ! आप हमें बल प्रदान करें । हे सोम प्रिय मेखले ! आप हमारे लिए नीवी (दोनों सिरों को जोड़ने वाली ग्रंथि) रूप हो । (वस्त्र के प्रति) आप विष्णु (यज्ञ) के लिए सुखदायी माध्यम हो । आप याजकों के लिए सुखदायक बनें । (कृष्ण-विषाण से खोदी भूमि के प्रति) आप इन्द्रदेव

की योनि (शक्ति को उत्पन्न करने वाली) हैं, कृषि को हरा-भरा बनाएँ । हे वनस्पति से उत्पन्न दण्ड ! आप उन्नत होकर यज्ञ समाप्ति तक हमें पापों से बचाएँ ॥१० ॥

१३९. व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः । दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहस०ं सुतीर्था नोऽअसद्वशे । ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥११ ॥

हे परिचारक गण ! (दुग्ध दोहनादिरूप या नियम) व्रत का आचरण करो । (श्रौत) अग्नि ब्रह्म (वेदरूप) है । यह अग्नि यज्ञ (का साधनभूत) है । (खदिर, पीपल आदि) वनस्पतियाँ यज्ञ-योग्य हैं । यज्ञ की सिद्धि के लिए, देवताओं को लक्ष्यकर प्रदान की गई, सुख के लिए तेज को धारण करने वाली, यज्ञ का निर्वाह करने वाली, यज्ञ-अनुष्ठान विषयक बुद्धि की हम याचना करते हैं । सुस्पष्ट बुद्धि हमारे अधीन रहे । दर्शन-श्रवणादि रूप इच्छा से उत्पन्न मन से संयुक्त, कुशल संकल्प वाले देवगण, यज्ञ में विघ्नों का निवारण करके हमारी रक्षा करें । प्राणरूप देवताओं के लिए यह (दुग्ध आहुति) समर्पित है ॥११ ॥

१४०. श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः । ताऽअस्मभ्यमयक्ष्मा ऽ अनमीवाऽ अनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽ ऋतावृधः ॥१२ ॥

हे जल ! दुग्धरूप में हमारे द्वारा सेवन किये गये आप, शीघ्र ही पच जाएँ । पिये जाने के बाद हमारे पेट में आप सुखकारी हों । ये जल राजरोग से रहित, सामान्य बाधाओं को दूर करने वाले, अपराधों को दूर करने वाले, यज्ञों में सहायक, अमृतस्वरूप, दिव्य गुण से युक्त हमारे लिए स्वादिष्ट हों । ॥१२ ॥

१४१. इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् । अ०ंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव ॥१३ ॥

यज्ञ स्थल पर विकारग्रस्त जल (मूत्रादि) के विसर्जन के लिए गड्ढे खोद दिये जाते थे । इस संदर्भ में प्रार्थना है—

(हे यज्ञपुरुष !) हे पृथ्वीमातः ! आपका यज्ञ-योग्य शरीर है, (यज्ञ करने योग्य स्थान है !) हम इस स्थान (गड्ढे) में विकारयुक्त जल का परित्याग करते हैं, प्रजा के लिए उपयोगी रस का त्याग नहीं करते । यह प्रक्रिया पाप विमोचक हो । स्वाहारूप में स्वीकार करने योग्य जल विकारयुक्त होने पर त्याज्य हो जाता है । यह (विकारयुक्त जल) पृथ्वी में प्रविष्ट होकर मृत्तिका के साथ एकाकार हो जाए ॥१३ ॥

१४२. अग्ने त्व०ं सु जागृहि वय०ं सु मन्दिषीमहि । रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! आप भली-भाँति प्रबुद्ध (प्रज्वलित) रहें । हम यजमानगण निद्रा का आनन्द लेंगे । आप सतत हमारी रक्षा करें । हे अग्ने ! आप हमें पुनः जाग्रत् करके कर्मशील बनाएँ ॥१४ ॥

१४३. पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुःपुनः श्रोत्रं मऽआगन् । वैश्वानरो अदब्धस्तनूपाऽ अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥१५ ॥

(सुषुप्ति काल में निश्चेतन यजमान का) मन (प्रबुद्धावस्था में) पुनः शरीर में आ गया । (सुषुप्ति काल में नष्ट-प्राय मेरी) आयु पुनः प्राप्त-सी हो गई है । इसी प्रकार प्राण, आत्मा, चक्षु, कान आदि इन्द्रियाँ (प्रबुद्धावस्था में कार्यशील होकर) पुनः प्राप्त हो गई हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण इन्द्रियों के क्रियाशील हो जाने पर सम्पूर्ण विश्व के कल्याणकर, दबाये न जा सकने वाले, शरीर को सुरक्षित रखने वाले हे अग्निदेव ! घृणित पापों (पापकर्मों एवं पापकर्मों के दुष्प्रभावों) से आप हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

१४४. त्वमग्ने व्रतपाऽ असि देवऽआ मर्त्येष्वा त्वं यज्ञेष्वीड्यः । रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥१६ ॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण प्राणियों के व्रतों के पालनकर्ता हैं । आपकी यज्ञों में अभ्यर्थना की जाती है । हे सोम ! आप हमें इतना (जीविका चलने भर का) धन तो प्रदान करें (ही) । पुनः और भी अधिक धन से हमें पूर्ण करें (जिससे लोकोपयोगी कार्य किये जा सकें) । ऐश्वर्य देने वाले सविता देवता ने हमें पहले भी प्रचुर धन प्रदान किया है ॥१६ ॥

१४५. एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ । जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥

हे शुभ्रवर्ण अग्निदेव ! यह (घृतरूप) आपकी देह और (स्वर्णाभ) आपका यह तेज है । आपका स्वरूप और तेजस् एकाकार होकर आकाश में व्याप्त हो । मन के द्वारा धारण की गयी (मंत्ररूप वाणी) वेगवान् होकर विष्णु (यज्ञ) को तुष्ट करने वाली हो ॥१७ ॥

१४६. तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥१८ ॥

सत्य स्वरूप आप के कृपापात्र हम लोग आपके शरीर के नियमन-यंत्र को प्राप्त करें । यह आज्य आहुति आपके लिए है । हे हिरण्य देवता ! आप दीप्तिमान् (शुक्र) हैं । आप हर्षित करने वाले हैं । आप विनाशरहित हैं । आप सम्पूर्ण देवताओं की सम्मिलित शक्ति से युक्त हैं ॥१८ ॥

१४७. चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी । सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥१९ ॥

(हे सोमक्रयणी गौ रूप वाणी !) आप चित्त, मन और बुद्धि (की प्रतिनिधि रूप) हैं । आप देने योग्य द्रव्य रूप श्रेष्ठ दक्षिणा हैं । (कर्म से) आप क्षत्रिय शक्ति हैं । आप यज्ञ में (मंत्ररूप में) प्रयुक्त होने योग्य हैं । आप अखण्डित या देवमाता (अदिति) हैं । आप (कटु और मधुर वाणीरूप) दो सिर वाली हैं । आप आगे बढ़ने और पीछे हटने में सहयोग देने वाली हैं । (यज्ञ से बाहर न जाने देने के लिए) मित्र (मित्रवत्) आपके दाहिने पैर में (स्नेह का) बन्धन डाल दें । (देवों के) अध्यक्ष इन्द्रदेव को आनन्दित करने के लिए पूषादेवता (यज्ञ) मार्ग की रक्षा करें ॥१९ ॥

१४८. अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योनु सखा सयूथ्यः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥२० ॥

यज्ञ के लिए सोम के आहरण में संलग्न आपको, आपकी माता, पिता, सहोदर-भाई, साथ-साथ रहने वाले मित्र अनुमति प्रदान करें । हे (वाक्) देवि ! इन्द्रदेव के लिए सोम प्राप्त करने के लिए आप प्रस्थान करें । सोम ग्रहण करने के उपरान्त आपको रुद्रदेव हम लोगों की ओर ले आएँ । आप सोम के साथ हमारा कल्याण करते हुए पुनः यहाँ आएँ ॥२० ॥

१४९. वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिरा चके ॥२१ ॥

हे सोमक्रयणी गौ (वाणी) ! आप वसु, देव-माता अदिति, द्वादश आदित्य, ग्यारह रुद्र और चन्द्ररूपा हैं । बृहस्पति आपको हर्षातिरेक प्रदान करें । रुद्र, वसु गणों के साथ आपकी रक्षा करें ॥२१ ॥

१५०. अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्याऽ इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा। अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳरायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः ॥

सम्पूर्ण पृथ्वी में श्रेष्ठ स्थान स्वरूप देवों के यजन स्थान (यज्ञशाला) में (हे वाक् देवि !) आपको घृताहुति प्रदान करते हैं । आप पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी हैं । हमारी इस घृताहुति से आप सन्तुष्ट हों । आप ऐश्वर्यवान् हैं, हमें अपना बन्धु समझकर धन-धान्य से पुष्ट करें । हमें इससे वंचित न करें ॥२२॥

१५१. समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥२३॥

(हे सोमक्रयणी देवि !) दीप्तिमती, दक्षिणायोग्य, विस्तीर्ण दर्शन युक्त आपके द्वारा विवेकपूर्वक हमें देखा गया है । पत्नीसहित हमारी आयु को आप क्षीण न करें । आपकी आयु को हम नष्ट न करें । आपकी कृपा-दृष्टि में रहते हुए हम पराक्रमी पुत्र प्राप्त करें ॥२३॥

[अविवेकपूर्वक बोली गयी वाणी फलित होने के पहले ही प्रभावहीन हो जाती है । वाणी की आयु क्षीण न हो, इसलिए साधक विवेकयुक्त वाणी ही बोलें ।]

१५२. एष ते गायत्रो भागऽ इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽ इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽ इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाꣳ साम्राज्यं गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा वि चिन्वन्तु ॥२४॥

हे सोम ! यह सामने दृष्टिगोचर होने वाला आपका भाग गायत्री छन्द का है । यह आपका त्रिष्टुप् छन्द का भाग है, यह आपका जगती सम्बन्धी छन्द का भाग है । (इस प्रकार यजमान के अभिप्राय को अध्वर्यु सोम के लिए कहें ।) आप उष्णिक् आदि छन्दों के अधिपति हो जाएँ । हमारे इस अभिप्राय को आप सोम को सूचित करें । हे दिव्य सोम ! क्रयरूप में आने पर भी आपसे हमारा अपनत्व है । शुक्र आदि ग्रह आपके ही (अनुशासन में) हैं । विवेकपूर्वक आपका चयन करने वाले, तत्त्व और अतत्त्व का निर्णय करके (मात्र श्रेष्ठ अंश को ही) ग्रहण करें ॥२४॥

१५३. अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा ऽ अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥२५॥

द्युलोक और पृथ्वीलोक के मध्य विद्यमान, मेधावी, सत्य-प्रेरक, रत्नपोषक, सभी प्राणियों द्वारा चाहे जाने वाले, स्मरण करने योग्य, नवीन तत्त्वों का साक्षात्कार करने वाले, ऊर्ध्व-मुख होकर आकाश में विद्यमान, सभी को प्रकाशित करने वाले, अपनी दीप्ति से स्वयं भी प्रकाशित होने वाले, स्वर्ण निर्मित आभरण से युक्त हाथ वाले, सत्संकल्प से स्वर्गरचना में समर्थ सवितादेवता की हम अर्चना करते हैं । हे सोम ! प्रजाओं के उपकार के लिए हम आपको स्थिर करते हैं । हे सोम ! श्वास लेने में आपका अनुसरण करती हुई प्रजाएँ जीवन-धारण करें । आप भी प्रजाओं का अनुगमन करते हुए श्वास लें (अर्थात् परस्पर एक दूसरे का अनुगमन करते हुए जीवन धारण करें ।)

१५४. शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन । सग्मे ते गौरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥२६॥

चन्द्रमा के समान आह्लादक, अमृतस्वरूप हे सोम ! दीप्तिमान् आपको हम चमकते हुए सोने से क्रय करते हैं । हे सोम विक्रेता ! सोम मूल्य के बदले आपको बेची गयी गौ, पुनः यजमान के पास वापस आ जाए । आपको दिया गया देदीप्यमान स्वर्ण हमारे पास वापस आ जाए । (हे अजे !) तुम तपस्वियों की पुण्य देह हो तथा सभी

देवताओं को प्रिय, प्रजापति का शरीर हो । हे सोम ! हम श्रेष्ठ पशुधन से तुम्हारा क्रय करते हैं । अतएव आप हजारों पुत्र-पौत्रों को पोषित करने योग्य सम्पत्तियों में वृद्धि करें ॥२६ ॥

[अर्थनीति कहती है कि धन का प्रवाह रुके नहीं । 'स्वर्ण लौटकर आए' का भाव यही है कि पुरुषार्थ से प्रेरित धन बराबर प्रवाहमान रहे ।]

१५५. मित्रो न ऽ एहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमा विश दक्षिणमुशन्नुशन्त१ᳫं स्योनः स्योनम् । स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥

हे प्रिय सखा सोमदेव ! मित्रों का पोषण करने वाले आप हमारी ओर आएँ । आप सुखदायक होते हुए मङ्गलदायक दाहिनी जंघा में प्रवेश करें । ध्वनि करने वाले, सुशोभित रहने वाले, पाप के शत्रु, विश्व के पोषणकर्त्ता, सर्वदा प्रसन्न रहने वाले, श्रेष्ठ हाथों वाले, शक्तिहीन प्राणियों के जीवनदाता, सोम की रक्षा करने वाले हे सात विशिष्ट देवगण ! सोम-क्रय के लिए स्वर्णादि आपके समक्ष रखे गये हैं, आप उन बहुमूल्य पदार्थों का रक्षण करें । आपको कोई कष्ट न पहुँचाए ॥२७ ॥

१५६. परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ ऽअनु ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें पाप से पूर्णतः बचाएँ । आप सदाचाररूपी पुरुष को (व्यक्तित्व को) हम यजमानों में प्रतिष्ठित करें । यज्ञादि करते हुए उत्कृष्ट आयु से सोमादि देवताओं की आयु का अनुसरण करते हुए, सोम की प्राप्तिरूप अमरत्व प्राप्त होने से हम उत्कृष्ट हो गये हैं ॥२८ ॥

१५७. प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वा : परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥

(मार्ग के प्रति कथन) कल्याणकारी, गमन करने योग्य, पाप या अपराधरूपी बाधाओं से रहित मार्ग को हम प्राप्त करें; जिससे जाते हुए पथिकों (यजमानों) के चोर आदि सभी शत्रुओं का निवारण हो जाता है एवं उन्हें सम्पदाओं की प्राप्ति होती है ॥२९ ॥

१५८. अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद आसीद । अस्तभ्नाद्द्यां वृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥३०

(मृगचर्म आसन के प्रति कथन) हे कृष्णाजिन ! आप सम्पूर्ण पृथ्वी के चर्मस्वरूप हैं । आप पृथ्वी के छोटे भाग यज्ञवेदी पर आसीन हों । शक्ति-सम्पन्न वरुणदेव, द्युलोक और अन्तरिक्षलोक को स्थिर कर देते हैं । वे पृथ्वी के परिमाण को माप लेते हैं । भली-भाँति सुशोभित होते हुए (सम्राट्) वरुणदेव सम्पूर्ण भुवनों को परिव्याप्त कर प्रतिष्ठित हैं । यही उनके नियत कार्य हैं ॥३० ॥

१५९. वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽ उस्रियासु । हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥३१ ॥

वरुणदेव ने वन में वृक्षों के ऊपरी भाग पर (मूर्त पदार्थों के अभाव में) आकाश को विस्तृत किया । अश्वों या मनुष्यों में वीर्य (पराक्रम) की वृद्धि की । गौओं में दुग्ध को प्रतिष्ठित किया । हृदय में संकल्पशक्ति युक्त मन को, प्राणियों में (पाचन के लिए) जठराग्नि को, द्युलोक में सूर्यदेव को तथा पर्वत पर सोमवल्ली को स्थापित किया ।

१६०. सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥

हे ज्ञानयुक्त तेजस्वी ! आप अश्व (किरणों) की भाँति संचरित हों, सूर्य और अग्नि के प्रकाश की तरह लोगों की आँखों की पुतली पर (दृष्टि पर) आरोहित हों ॥३२ ॥

१६१. उरू्यावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ। स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥३३॥

हे (सूर्य और अग्निरूप) बैलो ! (आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को पोषण देने वाली सामग्रियों से भरी हुई) गाड़ी का भार वहन करने में सक्षम, उत्साहित होने के कारण (कष्ट होने पर भी) अश्रुपात न करने वाले, वीरों को कष्ट न देने वाले, ब्राह्मणों को यज्ञ-कार्य के निमित्त प्रेरित करने वाले हैं । आप आकर स्वयं ही रथ में जुड़ जाएँ, (पोषण कृत्य में संलग्न हो जाएँ); इस प्रकार आप दोनों कल्याण करने हेतु यजमान के घरों की ओर गमन करें ॥३३॥

[मनुष्य द्वारा प्रज्वलित अग्नि तथा प्रकृति प्रदत्त सूर्य, यह दो ऊर्जा के स्रोत हैं, जो सृष्टि की गाड़ी खींचने में समर्थ हैं।]

१६२. भद्रो मेसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि। मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृका अघायवो विदन्। श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सꣳस्कृतम् ॥३४॥

हे प्राणियों के पालक सोम ! यजमानों का आप उपकार करने वाले हैं । आप (यजमान-पत्नी, यज्ञशाला, हवि आदि) सभी स्थानों को लक्ष्य कर तीव्र गति से गमन करें । आप सर्वत्र विचरण करने वाले तस्करों के ज्ञान के विषय न हों । यज्ञ-विरोधी शत्रु आपको जान न सकें । पापी भेड़िये अथवा दुर्जन आपको न जानें । बाज़ पक्षी के समान शीघ्रगामी आप दूर चले जाएँ । आप यजमान के घरों को प्राप्त करें । वहाँ (यजमानों के घरों में) सभी यज्ञीय उपकरणों से युक्त, उपयुक्त स्थान (यज्ञशालाएँ) हैं ॥३४॥

१६३. नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्यत। दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शꣳसत ॥३५॥

हे सूर्यरूपी सोम ! संसार के कल्याण के लिए अपनी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को देखने वाले (मित्र तथा वरुण), तेज से प्रकाशित, दूर देश में रहने वाले, प्राणियों के द्वारा देखे गये, परमात्मा से उत्पन्न, प्रज्ञारूप, द्युलोक के पुत्र के समान प्रिय (या दिन के पालक) सूर्यदेव को नमस्कार है । (हे ऋत्विजो !) सूर्यरूप ब्रह्म के निमित्त आप यज्ञ करें तथा सूर्य को प्रसन्न करने के लिए स्तोत्र-पाठ करें ॥३५॥

१६४. वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्यऋतसदन्यसि वरुणस्यऋतसदनमसि वरुणस्यऋतसदनमासीद ॥३६॥

हे काष्ठ उपकरण ! आप वरुणरूपी सोम की उन्नति करने वाले हों । हे शम्ये ! आप वरुणदेव की गति को स्थिर करें । (उदुम्बर काष्ठ निर्मित हे आसन्दी !) आप यज्ञ में वरुण (रूपी बँधे हुए सोम) के आसन स्वरूप हैं । आसन्दी पर बिछे हुए हे कृष्णाजिन ! आप वरुणरूपी सोम के यज्ञ स्थान हैं । वस्त्र में बँधे हुए वरुण (रूपी हे सोम ! यज्ञ) के आसन स्वरूप इस कृष्णाजिन पर सुखपूर्वक आसन ग्रहण करें ॥३६॥

१६५. या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥३७॥

हे सोम ! सवनादि क्रियाओं द्वारा आपके रस को प्राप्त करके याजकगण यज्ञपुरुष का पूजन करते हैं। आपके वे सब (यज्ञस्थल) आपको प्राप्त हों । हे घरों का विस्तार करने वाले, यज्ञादि सत्कर्मों को (पूर्ण करके) पार लगाने वाले अथवा विपत्तियों से पार लगाने वाले, वीरों के पालक, कायरों के विनाशक ! आप हमारे यज्ञों में प्रस्तुत हों (पहुँचें) ॥३७॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— प्रजापति १-७ । स्वस्त्य आत्रेय ८-९ । आंगिरस् १०-१५ । वत्स १६-३४ । अभितपन सूर्य ३५-३६ । गोतम ३७ ।

देवता— देवयजन, कुशतरुण, क्षुर १ । आप: (जल), वास २ । नवनीत, अञ्जन ३ । प्रजापति, सविता ४ । आशीर्वाद ५ । यज्ञ ६ । अग्नि, लिंगोक्त ७ । सविता ८ । कृष्णाजिन ९, ३२ । मेखला, नीवि, वास, कृष्णविषाण, दण्ड १० । यज्ञ, धी, वाक्, प्राण-उदान, चक्षु, श्रोत्र, अग्नि, मित्रावरुण, आदित्य, विश्वेदेवा ११ । आप: (जल) १२ । लोष्ट, मूत्र १३ । अग्नि १४-१५, २८ । अग्नि, सोम १६ । हिरण्य, आज्य, वाक् १७ । वाक्, हिरण्य १८ । वाक् रूपा गौ १९-२१ । आज्य, लिंगोक्त २२ । पत्नी, आशीर्वाद २३ । लिंगोक्त, सोम २४ । सविता, सोम २५ । सोम, लिंगोक्त, अजा २६ । सोम, धिष्ण्य नाम २७ । पन्था २९ । कृष्णाजिन, सोम, वरुण ३० । वरुण ३१, ३६ । अनडुत् ३३ । सोम ३४, ३७ । सूर्य ३५ ।

छन्द— विराट् ब्राह्मी जगती १ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २ । स्वराट् अनुष्टुप् ३ । निचृत् ब्राह्मी पंक्ति ४, १९ । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् ५, ६, २९, ३२ । पंक्ति, आर्षीबृहती ७ । आर्षी अनुष्टुप् ८ । आर्षी पंक्ति ९ । निचृत् आर्षी जगती, साम्नी त्रिष्टुप् १० । स्वराट् ब्राह्मी अनुष्टुप्, आर्षी उष्णिक् ११ । भुरिक् ब्राह्मी अनुष्टुप् १२ । भुरिक् आर्षी बृहती १३ । स्वराट् आर्षी उष्णिक् १४ । ब्राह्मी बृहती १५ । भुरिक् आर्षी पंक्ति १६ । आर्ची त्रिष्टुप् १७ । स्वराट् आर्षी बृहती १८ । साम्नी जगती, भुरिक् आर्षी उष्णिक् २० । विराट् आर्षी बृहती २१ । ब्राह्मी पंक्ति २२ । आस्तार पंक्ति २३ । ब्राह्मी जगती, याजुषी पंक्ति २४ । भुरिक् शक्वरी, भुरिक् गायत्री २५ । भुरिक् ब्राह्मी पंक्ति २६, २७ । साम्नी बृहती, साम्नी उष्णिक् २८ । स्वराट् याजुषी त्रिष्टुप्, आर्षी त्रिष्टुप् ३० । विराट् आर्षी त्रिष्टुप् ३१ । निचृत् आर्षी गायत्री, याजुषी जगती ३३ । भुरिक् आर्ची गायत्री, भुरिक् आर्ची बृहती, विराट् आर्ची अनुष्टुप् ३४ । निचृत् आर्षी जगती ३५ । विराट् ब्राह्मी बृहती ३६ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ३७ ।

॥ इति चतुर्थोऽध्याय: ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

१६६. अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥१॥

हे सोम ! आप अग्नि की भाँति ऊर्जा प्रदान करने वाले अग्निरूप हैं । आप दिव्य पोषक रस के रूप में हैं । आप यज्ञ में आए अतिथियों का यथोचित सत्कार करने वाले हैं ।आप सोम लाने वाले श्येन* के समान हैं । धन-ऐश्वर्य प्रदान कर सम्पूर्ण जगत् के पोषक अग्नि एवं विष्णुदेवता की तृप्ति के लिए हम आपको ग्रहण करते हैं ॥१ ॥

[* वेदों में 'श्येन' बहुशः चर्चित पक्षी है । आकाश में दूर तक उड़ने से इसे 'नृ-चक्षस्' (मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाला) कहा गया है । यह स्वर्ग से सोम को पृथ्वी पर लाने के लिए विशेष प्रसिद्ध है ।]

१६७. अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थऽ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽ असि । गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥२ ॥

हे शकल ! आप अग्नि उत्पादन के आधार हैं । हे कुशाओ ! आप (अग्नि उत्पन्न करने में सक्षम होने के कारण) वीर्य स्वरूप हैं । अग्नि को उत्पन्न करने में सहायक, नीचे की शमी 'उर्वशी' के समान तथा ऊपर की शमी 'पुरूरवा' के समान सबका ध्यान आकर्षित करने वाले हैं । हे पात्र में विद्यमान घृत ! आप अग्नि को आयु प्रदान करने वाले अर्थात् देर तक प्रज्वलित रखने वाली हैं । हे अग्निदेव ! आपको प्रकट करने के लिए गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्दों के साथ मन्थन करते हैं ॥२ ॥

१६८. भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥३ ॥

एकाग्र मन वाले, सद्भावयुक्त एवं प्रमादरहित हे अग्निदेव ! हमारे अपराधों पर क्रुद्ध न होते हुए , आप हमारे यज्ञ को नष्ट न होने दें । यजमानों का भी नाश न होने दें । उनकी रक्षा करें । आज का दिन हम सबके लिए कल्याणप्रद तथा शुभ हो ॥३ ॥

१६९. अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽ ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपावा । स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥४ ॥

वेदज्ञाता ऋषियों के पुत्र स्वरूप हे ऋत्विग्गण ! प्रमादवश दिये गये शापों से यजमान के रक्षक ये आहवनीय अग्निदेव, यज्ञ कुण्ड में प्रतिष्ठित होकर हवन का सेवन करते हैं । हे अग्निदेव ! आप यजमानों के लिए कल्याणकर होते हुए इस श्रेष्ठ यज्ञ में हम लोगों द्वारा प्रदान की गई आहुतियों को, आलस्यरहित होकर (प्रज्वलित रहकर) ग्रहण करें तथा इन्द्रादि देवताओं तक पहुँचाएँ ॥४ ॥

१७०. आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वनऽ ओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽ अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥५ ॥

सर्वत्र गमन करने वाले, सर्वव्यापी, सभी को पौत्र के समान प्रिय, सर्वकार्य सम्पादन में सक्षम, बलशाली हे आज्य !हम आपको यज्ञ कार्य के लिए स्वीकार करते हैं । आप किसी से तिरस्कृत न होने वाले, किसी का तिरस्कार न करने वाले अग्नि आदि देवों के ओज स्वरूप, निन्दित कर्म से रक्षा करने वाले तथा प्रशंसा के योग्य हैं । अतएव हे शरीर-रक्षक आज्य ! सरल तथा श्रेष्ठ मार्ग पर ले चलने वाले आप यज्ञकर्म में हमें स्थापित करें ॥

१७१. अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियᳬसा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि । सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥६ ॥

हे व्रत पालन में अग्रगण्य अग्ने ! आप हमारे वर्तमान व्रत का पालन करने वाले हैं । व्रतपालक आपका जो शरीर है, वह हमसे एकीकृत हो । हे व्रतपते ! व्रत कार्यों के द्वारा अग्नि और यजमान समानरूप से आदर के पात्र हों । दीक्षा का पालन करने वाला सोम हमारी दीक्षा का अनुपालन करे, अर्थात् दीक्षित व्यक्ति और दीक्षा दाता में परस्पर सौहार्द्र बढ़े । तपस्या का अधिपति (गुरु) तथा तपश्चर्या करने वाला (शिष्य) दोनों समान भाव वाले हों ॥६ ॥

१७२. अᳬशुरᳬशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे । आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व ।आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय । एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥७ ॥

हे सोमदेव ! सोमवल्ली के सम्पूर्ण अवयव धनवान् इन्द्र के लिए प्रीतिकर होते हुए वृद्धि को प्राप्त करें । आपको पीने से इन्द्रदेव वृद्धि को प्राप्त करें । हे सोम ! आप भी इन्द्रदेव के लिए बढ़ें । आप प्रिय ऋत्विजों को धन प्रदायक-शक्ति से अभिवृद्धि को प्राप्त करें । हे सोमदेव ! आपका कल्याण हो । आपकी कृपा से हम सोम-सवन कार्य को शीघ्र ही समाप्त करें । आपकी अनुकम्पा से हम धन प्राप्त करें । सत्यवादी अग्निदेव के होता को सत्यफल की प्राप्ति हो । द्यावा-पृथिवी (में सन्निहित देवशक्तियों) को हम नमस्कार करते हैं ॥७ ॥

१७३. या ते अग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा । या ते अग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा। या ते अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जो आपका लौहमय, रजतमय तथा स्वर्णमय शरीर है, वह देवताओं की मनोकामना को पूर्ण करने वाला, असुरों को दुर्गम स्थानवाली गुफाओं में अवस्थित करने वाला, राक्षसों के कठोर शब्दों को नष्ट करने वाला तथा देवताओं के निमित्त आरोप-प्रत्यारोपपूर्वक उच्चारण किये गये कथन को पूर्णतया प्रभावहीन कर देने वाला है । इस प्रकार के महिमाशाली शरीरधारी आपके लिए यह आहुति प्रदान की जा रही है ॥८ ॥

१७४. तप्तायनी मेसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिरऽ आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिरऽ आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिरऽ आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । अनु त्वा देववीतये ॥

हे पृथ्वीदेवि ! आप 'तप्तायनी' ऊर्जा प्रदान करने वाली और 'वित्तायनी' धन प्रदान करने वाली हैं । दीनता से हमें बचाएँ । हे देवि ! (खनन की हुई मृत्तिका) 'नभ' नाम वाली अग्नि (अंतरिक्ष में संव्याप्त अग्नि) आपको जाने (आपकी ओर उन्मुख हो) । हे अंगिरस् ! (अंगो में संव्याप्त अग्नि) आप आयुष्य के रूप में इस स्थान पर पधारें । आप दृश्यमानरूप में पृथ्वी पर निवास करने वाले हैं । आपका जो अतिरस्कृत, अनिन्द्य यज्ञीयरूप है,

उसी रूप में हम आपको यहाँ स्थापित करते हैं। हे 'नभ' नाम से जाने, जाने वाले अग्निदेव ! आप जिस उद्देश्य से द्वितीय स्थान में हैं, उसी उद्देश्य से दूसरी बार पृथ्वी पर नष्ट न होने वाले यज्ञीयरूप में आपको स्थापित करते हैं। जिस कारण आप तृतीय स्थान में अवस्थित हैं, उस नष्ट न होने वाले यज्ञीयरूप में आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं। हे मृत्तिके ! देवताओं के निमित्त (उत्तर वेदिका के लिए) आपको स्थापित करते हैं ॥९ ॥

१७५. सि ꣳ ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥१० ॥

सिंहनी के समान शत्रुओं का नाश करने वाली हे उत्तर वेदिके ! आप अपनी सामर्थ्य से देवों का हित करने में समर्थ हैं। शत्रुओं का नाश करने वाली सिंहनी रूप, आप देवताओं के हित में पवित्रता को प्राप्त हों। आप शत्रु-विनाशिनी सिंहनी हैं; शुद्ध होकर देवों के पक्ष में कार्य करें तथा उन्हें प्रसन्न करें ॥१० ॥

१७६. इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतःपातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि॥

हे उत्तरवेदि ! अष्ट वसुओं के साथ इन्द्रदेव पूर्व दिशा से आपकी रक्षा करें। ग्यारह रुद्रों सहित वरुण देवता पश्चिम की ओर से आपकी रक्षा करें । पितरों सहित यम देवता दक्षिण दिशा से आपकी रक्षा करें । द्वादश आदित्यों सहित विश्वेदेवा उत्तर दिशा की ओर से आपकी रक्षा करें । आपकी रक्षा के लिए प्रोक्षण किये गये जल को हम वेदी के बाहर की ओर स्थापित करते हैं ॥११ ॥

१७७. सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिःस्वाहा सिꣳह्यस्या वह देवान् यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥१२ ॥

हे उत्तरवेदि ! आप सिंहनी रूप हैं। सिंहनी रूप आपको यह आहुति समर्पित है। आप सिंहनी रूप हैं। आप आदित्य को प्रसन्न करने वाली हैं। यह आहुति आप को दी जा रही है। आप सिंहनी रूप हैं। आप ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को हर्षित करने वाली हैं। इस रूप वाली आपको आहुति प्रदान की जाती है। आप सिंहनी रूप हैं। आप पुत्र, पौत्र तथा स्वर्णादि धन-धान्य को देने वाली हैं। यह आहुति आपके लिए है। आप सिंहनी रूप हैं। यजमान के उपकार के लिए देवताओं का आवाहन करने वाली हैं। प्राणिमात्र के कल्याण हेतु यह आहुति आपको समर्पित करते हैं ॥१२ ॥

१७८. ध्रुवोसि पृथिवीं दृ ꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृ ꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृ ꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥१३ ॥

हे मध्यम परिधि ! आप स्थिर हैं। अतः पृथ्वी को आप दृढ़ करें। हे दक्षिण परिधि ! आप अन्तरिक्ष में स्थिर यज्ञ में निवास करने वाली हैं, अतएव आप अन्तरिक्ष को पुष्ट करें । हे उत्तर परिधि ! आप द्युलोकरूप हैं, अतः द्युलोक को स्थिर करें । हे गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्य समूह ! आप अग्नि को पूर्ण करने वाले हैं ॥१३ ॥

१७९. युञ्जते मनऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥१४ ॥

महान्, सर्वज्ञ, वेदों का भली-भाँति अध्ययन करने वाले ऋत्विग्गण, सांसारिक विषयों से मन को हटाकर यज्ञ कार्य की पूर्णता के विषय में विचार करने लगते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के साक्षीभूत, प्रेरणा देने वाले, सर्वदा श्रेष्ठ स्तुतियों से प्रशंसित सवितादेवता को अनुकूल करने के लिए यह आहुति प्रदान की जाती है ॥१४ ॥

१८०. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा ॥१५॥

हे विष्णुदेव ! आप अपने सर्वव्यापी प्रथम पद पृथ्वी में, द्वितीय पद अन्तरिक्ष में तथा तृतीय पद द्युलोक में स्थापित करते हैं। भूलोक आदि इनके पद-रज में अन्तर्हित है। इन सर्वव्यापी विष्णुदेव को यह आहुति दी जाती है ॥१५॥

[यहाँ विष्णु द्वारा तीन पगों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाप लेने का आलंकारिक वर्णन है। विष्णु पोषण करने वाले हैं, यज्ञ भी पोषणकर्ता है, इसीलिए 'यज्ञो वै विष्णुः' कहा गया है। इस पोषक सत्ता के तीन चरण त्रि-आयामी सृष्टि, पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में संव्याप्त हैं।]

१८१. इरावती धेनुमती हि भूत ँ सूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णावेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥१६॥

हे पृथ्वी एवं द्युलोक ! आप, लोगों के लिए कृषि, सम्पत्ति से युक्त अनेकों गौओं को देने वाले, यवादि श्रेष्ठ अन्नों को देने वाले तथा विवेकवान् पुरुषों के लिए यज्ञ-साधनों को प्रदान करने वाले हैं। हे विष्णुदेव ! आपने द्युलोक एवं पृथ्वीलोक का विभाग करके उसे स्थिर कर दिया है। आपने पृथ्वीलोक को तेजस्वी किरणों से परिव्याप्त कर लिया है। आपके लिए हम यह आहुति समर्पित करते हैं ॥१६॥

१८२. देवश्रुतौ देवेष्वा घोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमा वदतं देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥१७॥

इस मन्त्र के साथ हविर्धान-शकट पर हव्य स्थापित करके ले जाने का विधान है—

हे देवश्रुत ! (दिव्य विद्याओं में निपुण) आप दोनों देव सभा में यह घोषित करें कि वे देवगण यज्ञ को पूर्व दिशा (पूर्व निर्धारित सनातन अनुशासन) की ओर अग्रसर करें, यज्ञ को ऊर्ध्वगति प्रदान करें, नीचे न गिरने दें। आप दोनों देवस्थान में स्थित गोशाला में कहें कि वे देवगण जब तक आयु है, तब-तक यज्ञकर्ता को एवं प्रजा को निन्दित न होने दें। पृथ्वी के इस रहने योग्य, सेवनीय प्रदेश (यज्ञ क्षेत्र) में आनन्दपूर्वक वास करें ॥१७॥

[देवस्थल स्थित गोशाला का व्यापक अर्थ है—देवशक्तियों द्वारा स्थापित पोषण प्रदायक तंत्र।]

१८३. विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजा ँ सि। यो अस्कभायदुत्तर ँ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥१८॥

जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को बनाने वाले हैं, जो देवताओं के निवास स्थान द्युलोक को स्थिर कर देते हैं, जो तीन विशाल पद-क्रमों से तीनों लोकों में विचरण करने वाले हैं (अथवा संसार में अग्नि, वायु तथा सूर्यरूप में विद्यमान रहने वाले हैं) —ऐसे विष्णुदेव के वीरतापूर्ण कार्यों का हम वर्णन करते हैं। (हे काष्ठ ! इस शकट के अभिमानी देवता) विष्णुदेव की प्रसन्नता के लिए हम तुम्हें स्थापित करते हैं ॥१८॥

१८४. दिवो वा विष्णऽ उत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽ उरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥१९॥

हे विष्णुदेव ! द्युलोक या पृथ्वी-लोक से अथवा अत्यधिक विस्तृत अन्तरिक्षलोक से, उपलब्ध किये गये धन से, आप अपने दोनों हाथों को परिपूर्ण करें। इसके बाद दाहिने हाथ से तथा बायें हाथ से बहुमूल्य एवं प्रचुर ऐश्वर्य हमें प्रदान करें। (हे काष्ठ !) विष्णुदेव की प्रसन्नता के लिए हम तुम्हें स्थापित करते हैं ॥१९॥

१८५. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२०॥

सिंह के सदृश भयानक (मत्स्यादि अवतारों द्वारा) पृथ्वी पर विचरण करने वाले तथा पर्वतवासी-सर्वव्यापी भगवान् विष्णु अपने पौरुष के कारण स्तुत्य हैं । जिन विष्णु के तीन विशाल कदमों (पृथ्वी, द्युलोक, अन्तरिक्ष) के आश्रय में सम्पूर्ण लोक निवास करते हैं, उन विष्णुदेव की यहाँ स्तुति की जा रही है ॥२० ॥

१८६. विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥२१ ॥

इस मंत्र के साथ मण्डप आच्छादन का नियम है—

कुश के समूह को स्थान देने वाले हे आधार ! आप (विष्णुरूप मण्डप के) ललाट हैं । हे मस्तक के दोनों भाग ! आप विष्णुरूप मण्डप के काष्ठों के संधिस्थल हैं । हे सूत्र ! विष्णुरूप आप लोकों को व्यापक बनाने वाले हैं । हे रज्जु ग्रंथि ! विष्णुरूप आप लोकों को स्थिर करने वाली हैं । हे हविर्धान मण्डप ! आप सर्वव्यापक विष्णु से संबन्धित हैं । अतएव हम विष्णुदेव की प्रसन्नता के लिए आपका स्पर्श करते हैं ॥२१ ॥

१८७. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नार्यसी दमहꣳरक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि । बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥२२ ॥

हे अभ्रि देवता ! हम सवितादेवता के विद्यमान होने पर भी अश्विनीदेवों की बाहुओं से तथा पूषा देवता के हाथों से आपको स्वीकार करते हैं । आप हमारी सहायक हैं । यूप गाड़ने के लिए खनन करते हुए हम यज्ञ के विघ्नकारक राक्षसों के गले को काटते हैं । हे उपरव (नामक गर्त) * !आप महान् हैं, आप अधिक ध्वनि करने वाले हैं । अतएव आप इन्द्र को लक्ष्यकर उनके निमित्त स्तोत्रों का पाठ करें ॥२२ ॥

[* सोमयाग के हविर्धान मण्डप में एक विशेष प्रकार का बनाया जाने वाला गड्ढा, जिसे ऊपर तक ईंटों से चिनाई करके ढँक दिया जाता है, केवल विदिशाओं में चार छिद्र होते हैं ।]

१८८. रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि ॥२३ ॥

इस मंत्र के साथ यज्ञस्थल की अनावश्यक मृत्तिका खोदकर बाहर फेंकने का विधान है—

राक्षसों का विनाश करने वाली, हिंसा के गुप्त प्रयोगों को नष्ट करनेवाली वैष्णवी (पोषण देने में समर्थ) बृहद् वेदवाणी बोलें । हमारे अनिष्ट के लिए अमात्य (परामर्श दाता) आदि द्वारा गुप्तरूप से स्थापित गूढ़-घातक प्रयोग को हम उखाड़ कर बाहर फेंकते हैं । जिस अनिष्टकारी गुप्त प्रयोग को हमारे समान या असमान (कम या अधिक सामर्थ्यवान्) ने छिपा कर रखा हो, उसे हम उखाड़ कर दूर फेंकते हैं । जो अनिष्टकारी प्रयोग छद्मपूर्वक हमारे बन्धुओं या अबन्धुओं ने स्थापित किये हों, उन्हें हम उखाड़ कर दूर हटाते हैं । जिस गुप्त प्रयोग को हमारे सजातीय अथवा विजातीय लोगों ने अनिष्ट के लिए स्थापित किया हो, उसे हम खोदकर दूर हटाते हैं । इस प्रकार की गयी घातक गुप्त क्रियाओं को हम निर्मूल कर दें ॥२३ ॥

१८९. स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥२४

यज्ञस्थल पर बनाये गये अवट (गड्ढों) को लक्ष्य करके प्रकृति के विशाल गर्त की प्रतिष्ठा के समय इस मंत्र का प्रयोग होता है । प्रकारान्तर से सृष्टि के विशाल गर्त को लक्ष्य करके यह मंत्र कहा गया है —

हे गर्त ! आप प्रकाशवान् होने से (अंधकाररूप) शत्रुओं को नष्ट करने वाले हैं । आप यज्ञ के पूरे सत्र तक रहने वाले हैं और आप अभिमानियों के विनाशक हैं । आप श्रेष्ठ लोगों में सुप्रतिष्ठित होने के कारण राक्षसों को नष्ट करने वाले हैं । आप सबको प्रकाशित करने वाले हैं तथा अमित्रों के विनाशक हैं ॥२४ ॥

१९०. रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोवनयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां वलगहनाऽ उप दधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥२५ ॥

राक्षसों एवं अभिचार-साधनों का विनाश करने वाले विष्णुदेवता से संबन्धित गर्त का हम प्रोक्षण करते हैं। राक्षस एवं अभिचार-साधनों के विनाशक विष्णुदेवता से अधिष्ठित गर्त को हम बचे हुए जल से छिड़ककर कुश-आस्तरण (चटाई) को बिछाते हैं।राक्षसों एवं अभिचार-साधनों के हन्ता विष्णुदेवता से युक्त गड्ढे को कुशास्तरण से ढकते हैं। राक्षसों एवं उनके अभिचार के कार्यों का नाश करने वाले विष्णुदेवता से सम्बन्धित दोनों गड्ढों के ऊपर एक-एक फलक (पट्टा) रखते हैं। राक्षसों एवं उनके अभिचार मंत्रों का विनाश करने वाले, विष्णु से सम्बन्धित गड्ढे को चारों ओर से मिट्टी से ढकते हैं। हे पत्थरो ! आप यज्ञरक्षक विष्णु के साथ जुड़ जाएँ ॥

१९१. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽ अपिकृन्तामि। यवोसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥२६ ॥

हे अभ्रि* (में अधिष्ठित देवसत्ता) ! हम सविता से प्रेरित अश्विनीदेवों की भुजाओं से तथा पूषादेव के हाथों से आपको स्वीकार करते हैं। आप हमारे अनुकूल हों। गड्ढा खोदने के रूप में हम अब राक्षसों की गर्दन काटते हैं। उनका विनाश करते हैं। हे यव ! (पृथक् करने के स्वभाव से युक्त) दुर्भाग्य से तथा शत्रुओं के समूह से आप हमें अलग करें। हे उदुम्बर वृक्ष की शाखे ! (अग्रभाग) द्युलोक को हर्षित करने के लिए, (मध्यभाग) अन्तरिक्षलोक को प्रसन्न करने के लिए तथा (मूलभाग) पृथिवी को प्रसन्न करने के लिए हम आपका प्रोक्षण करते हैं। हे यजुष् ! इस जल से पितरों का निवास स्थान शुद्ध हो। हे कुश ! आप पितरों के आवास स्थान हैं ॥२६ ॥

[* मिट्टी में गड्ढे खोदने के उपयोग में लाया जाने वाला काष्ठ उपकरण ।]

१९२. उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥२७ ॥

हे उदुम्बर (गूलर की लकड़ी) शाखे ! आप द्युलोक को ऊँचा उठा दें तथा अन्तरिक्ष को संव्याप्त करें। पृथ्वी को भी स्थिर करें। हे उदुम्बर शाखे ! दीप्तिमान् मरुत् और वायु तथा मित्रावरुण आपको स्थिर करने के लिए गड्ढे में डालते हैं। हे शाखे ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों द्वारा स्तुत्य आपके चारों ओर हम मिट्टी डालते हैं। हे उदुम्बर शाखे ! हम आपको स्थिर करते हैं। आप भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, राय (धन) तथा पुत्रादि को सुस्थिर करें ॥२७ ।

१९३. ध्रुवासि ध्रुवोयं यजमानोस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥२८ ॥

हे उदुम्बर शाखे ! आप स्थिर हों। यजमान भी अपने घर में पुत्र तथा पशुओं से पूर्ण होता हुआ स्थिर हो। इस घृत आहुति से आप द्युलोक और पृथ्वी को संव्याप्त करें। हे तृण निर्मित छप्पर ! आप इन्द्र से जुड़ गये हैं, अतः आप सभी लोगों के छाया स्वरूप हैं ॥२८ ॥

१९४. परि त्वा गिर्वणो गिरऽ इमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ वृद्ध पुरुष, तीनों कालों में सवन करने वाले यजमान तथा स्तोत्ररूपी शस्त्र वाली स्तुतियाँ आपको सभी ओर से प्राप्त हों। आप हमारी सेवा से प्रसन्न हों ॥२९ ॥

१९५. इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोसि । ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥३० ॥

हे रज्जु ! आप इन्द्रदेव का सम्बन्ध जोड़ने के सीवन रूप हैं । हे ग्रन्थि ! आप इन्द्रदेव से संयुक्त होकर स्थिर हों । हे सदो (गृह या यज्ञशाला) मण्डप ! अब इन्द्र आपके अभिमानी देवता हैं । हे आग्नीध्र ! आप इन्द्रदेव से सम्बन्धित हो गये हैं । सभी देवताओं से सम्बन्धित हो जाएँ ॥३० ॥

१९६. विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः । श्वात्रोसि प्रचेतास्तुथोसि विश्ववेदाः ॥

हे आग्नीध्रीय धिष्ण्य (प्रधान वेदिके) ! आप में प्रज्वलित हुई अग्नि अन्य वेदियों पर पहुँचाई जाती है । अत: वह व्यापक अग्नि विविध रूपों में जानी जाती है । हे होतृधिष्ण्य ! आप में प्रकट हुई अग्नि यज्ञ को वहन करती है तथा देवों के लिए प्रदान की गयी हवि को धारण करने से हव्यवाहन है । हे मित्रावरुणधिष्ण्य ! आपमें प्रकट हुई अग्नि सब का मित्र होने से 'श्वात्र' एवं विकारों का शमन करने से 'वरुण' है । हे ब्राह्मणच्छंसिधिष्ण्य ! आप ब्रह्मस्वरूप और सभी को जानने वाले हैं ॥३१ ॥

१९७. उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशानुः परिषद्योसि पवमानो नभोसि प्रतक्वा मृष्टोसि हव्यसूदन ऽ ऋतधामसि स्वर्ज्योतिः ॥३२ ॥

हे पोतृधिष्ण्य ! आप कामना के योग्य तथा नूतन ऋचाओं का दर्शन करने वाले हैं । हे नेष्टृधिष्ण्य ! आप पापनाशक और पोषणकर्ता हैं । हे अच्छावाक्धिष्ण्य ! आप अन्न की कामना करने वाले तथा हवियुक्त हैं । हे होत्रादिधिष्ण्य ! (दक्षिण दिशा में स्थित) आप शुद्ध और पवित्र करने वाले हैं । हे उत्तर वेदी में विद्यमान आहवनीय ! आप अनेक आहुतियों को धारण करने के कारण सम्राट् तथा व्रतधारी-कृश यजमान के पास जाने के कारण आप कृशानु हैं । हे बहिष्पवमान देश ! आप ऋत्विजों से घिरे हुए तथा पावन हैं । हे चात्वाल ! खोदते समय ऊपर उठाये जाने के कारण आप आकाश रूप तथा प्रदक्षिणा के निमित्त ऋत्विजों द्वारा गमन करने के कारण आप 'प्रतक्वा' **(प्रदक्षिणं तक्नन्ति गच्छन्ति ऋत्विजो यत्र स प्रतक्वा)** हैं । हे शामित्र ! आप शुद्ध तथा हवि को पकाने वाले हैं । हे उदुम्बर शाखे ! आप सामगान के स्थान तथा स्वर्ग में प्रकाशित सूर्य ज्योति हैं ॥३२ ॥

१९८. समुद्रोसि विश्वव्यचाऽ अजोस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेस्मिन्पथि देवयाने भूयात् ॥३३ ॥

(हे ब्रह्मासन !) आप समुद्र के समान अगाध ज्ञानवान्, सत्-असत् कार्यों के ज्ञाता हैं । (हे प्राचीन यज्ञशाला के द्वार की लकड़ी के अग्रभाग !) आप यज्ञस्थल पर जाने वाले तथा सम्पूर्ण प्राणियों को एक पैर के नीचे अनुशासित करने वाले हैं । (हे प्राजहित* !) आप नये स्थान पर रखे जाने पर भी नष्ट न होने वाले तथा सर्वप्रथम स्थापित होने के कारण (सर्वज्ञतया) मूल अग्नि हैं । (हे सदो मण्डप !) आप वाणीरूप हैं, इन्द्रदेवता से संयुक्त हैं तथा उनके गृह के रूप में हैं । (हे सदोमण्डप द्वार की दोनों शाखाओ !) आप यज्ञद्वार पर स्थापित हैं । बार-बार आने-जाने से दु:खी न हों । (हे मार्गरक्षक सूर्य !) मार्ग के मध्य में विद्यमान आप मेरी अभिवृद्धि करें । देव-प्राप्ति मार्ग या (यज्ञ-पथ) पर चलते हुए हम कल्याण को प्राप्त करें ॥३३ ॥

[* यज्ञशाला में स्थित 'पत्नीशाला' के पश्चिमी भाग में विद्यमान पुरातन गार्हपत्याग्नि को प्राजहित कहा जाता है — मही० भा०]

१९९. मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरास्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोस्तु मा मा हिꣳसिष्ट ॥३४ ॥

हे ऋत्विज् ! आपकी, हम याजकों पर मङ्गलमयी दृष्टि हो । हे अग्नियो ! आप नाम-रहित तथा धिष्ण्य नाम-सहित स्तुतियों के प्रति समान भाव रखें । हे अग्नियो ! आप भयंकर सेना से हमारी रक्षा करें । हे अग्नियो ! हमें धन-धान्य से पूर्ण कर दें तथा हमारी रक्षा करें । हम आपको नमस्कार करते हैं । आप हमारी हिंसा न करें, अर्थात् हमारे यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न कराएँ ॥३४ ॥

२००. ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाᳬं समित्। त्वᳬं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्यान्यकृतेभ्यऽ उरु यन्तासि वरूथᳬं स्वाहा जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥३५ ॥

हे आज्य ! आप अनेक आहुतियों से युक्त होने के कारण विश्वरूप, प्रकाश से युक्त तथा सभी देवताओं की समिधा के समान हैं । आप प्रचरणी नामक जुहू में रखे हुए सोम से शत्रुओं का नाश करने वाले हैं । आप हमारे विरोधियों द्वारा किये गये अन्य असत् कार्यों के विनाशक हैं । आप शत्रुओं से सुरक्षित स्थान पर हमें ले जाने वाले हैं । आप ही हमारे बल हैं । सोम को ले आने के लिए यह आहुति आपको दी जा रही है । हे सोम ! प्रसन्न होते हुए आप आज्य का सेवन करें— यह आहुति आपको समर्पित है ॥३५ ॥

२०१. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥३६ ॥

दिव्य गुणों से युक्त हे अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण मार्गों (ज्ञान) को जानते हुए हम याजकों को यज्ञ फल प्राप्त करने के लिए सन्मार्ग पर ले चलें । हमको कुटिल आचरण करने वाले शत्रुओं तथा पापों से मुक्त करें । हम आपके लिए स्तोत्र एवं नमस्कारों का विधान करते हैं ॥३६ ॥

२०२. अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽ एतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयᳬं शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥३७ ॥

यह अग्नि हम लोगों को श्रेष्ठ धन प्रदान करे । यह अग्नि शत्रुओं का विनाश करती हुई हमारे समक्ष आए । यह अग्नि, अन्न की कामना करने वाले यजमानों को, शत्रुओं से प्राप्त धन प्रदान करती हुई विजयी हो । यह अग्नि, शत्रुओं को प्रसन्नतापूर्वक जीते तथा हमारे द्वारा समर्पित आहुतियों को ग्रहण करे ॥३७ ॥

२०३. उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा॥

हे सर्वव्यापी आहवनीय अग्निदेव ! आप अपने पराक्रम से शत्रुओं को परास्त करें । हमारे निवास के लिए हमें प्रचुर क्षमता से सम्पन्न करें । हे घृताहुति से प्रदीप्त अग्निदेव ! यज्ञ में आप घृत का सेवन करें तथा यजमान की अत्यधिक वृद्धि करें ॥३८ ॥

२०४. देव सवितरेष ते सोमस्तᳬं रक्षस्व मा त्वा दभन्। एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२ उपागाऽ इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥३९ ॥

हे सवितादेवता ! यह सोम आपको प्रदान किया जा रहा है । आप इसकी रक्षा करें । हे सोम की रक्षा करने वाले ! आपको राक्षस पीड़ित न करें । हे सोमदेव ! आप देवत्व को प्राप्त कर देवताओं से अधिष्ठित हो गये हैं । हम और हमसे सम्बद्ध सभी व्यक्ति, पशु आदि धनों को प्राप्त हों । मण्डप से निकलकर इस सोम आहुति के द्वारा हम वरुणदेवता के पाश से मुक्त हो गये हैं ॥३९ ॥

२०५. अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियᳬं सा मयि। यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमᳬं स्तानु तपस्तपस्पतिः ॥४० ॥

इस मंत्र द्वारा आहवनीय अग्नि में समिधाधान किया जाता है —

हे अग्निदेव ! आप व्रतपालक हैं । अतएव आप हमारे व्रत की रक्षा करें । व्रतकाल में हमारा शरीर आप से संयुक्त हो जाए तथा आपका जो शरीर है, वह हमसे एकीकृत हो जाए । (अर्थात् परस्पर विभेद न रहे, तादात्म्य स्थापित हो जाए ।) हे व्रतपालक, अग्रगण्य अग्निदेव ! हमारे श्रेष्ठ कर्मों का यथोचित सम्पादन करें । दीक्षापालक अग्नि ने हमारी दीक्षा को स्वीकार कर लिया है । तप-पालक अग्नि हमारी तपस्या को स्वीकार करें ॥४० ॥

२०६. उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा॥

हे आहवनीय (विष्णुरूप विश्वव्यापी) अग्नि ! शत्रुओं के प्रति आप हमें पौरुष-युक्त करें । हमारे आवास को आप विशाल कर दें । हे घृत से प्रज्वलित अग्नि ! आपकी ज्वालाओं का मूलकारण घृत ही है । हे अग्नि ! आप यजमानों को अपार वैभव प्रदान करें । यह आहुति आपको भली-भाँति समर्पित की जाती है ॥४१ ॥

२०७. अत्यन्याँ२ अगां नान्याँ२ उपागामर्वाक् त्वा परेभ्योविदं परोवरेभ्यः । तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वादेवयज्यायैजुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥४२ ॥

हे यूप वृक्ष ! जो यूप निर्माण में उपयोगी हैं, हम उन वृक्षों को ही प्राप्त करें । यूप कार्य में अनुपयोगी वृक्षों को हम प्राप्त न करें । दूर स्थित और पास में स्थित वृक्षों में हमने आपको निकट ही प्राप्त कर लिया है । हे वनपालक, दीप्यमान वृक्ष ! देवताओं के यज्ञकार्य के लिए हम आपकी सेवा करते हैं । देव कार्य के लिए देवता भी आपका सेवन करें । हे यूप वृक्ष ! हम यज्ञ के लिए घी छिड़कते हैं । हे ओषधे ! कुल्हाड़े से इसकी रक्षा करें । हे परशु ! इस यूप को आप हिंसित न करें ॥४२ ॥

२०८. द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या सम्भव । अयꣳ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥४३ ॥

हे यूप वृक्ष ! आप द्युलोक को हिंसित न करें, अन्तरिक्ष को भी हिंसित न करें, अपितु आप पृथ्वी के साथ मिल जाएँ (अर्थात् कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ें ।) हे कटे हुए पेड़ ! अति तेज यह कुल्हाड़ा आपके सौभाग्य के लिए है । आप यज्ञ के लिए यूप रूप हो जाएँ , अर्थात् यज्ञ में यूप के रूप में आपका प्रयोग हो । हे देव वनस्पति ! अभी तक आप मात्र काष्ठ थे । अब आप यज्ञ-यूप के रूप में प्रयुक्त होने के कारण अनेकों अंकुरों से युक्त होते हुए विशिष्ट जीवन को प्राप्त करें । हम याजकगण भी पुत्र-पौत्रादि से वृक्ष की शाखाओं के रूप में वंश वृद्धि को प्राप्त करें ॥४३ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— गोतम १-१३ । श्यावाश्व १४ । मेधातिथि १५ । वसिष्ठ १६-१७ । दीर्घतमा औतथ्य १८-२८ । मधुच्छन्दा २९-३४ । मधुच्छन्दा, क्रतु भार्गव ३५ । अगस्त्य ३६-४३ ।

देवता— विष्णु १, १५-१६,१८-२१, २५, ३८, ४१ । शकल, दर्भतरुण, लिंगोक्त, अग्नि २ । निर्मथ्य-आहवनीय अग्नि ३-४ । वायु, आज्य ५ । अग्नि ६, ८, ३६-३७, ४० । सोम, लिंगोक्त ७ । पृथिवी, अग्नि, लिंगोक्त९ । वेदिका १० । उत्तरवेदिका, आप: (जल) ११ । वाक्, स्रुक् १२ । परिधि (मेखला), गुल्गुल्वादि संभारा १३ । सविता १४ । अक्षधुरी, हविर्धान १७ ८ सविता, अभ्रि, राक्षसघाती, उपरव २२ । उपरव, लिंगोक्त २३ । उपरव २४ । सविता, अभ्रि, यव, औदुम्बर, पितर २६ । औदुम्बरी २७ । औदुम्बरी, द्यावा-पृथिवी, इन्द्र २८ । इन्द्र २९ । इन्द्र, विश्वेदेवा ३० । धिष्ण्य-अग्नि ३१ । धिष्ण्य अग्नि, आहवनीय, बहिष्पवमान देश, चात्वाल, शामित्र, औदुम्बरी ३२ । ब्रह्मासन, शालाद्वार, प्राजहित, सद, द्वार, सूर्य ३३ । ऋत्विग्गण, विष्णु ३४ । विश्वेदेवा , सोम, अप्तु ३५ । सविता, सोम, लिंगोक्त ३९ । वनस्पति, कुशतरुण, परशु ४२ । वनस्पति ४३ ।

छन्द— स्वराट् ब्राह्मी बृहती १, ३४ । आर्षी गायत्री, आर्ची त्रिष्टुप् २ । आर्षी पंक्ति ३ । आर्षी त्रिष्टुप् ४ । आर्षी उष्णिक्, भुरिक् आर्षी पंक्ति ५ । विराट् ब्राह्मी पंक्ति ६ । आर्षी बृहती, आर्षी जगती ७ । विराट् आर्षी बृहती, निचृत् आर्षी बृहती ८ । भुरिक् आर्षी गायत्री, भुरिक् ब्राह्मी बृहती, निचृत् ब्राह्मी जगती, याजुषी अनुष्टुप् ९ । ब्राह्मी उष्णिक् १० । निचृत् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ११, ४० । भुरिक् ब्राह्मी पंक्ति १२ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् १३, २४, ३८, ४१ । स्वराट् आर्षी जगती १४ । भुरिक् आर्षी गायत्री १५ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् १६, १८ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् १७, ३२ । निचृत् आर्षी जगती १९ । विराट् आर्ची त्रिष्टुप् २० । भुरिक् आर्ची पंक्ति २१ । साम्नी पंक्ति, भुरिक् आर्षी बृहती २२ । याजुषी बृहती, भुरिक् अष्टि, स्वराट् ब्राह्मी उष्णिक् २३ । ब्राह्मी बृहती, आर्षी पंक्ति २५ । निचृत् आर्षी पंक्ति, निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् २६ । ब्राह्मी जगती २७ । आर्षी जगती २८ । अनुष्टुप् २९ । आर्ची उष्णिक् ३० । विराट् आर्षी अनुष्टुप् ३१ । ब्राह्मी पंक्ति ३३ । अतिजगती ३५ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ३६ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् ३७ । साम्नी बृहती, निचृत् आर्षी पंक्ति ३९ । भुरिक् अत्यष्टि ४२ । ब्राह्मी त्रिष्टुप् ४३ ।

॥ इति पञ्चमोऽध्याय: ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

२०९. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे नार्यसी दमह ꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि। यवोसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥१॥

यह कण्डिका अभ्रि द्वारा अग्नि का अवट बनाने, यूप का सिंचन करने, कुश स्थापित करने के क्रम में प्रयुक्त होती है—.

हे यज्ञसाधनो ! आप नेतृत्व की क्षमता से सम्पन्न हैं । हम आपको सविता द्वारा प्रेरित अश्विनी कुमारों (आरोग्य दाता) की बाहों एवं पूषा (पोषणकर्ता) के हाथों से ग्रहण करते हैं । हम आपके माध्यम से राक्षसी शक्तियों की ग्रीवा (मर्मस्थल) पर प्रहार करते हैं । आप हमारे शत्रुओं को दूर हटाएँ । हम द्युलोक-अंतरिक्ष एवं पृथ्वी के हित की दृष्टि से आपको शुद्ध करते हैं । आप पिता की तरह पालक एवं प्रजाओं के आश्रय हैं ॥१॥

२१०. अग्रेणीरसि स्वावेशऽ उन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्षऽ आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳ हीः ॥२॥

(हे यज्ञसाधनो ! यज्ञों में) प्रथम प्रयुक्त किये जाने वाले आप, अपना महान् दायित्व समझकर समाज का नेतृत्व करने वाले सभी लोगों को सन्मार्ग पर चलाएँ । जगत् के अधिष्ठाता सविता देवता आपको मधुर एवं श्रेष्ठ फलदायक ओषधीय गुणों से विभूषित करें । आप अपनी सद्भावनाओं से द्युलोक का स्पर्श करें, सद्विचारों से अन्तरिक्ष को भर दें तथा सत्कर्मों से पृथ्वी को सुदृढ़ बनाएँ ॥२॥

२११. या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽ अयासः । अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमव भारि भूरि। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳ ह क्षत्रं दृꣳ हायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳ ह ॥३॥

(हे यज्ञीय संसाधनो !) जो सूर्य-रश्मियों से प्रकाशित है, सर्वव्यापक सम्माननीय भगवान् विष्णु का जो परम धाम है, हम आपके ऐसे उत्तम स्थान में पहुँचने की इच्छा करते हैं । हम आपको ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आदि वर्णों में यथा-योग्य उचित रीति से बल - वैभव का वितरण करने वाला मानते हैं । अतः आप ब्रह्मनिष्ठों को सद्ज्ञान की सम्पदा, क्षत्रियों को पौरुष-पराक्रम एवं वैश्यों को धन-ऐश्वर्य प्रदान कर, प्रजा की आयु और उसकी संख्या में वृद्धि करें ॥३॥

२१२. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥४॥

हे याजको ! सर्वव्यापक भगवान् विष्णु के सृष्टि संचालन सम्बन्धी कार्यों को (प्रजनन, पोषण एवं परिवर्तन की प्रक्रिया को) ध्यान से देखें । इसमें अनेकानेक नियमों-अनुशासनों का दर्शन किया जा सकता है । आत्मा के योग्य मित्र उस परम सत्ता के अनुकूल बनकर रहें (अर्थात् ईश्वरीय अनुशासनों का पालन करें) ॥४॥

२१३. तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥५॥

ज्ञानीजन विश्वव्यापी भगवान् विष्णु के सर्वोच्च पद को, द्युलोक में परिव्याप्त दिव्यप्रकाश की भाँति देखते हैं (अर्थात् उस परमात्मा की व्यापकता का अनुभव करते हैं ।) ॥५॥

२१४. परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमान ऽ- रायो मनुष्याणाम्। दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्यॉंल्लोकऽ आरण्यस्ते पशुः ॥६ ॥

यहाँ मंत्र से स्थापित यूप में कुश से बनी रस्सी बाँधने का विधान है —

हे सर्वव्यापी (यज्ञदेव !) ज्ञानीजनों का समूह आपको सूर्य के दिव्य प्रकाश की भाँति, कण-कण में समाया हुआ अनुभव करता है । समस्त पृथ्वी, वन एवं पशुओं में आपका ही विस्तार है । आप याजकों को (सत्कर्मरत श्रेष्ठ मानवों को) चारों ओर से भरपूर वैभव प्रदान करें ॥६ ॥

२१५. उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्। देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥७ ॥

हे त्वष्टादेव ! आप समीप में आए हुओं की रक्षा करने वाले हैं । श्रेष्ठ गुणों से युक्त प्रजा, दिव्य गुणसम्पन्न, तेजस्वी, समर्थ विद्वानों को प्राप्त हों । आप साधनों का सदुपयोग करें । ये हव्य पदार्थ आपको सन्तुष्ट करें ॥७ ॥

२१६. रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥८ ॥

विद्वान् पुरुषों (यज्ञाचार्यों) द्वारा श्रेष्ठ यज्ञ में श्रेष्ठ हवि (दुग्ध एवं घृत के रूप में) प्रदान करने के लिए जिन पशुओं को बाँधा गया था, वे दुधारू पशु मुक्त किये जाते हैं । वे दुग्धादि ऐश्वर्य प्रदान करते हुए आनन्द से रहें । (इस यज्ञीय प्रक्रिया से) मनुष्य समर्थ बनें ॥८ ॥

२१७. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योनु सखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥९ ॥

(हे यज्ञ के साधनो !) सवितादेव की प्रेरणा से अश्विनीकुमारों और पूषा के हाथों से हम आपको ग्रहण करते हैं, ओषधियों एवं जल की सहायता से शुद्ध करते हैं तथा सोम और अग्नि की तुष्टि के लिए यज्ञ जैसे श्रेष्ठ कार्य में नियोजित करते हैं । इस हेतु आपके माता-पिता, भाई और मित्र अनुमति प्रदान करें ॥९ ॥

२१८. अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः। सन्ते प्राणो वातेन गच्छताऽ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१० ॥

हे पशु (यज्ञ से जुड़े जीव) ! आप जल की रक्षा करने वाले हैं । दिव्य गुणों वाले जल एवं हविष्यान्नों से सदैव युक्त रहें । देवताओं के आशीर्वाद से आपका जीवन पूर्णतया यज्ञकार्यों में नियोजित रहे । प्राण, शुद्ध वायु के साथ सन्नद्ध रहे तथा आप यज्ञीय अनुशासनों के पालनकर्त्ता बनें ॥१० ॥

२१९. घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाऽरेवति यजमाने प्रियं धाऽ आ विश। उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव।वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥११ ॥

हे (यज्ञ साधनो) स्वरुशासः* ! आप घृतादि पदार्थ देने वाले पशुओं (गौओं) की रक्षा करें । अन्तरिक्ष से सबकी रक्षा करने वाले दिव्य प्राण की भाँति, ऐश्वर्यशाली याजक के शरीर के लिए अनुकूल तथा प्रिय बनकर रहते हुए, उसकी रक्षा करें । (हे याजक !) सर्व सुख प्रदायक इस महान् यज्ञ में श्रेष्ठ हविष्यान्नों से आहुतियाँ प्रदान करें। देवों के सम्मान में समर्पण करते हुए यज्ञीय अनुशासनों के पालनकर्त्ता बनें ॥११ ॥

[* स्वरु = यज्ञस्तम्भ या यूप और शास = तलवार या चाकू ।]

२२०. माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽ आतानानर्वा प्रेहि । घृतस्य कुल्याऽ उप ऋतस्य पथ्या ऽअनु ॥१२ ॥

सत्कर्मों से सुख का विस्तार करने वाले हे यज्ञ के साधनभूत ! (स्वरु आदि उपकरण) सर्प आदि हिंसक प्राणियों की भाँति आप क्रोधी और प्राणनाशक न हों । हे याजक ! निर्बाधरूप से प्रवाहित जलधारा की भाँति आप शाश्वत सत्य के मार्ग पर चलें, हम आपका सम्मान करते हैं ॥१२ ॥

२२१. देवीरापः शुद्धा वोढ्वᳬसुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म॥

जल जैसे सरस दिव्य गुण से सम्पन्न, स्वाभाविक रूप से शुद्ध हे देवियो ! आप देवताओं की तृप्ति के लिए, उत्तम पात्र में स्थित हविष्यान्न को ग्रहण करें । देवताओं को आहुतियाँ देते हुए हम भी इस देव-कार्य में संलग्न होते हैं ॥१३ ॥

२२२. वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥१४ ॥

हे याजक ! हम आपके प्राण, वाणी, दृष्टि, श्रोत्र, नाभि, जननेन्द्रिय, गुदा आदि को शुद्ध करते हैं । इस प्रकार आपके चरित्र का शोधन कर उसे यज्ञानुकूल बनाते हैं ॥१४ ॥

२२३. मनस्त ऽ आप्यायतां वाक्त ऽ आप्यायतां प्राणस्तऽ आप्यायतां चक्षुस्त ऽ आप्यायताᳬश्रोत्रं तऽ आप्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त ऽ आप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬ सीः ॥१५ ॥

हे याजक ! आपके मन, वाणी और प्राण उत्कर्ष को प्राप्त करें । आपके नेत्र एवं कर्ण कल्याणकारी शक्तियों से संयुक्त रहें । (यज्ञीय पशुओं के प्रति) आपकी क्रूरता शांत हो तथा जो स्वभाव की स्थिरता है, वह दृढ़ता को प्राप्त हो । आपके समस्त आचरण सदैव सुखदायी हों । हे ओषधे ! इनकी रक्षा करें और इन्हें नष्ट होने से बचाएँ ॥

२२४. रक्षसां भागोसि निरस्तᳬ रक्ष ऽइदमहᳬ रक्षोभि तिष्ठामीदमहᳬ रक्षोव बाध इदमहᳬ रक्षोधमं तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥१६ ॥

हे परित्यक्त तृण ! तुम (दुष्टकर्मा) विनाशक तत्त्वों के सहभागी हो । इसलिए तुम्हें (यज्ञ से) दूर करते हैं । दुष्ट स्वभाव वाले तुम्हें तिरस्कृत करते हुए प्रतिबन्धित कर, पतन-गर्त में पहुँचाते हैं । व्यवहार के सूक्ष्मतम पक्ष को जानने वाले, हे याजक ! आपके द्वारा दिये जाने वाले अर्घ्य के जल से पृथ्वी और द्युलोक परिपूर्ण हों । आपके द्वारा समर्पित घृत आदि हविष्यान्न अग्नि को प्राप्त हों तथा वायुभूत होकर, आकाश में भर जाएँ ॥१६ ॥

२२५. इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥१७ ॥

हे जलदेवता ! आप जिस प्रकार शरीरस्थ मलों को दूर करते हैं, उसी प्रकार याजक के, जो भी ईर्ष्या, द्वेष, असत्यभाषण, मिथ्यादोषारोपण आदि निन्दनीय कर्म हैं, (आप) उन सब दोषों को दूर करें । जल एवं वायु अपने प्रवाह से पवित्र करके, हमें यज्ञीय प्रयोजन के अनुरूप बनाएँ ॥१७ ॥

२२६. सन्ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रᳬह्या ऊष्मणो व्यथिषत् प्रयुतं द्वेषः ॥१८ ॥

हे याजक ! आपके मन, विराट् मनस्तत्त्व तथा प्राण, दिव्यप्राण से युक्त हों । (हे अन्नादि) आप आस्वादन योग्य हैं । आपको अग्नि, श्रीयुक्त करे । आप जल से युक्त रहें; वायु की गति एवं सूर्य की प्रचण्ड ऊर्जा से परिपक्वता प्राप्त हो । इस प्रकार तुम्हारे विकार नष्ट कर दिए जाएँ ॥१८ ॥

२२७. घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥१९ ॥

घृत एवं वसा का सेवन करने वाले पुरुषो, आप इनका उपयोग करें । हे वसा ! (धन-धान्य-साधनादि) आप अन्तरिक्ष के लिए हवि के रूप में हों,(लोकहित में) हम आहुति देते हैं । (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) सभी दिशाओं (आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान) सभी उपदिशाओं, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे एवं शत्रु की दिशा में अर्थात् सभी दिशाओं को हम आहुति प्रदान करते हैं ॥१९ ॥

२२८. ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽ उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः। देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳ समेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति । देवत्रा यन्तमवसे सखायोनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥२० ॥

हे त्वष्टादेवता ! प्राण और उदान के रूप में इन्द्र की शक्ति, अंग-प्रत्यंगों की सुरक्षा करती है । आप समस्त विषमताओं को दूर कर, (यज्ञ के लिए उपयुक्त) एकरूपता प्रदान करें । देवत्व का अनुगमन करने वाले आपके मित्र, सहयोगी एवं माता-पिता आपके इस श्रेष्ठ कार्य का अनुमोदन करें, प्रतिकूल न हों ॥२० ॥

२२९. समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ॥२१ ॥

(याजकों की भावनाओं से परिपुष्ट और समर्पित) हे हवि ! आप स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप में सिन्धु पर्यन्त पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तक अपना विस्तार करें। (आप) इस जगत् के उत्पादक सवितादेवता, मित्र, वरुण, सोम, वैश्वानर अग्नि, दिन, रात्रि, छन्दों यज्ञादि समस्त देवशक्तियों को तृप्ति प्रदान करें । अपने धूम्र अर्थात् वायुभूत ऊर्जा से द्युलोक को, प्रकाश से अन्तरिक्ष को एवं भस्म से पृथ्वी को परिपूर्ण करें । हमारे अन्तःकरण को सत्कर्म के लिए दिव्य प्रेरणाएँ प्रदान करें ॥२१ ॥

२३०. माऽपो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरघ्न्याऽ इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२२ ॥

यज्ञ के साधनभूत हे शलाके ! आप ओषधियों एवं जल को यथास्थान सुरक्षित रहने दें, उन्हें नष्ट मत होने दें। हे वरुणदेव ! आपका प्रवाह हमारे लिए मित्र की भाँति सुखदायी हो । हम गौ आदि न मारने योग्य की हिंसा न करके पापमुक्त रहें । जिन दुराचारियों के प्रति हम शत्रुता का भाव रखते हैं या जो हमसे द्वेष करते हैं, उनके साथ आप (जल और ओषधियाँ) कठोरता का व्यवहार करें, अर्थात् उन्हें नष्ट करें ॥२२ ॥

२३१. हविष्मतीरिमा ऽ आपोहविष्माँ२ आ विवासति । हविष्मान् देवो अध्वरो हविष्माँ२ अस्तु सूर्यः ॥२३ ॥

हे (वसतीवरी) जल ! आप निरन्तर श्रेष्ठ अन्न, रस आदि उत्पन्न करते हुए यज्ञ करें । यज्ञ सदैव श्रेष्ठ हवियों से युक्त रहकर सद्गुणों का विस्तार करने वाले हों । सूर्यदेव भी यजमान को पुण्यफल प्रदान करने के लिए हवि स्वीकार करें ॥२३ ॥

२३२. अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ। अमूर्याऽ उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४ ॥

हे वसतीवरी * जल ! जो इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण आदि सब देवताओं तक उनका हवि भाग पहुँचाने वाली यज्ञाग्नि है, उस सुदृढ़ आश्रयस्थल अग्नि के पास हम आपको पहुँचाते हैं । सूर्य की किरणों द्वारा वाष्पीकृत जो जल, सूर्य के पास बहुत दिनों तक सुरक्षित रहता है, वह हमारे यज्ञ को सफल बनाए ॥२४ ॥

[*सोमयज्ञ में प्रयुक्त होने वाला, नदी से लाकर रात-भर का रखा हुआ जल ।]

२३३. हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥

(हे सोम !) मन, अन्तःकरण, सूर्य एवं द्युलोक की तृप्ति के लिए आप इस यज्ञ को सफल बनाएँ (ऊँचा उठाएँ) और होताओं को देवताओं के दिव्य लोक तक पहुँचाएँ (अर्थात् उनके जीवन को देवत्व से भर दें) ॥२५ ॥

२३४. सोम राजन् विश्वास्त्वं प्रजाऽ उपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽ उपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः । श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञ ँ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥२६ ॥

हे सोम ! सभी याजक आपके प्रति अनुकूल व्यवहार करें तथा आप पिता की भाँति सभी पर अनुग्रह करें । प्रज्वलित अग्नि, दिव्य जल, ज्ञानीजन एवं जगत् के उत्पादक सविता देवता हमारी स्तुतियों को ध्यान से सुनें । इस निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२६ ॥

२३५. देवीरापो अपां नपाद्यो वऽ ऊर्मिर्हविष्यऽ इन्द्रियावान् मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥२७ ॥

हे दिव्य जल ! आप में जो लहर के समान उठाने वाले (न गिरने देने वाले), हवन करने योग्य, इन्द्रिय-शक्ति को बढ़ाने वाले तथा आनन्द बढ़ाने वाले प्रवाह हैं, उसे देवताओं, विद्वानों तथा प्राण-पर्जन्य के रूप में वीर्य की रक्षा करने वालों के लिए समर्पित करें । इसमें आपका भी एक भाग सुनिश्चित है ॥२७ ॥

२३६. कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽ उन्नयामि। समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥२८ ॥

(हे यज्ञार्थ प्रयुक्त जल !) समुद्र पर्यन्त भूमि की उर्वरता के लिए आप को ऊपर उठाते हैं । (सूर्य-रश्मियों द्वारा वाष्प में परिवर्तित जल ऊपर पहुँचता है) । प्राण-पर्जन्य के साथ बरसे हुए जल से ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं । इस कृषि कर्म के रूप में लोक-हितार्थ निरन्तर यज्ञ की प्रक्रिया चलती रहती है ॥२८ ॥

२३७. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥२९ ॥

हे अग्निदेव ! जिन याजकों के समीप आप हविष्यान्न ग्रहण करने पहुँचते हैं, आपकी ही प्रेरणा से यज्ञ करने वाले वे, धन-धान्यरूपी वैभव प्राप्त करते हैं ॥२९ ॥

२३८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम्। उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा मनो मे ॥३० ॥

हे यज्ञसाधनो ! हम याजकगण आपको सूर्योदय काल में अश्विनीकुमारों एवं पूषा देवता के हाथों से (यज्ञ के लिए) ग्रहण करते हैं । आप इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं । इन्द्रदेव की सन्तुष्टि के लिए इस विशाल यज्ञ को शक्ति-सामर्थ्य, मधुर रसों एवं पोषक पदार्थों से परिपूर्ण करें । हव्य को भली-भाँति ग्रहण करने वाले आप हमें सन्तुष्ट करें ॥३० ॥

२३९. मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥३१ ॥

यज्ञार्थ ग्रहण किये गये हे जलसमूह ! आप अपने दिव्य गुणों से हमारे मन, वाणी एवं प्राणों को तृप्त करें। आप हमारे नेत्र, कर्ण एवं आत्मा को तृप्ति प्रदान करें, हमारी संतानों, सेवकों एवं पालतू पशुओं को तृप्त करें । हमारे सहयोगी आपके अभाव में कभी भी तृषित न हों ॥३१ ॥

२४०. इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽ इन्द्राय त्वादित्यवत ऽ इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने। श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥३२ ॥

हे सोम ! सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुओं को पीड़ा पहुँचाते हुए उनका नाश करने वाले, सोमरस पीने के लिए बाज़ पक्षी की भाँति झपटने वाले तथा ऐश्वर्यशालियों में अग्रगण्य इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए आपको स्वीकार करते हैं ॥३२ ॥

२४१. यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे। तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥३३ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तक फैले हुए हे दिव्य सोम ! आप लोकहित के लिए सत्कर्मरत याजक की सहायता करें ॥३३ ॥

२४२. श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ताऽ अमृतस्य पत्नीः। ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥३४ ॥

हे सोम (रूपी अमृत) का पालन (संरक्षण) करने वाली देवशक्तियो ! आप कल्याणकारी हैं, वृत्ररूप विकारों का नाश करके सोम का पोषण करने वाली तथा धन प्रदायक हैं । आप इस यज्ञ का नेतृत्व करें तथा सोम रस का पान करें ॥३४ ॥

२४३. मा भेर्मा सं विक्था ऽऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥३५ ॥

हे सोम ! रस निकालते समय पत्थर की चोट से आप भयभीत एवं विचलित न हों । चन्द्रमा की भाँति आनन्द प्रदान करने वाले, आकाश और पृथ्वी के समान शक्ति-सामर्थ्यवान् आप, सबके दोषों को दूर करें ॥३५ ॥

२४४.प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽ आ धावन्तु। अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥३६ ॥

हे सोम ! आप पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि सभी दिशाओं से अपने अंशों को प्राप्त करके यज्ञशाला में आएँ । हे माता (धरित्री-अपने अंशों से) सोम को पूर्णता प्रदान करें। इस यज्ञ को सभी भली-भाँति जानें ॥३५ ॥

२४५. त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥३७ ॥

ऐश्वर्यशाली, महान् पराक्रमी, धनवान् हे इन्द्रदेव ! आप अपने दिव्यगुणों से याजक की प्रशंसा करने वाले हैं । आपसे अधिक सुखदाता, कल्याणकारी कोई दूसरा नहीं है — ऐसा हम आपके (आश्वासन) वचन के आधार पर ही कह रहे हैं ॥३७ ॥

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— अगस्त्य १-२ । दीर्घतमा ३ । मेधातिथि ४-२८ । मधुच्छन्दा २९-३६ । गोतम ३७ ।

देवता— सविता १, ३१ (उष्णिक् छन्दानुसार सविता देवता) । शकल, यूप, चषाल २ । यूप ३ । विष्णु ४-५ । यूप, स्वरु ६ । तृण, लिंगोक्त ७ । लिंगोक्त, पशु ८ । सविता, अग्नि-सोम, पशु ९ । पशु, आपः (जल) १० । स्वरु-शास, वाक्, तृण, देवगण ११ । रज्जू, यज्ञ १२ । आपः (जल), आशीर्वाद १३ । पशु १४ । पशु, सुख, तृण, असि १५ । राक्षस, द्यावा-पृथ्वी, वायु, अग्नि, वपा-श्रपण्य १६ । आपः (जल), पवमान १७ । हृदय, वसा, द्वेष १८ । विश्वेदेवा, दिशा १९ । प्राण, त्वष्टा २० । समुद्र-आदि लिंगोक्त, स्वरु २१ । हृदय-शूल, वरुण, आपः २२ । अप् आदि लिंगोक्त २३ । आपः (जल) २४, २७ । सोम २५, ३२-३३, ३६ । सोम, अग्नि आदि लिंगोक्त २६ । आज्य, आपः (जल) २८ । अग्नि २९ । सविता, ग्रावा, आपः (जल) ३० । निग्राभ्या ३४ । सोम, द्यावा-पृथ्वी ३५ । इन्द्र ३७ ।

छन्द — निचृत् पंक्ति, आसुरी उष्णिक्, भुरिक् आर्षी उष्णिक् १ । निचृत् गायत्री, स्वराट् पंक्ति २ । आर्ची उष्णिक्, साम्नी त्रिष्टुप्, स्वराट् प्राजापत्या जगती ३ । निचृत् आर्षी गायत्री ४ । आर्षी गायत्री ५ । आर्षी उष्णिक्, भुरिक् साम्नी बृहती ६ ।निचृत् आर्षी बृहती ७ । प्राजापत्या अनुष्टुप्, भुरिक् प्राजापत्या बृहती ८ । प्राजापत्या बृहती, निचृत् अतिजगती ९ । प्राजापत्या बृहती, भुरिक् आर्षी गायत्री १० । स्वराट् प्राजापत्या बृहती, भुरिक् आर्षी उष्णिक्, निचृत् गायत्री ११ । भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, साम्नी उष्णिक् १२ । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् १३, २३, २८ । भुरिक् आर्षी जगती १४ । स्वराट् धृति १५ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् २७ ।(दो) ब्राह्मी उष्णिक् १६ । निचृत् ब्राह्मी अनुष्टुप् १७ । प्राजापत्या अनुष्टुप्, आर्ची पंक्ति, दैवी पंक्ति १८ । ब्राह्मी अनुष्टुप् १९ । ब्राह्मी त्रिष्टुप् २० । याजुषी उष्णिक्, स्वराट् उत्कृति २१ । ब्राह्मी स्वराट् उष्णिक्, निचृत् अनुष्टुप् २२ । आर्षी त्रिष्टुप्, त्रिपाद् गायत्री २४ । आर्षी विराट् अनुष्टुप् २५ । भुरिक् गायत्री, आर्षी त्रिष्टुप् २६ । भुरिक् आर्षी गायत्री २९ । स्वराट् आर्षी पंक्ति, भुरिक् आर्ची पंक्ति ३० । विराट् ब्राह्मी जगती ३१ । पंचपदा ज्योतिष्मती जगती ३२ । भुरिक् आर्षी बृहती ३३ । स्वराट् आर्षी पथ्याबृहती ३४ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् ३५, ३७ ।पुरोष्णिक् ३६ ।

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

॥अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

२४६. वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअ ᳪ शुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोसि ॥१ ॥

सभी प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाले, उत्तम गुणों से सम्पन्न हे दिव्य सोम !सूर्य रश्मियों के माध्यम से वाचस्पति आदि देवों की तृप्ति के लिए आप पवित्रता को प्राप्त हों ।आप जिन देवों के अंश हैं, उन्हें सन्तुष्ट करें ॥१

२४७. मधुमतीर्न ऽइषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥२ ॥

कभी नष्ट न होने वाले हे दिव्य सोम !आप हमारे आहार को मधुर रस आदि तत्त्वों से युक्त कर दें । आपके जाग्रत् स्वरूप के लिए हम यह आहुति समर्पित करते हैं । यह आहुति अनन्त अन्तरिक्ष में विस्तार प्राप्त करे ॥२ ॥

२४८. स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाᳪ शो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्लुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥३ ॥

हे सुभव (श्रेष्ठ जन्म वाले) ! पृथ्वी एवं द्युलोक में रहने वाले, सभी प्राणियों और इन्द्रियों के कल्याण के लिए आप स्वप्रकाशित हुए हैं । पवित्र मन वाले हे उपांशु (एक पात्र) ! आपको सूर्य देवता के लिए एवं किरणों के समान प्रकाशित देवमानवों की तुष्टि के लिए नियुक्त किया जाता है । हे तेजस्वी देव ! आप मर्यादा का उल्लंघन करने वाले दुराचारियों का शीघ्र नाश करें । अपने सत्याचरण से ही आप वन्दनीय हैं । प्राण और व्यान द्वारा शरीर संचालन की तरह यज्ञ के लिए आपको नियुक्त किया जाता है ॥३ ॥

२४९. उपयामगृहीतोस्यन्तर्यच्छमघवन् पाहि सोमम् । उरुष्य राय ऽएषो यजस्व ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! यज्ञ के लिए नियमानुसार ग्रहण किये गये इस कलशस्थ सोमरस को आप स्वीकार करें और उपयाम (अन्तर्ग्रह) पात्र में स्थापित सोम की रक्षा करें । शत्रुओं से रक्षा करते हुए याजकों को अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥४ ॥

२५०. अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! पृथ्वी, द्युलोक और अनन्त अन्तरिक्ष में आपका ही विस्तार है । आप अपने पास (स्वर्ग में) रहने वाले देवताओं एवं दूर रहने वाले याजकों को समान रूप से आनन्द प्रदान करें ॥५ ॥

२५१. स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य ऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य ऽउदानाय त्वा ॥६ ॥

हे सुभव (श्रेष्ठ जन्म वाले) ! पृथ्वी एवं द्युलोक में रहने वाले, सभी प्राणियों और इन्द्रियों के कल्याण के लिए आप स्वप्रकाशित हुए हैं । पवित्र मन वाले हे उपांशु (पात्र) ! आपको सूर्य देवता के लिए एवं किरणों के समान प्रकाशित देवमानवों की तुष्टि के लिए नियुक्त किया जाता है । (हे अन्तर्याम ग्रह !) उदान देवता द्वारा शरीर संचालन की तरह यज्ञ के लिए आपको नियुक्त किया जाता है ॥६ ॥

२५२. आ वायो भूष शुचिपा ऽउप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार। उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥७॥

पवित्रता का विस्तार करने वाले हे वायुदेव ! आप अनन्त गुणों के आश्रय हैं। हमारे जीवन को सद्‌गुणों से विभूषित करें। आपका तृप्तिदायक श्रेष्ठ आहार 'सोमरस' आपको समर्पित करते हैं, जिसका आपने पहले भी पान किया है। हे सोम ! वायुदेवता के लिए आपको ग्रहण करते हैं ॥७॥

२५३. इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि। उपयामगृहीतोसि वायव ऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥८॥

हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! तृप्तिदायक श्रेष्ठ पेय सोम, आप दोनों के लिए समर्पित है, इसे प्राप्त करें। (हे सोम !) वायुदेव और इन्द्रदेव के लिए आप विधिपूर्वक तैयार किये गये हैं। उन्हीं की प्रसन्नता के लिए ही हम आपको ग्रहण करते हैं ॥८॥

२५४. अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऽ ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतꣳ हवम्। उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥९॥

सत्य का विस्तार करने वाले हे मित्र और वरुणदेव ! आप दोनों की तृप्ति के लिए सोमरस प्रस्तुत है। यज्ञशाला में पधारें, हम आपका आवाहन करते हैं। हे सोम ! उपयाम पात्र में इन्द्र और वरुणदेव के लिए आपको नियमानुसार तैयार किया गया है, उन्हीं के निमित्त आपको समर्पित करते हैं ॥९॥

२५५. राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः। तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥१०॥

हे मित्र और वरुणदेव ! पलायन न करने वाली श्रेष्ठ गौ हमें (याजकों को) प्रदान करें। जिसके होने से सम्पत्तिवान् होकर, हम उसी प्रकार आनन्द प्राप्त करें, जिस प्रकार गौएँ आहार पाकर या देवता हवि पाकर प्रसन्न होते हैं। सत्य एवं यज्ञ की वृद्धि के लिए (आप दोनों) यज्ञशाला में सुनिश्चित आसन पर विराजें ॥१०॥

२५६. या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्। उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥११॥

हे अश्विनीकुमारो ! सत्य एवं मधुरता से युक्त अपनी उत्तम वाणी से हमारे इस यज्ञ को अभिषिंचित करें। हे उपांशु ! मधुरता के लिए विख्यात अश्विनीकुमारों के निमित्त आपको नियमानुसार ग्रहण किया गया है। आप यज्ञशाला में अपने सुनिश्चित आसन पर बैठें ॥११॥

२५७. तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम्। प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे। उपयामगृहीतोसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥१२॥

पोषक तत्त्वों से युक्त, तृप्तिदायक सोमरस को, पुनः पुनः पीकर, यज्ञशाला में सर्वोच्च आसन पर विराजमान होने वाले, हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को भयभीत करने वाले, प्राचीन ऋषियों की भाँति याजकों को वांछित वैभव के रूप में यज्ञ का फल प्रदान करने वाले हैं, हम आपकी वन्दना करते हैं। हे उपांशु ग्रह ! आप नियमानुसार देवताओं के निमित्त ग्रहण किये गये हैं। आप अपने सुनिश्चित आसन पर बैठें। सोमरस पीने वाले देवता आपको प्राप्त कर, याजकों की शक्ति-सामर्थ्य बढ़ाएँ ॥१२॥

२५८. सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥१३ ॥

सूर्य के समान अपनी तेजस्विता से पृथ्वी और द्युलोक को प्रकाशित करने वाले हे ग्रह ! आप याजकों में पराक्रम की वृद्धि करते हुए , उन्हें अपार वैभव प्रदान करें । आप दुष्टता को दूर करने वाले तथा कल्याणकारी पराक्रम को आश्रय देकर बढ़ाने वाले हैं ॥१३ ॥

२५९. अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१४ ॥

अनन्त शक्ति सम्पन्न एवं अक्षय ऐश्वर्यवान् हे सोमदेव ! आपके अनुग्रह से हम याजकगण सदैव देवताओं के निमित्त हवि देने वाले हों, अर्थात् सत्कर्मरत रहें । विश्वमानव द्वारा वरण करने योग्य यह पहली सर्वोत्कृष्ट संस्कृति है । संस्कारित सोमदेव, वरुण, मित्र तथा अग्नि देवों में अग्रणी हैं ॥१४ ॥

२६०. स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा ऽइन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा । तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥१५ ॥

सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, मेधावी इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस समर्पित करें । होतागण उन्हें मधुर हविष्यान्न देकर सन्तुष्ट करें । जो वांछित आहार से (सोमरस पीकर) तृप्त होने वाले देवता हैं, वे यज्ञाग्नि के पास पहुँचें ॥१५ ॥

२६१. अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाᳬं सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोसि मर्काय त्वा ॥१६ ॥

परम तेजस्वी देव, अन्तरिक्ष से जल को प्रेरित कर वर्षा के रूप में उपलब्ध कराते हैं । जलरूप में प्राप्त अनुदान को, पुत्र जन्म की भाँति सुखद जानकर विद्वज्जन विभिन्न स्तोत्रों से सूर्यदेवकी वन्दना करते हैं । हे सोमदेव ! मर्क* नामक असुर (शुक्रपुत्र) के निमित्त (विनाश करने के लिए) आपको नियमानुसार ग्रहण किया गया है ॥१६ ॥

[* जहाँ देवताओं के पुरोहित के रूप में 'बृहस्पति' का नाम प्रसिद्ध है, वहीं असुरों के पुरोहित के रूप में 'शण्ड' के साथ 'मर्क' का नाम भी प्रसिद्ध है (तै० सं० ६.४.१०.१)]

२६२. मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो ऽ अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥१७ ॥

सदैव सत्कर्म करने वाले ज्ञानीजन जिन सोमयागों में मनोयोगपूर्वक भाग लेते हैं, उनमें मिलने वाले सोमरस को पौष्टिक आहार की भाँति ग्रहण करते हैं । हे मन्थिग्रह* ! शत्रुओं का मर्दन करते हुए संतान सहित याजकों की सुरक्षा का दायित्व वहन करें । आप निर्भय होकर देवताओं को प्राप्त करें ॥१७ ॥

[*वेद में मथानी के अर्थ में मन्थिग्रह का प्रयोग हुआ है (ऋग्वेद १/२८/४)]

२६३. सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोधिष्ठानमसि ॥१८ ॥

हे मन्थिग्रह ! श्रेष्ठ सन्तति वाले आप याजकों को महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हुए सत्कर्म में नियोजित करें । आप सूर्य और पृथ्वी की भाँति, विचारशील साधकों के जीवन को सद्गुणों से प्रकाशित करें । महान् दुःखदायी-असुर आपकी तेजस्विता के प्रभाव से पलायन करें ॥१८ ॥

२६४. ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥१९ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में व्याप्त जो ग्यारह-ग्यारह दिव्य शक्तियाँ * अपनी महिमा से सृष्टि के जीवन प्रवाह का विधिवत् संचालन कर रही हैं, वे ही विश्वेदेवा (३३ कोटि देवता) इस यज्ञ को सम्पन्न कराएँ ॥१९ ॥

[* (क) प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, और जीवात्मा ।
(ख) पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति ।
(ग) त्वक्, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा और मन ।]

२६५. उपयामगृहीतोस्याग्रयणोसि स्वाग्रयणः । पाहियज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥२० ॥

हे आग्रयण ग्रह ! (सर्वप्रथम ग्रहण किये जाने वाले) यज्ञ के निमित्त सर्वप्रथम बुलाए गये और स्थापित किये गये आप, इस यज्ञ की तथा यजमान की रक्षा करें और उसे आगे बढ़ाएँ । यज्ञ के अधिष्ठाता देव, सर्वव्यापक विष्णु आपकी रक्षा करें । आप उनकी (विष्णु की) रक्षा करें । आप तीनों सवनों (प्रातः, माध्यन्दिन एवं सायं) की भली-भाँति रक्षा करें ॥२० ॥

२६६. सोमः पवते सोमः पवतेस्मै ब्रह्मणेस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्जे पवतेद्भ्य ऽ ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥२१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी यजमानों की सन्तुष्टि के लिए यह सोमरस पवित्र करके तैयार किया जाता है । पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में धन-धान्य, वनस्पति और जीवनी शक्ति के विस्तार हेतु सोमरस पवित्र होता है । सभी देवताओं की तृप्ति के लिए ग्रहण किये गये, हे सोम ! आप यज्ञशाला में अपने सुनिश्चित स्थान (पात्र) में स्थिर हों ॥२१ ॥

२६७. उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्यं गृह्णामि । यत्त ऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥२२ ॥

नियमानुसार ग्रहण किये गये हे सोम ! मित्र, वरुण, इन्द्र एवं विश्वव्यापक विष्णु आदि देवताओं की तृप्ति के लिए आपको स्वीकार करते हैं । अपने प्रिय आहार सोमरस का पान करने के लिये इन्द्रदेव की हम वन्दना करते हैं । यज्ञ की सफलता एवं याजकों के दीर्घायुष्य की कामना से आपको यज्ञशाला में पूर्व निश्चित, श्रेष्ठ आसन पर स्थापित करते हैं ॥२२ ॥

२६८. मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥२३ ॥

तृप्तिदायक हे दिव्य सोम ! मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति एवं विष्णु आदि देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए आपको ग्रहण करते हैं । यज्ञों की निर्विघ्न सफलता एवं उनके विस्तार के लिए हम आपको यज्ञशाला में स्थापित करते हैं ॥२३ ॥

२६९. मूर्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽ आ जातमग्निम्। कविᳬं सम्राज-मतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः ॥२४॥

आकाश के मूर्द्धा भाग में प्रकाशित, तेजस्वी सूर्य की भाँति पृथ्वी पर प्रतिष्ठा-प्राप्त, विश्व के आश्रय, त्रिकालज्ञ, मूर्धन्य, तेजस्वी, श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशित, सम्माननीय अतिथिरूप यज्ञाग्नि को याजकों ने अरणियों द्वारा प्रकट किया ॥२४॥

२७०. उपयामगृहीतोसि ध्रुवोसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोच्युतानामच्युत- क्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि। अथा न ऽ इन्द्र इद्विशोसपत्नाः समनसस्करत् ॥२५॥

नियमपूर्वक ग्रहण किये गये हे सोमदेव ! अपने स्थान से कभी विचलित न होने वाले, स्थिर रहने वालों में अग्रगण्य, आप स्थिर निवास वाले 'ध्रुव' नाम से विख्यात हैं। स्थिर चित्त वाले हम याजक, आपको कल्याणकारी देवताओं की सन्तुष्टि के लिए, यज्ञशाला में स्थापित करते हैं। इन्द्रदेव शत्रुओं का विनाश करते हुए हमारी सन्तानों को सद्बुद्धि प्रदान करें ॥२५॥

२७१. यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्तेऽअᳬशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात्। अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतᳬ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥२६॥

देवों को सर्वोच्च पद प्रदान करने वाले हे सोमदेव ! आपके रस का जो अंश पत्थरों द्वारा कुचलते, निचोड़ते, छानते एवं पात्र में डालते समय पृथ्वी पर गिर जाता है या जो अध्वर्यु के पास शेष रहता है, उस सबको संकल्प शक्ति द्वारा एकत्रित कर अग्नि को समर्पित करते हैं, आप देवशक्तियों को ऊर्ध्वगति देने वाले के समान हैं ॥२६॥

२७२. प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥२७॥

सोम को धारण करने वाले पात्र को लक्ष्य करके कहा जाता है—

हे पात्र ! आप दिव्य प्रकाश को धारण करने वाले वर्चस्वी हैं। हमारे प्राण वायु, उदान वायु एवं व्यान वायु को तेज प्रदान करें। हे देव ! आप हमारे मन, वाणी एवं कर्म में तेजस्विता की स्थापना का उपाय करें। तेजस्विता प्रदान करने वालों में अग्रणी हे देव ! हमारे नेत्रों एवं कर्णेन्द्रियों को दिव्यशक्ति से सम्पन्न बनाएँ ॥२७॥

२७३. आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥२८॥

हे वर्चस् (तेजस्विता) प्रदान करने वाले ! हमारी आत्मा में वर्चस् जाग्रत् करें, हमारे ओज में वर्चस् जाग्रत् करें, हमारे आयुष्य में वर्चस् जाग्रत् करें। हे तेजस्वी ग्रह (उपकरण) ! पृथ्वी के समस्त प्राणियों एवं प्रजाओं को तेज प्रदान करने की कृपा करें ॥२८॥

२७४. कोसि कतमोसि कस्यासि को नामासि। यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥

इस कण्डिका में ऋषियों का व्यापक दृष्टिकोण प्रकट होता है। सोम पात्र के रूप में यज्ञस्थल पर स्थापित द्रोण कलश को वे भूर्भुवः स्वः में फैले विश्वपात्र का प्रतीक– प्रतिनिधि मानते हैं। इस विश्व पात्र को सोम (पोषक तत्त्व) से परिपूर्ण रखना यज्ञ का उद्देश्य है —

हे सोम पात्र ! आप कौन हैं ? किससे सम्बन्धित हैं ? किस क्रम में आपका क्या नाम है ? आपका परिचय क्या है ? जिसे जानकर हम आपको सोमरस से परिपूर्ण कर सकें । पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में, अग्नि, वायु एवं सूर्य के रूप में व्याप्त (हे देव !) आप हमें वीर, पराक्रमी एवं वैभव-सम्पन्न सन्तानें प्रदान करें ॥२९ ॥

२७५. उपयामगृहीतोसि मधवे त्वोपयामगृहीतोसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोसि शुचये त्वोपयामगृहीतोसि नभसे त्वोपयामगृहीतोसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोसीषे त्वोपयामगृहीतोस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोसि सहसे त्वोपयामगृहीतोसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोसि तपसे त्वोपयामगृहीतोसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोस्य ꣳ हसस्पतये त्वा ॥३० ॥

इस कण्डिका में १२ मासों तथा तेरहवें पुरुषोत्तम मास को ऋतु पात्र के रूप में लक्ष्य करके उनकी तुष्टि-पुष्टि के लिए सोम को धारण करके नियोजित करने का संकल्प किया गया है—

हे ऋतुग्रह ! आप नियमानुसार ग्रहण किये गये हैं । हम आपको चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन एवं पुरुषोत्तम आदि (तेरह) मासों की सन्तुष्टि के निमित्त मर्यादाओं के अनुरूप नियुक्त करते हैं ॥३० ॥

२७६. इन्द्राग्नीऽआ गतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥३१ ॥

पात्र में ग्रहण किये गये हे सोम ! इन्द्र और अग्निदेव की तृप्ति तथा प्रसन्नता के निमित्त, आप अपने इस (यज्ञशाला में) सुनिश्चित आसन पर स्थिर हों । हे इन्द्रदेव ! हे अग्निदेव ! याजकों की उत्तम वाणियों द्वारा की गई स्तुतियों से प्रसन्न होकर, सोमपान के लिए यज्ञशाला में पधारें और अपना भाग ग्रहण करें ॥३१ ॥

२७७. आ घा येऽअग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥३२ ॥

इन्द्र और अग्निदेव की सन्तुष्टि के लिए विधिपूर्वक ग्रहण किये गये, हे सोम ग्रह ! यज्ञशाला में आपका यह स्थान सुनिश्चित है, आसन ग्रहण करें । तेजस्वी इन्द्रदेव जिनके मित्र हैं, जो समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त कर आहुतियाँ प्रदान करते हैं, हे कलशस्थ सोम ! उन (याजकों) के यज्ञ को आप सफल बनाएँ ॥३२ ॥

२७८. ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवासऽआगत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३३ ॥

याजकों का पोषण एवं उनकी रक्षा करने वाले हे विश्वेदेवा (विश्व संचालक देवताओ) ! साधकों के आवाहन पर आप सोमपान करने के लिए यज्ञशाला में आएँ । हे ग्रह (सोमरस पूरित पात्र) ! विश्वेदेवों की तृप्ति के लिये आप नियमानुसार ग्रहण (तैयार) किये गये हैं । यह आपका सुनिश्चित स्थान है । समस्त देवताओं की संतुष्टि के लिये आप यहाँ स्थिर हों ॥३३ ॥

२७९. विश्वे देवास ऽआगत शृणुता म इमꣳहवम् । एदं बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३४ ॥

हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हुए हे विश्वदेवा ! हमारे आवाहन पर आप यज्ञशाला में आएँ और यह पवित्र आसन ग्रहण करें । हे ग्रह (पात्र) ! आपको सभी देवताओं की तृप्ति तथा प्रसन्नता के लिए ग्रहण किया गया है । यह आपका निश्चित स्थान है । हम आपको देवताओं की प्रसन्नता के लिए यहाँ स्थापित करते हैं ॥३४ ॥

२८०. इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शार्यातेऽअपिबः सुतस्य। तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३५ ॥

मरुद्गणों के साथ निवास करने वाले हे इन्द्र ! नीतिवान्, दूरदर्शी, सत्कर्मरत, नैष्ठिक याजक आपकी उपासना कर रहे हैं । शर्यात* के यज्ञ में पिये गये सोमरस की भाँति इस यज्ञ में पधारें और सोम पीकर तृप्त हों । हे ग्रह (पात्र में स्थित सोम) ! मरुतों सहित इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको विधिपूर्वक तैयार (ग्रहण) किया गया है । यह आपका स्थान है, मरुत्वान् इन्द्र की तृप्ति के लिए यहाँ स्थिर हो ॥३५ ॥

[*ऋ०१.११२.७ में शर्यात अश्विनों का कोई कृपा-पात्र है । शत० ब्रा० ४.१.५.२ और जै० ब्रा० ३.१२०-१२२ में शर्यात की कथा आती है । जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४.७.१, ४.८.३ में शर्यात एक यज्ञकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत हुए हैं ।]

२८१. मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते। उपयामगृहीतोसि मरुतां त्वौजसे ॥३६ ॥

साधकगण अपनी रक्षा के निमित्त, दिव्यशक्ति से सम्पन्न, ऐश्वर्य एवं पराक्रम प्रदान करने वाले, जल की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव का मरुद्गणों के साथ आवाहन करते हैं । हे ग्रहो (पात्रो) ! आपको मरुद्गणों सहित इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए, नियमानुसार ग्रहण किया गया है । यह आपका मूल स्थान है, मरुतों को बल एवं प्रसन्नता प्रदान करने के लिए आपको यहाँ स्थापित करते हैं ॥३६ ॥

२८२. सजोषा ऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रूँ२ऽरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७ ॥

वृत्र नामक राक्षस को मारने वाले हे इन्द्रदेव ! मरुद्गणों सहित आप इस यज्ञ में पधारें तथा सोमरस पीकर सन्तुष्ट हों । आप हमारे शत्रुओं को दूर कर उन्हें नष्ट करके हमें निर्भयता प्रदान करें । हे ग्रह (पात्र) ! आप इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए नियमानुसार ग्रहण किये गये हैं । यही आपका निश्चित स्थान है । मरुतों सहित इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको स्थापित करते हैं ॥३७ ॥

२८३. मरुत्वाँ२ऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय। आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्मिं त्वꣳराजासि प्रतिपत्सुतानाम्। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३८ ॥

जल की वर्षा द्वारा याजकों को धन-धान्य प्रदान करने वाले हे मरुत्वान् इन्द्रदेव ! अपनी प्रसन्नता के लिए तृप्तिदायक सोम का पान करें और दुराचारियों से युद्ध करें । इस पोषक मधुर सोमरस को पेट भरकर पिएँ । विधिपूर्वक तैयार किये गये सोमरस के आप स्वामी हैं । हे ग्रह (पात्र) ! मरुतों सहित इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको ग्रहण किया गया है । यह आपका आश्रय स्थल है, यहाँ आपको स्थापित करते हैं ॥३८ ॥

२८४. महाँ२ऽइन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राऽउत द्विबर्हा ऽअमिनः सहोभिः। अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्। उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा।

अद्वितीय शौर्यवान्, यज्ञों का विस्तार करने वाले, हे इन्द्र ! प्रजा की मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाले राजा की भाँति, आप याजकों को ऐश्वर्य प्रदान कर, उनकी इच्छाएँ पूर्ण करें । याजकों द्वारा सम्मानित हे इन्द्र ! आप उन्हें

बलवान् बनायें। हे ग्रह ! नियमपूर्वक ग्रहण किये गये आपको महान् इन्द्रदेव की तृप्ति तथा प्रसन्नता के लिए नियुक्त करते हैं। यही आपका स्थान है ॥३९॥

२८५. महाँ२ऽइन्द्रो य ऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ ऽइव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे। उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥४०॥

जल के रूप में प्राण-पर्जन्य की वर्षा करने वाले, विशाल मेघों के समान, हे महान् तेजस्वी इन्द्रदेव ! आप साधकों की स्तुति से प्रसन्न होकर सुखों की वर्षा करते हैं। हे माहेन्द्र ग्रह (इन्द्र के निमित्त नियुक्त सोम पात्र) ! नियमानुसार सत्पात्र में ग्रहण किये गये आपको महान् इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए नियुक्त करते हैं, यही स्थान आपके लिए सुनिश्चित है ॥४०॥

२८६. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य ँ स्वाहा ॥४१॥

चराचर जगत् को अपनी दिव्य रश्मियों से प्रकाशित करने वाले जो सूर्यदेव प्राणिमात्र को पदार्थों का ज्ञान कराने के लिए, ऊपर से अपनी किरणों को बिखेरते हैं, उन्हीं के लिए यह आहुति समर्पित है ॥४१॥

२८७. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥४२॥

मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं के नेत्ररूप, स्थावर और जंगम जगत् के आत्मारूप जो सूर्यदेव अपनी दिव्य (प्रकाश) किरणों से पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक को तेजस्विता प्रदान करते हैं; उन्हीं देव के लिए यह आहुति समर्पित है ॥४२॥

२८८. अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥

प्रगति के सभी मार्गों (विधियों) को जानने वाले हे अग्निदेव ! आप ऐश्वर्य की कामना करने वाले (हम) याजकों को श्रेष्ठ मार्ग पर ले चलें। सत्कर्म में बाधक पाप-वृत्तियों को हमसे दूर करें। हम नम्रतापूर्वक स्तुति करते हुए आपको हवि प्रदान कर रहे हैं ॥४३॥

२८९. अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावय ँ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥४४॥

यह अग्निदेव, हमारे शत्रुओं को युद्ध के मैदान में छिन्न-भिन्न करके, उन्हें परास्त करते हुए, उनके द्वारा (शत्रुओं द्वारा) जमा किया गया धन-धान्य, हमें प्रदान करें। शत्रुओं को पराजित करने वाले अग्निदेव के लिए यह आहुति समर्पित करते हैं ॥४४॥

२९०. रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५॥

हे दक्षिणे (श्रद्धापूर्वक यज्ञकर्त्ताओं के लिए समर्पित धनादि) ! भली-भाँति हम आपके स्वरूप को जान चुके हैं, सर्वद्रष्टा प्रजापति आपको ऋत्विजों के लिए विधिपूर्वक वितरित करें। आपको प्राप्त कर हम सत्यमार्ग के अनुगामी बनें तथा सूर्यदेव जिस प्रकार अनन्त अन्तरिक्ष का अवलोकन करने में समर्थ हैं, उसी प्रकार हम भी दूरदृष्टि से युक्त हों ॥४५॥

[जिस प्रकार सूर्यदेव सारे विश्व को दृष्टि में रखकर ऊर्जा का वितरण करते हैं, वैसी ही दूरदृष्टि के साथ दक्षिणा में प्राप्त धनादि का उपयोग कल्याणकारी प्रयोजन में किया जाना चाहिए।]

२९१. ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳसुधातुदक्षिणम्। अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥४६॥

मन्त्रद्रष्टा, ऐश्वर्यशाली, दिव्यगुण सम्पन्न पिता और पितामह वाले (दीर्घजीवी) प्रसिद्ध ऋषि एवं ब्राह्मणों से हम युक्त हों। उनके पास सम्पूर्ण दक्षिणा एकत्र हो। हे दक्षिणे ! आप ऋत्विजों के पास पहुँचकर देवताओं को सन्तुष्ट करें तथा दानदाता याजकों को अभीष्ट फल प्रदान करें ॥४६॥

[ऐसे प्रामाणिक व्यक्तित्व जो स्वयं भी ऋषितुल्य आचरण करते हों तथा जिनकी पूर्व पीढ़ियाँ भी लोकहित के लिए ही समर्पित रही हों, उन्हीं के पास दक्षिणा का धन संचित होकर, सुपात्रों तक पहुँचाकर सार्थक बनाये जाने का निर्देश दिया गया है।]

२९२. अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीयायुर्दात्र ऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥४७॥

हे दक्षिणे ! अग्नि, रुद्र, बृहस्पति और यम आदि विभिन्न देवशक्तियों की अनुकम्पा के रूप में आप वरुणदेवता द्वारा हमें प्राप्त हों। आपको प्राप्त करके हम स्वस्थ रहें एवं दीर्घ जीवन प्राप्त करें। आप दान दाताओं को धन-धान्य से परिपूर्ण सुख, ऐश्वर्य एवं दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥४७॥

[दक्षिणा जिनके अनुग्रह से प्राप्त हो, उन्हीं के अनुरूप उसका उपयोग किया जाना चाहिए। तेजस्विता वृद्धि (अग्नि), अनीति दमन (रुद्र), ज्ञान विस्तार (बृहस्पति) एवं अनुशासनों की स्थापना (यम) के निमित्त ही दक्षिणा का नियोजन हो। वरुण देव (जल के देवता) के द्वारा प्राप्ति का अभिप्राय श्रद्धा के आधार पर प्राप्त होना है।]

२९३. कोऽदात्कस्मा ऽअदात्कामोऽदात्कामायादात्। कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥४८॥

कौन (दक्षिणा) देता है ? किसके लिए (दक्षिणा) देता है ? कामनाएँ ही दान देने के लिए प्रेरित करती हैं, कामनाओं को ही दान दिया जाता है तथा कामनाएँ ही दान लेती हैं। यहाँ कामनाएँ ही सब कुछ हैं ॥४८॥

[जैसी कामनाएँ होंगी, वैसा कर्म होगा, इसलिए यज्ञ करने तथा उसके प्रभाव के विस्तार के लिए यज्ञीय कामनाएँ ही अभीष्ट हैं।]

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— गोतम १-६ । वसिष्ठ ७ । मधुच्छन्दा ८,३३ । गृत्समद ९, ३४ । त्रसदस्यु १० । मेधातिथि ११ । अवत्सार काश्यप १२-१५ । वेन १६-१८ परुच्छेप १९-२३ । भरद्वाज २४-२५, ३९ । देवश्रवा २६-३० । विश्वामित्र ३१, ३५-३८ । त्रिशोक ३२ । वत्स ४० । प्रस्कण्व ४१ । कुत्स आंगिरस ४२,४५-४८ । अगस्त्य ४३,४४ ।

देवता—प्राण १ । लिंगोक्त, सोम २ । उपांशु, देवगण, सोमांशु, ग्रह, उपांशु-सवन ३ । इन्द्र ४ । मघवा ५ । उपांशु, देवगण, ग्रह ६ । वायु ७ । इन्द्र-वायु ८ । मित्रावरुण ९-१० । अश्विनीकुमार ११ । विश्वेदेवा १२, १९, २१, ३३-३४ । शुक्र, आभिचारिक, शकल १३ । सोम, इन्द्र १४ । इन्द्र, लिंगोक्त १५ । वेन १६ । सोम, आभिचारिक, शुक्र-मन्थी, दक्षिणोत्तरवेदिका-श्रोणी १७ । मन्थी, आभिचारिक, शकल १८ । आग्रयण लिंगोक्त२० । ग्रह लिंगोक्त २२-२३, ३० । वैश्वानर २४ । ध्रुव, इन्द्र २५ । सोम, चात्वाल२६ । उपांशुसवन आदि लिंगोक्त २७ । आग्रयण आदि लिंगोक्त २८ । प्रजापति २९ । इन्द्र-अग्नि ३१ । अग्नि-इन्द्र ३२ । इन्द्रामरुत् ३५-३८ । महेन्द्र ३९-४० । सूर्य ४१-४२ । अग्नि ४३-४४ । दक्षिणा ४५ । लिंगोक्त ४६-४८ ।

छन्द—निचृत आर्षी अनुष्टुप् १ । निचृत् आर्षी पंक्ति२ । विराट् ब्राह्मी जगती ३ । आर्षी उष्णिक् ४,४८ । आर्षी पंक्ति ५ । भुरिक् त्रिष्टुप् ६ । निचृत् जगती ७ । आर्षी गायत्री, आर्षी स्वराट् गायत्री ८ । आर्षी गायत्री, आसुरी गायत्री ९ । ब्राह्मी बृहती १० । ब्राह्मी उष्णिक् ११ । निचृत् आर्षी जगती, पंक्ति १२ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप्, प्राजापत्या गायत्री १३ । विराट् जगती १४ । निचृत् ब्राह्मी अनुष्टुप् १५ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप्, साम्नी गायत्री १६ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् १७ । निचृत् त्रिष्टुप्, प्राजापत्या गायत्री १८ । भुरिक् आर्षी पंक्ति १९ । निचृत् आर्षी जगती २० । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्, याजुषी जगती २१ । विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २२ । अनुष्टुप्, प्राजापत्या अनुष्टुप्, स्वराट् साम्नी अनुष्टुप्, भुरिक् आर्ची गायत्री, भुरिक् साम्नी अनुष्टुप् २३ । आर्षी त्रिष्टुप् २४, ३१ । याजुषी अनुष्टुप्, (दो) विराट् आर्षी बृहती २५ । स्वराट् ब्राह्मी बृहती २६ । (तीन) आसुरी अनुष्टुप्, (दो) आसुरी उष्णिक्, साम्नी गायत्री, आसुरी गायत्री २७ । ब्राह्मी बृहती २८ । आर्ची पंक्ति, भुरिक् साम्नी पंक्ति २९ । (छः) साम्नी गायत्री, (चार) आसुरी अनुष्टुप्, (दो) याजुषी पंक्ति, आसुरी उष्णिक् ३० । आर्षी गायत्री, आर्ची उष्णिक् ३२ । आर्षी गायत्री, निचृत् आर्षी उष्णिक् ३३, ३४ । आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्ची पंक्ति ३५ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्ची पंक्ति, साम्नी उष्णिक् ३६ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्ची पंक्ति ३७,३८ । भुरिक् पंक्ति, साम्नी त्रिष्टुप् ३९ । आर्षी गायत्री, विराट् आर्षी गायत्री ४० । भुरिक् आर्षी गायत्री ४१ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् ४२-४४,४६ । विराट् जगती ४५ । भुरिक् प्राजापत्या जगती, स्वराट् प्राजापत्या जगती, निचृत् आर्ची जगती, विराट् आर्ची जगती ४७ ।

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ अथाष्टमोऽध्यायः ॥

२१४. उपयामगृहीतोस्यादित्येभ्यस्त्वा। विष्ण ऽ उरुगायैष ते सोमस्त थ्ठ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥१ ॥

हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं । आदित्यों के सदृश तेजस्विता के लिए आपको हम ग्रहण करते हैं । महान् स्तोत्रों से सुशोभित हे विष्णो ! यह सोमरस आप के प्रति समर्पित है । आप इस सोमरस को रक्षित करें । शत्रु आपका दमन न करने पाएँ ॥१ ॥

२१५. कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन् भूयऽ इन्नु ते दानन्देवस्य पृच्यतऽ आदित्येभ्यस्त्वा ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हिंसक प्रवृत्ति से सर्वथा रहित हैं । यजमान द्वारा प्रदत्त हविष्य को अति निकट के स्थान से ग्रहण करते हैं । हे श्रेष्ठ ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रदेव ! याजक द्वारा प्रदत्त हवि के प्रतिदान स्वरूप आपका दान सम्पन्नता बढ़ाने वाला होता है । हे इन्द्रदेव ! हम आदित्यों के स्नेह भाव के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥२ ॥

२१६.कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी। तुरीयादित्य सवनं तऽ इन्द्रियमातस्थावमृतन्दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥३ ॥

हे आदित्य ! आप आलस्य, प्रमादादि से सर्वथा रहित हैं । आप देवों एवं मानवों-दोनों को ही श्रेष्ठ रीति से संरक्षित करते हैं । आपकी जो शक्ति-सामर्थ्य, छल-छद्म से रहित, अविनाशी और दिव्य आनन्दप्रद है, वह सूर्य मण्डल में स्थापित है । हे आदित्यग्रह (पात्र) ! हम आदित्य देव की प्रसन्नता हेतु आपको ग्रहण करते हैं ॥३ ॥

२१७. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः। आ वोर्वाची सुमतिर्ववृत्यादथ्ठहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥४ ॥

देवताओं के सुख के निमित्त यह यज्ञ है, अतएव हे आदित्यगण ! आप हम सबके लिए कल्याणकारी हों । आपकी शुभ संकल्पयुक्त मति हमें उपलब्ध हो । पापात्माओं की जो बुद्धि धनोपार्जन में संलग्न है, वह भी हमारे अनुकूल हो (यज्ञीय भाव उनमें भी जागे) । हे सोम ! आदित्यों की प्रसन्नता के लिए हम आपको ग्रहण करते हैं ॥४ ॥

२१८. विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽ एधते गृहे ॥५ ॥

हे आदित्य ! आप अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाश के निमित्त कारण हैं । पात्र में स्थित सोमरस आपके सेवन योग्य है । इससे (सोमरस सेवन से) आप सब प्रकार से प्रसन्नचित्त रहें । हे पुरुषार्थी मनुष्यो ! तुम अपनी वाणी में सुसंस्कारिता को धारण करो । जब गृहस्थाश्रम में दम्पती धर्माचरण का निर्वाह करते हैं, तभी पावन-सुसंस्कारवान् पुत्र उत्पन्न होते हैं और नित्य ही समृद्धि को प्राप्त होकर, वे दुष्कर्मों और ऋणादि से निवृत्त रहते हुए श्रेष्ठ गृह में निवास करते हैं ॥५ ॥

२९९. वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्य ँ सावी: । वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाज: स्याम ॥६ ॥

हे सर्व उत्पादक सवितादेव ! आज हमारे लिए श्रेष्ठ सुखों को प्रदान करें और अगला दिवस भी श्रेष्ठ सुख प्रदायक हो । इस प्रकार प्रतिदिन उत्तम सुखों को प्रदान करें । हे दिव्यगुण सम्पन्न देव ! हम निश्चित ही श्रेष्ठ-वैभव सम्पन्न गृह में निवास करने वाले, श्रेष्ठ बुद्धि से, सभी श्रेष्ठ सुखों का उपभोग करने में समर्थ हों ॥६ ॥

३००. उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि चनोधाश्चनोधाऽ असि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥७ ॥

हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में सेवन करने योग्य हैं । आप सवितादेव से सम्बन्धित अन्न को संवर्द्धित करने में समर्थ हैं । अत: हमें अन्न प्रदान करें । आप यज्ञ और यज्ञपति को पूर्णता प्रदान करें । हम सम्पूर्ण वैभवादि से युक्त, सर्वप्रेरक सवितादेव के लिए आपको ग्रहण करते हैं ॥७ ॥

३०१. उपयामगृहीतोसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नम: । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य: ॥८ ॥

हे सोम ! आप श्रेष्ठ नियमानुशासन से सम्बद्ध हैं, श्रेष्ठ सुखप्रद गृह से युक्त हैं, अति महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य के निर्वाह में सक्षम हैं, ऐसे आपको हमारा नमन है । जगत् सृजेता और बहुसेचन-गुणसम्पन्न प्रजापति के लिए यह अन्न अर्पित है । हम आपको विश्वेदेवा की प्रसन्नता के लिए स्थापित करते हैं ॥८ ॥

३०२. उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम तऽ इन्दोरिन्द्रियावत: पत्नीवतो ग्रहाँ२ ऋध्यासम् । अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् । अह ँ सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥९ ॥

हे दिव्य सोम ! आप उपयाम- पात्र (मर्यादापूर्वक रहने वाले सुपात्रों) में ग्रहण करने योग्य हैं । अतएव ब्रह्मनिष्ठ ऋत्विजों द्वारा प्रेरित हुए आपको एवं मधुरता प्रधान शक्ति को-ग्रहों (ग्रहपात्रों) को हम धर्मपत्नी के साथ समृद्ध करते हैं । हम आत्मरूप होकर उच्च स्थान और भूमि पर विस्तार पाएँ । अन्तरिक्ष, पिता के सदृश हमारा पालक है । हम सूर्य के दोनों ओर (पदार्थ-परक स्थूलपक्ष तथा चेतना-परक सूक्ष्मपक्ष) से दर्शन करें और सर्वोत्कृष्ट जो हृदयरूपी गुहा अत्यन्त गोपनीय है अथवा वेदज्ञों के हृदय में जो परम तत्त्व-ज्ञान है, उसका भी हम दर्शन करने में सक्षम हों ॥९ ॥

३०३. अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥१० ॥

हे अग्ने !त्वष्टादेव के समान आप सपत्नीक प्रेमपूर्वक सोमपान करें, ये आहुतियाँ आपके प्रति समर्पित हैं । हे उद्‌गाता !आप तेजस्वी वीर्य को धारण करने में और संतान-पालन में सक्षम हैं, अत: हममें वीर्य (पराक्रम) की स्थापना करें । ऐसे गुणों से युक्त आपके सान्निध्य से हम शक्तिवान्, अति पराक्रमशाली सुसंतति से युक्त हों ॥१० ॥

३०४. उपयामगृहीतोसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा । हर्योर्धाना स्थ सहसोमा ऽइन्द्राय ॥११ ॥

हे सोम ! आप उपयाम- पात्र में ग्रहणीय हैं । आप हरितवर्णी रसरूप हैं । ऋग्वेद और सामवेद की स्तुति हेतु आपको धारण करते हैं । आपको इन्द्र के रथ के दोनों अश्वों के लिए नियोजित करते हैं । हे सोम से युक्त धान्य ! आप इन्द्रदेव के दोनों हर्यश्वों (हरितवर्णी अश्वों) के लिए ग्रहण करने योग्य हैं ॥११ ॥

३०५. यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽ इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥१२॥

हे सोमसिक्त धान्य ! यजुर्वेद के मंत्रों से जिसकी कामना की गयी है, ऋक् मंत्रों से स्तुत्य तथा साम के स्तोत्रों द्वारा संवर्द्धित आपका सेवन अश्वों और गौओं को भी प्रेरणा देने में समर्थ है । आपके सेवन से प्राप्त होने वाले अभीष्ट फल की इच्छा से युक्त हम आपका सादर सेवन करते हैं ॥१२॥

३०६. देवकृतस्यैनसोवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोवयजनमसि पितृकृतस्यैनसो-वयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोवयजनमस्येनसऽ एनसोवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोवयजनमसि ॥१३॥

(यज्ञ शाकल्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं ।) आप देवताओं के प्रति (यज्ञादि कर्मों की उपेक्षा के कारण) हुए पापों को दूर करने वाले हैं । मनुष्यों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, निन्दादि स्वभावगत दोषों के कारण हुए पापों को हटाने वाले हैं । पितरजनों के प्रति (श्राद्ध-तर्पण आदि कर्मों से रहित) हमारे पापों का शमन करने वाले हैं, आत्मा के प्रति आत्मघाती (आत्मा की आवाज को दबाकर, हुए) पापों से मुक्त करने वाले हैं । आप प्रथम अपराध तथा दूसरे अपराध जन्य पापों का निवारण करने वाले हैं । जो जान बूझकर और नासमझीवश अपराध कर्म हमसे हुए हैं, उन सभी पापों का निवारण करने में आप सक्षम हैं, अतः हमें सम्पूर्ण पापों से विमुक्त करें ॥१३

३०७. सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥

हम सब ब्रह्मतेज से सम्पन्न, दुग्धादि रसों से परिपूर्ण, श्रेष्ठ शरीर और शिवसंकल्पकारी मन से सदा युक्त रहें । श्रेष्ठ दान-प्रदाता त्वष्टादेव, हमें ऐश्वर्य प्रदान करें तथा हमारे शरीर में जो कमी है, उसे भी दूर करें ॥१४॥

३०८. समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या । सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥१५॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमें श्रेष्ठ मन, गाय आदि पशुओं और ज्ञानीजनों तथा श्रेष्ठ कल्याणकारी भावनाओं से युक्त करें । ज्ञान से प्रेरित दिव्य मानवों द्वारा, जो श्रेष्ठ कर्म सम्पादित होते हैं, उससे हमें जोड़ें । जो सत्कर्म हमें देवताओं के अनुग्रह प्रदान करते हैं, वे यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ मति के साथ आपके निमित्त समर्पित हों ॥१५॥

३०९. सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स ꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१६॥

हम सब लोग सदैव ब्रह्मवर्चस, जल, सुदृढ़ शरीरों और शुभ संकल्पकारी पवित्र मन से युक्त रहें । श्रेष्ठ पदार्थों के दाता, सर्वप्रेरक परमात्मा हमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें और हमारे शरीर में जो विकार हैं, वे सभी दूर हों ॥१६॥

३१०. धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः । त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ॥१७॥

दानशील धाता (विधाता), सर्वोत्पादक सविता, प्रजा के पालक-प्रजापति, देदीप्यमान अग्निदेव, त्वष्टादेव और सर्वव्यापक विष्णुदेव—ये सभी देवगण हमारी आहुति को स्वीकार करें । ये सभी देवता यजमान की सुसंतति से प्रसन्न होकर, उन्हें प्रचुर धन, साधनादि प्रदान करें । हमारी यह आहुति उत्तम रीति से ग्रहण करें ॥१७॥

३११. सुगा वो देवाः सदनाऽ अकर्म यऽ आजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः । भरमाणा वहमाना हवीꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥

हे देवताओ ! यज्ञ का सेवन करने के लिए आप जो यहाँ पधारे हैं, इसलिए ये स्थान आपके लिए सुगम कर दिए गये हैं । हे सबके आश्रय दाता देवगण ! आप हवियों का उपभोग करते हुए और उनको वहन करते हुए, हमें ऐश्वर्य प्रदान करें — ये आहुतियाँ आपके प्रति समर्पित हैं ॥१८॥

३१२. याँ२ आवहऽ उशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे । जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेसु घर्मꣳ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥१९॥

हे अग्निदेव ! हविष्यान्न की कामना करने वाले जिन देवताओं को आपने आमंत्रित किया है, उन सभी देवताओं को यथास्थान प्रेरित करें ।हे देवगण !हवियों को ग्रहण करते हुए, सोम पीकर तृप्त हुए आप, इस यज्ञ के पूर्ण होने पर प्राणरक्षक वायुमण्डल या सूर्यमण्डल में आश्रित* हों, ये आहुतियाँ आपके प्रति समर्पित हैं ॥१९॥

[* यज्ञीय ऊर्जा से प्रकृति चक्र के अनुकूलन में देवशक्तियाँ समर्थ होती हैं ।]

३१३. वयꣳ हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह । ऋधगयाऽ ऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपयाहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०॥

हे अग्निदेव ! इस स्थल पर, जिस यज्ञ के निमित्त हमने आपको बुलाया एवं धारण किया, उस यज्ञ को संवर्धित करते हुए आपने विधिवत् उसे सम्पादित किया । ज्ञान सम्पन्न *आप, यज्ञ को पूर्ण हुआ जानकर अपने स्थान को प्रस्थान करें और इस आहुति को भली प्रकार स्वीकार करें ॥२०॥

[* यज्ञाग्नि केवल पदार्थ परक ऊर्जा नहीं है, विचार (इन्टेलिजैन्स) युक्त चेतन शक्ति है ।]

३१४.देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽ इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥

यज्ञीय कर्मों के ज्ञाता हे देवगण ! आप हमारे यज्ञ में पधारें तथा यज्ञ से संतुष्ट होकर अपने-अपने गन्तव्य स्थान के लिए प्रस्थान करें । हे मन के अधिष्ठाता देव ! इस यज्ञ को श्रेष्ठ ओषधियों से परिपूर्ण करें और वायु का शोधन करें — यह आहुति आपके प्रति समर्पित है ॥२१॥

३१५. यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा । एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥२२॥

हे यज्ञदेव ! आप यज्ञ को प्राप्त करें (प्रकृति का सन्तुलन बनाने वाले यज्ञीय तंत्र को प्रभावित-पुष्ट करें) और यज्ञ को सम्पन्न करने वाले याजक के पास जाएं । आप अपने आश्रय स्थान की ओर जाएँ । यह आहुति श्रेष्ठ रीति से स्वीकार करें । हे यजमान ! आपका यह यज्ञ, श्रेष्ठ श्रौत-यज्ञों और अनेक वीर पुरुषों से सर्वांगपूर्ण है । आप इसे श्रेष्ठ विधि से स्वाहाकार करके सम्पन्न करें ॥२२॥

३१६. माहिर्भूर्मा पृदाकुः । उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ । अपदे पादा प्रतिधातवेकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् । नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥

अवभृथ स्नान के समय मेखलादि को एक ओर रखते हुए कहा जाता है—

सर्प के समान दुष्ट या अजगर के समान हिंसक न बनें । वरुणदेव (जो सबके द्वारा वरण करने योग्य हैं अथवा जो सबका वरण कर लेते हैं, ऐसे ईश्वर) ने सूर्यगमन के लिए विस्तृत मार्ग निर्धारित किया है । जहाँ पैर भी ठहर न सके, वे ऐसे अन्तरिक्ष स्थान पर भी चलने के लिए मार्ग विनिर्मित कर देते हैं और वे हृदय की पीड़ा का निवारण करने वाले हैं । दुष्टों का दमन करने वाले 'पाश' से युक्त वरुणदेवता को नमस्कार है ॥२३॥

[ऋषिगण परिचित थे कि सूर्य आदि नक्षत्रों के लिए भी बिना किसी ठोस आधार के सुनिश्चित पथ ईश्वर ने बनाया है, जिस पर वे गतिशील रहते हैं ।]

३१७. अग्नेरनीकमपऽ आ विवेशापां नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्यम् । दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥२४ ॥

हे अग्निदेव ! जल को नीचे न गिरने देने वाली अपनी क्षमता को जल में प्रविष्ट करें * । प्रत्येक यज्ञस्थल को विघ्नकारी असुरता से संरक्षित करते हुए समिधाओं को ग्रहण करें । हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालारूपी जिह्वा घृत धारण करने के लिए प्रेरित हो — यह आहुति अच्छी प्रकार से स्वीकार हो ॥२४ ॥

[* जल स्वभावतः नीचे की ओर जाता है, ऊर्जा उसे ऊपर उठाए रखने में समर्थ है ।]

३१८. समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥२५ ॥

हे सोम ! आपका हृदय समुद्र के गहरे जल में स्थित है । हम आपको उसी में स्थापित करते हैं । आपके प्रति ओषधियाँ और जल, प्रवहमान रहें । हे यज्ञपालक ! हम आपको श्रेष्ठ यज्ञ में वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ नमस्कार करते हुए , आहुति समर्पित करते हैं ॥२५ ॥

३१९. देवीरापऽ एष वो गर्भस्त ँ्ँ सुप्रीत ँ्ँ सुभृतं बिभृत । देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥२६ ॥

हे दिव्यगुणसम्पन्न जलसमूह ! यह सोमपात्र आपका उत्पत्ति-स्थान है । उसे श्रेष्ठ विधि से और स्नेहपूर्वक पोषित करते हुए ग्रहण करें । हे दिव्य सोम ! आपका आश्रय स्थान जल है, उसी में वास करके सुखी रहें तथा हमारे दुःखों का निवारण करके, हमें सुरक्षित करें ॥२६ ॥

३२०. अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि । देवाना ँ्ँ समिदसि ॥२७ ॥

हे अवभृथ नामक स्नानयज्ञ ! आप शीघ्रगामी हैं, निरंतर प्रवहमान हैं ; लेकिन अब अतिमन्द गति से प्रवाहित हों । देवों के प्रति हमसे जो पाप हुए हैं, उन्हें हमने जल में विसर्जित कर दिया है । मनुष्यों के प्रति हुए पापों को भी जल में विसर्जित कर दिया है । अनेक कष्टदायी शत्रुओं से आप हमारी सुरक्षा करें । आपके आश्रय से हम सभी पापों से मुक्त रहें । देवत्व-संवर्द्धक हमारी भावना जाग्रत् हो ॥२७ ॥

३२१. एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽ एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥२८ ॥

दस मास की पूर्णता पर गर्भ जरायु के साथ उसी प्रकार चलायमान हो, जिस प्रकार यह वायु प्रकम्पित होती है और समुद्र की लहरें कम्पायमान होती हैं । यह दस मास का पूर्ण गर्भ जरायुसहित उदर से बाहर आए ॥

३२२. यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगम ँ्ँ स्वाहा ॥२९ ॥

हे श्रेष्ठ नारी प्रकृति ! आपका गर्भ यज्ञीय भावना से प्रेरित है । आपका गर्भस्थान स्वर्ण के समान पवित्र है । जिसके सभी अवयव अखण्डित, अकुटिल और श्रेष्ठ हैं, उस पुरुष को मन्त्र द्वारा आपसे मिलाते हैं । प्रकृति की प्रजनन प्रक्रिया के लिए यह आहुति समर्पित है ॥२९ ॥

३२३. पुरुदस्मो विषुरूपऽ इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः। एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ता ᳬ स्वाहा ॥३०॥

दानशील, अनेक रूप वाला, धीर, मेधावी गर्भ अपनी महत्ता को प्रकट करे । गर्भ को अपने वश में — नियंत्रण में रखने वाली एक पदवाली (ब्रह्मरूप), दो पद वाली (प्रकृति एवं पुरुषरूप), तीन पद वाली (त्रि आयामी, त्रिगुणात्मक), चार पद वाली (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चार पुरुषार्थयुक्त), आठ पद वाली (चार वर्ण एवं चार आश्रम-युक्त) शक्ति को भुवनों में (यज्ञ के माध्यम से) विस्तार प्राप्त हो, इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥३०॥

३२४. मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥३१॥

दिव्य लोक के वासी, विशिष्ट तेजस्विता सम्पन्न हे मरुद्गण ! आपके द्वारा जिस यजमान के यज्ञस्थल में सोमपान किया जाता है, निश्चित ही वे चिरकाल पर्यन्त आपके द्वारा संरक्षित रहते हैं ॥३१॥

३२५. मही द्यौः पृथिवी च नऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥३२॥

महान् द्युलोक और पृथ्वीलोक, स्वर्ण-रत्नादि, धन-धान्यों से परिपूर्ण वैभव द्वारा हमारे इस श्रेष्ठ कर्मरूपी यज्ञ को सम्पन्न करें तथा उसे संरक्षित करें ॥३२॥

३२६. आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनᳬ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिन ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥३३

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! आपके हरितवर्ण के दोनों अश्व संकेत मात्र से चलने वाले हैं, अतः आप अश्वयुक्त रथ में विराजमान हों । सोम के अभिषवण से उत्पन्न शब्द आपके चित्त को यज्ञाभिमुख करे । हे सोम ! आप उपयाम पात्र में स्थिर हैं, हम आपको सोलह कलाओं से युक्त इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए धारण करते हैं ॥३३॥

३२७. युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा नऽ इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥३४॥

हे सोमरस-गृहीता इन्द्रदेव ! आप लम्बे केशयुक्त, शक्तिवान्, गन्तव्य तक ले जाने वाले दोनों घोड़ों को रथ में नियोजित करें । तत्पश्चात् सोमपान से तृप्त होकर हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाएँ सुनें । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं ; अतः सोलह कलाओं से परिपूर्ण परम वैभवशाली इन्द्रदेव के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं । हे ग्रह (पात्र) ! यह आपका आश्रय स्थान है, सोलह कलाओं से युक्त इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको ग्रहण करते हैं ॥३४॥

३२८. इन्द्रमिद्धरी वहतोप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥३५॥

सोम पीने वाले शत्रुविनाशक हे इन्द्रदेव ! गन्तव्य तक पहुँचाने वाले तीव्र गतिमान् दोनों अश्व आपको ऋषियों की श्रेष्ठ स्तुतियों और मनुष्य यजमानों के यज्ञ में ले जाते हैं । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं, आपका यह आश्रय स्थल है । अतः सोलह कलाओं से युक्त इन्द्र की प्रसन्नता हेतु आपको ग्रहण करते हैं ॥३५॥

३२९. यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति यऽ आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सᳬरराणस्त्रीणि ज्योतीᳬषि सचते स षोडशी ॥३६॥

जिन परमात्मा से उत्तम अन्य कोई नहीं है, जो सम्पूर्ण लोकों में संव्याप्त हैं, वे प्रजापालक, सोलह कलाओं से अपनी प्रजा में रमण करते हैं । वे तीनों ज्योतियों (सूर्य, विद्युत्, अग्नि) को अपने भीतर समाहित किए हुए हैं ।

३३०. इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽ एतम् । तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥३७ ॥

हे ग्रह (पात्र) ! जगत् के अधिपति इन्द्रदेव और वरुणदेव दोनों सर्वप्रथम आपके इस भोग्य पदार्थ का सेवन करते हैं, तत्पश्चात् हम उस सोम को ग्रहण करते हैं । सरस्वती प्राण के साथ संयुक्त होकर तृप्ति को प्राप्त करें ; इस हेतु यह आहुति समर्पित है ॥३७ ॥

३३१. अग्ने पवस्व स्वपाऽ अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् । उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा वर्चसऽ एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे । अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३८ ॥

उत्तम कर्म करने में कुशल हे अग्निदेव ! हमें तेजस्विता, पराक्रम एवं अपार वैभव-सम्पदा प्रदान करें । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में गृहीत हों । अग्रगामी तेजस्विता के लिए हम आपको धारण करते हैं । आपका यह आश्रय है । हे तेजवान् अग्निदेव ! आप देव-शक्तियों के बीच में अति तेजस्वी हैं । अतः आपकी कृपा से हम मनुष्यों में तेजस्विता का संचार हो ॥३८ ॥

३३२. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वौजसऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३९ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप अपने पराक्रम से प्रगति करते हुए पात्र में स्थापित सोमरस का पान करें तथा अपने हनु (ठोढ़ी) और नासिका को कम्पायमान कर प्रसन्नता व्यक्त करें । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में गृहीत हों । आपका यही स्थान है । सेवा में उपस्थित हुए हम याजकगण ओजस्वी पराक्रम के लिए आपको ग्रहण करते हैं ।सभी देवों में अग्रणी हे शक्तिशाली इन्द्रदेव !आप की भाँति हम भी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ पराक्रमशाली हों ॥

३३३. अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोहं मनुष्येषु भूयासम् ॥४० ॥

सूर्य रश्मियों की भाँति सभी मनुष्यों को विशेष रूप से दृष्टिगोचर होने वाली 'अग्नि' सर्वत्र प्रकाशित है । हे अतिग्राह्य ग्रह (पात्र) ! आप नियमपूर्वक पात्र में ग्रहण किये गये हैं । हम आपको तेजस्वी सूर्यदेव के निमित्त ग्रहण करते हैं । आपका यह आश्रय-स्थान है । ज्योतिर्मान्, तेजस्वी सूर्यदेव की प्रसन्नता के लिए आपको स्थापित करते हैं । हे तेजस्वी सूर्यदेव ! देवताओं में सर्वोत्कृष्ट आपकी भाँति हम भी मनुष्यों में देदीप्यमान हों ॥४० ॥

३३४. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् । उपयामगृहीतोसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥४१ ॥

ये ज्योतिर्मयी रश्मियाँ सम्पूर्ण प्राणियों के ज्ञाता सूर्य को एवं समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए विशेष प्रकाशित होती हैं । हे ग्रह ! आप उपयाम-पात्र में गृहीत हो, हम आपको ज्योतिर्मान् सूर्य के लिए स्वीकृत करते हैं । हे ग्रह ! आपका यह आश्रय स्थान है, तेजस्वी सूर्यदेव के निमित्त हम आपको स्थिर करते हैं ॥४१ ॥

३३५. आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥४२ ॥

हे महिमामयी गौ ! आप इस कलश (यज्ञ से उत्पन्न पोषणयुक्त मण्डल) को सूँघें (वायु के माध्यम से ग्रहण करें), इसके सोमादि पोषक तत्त्व आपके अन्दर प्रविष्ट हों । उस ऊर्जा को पुनः सहस्रों पोषक धाराओं द्वारा हमें प्रदान करें । हमें पयस्वती (दुधारू गौओं के पोषक-प्रवाहों) एवं ऐश्वर्य आदि की पुनः-पुनः प्राप्ति हो ॥४२ ॥

[पोषण प्रदायक होने के कारण वेदों ने पृथ्वी, प्रकृति एवं सूर्य किरणों को महान् गौ कहकर सम्बोधित किया है । उक्त कण्डिका का अर्थ इन्हीं संदर्भों में स्पष्ट होता है ।]

३३६. इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति । एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥४३ ॥

विभिन्न दैवी गुणों से सुशोभित हे धेनु ! आप सब के द्वारा प्रशंसनीय, रमणीय, यज्ञ के लिए उपयोगी, दूध-घी देने वाली, दैवी गुणों को बढ़ाने वाली, दूध का प्रवाह देने वाली, महिमामयी, सुप्रसिद्ध और वध न करने योग्य हैं । इस प्रकार हमारे द्वारा आवाहित आप, देवताओं के प्रति समर्पित इस श्रेष्ठ यज्ञ के प्रति देवताओं से कहें, जिससे वे हमारे निवेदन को स्वीकार करें ॥४३ ॥

३३७. वि नऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो अस्माँ२ अभिदासत्यधरं गमया तमः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विमृधऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥४४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रिपुओं को पराजित करें । रणक्षेत्र में हमारे विरोधियों को परास्त करें । जो हमें अपने अधीन रखना चाहते हैं, उनका जीवन घोर अन्धकारमय हो । हे ग्रह ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण किये गये हैं । आपको शत्रु-संहारक इन्द्रदेव के लिए ग्रहण करते हैं । आपका यह स्थान है, आपको यहाँ विशिष्ट रण-कौशल दिखाने वाले इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए स्थित करते हैं ॥४४ ॥

३३८. वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४५ ॥

जो महाव्रती वाचस्पति, मन के सदृश गतिशील, सर्वश्रेष्ठ कर्मों के निर्माता हैं । इस यज्ञ के निमित्त हम उनका (इन्द्रदेव का) आवाहन करते हैं । उत्तम कर्म करने वाले, सबके हितकारक वे हमारे हविष्यान्न को स्वीकार करें । हे ग्रह ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण किए गए हैं, यह आपका आश्रय-स्थल है । हम आपको विश्वकर्मा इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए समर्पित करते हैं ॥४५ ॥

३३९. विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४६ ॥

सम्पूर्ण उत्तम कर्मों को सम्पन्न करने वाले हे विश्वकर्मा देव ! आप वृद्धि करने वाले हविष्यान्नरूप साधनों से यजमान की रक्षा करने वाले हैं । ऋषियों के ज्ञान से प्रेरित साधक, आपको नमन करते हैं । आप विशेष आदरपूर्वक आवाहन करने योग्य हैं, इसीलिए आपको सभी प्रणाम करते हैं । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं । आपको विश्वकर्मा इन्द्रदेव की प्रसन्नता हेतु ग्रहण करते हैं । यह आपका स्थान है ; अतः आपको विश्वकर्मा इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए प्रतिष्ठित करते हैं ॥४६ ॥

३४०. उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेभिगरः ॥४७ ॥

(अदाभ्य पात्र में ग्रहण करके) हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं । गायत्री छन्द से धारण करने योग्य आपको हम अग्निदेव के निमित्त ग्रहण करते हैं। त्रिष्टुप् छन्द से वरण करने योग्य आपको इन्द्रदेव की प्रसन्नता हेतु स्वीकार करते हैं तथा जगती छन्द से आपको सर्वदेव-समूह के लिए धारण करते हैं । (हे अदाभ्यपात्र में स्थित सोम !) अनुष्टुप् छन्द में बद्धवाणी से हम आपकी स्तुति करते हैं ॥४७ ॥

३४१. व्रेशीनां त्वा पत्मन्ना धूनोमि कुकूननानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि भन्दनानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि मदिन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि मधुन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि शुक्रं त्वा शुक्रऽ आ धूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥४८ ॥

हे सोम ! मेघों में सन्निहित जल की वृष्टि हेतु आपको कम्पायमान करते हैं। संसार के लिए कल्याणकारी ध्वनि करने वाले मेघों के अन्दर जो जल है, उसकी वृष्टि हेतु आपको कम्पित करते हैं। अत्यन्त आनन्ददायक मेघों के भीतर जो जल है, उसके वर्षण के निमित्त आपको कम्पित करते हैं। अति संतुष्टिप्रद, मेघों के अन्दर जो जल है, उसकी वृष्टि के निमित्त आपको कम्पित करते हैं। जो मेघ अमृत रूपी जल से परिपूर्ण हैं, उनकी वृष्टि के निमित्त आपको कम्पायमान करते हैं। शक्ति-सम्पन्न, पवित्र — ऐसे आपको पवित्र जल के निमित्त कम्पित करते हैं तथा आपको दिवसरूप सूर्यदेव की किरणों के निमित्त कम्पित करते हैं ॥४८ ॥

३४२. ककुभꣳरूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥४९ ॥

हे सोम ! बलवान्-तेजस्वी आपका महान् स्वरूप सूर्य के समान प्रकाशित होता है। महान् आदित्य, सोम के आगे चलने वाले हैं, या सोम ही सोम के अग्रगामी हैं ।हे सोम ! आप हानि को प्राप्त न होने वाले, जीवन्त तथा जाग्रत् हैं ।इसके लिए हम आपको ग्रहण करते हैं। श्रेष्ठ कर्म में संलग्न हम आपको आहुति समर्पित करते हैं ॥४९

३४३. उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोपीहि ॥५० ॥

हे दिव्यगुणों से सम्पन्न सोम ! आप दीप्तिमान् अग्नि के प्रिय आहाररूप में उन्हें प्राप्त हों । हे देव सोम ! आप जितेन्द्रिय इन्द्र के प्रिय पेयरूप में उन्हें प्राप्त हों। हे देवसोम ! आप हमारे मित्र होकर सम्पूर्ण देव-समूह के प्रिय मार्ग का अनुसरण करें अर्थात् पोषण करते हुए सबको सन्तुष्ट करें ॥५० ॥

३४४. इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥५१ ॥

हे गौओ ! आपकी याजकों के प्रति प्रीति रहे । इनसे संतुष्ट रहकर आनन्दपूर्वक वास करें । यह आहुति आपको समर्पित है । जगत् को धारण करने वाले दिव्य अग्निदेव, धरती पर स्थूल अग्नि को प्रकट करें तथा वाष्पीकरण द्वारा धरती का जल सुखाकर प्राण-पर्जन्य के साथ वृष्टि करें । हमें पुत्र-पौत्रों के साथ अपार वैभव प्रदान करें। यह आहुति आपको समर्पित है ॥५१ ॥

३४५. सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽ अभूम। दिवं पृथिव्याऽ अध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥५२ ॥

हे सोम ! आप यज्ञ की समृद्धि को बढ़ाने वाले हैं । हम यजमान आपके सहयोग से सूर्यरूप ज्योति से ज्योतित होकर अमरत्व को प्राप्त करें तथा हम भूलोक से दिव्यलोक में आरोहण करें । हम देवों के ज्योतिर्मय स्वर्गलोक को देखने में समर्थ हों ॥५२ ॥

३४६. युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तं तमिद्धतं वज्रेण तं तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्। अस्माकꣳ शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥५३॥

युद्ध-क्षेत्र में आगे बढ़कर पराक्रम दिखाने वाले हे इन्द्रापर्वत देवो ! आप दोनों युद्ध करने वाले प्रत्येक शत्रु को अपने तीक्ष्ण वज्र के प्रहार से यमलोक पहुँचाएँ । हे वीर ! शत्रुओं द्वारा चारों ओर से घिर जाने पर, हमें उनसे मुक्त कराएँ। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तीनों लोकों में व्याप्त हे देव ! आपके अनुग्रह से हम सभी याजक श्रेष्ठ, वीर-पराक्रमी सन्तानों से युक्त होकर अपार धन-वैभव से लाभान्वित हों ॥५३॥

३४७. परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः। सविता सन्यां विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्यामिन्द्रश्च ॥५४॥

(हे याजको !) हे यज्ञ में प्रयुक्त 'परमेष्ठी' नाम वाले 'सोम' ! आप के लिए , (विघ्नों की उपस्थिति पर) **"परमेष्ठिने स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति दी जाए । स्तुति किये जाने पर प्रजापति नाम वाले सोम के लिए (विघ्नों की उपस्थिति पर) **"प्रजापतये स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति दें । सोम के अभिमुख होने पर 'अन्धनाम' होने से (यजमान किसी विघ्नोपस्थिति पर) **"अन्धसे स्वाहा"** मन्त्र से आज्याहुति अर्पित करें । सब के पोषक-संरक्षक सोम 'सविता' नाम होने पर (किसी विघ्नोपस्थिति में) **"सवित्रे स्वाहा"** मन्त्रोच्चारण से आज्याहुति दें । दीक्षा में सोम का विश्वकर्मा नाम होने से (विघ्नागमन पर) **"विश्वकर्मणे स्वाहा"** मन्त्र से आज्याहुति अर्पित करें । आरोग्यवर्द्धक किरणों को लाने वाले सोम के पूषा नाम होने पर **"पूष्णे स्वाहा"** मन्त्र से आज्याहुति दी जाए ॥५४॥

३४८. इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्टऽ ऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥५५॥

खरीदने के लिए तत्पर होने पर सोम का इन्द्रदेव और मरुद्‌देव नाम होने से (अनिष्टोपस्थिति पर) **"इन्द्राय मरुद्‌भ्यश्च स्वाहा"** मन्त्र से आज्याहुति दें । खरीदते समय 'असुर' नाम वाले सोम के लिए (अनिष्ट उपस्थित होने पर) **"असुराय स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति दें । मूल्य देकर प्राप्त किया हुआ सोम 'मित्र' नाम होने से (विघ्न आने पर) **"मित्राय स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति दें । यजमान की गोद में उपलब्ध सोम 'विष्णु' नामधारी होने पर (किसी विघ्न-निवारण हेतु) **"विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें । शकट पर रखकर ले जाया जा रहा सोम, विष्णु नाम से जाना जाता है । (कोई विघ्न आने पर) **"विष्णवे नरन्धिषाय स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति प्रदान करें ॥५५॥

३४९. प्रोह्यमाणः सोमऽ आगतो वरुण ऽ आसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽ इन्द्रो हविर्धाने थर्वोपावह्रियमाणः ॥५६॥

गाड़ी द्वारा आने वाला सोम, 'सोम' नाम से ही जाना जाता है, उसे (किसी विघ्नोपस्थिति पर) **"सोमाय स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें । चौकी पर सुरक्षित सोम 'वरुण' नाम होने पर (किसी विघ्नागमन की स्थिति में) **"वरुणाय स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति दें। आग्नीध्र में सन्निहित सोम 'अग्नि' नाम होने पर (विघ्नोपस्थिति पर) **"अग्नये स्वाहा"** मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें । हविष्यान्न के रूप वाला सोम 'इन्द्र' नाम से जाना जाता है । उसे (किसी विघ्नोपस्थिति में) **"इन्द्राय स्वाहा"** मन्त्र से आज्याहुति दें । अभिषव के लिए प्रस्तुत सोम 'अथर्व' नाम होने पर (किसी विघ्नोपस्थिति पर) **"अथर्वाय स्वाहा"** से आज्याहुति दें ॥५६॥

३५०. विश्वे देवाऽ अꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽ आप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥५७॥

भागों में खण्डित करके रखा गया सोम 'विश्वेदेवा' नाम होने पर (किसी विघ्नागमन पर) "**विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा**" से घृताहुति अर्पित करें । उपासकों का संरक्षक सोम 'विष्णु' नाम होने से (किसी विघ्न के आगमन पर) "**विष्णवे आप्रीतपाय स्वाहा**" से घृताहुति दें । अभिषव को प्राप्त होने वाला सोम 'यम' नाम से जाना जाता है, उसे (विघ्नोपस्थिति पर) "**यमाय स्वाहा**" से घृताहुति दें । अभिषुत सोम 'विष्णु' नाम वाला होता है, उसे (विघ्नोपस्थिति पर) "**विष्णवे स्वाहा**" से घृताहुति दें । शुद्धिकरण क्रिया में सोम 'वायु' संज्ञक होने पर (किसी विघ्नोपस्थित होने पर) "**वायवे स्वाहा**" से घृताहुति दें । शोधित किया जाने वाला पवित्र सोम 'शुक्र' नाम होने पर (यदि विघ्न आए तो) "**शुक्राय स्वाहा**" मंत्र से घृताहुति दें । पवित्र हुआ सोम दुग्ध में मिश्रित होने पर 'शुक्र' संज्ञक ही है, ऐसी स्थिति में (विघ्नोपस्थिति में) "**शुक्राय स्वाहा**" मंत्र से ही आज्याहुति दें । सत्तू में मिश्रण युक्त सोम 'मन्थी' नाम होने पर (विघ्नोपस्थिति पर) "**मन्थिने स्वाहा**" मन्त्र से आज्याहुति दें ॥५७ ॥

३५१. विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशᳬ सा: ॥५८ ॥

यज्ञ के लिए 'चमस' पात्र में स्थित सोम 'विश्वेदेवा' के नाम वाला होने पर (विघ्न की उपस्थिति में) "**विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा**" मंत्र से आज्याहुति दें । ग्रह यज्ञ के लिए प्रयुक्त सोम 'असु' नाम होने पर (विघ्न शान्ति के लिए) "**असवे स्वाहा**" मन्त्र से घृताहुति अर्पित करें । हवि के रूप में प्रयुक्त सोम 'रुद्र' नामवाला होने पर (विघ्न शान्ति के लिए) "**रुद्राय स्वाहा**" से आज्याहुति दें । अवशेष हविरूप सोम भक्षणार्थ लाया गया 'वात' नाम वाला है, उसे (विघ्न शान्ति के लिए) "**वाताय स्वाहा**" मन्त्र से घृताहुति दें । हे ब्रह्मन् ! यज्ञ से बचे हुए सोम को ग्रहण करें, इस प्रकार प्रार्थनाकृत सोम 'नृचक्ष' संज्ञक है, उसे (विघ्न शान्ति के लिए) "**नृचक्षसे स्वाहा**" से आज्याहुति दें । पान किया जाता हुआ सोम 'भक्षक' संज्ञक है, उसे (विघ्न के निवारणार्थ) "**भक्षाय स्वाहा**" से घृताहुति दें । भक्षण पश्चात् सोम 'नाराशंस' पितर संज्ञक है, (कोई विघ्न आने पर) उसे "**पितृभ्यो नाराशंसेभ्यः स्वाहा**" मंत्र से घृताहुति अर्पित करें ॥५८ ॥

३५२. सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाᳬ सि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा । या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥५९ ॥

अवभृथ (यज्ञोपरान्त पवित्र स्नान) के लिए प्रयुक्त सोम 'सिन्धु' नाम से जाना जाता है । उस समय (विघ्न उपस्थित होने पर निवारण हेतु) "**सिन्धवे स्वाहा**" से आज्याहुति दें । ऋजीष कुम्भ में जल के ऊपर रखा हुआ सोम 'समुद्र' संज्ञक है, उसे (विघ्नोपस्थिति पर) "**समुद्राय स्वाहा**" से घृताहुति दें । ऋजीष कुम्भ के जल में व्याप्त सोम 'सलिल' संज्ञक है, उसे (विघ्न उपस्थिति के निवारणार्थ) "**सलिलाय स्वाहा**" इससे घृताहुति दें । जिन विष्णु और वरुण के पराक्रम से ब्रह्माण्ड के घटक अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं, जो अपने पराक्रम से अत्यन्त बलशाली हैं तथा जो अपनी सामर्थ्य-शक्ति से अद्वितीय हैं, वे शत्रुओं को परास्त करते हैं, उनके लिए यज्ञ में प्रथम आहुति अर्पित की जाती है, यह मंगलमयी आहुति उनके लिए समर्पित है ॥५९ ॥

३५३. देवान्दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन्पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥६०

जो यज्ञ देवताओं और दिव्यलोक में गया, उस दिव्य यज्ञ के फल, दैवी अनुदान के रूप में, विशिष्ट ऐश्वर्य हमें प्राप्त हो ।जो यज्ञ अन्तरिक्ष को प्राप्त हुआ, उससे श्रेष्ठ धन हमें प्राप्त हो । जो यज्ञ पितरों और पृथ्वी को प्राप्त हुआ, उससे हमें वैभव की प्राप्ति हो तथा यह यज्ञ जिस-किसी लोक में भी गया हो, उससे हमारा मंगल हो ॥६० ॥

३५४. चतुस्त्रिंशत्तन्तवो ये वितत्निरे यऽ इमं यज्ञꣳ स्वधया ददन्ते । तेषां छिन्नꣳ सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो अप्येतु देवान् ॥६१ ॥

यज्ञों को संवर्द्धित करने वाले प्रजापति आदि चौंतीस देवता यज्ञ का विस्तार करते हैं तथा श्रेष्ठ-पोषक पदार्थ याजकों को प्रदान करते हैं । यज्ञ विस्तारक देवताओं से प्राप्त वैभव को हम यज्ञ-कार्य में ही नियोजित करते हैं । देवताओं के लिए समर्पित यह आहुति उनके आनन्द को बढ़ाने वाली सिद्ध हो ॥६१ ॥

[१ इन्द्र, १ प्रजापति और १ प्रकृति के साथ ८ वसु, ११ रुद्र और १२ आदित्य-कुल ३४ देवता यज्ञ के विस्तारक होते हैं]

३५५. यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान । स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥६२ ॥

यज्ञ का फल विभिन्न प्रकार से विस्तृत होकर आठों दिशाओं में अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो । यह यज्ञ-पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग में विस्तृत होकर हमें धन, सन्तान आदि अपार वैभव प्रदान करे । इस प्रक्रिया से हम सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करें— इसी निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥६२ ॥

३५६. आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥६३ ॥

हे सोम ! आप इस यूप-स्तम्भ को पवित्र करें । हमें स्वर्ग, अश्व, गौ और अन्नादि ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें—यह आहुति आपके प्रति समर्पित है ॥६३ ॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— कुत्स आंगिरस १-३ । कुत्स ४,५ । भरद्वाज बार्हस्पत्य ६-१३ । मनसस्पति १४,१६,२१ । अत्रि १५,१७-२०,२२ । मेधातिथि, शुनः शेप २३ । शुनः शेप २४-२६, २८-३० । अगस्त्य, शुनः शेप २७ । गोतम ३१, ३३, ३५ । मेधातिथि ३२ । मधुच्छन्दा ३४ । विवस्वान् ३६-३७ । वैखानस ३८ । कुरुस्तुति ३९ । प्रस्कण्व ४० । देवगण ४१, ४७-५२ । कुसुरुबिन्दु ४२, ४३ । शास भारद्वाज ४४-४६ । परुच्छेप ५३ । वसिष्ठ ५४-६२ । नैध्रुवि कश्यप ६३ ।

देवता— सोम, विष्णु १ । आदित्य २-४ । आदित्य, आशीर्वाद ५ । सविता ६,७ । विश्वेदेवा ८, १५ । सोम, प्रजापति रूप आत्मा ९ । अग्नि, प्रजापति १० । ऋक्साम, धान ११ । भक्षणीय द्रव्य १२ । अग्नि १३, १९, २०, २४, ३८ । त्वष्टा १४,१६ । धात्र आदि १७ । देवगण १८ । वात २१ । यज्ञ, यज्ञपति २२ । रज्जु, वरुण २३ । सोम २५, ४८-५०, ६३ । आपः (जल), सोम २६ ।यज्ञ, अग्नि २७ । गर्भ २८, ३० । वशा २९ । मरुद्गण ३१ । द्यावा-पृथिवी ३२ ।इन्द्र ३३-३६, ३९, ४४ । इन्द्र-वरुण अथवा षोडशी ३७ । सूर्य ४०,४१ । गौ ४२, ४३ । विश्वकर्मा ४५ । इन्द्र, विश्वकर्मा ४६ । अदाभ्य ४७ । पशु, अग्नि ५१ । यजमानानामात्म-स्तुति ५२ । इन्द्रापर्वत, इन्द्र ५३ । प्रजापति आदि ५४ ।इन्द्रादि ५५ । वरुणादि ५६ । विश्वेदेवा आदि ५७, ५८ । सिन्धु आदि, विष्णु-वरुण ५९ । आशीर्वाद लिंगोक्त ६० । घर्म ६१ । यज्ञ ६२ ।

छन्द— आर्ची पंक्ति १ । भुरिक् पंक्ति २ । निचृत् आर्षी पंक्ति ३ । निचृत् जगती ४ । प्राजापत्या अनुष्टुप्, निचृत् आर्षी जगती ५ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ६ । विराट् ब्राह्मी अनुष्टुप् ७ । प्राजापत्या गायत्री, निचृत् आर्षी बृहती ८ । प्राजापत्या गायत्री, आर्षी उष्णिक्, स्वराट् आर्षी पंक्ति ९ । विराट् ब्राह्मी बृहती १०,४७ । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् ११ । आर्षी पंक्ति १२,४३, ५५ । साम्नी उष्णिक्, (दो) निचृत् साम्नी उष्णिक्, निचृत् साम्नी अनुष्टुप्, भुरिक् प्राजापत्या गायत्री, निचृत् आर्षी उष्णिक् १३ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप् १४, १६ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् १५, १९, ३६ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् १७,२०, ६२ । आर्षी त्रिष्टुप् १८, २४ । स्वराट् आर्षी उष्णिक् २१ । भुरिक् साम्नी बृहती, विराट् आर्ची बृहती २२ । याजुषी उष्णिक्, निचृत् आर्षी त्रिष्टुप्, आसुरी गायत्री २३ । भुरिक् आर्षी पंक्ति २५ । स्वराट् आर्षी बृहती २६ । भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, स्वराट् आर्षी बृहती २७ ।(दो) भुरिक् साम्नी उष्णिक्, प्राजापत्या अनुष्टुप् २८ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् २९ । आर्षी जगती ३० । आर्षी गायत्री ३१, ३२ । आर्षी अनुष्टुप्, आर्षी उष्णिक् ३३ । विराट् आर्षी अनुष्टुप्, आर्षी उष्णिक् ३४, ३५ । साम्नी त्रिष्टुप्, विराट् आर्ची त्रिष्टुप् ३७ । भुरिक् त्रिपाद् गायत्री, स्वराट् आर्ची अनुष्टुप्, भुरिक् आर्ची अनुष्टुप् ३८ ।(दो) आर्षी गायत्री, आर्ची उष्णिक् ३९ ।(दो) आर्षी गायत्री, स्वराट् आर्षी गायत्री ४० । निचृत् आर्षी गायत्री, स्वराट् आर्षी गायत्री ४१ । स्वराट् ब्राह्मी उष्णिक् ४२ ।निचृत् अनुष्टुप्, स्वराट् आर्षी गायत्री ४४ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्षी अनुष्टुप् ४५ ।निचृत् आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्षी अनुष्टुप् ४६ । याजुषी पंक्ति, (दो) याजुषी जगती, साम्नी बृहती ४८ । विराट् प्राजापत्या जगती, निचृत् आर्षी उष्णिक् ४९ । भुरिक् आर्षी जगती ५०,५१ । निचृत् आर्षी बृहती ५२ । आर्षी अनुष्टुप्, आसुरी उष्णिक्, प्राजापत्या बृहती, विराट् प्राजापत्या पंक्ति ५३ ।निचृत् ब्राह्मी उष्णिक् ५४ । आर्षी बृहती ५६ । निचृत् ब्राह्मी बृहती ५७ ।भुरिक् आर्षी जगती ५८ । निचृत् जगती, विराट् आर्षी गायत्री ५९ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ६० । ब्राह्मी उष्णिक् ६१ । स्वराट् आर्षी गायत्री ६३ ।

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

३५७. देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा ॥१ ॥

हे तेजस्वी सविता देव ! इस यज्ञ को उत्तम विधि से पूर्ण करें । यजमान को धन-धान्य के लाभ के लिए प्रेरित करें । अन्न को पवित्र करने वाली दिव्य किरणों से हमारे अन्न को पवित्र बनाएँ और वाचस्पतिदेव हमारी अन्नरूप आहुति को ग्रहण करें ॥१ ॥

३५८. ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिविसदं त्वान्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥२ ॥

(हे सोमदेव !) आप सबसे अधिक योग्य, नेतृत्व करने वालों के पालक, मानव-समुदाय के मन में रमने वाले, स्थिररूप से प्रतिष्ठित इन्द्रदेव के आश्रय-स्थान हैं । इन्द्रदेव के योग्य जानकर आपको ग्रहण करते हैं । आप पहले उपयाम-पात्र में स्थापित हों । इसी प्रकार प्रजाओं में, आकाश में तथा घृत में, तेजस्वीरूप में विराजमान इन्द्रदेव के योग्य जानकर हम आपको ग्रहण करते हैं । आप द्वितीय उपयाम-पात्र में स्थापित हों । इसी तरह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, ज्ञानीजनों तथा दुःखों से रहित रूप में इन्द्रदेव के योग्य जानकर आपको ग्रहण करते हैं । यह आपका आश्रय स्थान है । आप तीसरे उपयाम-पात्र में भी स्थापित हों ॥२ ॥

३५९. अपा ᳪ रसमुद्वयस ᳪ सूर्ये सन्त ᳪ समाहितम् । अपा ᳪ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥

हे सोम ! प्रकाश (सूर्य) में रहनेवाले, सब प्रकार से धारण करने योग्य, जल के सार के भी सार, कल्याणकारी रूप, (अन्नादि हव्य को) हम, इन्द्रदेव तथा वायु के लिए चतुर्थ उपयाम-पात्र में स्थापित करते हैं । यह आपका स्थान है । सबसे प्रिय लगने वाले, हम आपको इन्द्रदेव के लिए ग्रहण करते हैं ॥३ ॥

३६०. ग्रहा ऽ ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोहमिषमूर्ज ᳪ समग्रभमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥४ ।

हे ग्रहो (सोमरस एवं आसव के पात्रो) ! आप मेधावियों को श्रेष्ठ मति प्रदान करते हैं । हम, याजकों के निमित्त (आपके अन्दर) उक्त रसों को ठीक प्रकार से स्थापित करते हैं । हे पाँचवें ग्रह (पात्र) ! आप नियमानुसार स्थापित किये गये हैं । इन्द्रादि देवताओं की प्रसन्नता के लिए हम, आपको ग्रहण करते हैं । यह आपका आवास है । आप दोनों साथ रहकर हमें कल्याण एवं सुख प्रदान करें और अलग रहकर पापों से हमें बचाएँ ॥४ ॥

३६१. इन्द्रस्य वज्रोसि वाजसास्त्वयायं वाज ᳪ सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म ᳪ साविषत् ॥५ ॥

यज्ञशाला में हविष्यान्न पहुँचाने वाले रथ की स्थापना के साथ यह मंत्र बोला जाता है । ऋषि पृथ्वी को अन्न प्रदान करने वाले तंत्र को संबोधित करते प्रतीत होते हैं—

आप इन्द्र के वज्र के समान अमोघ हैं । आप अन्न युक्त हैं, इसे (यज्ञ या याजक को) आपसे अन्न प्राप्त हो । हम अपनी वाणी (मंत्रों) से माता अदिति के समान धरती माता को अन्नादि प्राप्ति के लिए निश्चित रूप से प्रेरित करते हैं । यह समस्त विश्व जिनके प्रभाव क्षेत्र में स्थित है, वे सविता हमारे लिए धर्म को गतिशील बनाएँ ॥५ ॥

३६२. अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो व ऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजᳬ सेत् ॥६ ॥

जल के अन्तः स्थल में अमृत तथा पुष्टिकारक ओषधियाँ हैं । अश्व (गतिशील पशु अथवा प्रकृति के पोषक प्रवाह), अमृत और ओषधिरूपी जल का पान कर बलवान् हों । हे जलसमूह ! आपकी ऊँची तथा वेगवान् तरंगें हमारे लिए अन्नप्रदायक बनें ॥६ ॥

३६३.वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविᳬ शतिः । ते अग्रेश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिन्नवमादधुः॥

वायु, मन, गंधर्व, पृथ्वी को धारण करने वाले सत्ताइस नक्षत्र आदि पहले से ही अपने साथ अश्व (तीव्र गति) को जोड़े हुए हैं । वे इस यज्ञ को गतिशील बनाएँ ॥७ ॥

[सत्ताइस नक्षत्रों की संयुक्त आकर्षण शक्ति (म्युचुअल ग्रेविटेशन) ने ही पृथ्वी को साध रखा है । गतिशील (वायु, मन, नक्षत्रादि) की शक्ति से यह यज्ञ अनुप्राणित हो-ऐसा भाव है ।]

३६४. वातरᳬहा भव वाजिन्युज्यमानऽ इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽ आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥८ ॥

हे वाजिन् (अग्नि) ! रथ में जुड़ जाने पर आप वायु के समान वेग वाले बनें । दक्षिण भाग में रहकर इन्द्रदेव की शोभा बढ़ाएँ । मेधावी मरुद्गण आपको रथ में नियोजित करें और त्वष्टादेव आपके पैरों को वेगवान् बनाएँ ॥८

३६५. जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजितो वाजᳬ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥९ ॥

हे बलशाली ! जो आपकी गति हृदय में, श्येन पक्षी में तथा वायु में है, उस बल से बलशाली होते हुए हमें युद्ध में विजयी बनाएँ । युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर हमारा संकट दूर करें । हे अन्न विजेता ! बलशाली (अग्नि) अन्न प्राप्ति की कामना से बृहस्पति के चरु भाग को सूँघें (सूक्ष्मांश को ग्रहण करें) ॥९ ॥

३६६. देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकᳬ रुहेयम् । देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकᳬ रुहेयम् । देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् । देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् ॥१० ॥

सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाले सविता देव के अनुशासन में रहकर हम (याजकगण) बृहस्पतिदेव के श्रेष्ठ तथा इन्द्रदेव के उत्कृष्ट स्वर्ग में आरोहण करें । सत्य और न्याय से युक्त सभी सुखों के दाता सविता देवता की प्रेरणा से हम (याजकगण) बृहस्पतिदेव एवं इन्द्रदेव के उत्कृष्ट स्वर्ग में (यज्ञ में) आरूढ़ हुए ॥१० ॥

३६७. बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत । इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥११ ॥

दुन्दुभिवाद्यों के वादन को लक्ष्य करके यज्ञ के निमित्त उच्चारित स्वरों-मन्त्रों का प्रयोग करने वालों को प्रेरित करने का संकेत इन मंत्रों में है—

हे बृहस्पते ! आप विजय प्राप्त करें । (हे याजको !) बृहस्पतिदेव के लिए स्तुतियाँ बोलो, बृहस्पतिदेव को विजयी बनाओ । हे इन्द्रदेव ! आप विजय प्राप्त करें, (हे याजको !) इन्द्रदेव के लिए स्तुतियों का गायन करो, इन्द्रदेव को विजयी बनाओ ॥११॥

३६८. एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् । एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥१२॥

(हे दुन्दुभिवादक अथवा स्वर प्रयोगकर्त्ता !) एक साथ स्वर मिलाकर ऐसी वाणी निकालो, जिससे बृहस्पतिदेव को युद्ध में विजय प्राप्त हो । हे वनों (समूहों) के स्वामी ! अपने सैनिकों, घोड़ों और रथों को (संग्राम के लिए) छोड़ दो, जिससे इन्द्रदेव को विजय प्राप्त हो सके । विजय प्राप्ति के बाद हे सेनाध्यक्ष ! अपने सैनिकों, घोड़ों और रथों को (आराम के लिए) मुक्त कर दो ॥१२॥

३६९. देवस्याहᳬं सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥१३॥

सबको प्रेरणा देने वाले, सबको प्रकाशित करने वाले, सत्य के प्रेरक (सवितादेव तथा) बृहस्पतिदेव के अनुशासन में रहकर युद्ध में विजयी हों । संग्राम में हमें विजय दिलाने वाले वेगवान् हे अश्वो ! शत्रु के मार्ग को रोकते हुए गति के साथ कोसों (दूरी) को लाँघते हुए हमें सीमा पार पहुँचाओ ॥१३॥

३७०. एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्षऽ आसनि । क्रतुं दधिक्राऽ अनु सᳬं सनिष्यदत्पथामङ्काᳬं स्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥१४॥

यह अश्व, ग्रीवा, वक्ष (जीन रखने का स्थान) और मुख में (लगाम के रूप में) बँधा हुआ, यज्ञ के उद्देश्य से मार्ग की सभी बाधाओं को दूर कर, शब्द नाद करता हुआ आगे चलता है । उस पर बैठा वीर शीघ्रता से शत्रुओं पर शस्त्र से वार करता है, इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित है ॥१४॥

३७१. उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥१५॥

जो पराक्रम के साथ, पंख वाले तीर के समान वेगवान् , अश्व के समान अत्यन्त शीघ्रता से सत्यवाणी बोलते हुए चलता है, वही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है । यह आहुति इस हेतु अर्पित है ॥१५॥

३७२. शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोहिं वृकᳬं रक्षाᳬंसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१६॥

(यज्ञ में-युद्ध में) वाजिन् (बलशाली घोड़े, अग्नि) हमारे लिए कल्याणकारी हों और दैवी कार्य में यज्ञाहुतियों द्वारा और भी सुसज्जित हों । वे शीघ्र ही सर्प के समान कुटिलता वाले, भेड़िये के समान पीछे से आक्रमण करने वाले, विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों (प्रवृत्तियों) को हमसे दूर करें ॥१६॥

३७३. ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः । सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनᳬं समिथेषु जभ्रिरे ॥१७॥

प्रसिद्ध याज्ञिक, अश्वों पर सवारी करने वाले, बलवान्, असामान्यगति वाले वीर, हमारे शब्दों को सुनें । हजारों को तृप्त करने वाले, यज्ञ के अधिष्ठाता, (आवश्यकताओं की) आपूर्त्ति करने वाले वीर लोग (जीवन-संग्राम में) महान् ऐश्वर्यशाली बनते हैं ॥१७॥

३७४. वाजे-वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽ अमृताऽ ऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१८ ॥

हे बलशाली अश्वो (यज्ञाग्नि) ! मधुर रस के पान से तृप्त होकर देवयान मार्ग से आगे बढ़ो । मेधावी, दीर्घजीवी एवं सत्य मार्ग में जाने वाले आप हमें अन्नादि धन-धान्य से पूर्ण करके, हमारा पालन करें ॥१८ ॥

३७५. आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे । आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्त्वेन गम्यात् । वाजिनो वाजजितो वाज*ॐ* ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥१९ ॥

माता-पिता के रूप में, विश्वरूप द्यावापृथिवी हमारी रक्षा के लिए आएँ ।हमें अन्न उत्पादन का ज्ञान मिले, अमृतभाव के साथ सोम प्राप्त हो । हे बलवानो ! बृहस्पतिदेव के अन्न भाग को पवित्र चित्त होकर प्राप्त करो ॥१९ ॥

३७६. आपये स्वाहा स्वापये स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽ आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा ॥२० ॥

देवत्व की प्राप्ति के लिए, सुखों की उत्तम प्राप्ति के लिए, बार-बार जन्म लेने वाले देवताओं के लिए, यज्ञ रूप परमात्मा के लिए, प्रजापति के लिए, दिन के स्वामी के लिए, सुन्दर दिवस के लिए, अविनाशी सुन्दर दिन के लिए, अन्त तक पहुँचाने वाले अविनाशी के लिए, भुवन की सीमा के लिए, सम्पूर्ण भुवन के पति के लिए, अधिपति आदि सभी के लिए— ये आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं । सभी देव शक्तियाँ उन्हें स्वीकारें ॥२० ॥

३७७. आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजाऽ अभूम स्वर्देवा ऽअगन्मामृताऽ अभूम ॥२१ ॥

यज्ञ से हम दीर्घायु हों, हमारे प्राण की वृद्धि हो, नेत्रों की ज्योति बढ़े, श्रवण-इन्द्रियाँ समर्थ हों, हमारी पीठ का बल बढ़े, हमारे यज्ञ का विस्तार हो । हम सभी ईश्वर की सन्तान बनकर रहें । हम सभी मेधावी बन कर दिव्य सुख को प्राप्त करें और अमृततत्व प्राप्त करने में समर्थ हों ॥२१ ॥

३७८. अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाꣳसि सन्तु वः ।नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽ इयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२ ॥

हे दिशाओ !तुम्हारा सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धन, कार्य करने की सामर्थ्य तथा तेज हमें प्राप्त हो । माता पृथ्वी के लिए आदरसहित हमारा नमस्कार है । हे मातृभूमे ! आप संचालन करने वाली हैं तथा आपकी ही शासन-शक्ति है । आप ही हर प्रकार की व्यवस्था बनाने वाली तथा स्थिर आश्रयदाता हैं । आपको कृषि कार्य के लिए, जगत् के कल्याण के लिए, देश में ऐश्वर्य वृद्धि के लिए, प्रजापालन तथा अपने योग-क्षेम के लिए हम स्वीकारते हैं ॥२२ ॥

३७९. वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु । ताऽ अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥२३ ॥

सोम नामक दीप्तिमान् पदार्थ को अन्न उत्पादनकर्त्ता प्रजापति ने सबसे पहले ओषधि और जल के मध्य उत्पन्न किया । हमारे लिए यह सोम मधुर रस से युक्त हो । हम पुरोहितगण अपने राष्ट्र में जाग्रत् (जीवन्त) रहें । इसके लिए यह आहुति समर्पित है (ताकि हम अपने राष्ट्र को भी प्रगतिशील और जीवन्त रख सकें ।) ॥२३ ॥

३८०. वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् । अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥२४॥

अन्न के उत्पादक प्रजापति ने सम्पूर्ण भुवनों सहित द्युलोक को आश्रय दिया है ।वे प्रजापति आहुति देने के लिए हमारी बुद्धि को प्रेरित करें औरसुसन्तति सहित ऐश्वर्य प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥२४॥

३८१. वाजस्य नु प्रसवऽ आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥२५॥

अन्न के उत्पादक प्रजापति ने सब ओर से सम्पूर्ण भुवनों को उत्पन्न किया और वे सनातन, सर्वज्ञाता प्रजापति हमारे लिए प्रजा, पशुधन तथा समस्त ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए , सबसे ऊपर के स्थान में निवास करते हैं— यह आहुति उन (प्रजापति) के लिए समर्पित है ॥२५॥

३८२. सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥२६॥

हमारे पालन के लिए जिस प्रजापति ने राजा, सोम, अग्नि, बारह आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति देव को उत्पन्न किया है, उस प्रजापति का हम स्तवन करते हैं, यह आहुति उन(प्रजापति) के लिए समर्पित है ॥२६॥

३८३. अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ॥२७॥

हे परमात्मन् ! (आप) अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वाणी की अधिष्ठात्री देवीसरस्वती, विष्णु, सवितादेव एवं बलवान् देवगणों को दान करने के लिए प्रेरित करें— यह आहुति आपके लिए समर्पित की जा रही है ॥२७॥

३८४. अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव । प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदाऽ असि स्वाहा ॥२८॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे प्रति अच्छा मन (श्रेष्ठ भाव) रखकर इस यज्ञ में हमें हितकारी उपदेश करें । अकेले ही सहस्रों योद्धाओं को जीतने वाले हे अग्निदेव ! चूँकि आप ऐश्वर्यदाता हैं, इसलिए हमें भी धन-धान्य से पूर्ण करें— हमारी यह आहुति आपके लिए समर्पित है ॥२८॥

३८५. प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः । प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥२९॥

अर्यमा, पूषादेवता तथा वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हमारे लिए अभीष्ट दान प्रदान करें-हमारी यह आहुति आपके लिए समर्पित है ॥२९॥

३८६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥३०॥

सबको उत्पन्न करने वाले सविता देवता की सृष्टि में सरस्वती की --वाणी की-- प्रेरणा से अश्विन्देवों की भुजाओं तथा पूषादेवता के हाथों से आपको (यज्ञीय ऊर्जा को) धारण करते हैं और सुव्यवस्था बनाने वाले बृहस्पतिदेव के श्रेष्ठ नियंत्रण में इस साम्राज्य के संचालक के रूप में आपको स्थापित करते हैं ॥३०॥

३८७. अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥३१॥

अग्निदेव ने 'एकाक्षर' (दैवी गायत्री) के प्रभाव से उत्कृष्ट प्राण पर विजय प्राप्त की। हम भी उस एकाक्षर के प्रभाव से प्राण पर विजय प्राप्त करें । दो अक्षर (दैवी उष्णिक्) वाले छन्द के प्रभाव से अश्विनीकुमारों ने दो पैरों वाले मनुष्यों पर विजय प्राप्त की, हम भी इसके प्रभाव से मनुष्यों पर विजय प्राप्त करें । तीन अक्षर (दैवी अनुष्टुप्) वाले छन्द के प्रभाव से विष्णुदेव ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करें । चार अक्षर (दैवी बृहती) के मंत्र के प्रभाव से सोम ने चार पैर वाले पशुओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से पशुओं पर विजय प्राप्त करें ॥३१ ॥

[आध्यात्मिक संदर्भ में अग्नि (चेतना) को एक-अक्षर ब्रह्म के प्रति एकनिष्ठ बनाकर प्राणों को अनुशासित किया जाता है; अश्विनीकुमारों (स्वर्ग के वैद्यों) ने दो अक्षर-मंत्रों कर्म और संयम द्वारा मनुष्यों को अनुशासित किया : विष्णु (जगत् पालक) ने सूर्य, विद्युत् एवं अग्निरूप तीन ऊर्जा प्रवाहों से तीन लोकों को व्यवस्थित किया, सोम (पोषक प्रवाह) ने पशुओं (पाश बद्ध जीवों) को दिव्य पोषण द्वारा व्यवस्थित बनाया — ऐसा भाव लिया जाने योग्य है।]

३८८. पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश ऽ उदजयत्ता ऽ उज्जेषᳬं सविता षडक्षरेण षड़तूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥३२ ॥

पाँच अक्षर (दैवी पंक्ति) के छन्द के प्रभाव से पूषा देवता ने पाँच दिशाओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उन दिशाओं पर विजय प्राप्त करें । षड् अक्षर (दैवी त्रिष्टुप्) के छन्द के प्रभाव से सविता देवता ने छः ऋतुओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से छः ऋतुओं पर विजय प्राप्त करें । सात अक्षर (दैवी जगती) के मंत्र के प्रभाव से मरुत् देवता ने सात ग्राम्य गवादि (सात प्रकार के दूध देने वाले) पशुओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय प्राप्त करें । अष्टाक्षर (दैवी अतिजगती) मंत्र के प्रभाव से बृहस्पति देव ने गायत्री को सिद्ध किया, हम भी उसके प्रभाव से गायत्री को सिद्ध कर सकें ॥३२ ॥

[पूषा (पोषण करने वाले) देवताओं ने पाँच धाराओं में प्रवाहित पाँच प्राणों को पोषित किया; सविता देव को षट् शक्तियों से युक्त कहा गया है, षड् ऋतुओं को उन्होंने कल्याणप्रद बनाया; मरुत् के, सात लोकों में सात-सात प्रवाह (४९ मरुत्) कहे गये हैं, उन्होंने सप्त ग्रामों-समूहों-लोकों) के पशुओं (उनमें बद्ध जीवों) को अनुशासित किया; गायत्री छन्द में आठ-आठ मात्राओं के तीन चरण होते हैं, महान् बृहस्पति ने आठ अक्षरों से गायत्री विद्या पर अधिकार प्राप्त किया- यह भाव समीचीन है।]

३८९. मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतᳬं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र ऽ एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥३३ ॥

नवाक्षर (दैवी शक्वरी)छन्द के प्रभाव से मित्र देवता ने त्रिवृत् (ज्ञान, कर्म और भक्ति) स्तोम पर से विजय प्राप्त की । हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय प्राप्त करें । दशाक्षर (दैवी अतिशक्वरी) छन्द के प्रभाव से वरुण देवता ने विराट् पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विराट् पर विजय प्राप्त करें । एकादश अक्षर (दैवी अष्टि) के प्रभाव से इन्द्रदेव ने त्रिष्टुभ् स्तोमों पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विजय प्राप्त करें। बारह अक्षर(दैवी अत्यष्टि) के मंत्र के प्रभाव से विश्वेदेवों ने जगती स्तोमों पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से उन पर विजय प्राप्त करें ॥३३ ॥

[मित्रभावसम्पन्न देवसत्ता ने नौ द्वारों में संव्याप्त नौ शक्ति धाराओं से त्रिवृत् (कर्म, विचार एवं भाव क्षेत्र) को प्रभावित किया; वरुण (सबको आच्छादित करने वाले) देव ने पञ्च प्राणों एवं पञ्च भूतों से विराट् को प्रभावित किया। त्रिष्टुप् छन्द में ग्यारह-ग्यारह मात्राओं के चार चरण होते हैं, इन्द्र (संगठन सत्ता) ने ग्यारह रुद्र शक्तियों से त्रिष्टुभ् (त्रिलोक) को प्रभावित किया ; जगती छन्द में बारह-बारह मात्राओं के चार चरण होते हैं, विश्वेदेव ने बारह आकाशीय प्रकाश (राशियों) से जगती को प्रभावित किया - यह भाव ग्राह्य है।]

३९०. वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँ-स्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥३४ ॥

तेरह अक्षर वाले छन्द (दैवी धृति)के प्रभाव से वसुओं ने त्रयोदश (नव द्वार तथा चार अन्तःकरण) स्तोम को जीता, हम भी उसके प्रभाव से विजय प्राप्त करें । चौदह अक्षर (दैवी अतिधृति) छन्द के प्रभाव से रुद्रों ने चौदह रत्नों पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विजय प्राप्त करें । पन्द्रह अक्षर (आसुरी गायत्री) के छन्द के प्रभाव से आदित्यों ने पञ्चदश (चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग तथा कार्य कुशलता) स्तोम पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विजयी हों । सोलह अक्षर (प्राजापत्या अनुष्टुप्) के छन्द के प्रभाव से अदिति देवमाता ने षोडश (१६ कला समूह)स्तोम पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय प्राप्त करें । सत्रह अक्षर (निचृत् आर्ची गायत्री) के मंत्र के प्रभाव से प्रजापति ने सप्तदश (चार वर्ण, चार आश्रम, चार कर्म, चार पुरुषार्थ तथा अपनी मति) स्तोम पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय पाएँ ॥३४ ॥

३९१. एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः सद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽ उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥३५ ॥

हे पृथिवि ! यह भाग आपका है, इसे स्नेहपूर्वक स्वीकार करें । पूर्व दिशा में विराजमान अग्निदेवता के निमित्त, दक्षिण दिशा में विराजमान यम देवता के निमित्त, पश्चिम दिशा में विराजमान विश्वेदेवा के निमित्त, उत्तर दिशा में विराजमान मित्रावरुण या मरुत् देवता के निमित्त तथा ऊपरी भाग अन्तरिक्ष और द्युलोक में विराजमान हवि भोजी सोम के निमित्त सभी देवताओं की प्रसन्नता के लिए , ये आहुतियाँ समर्पित हैं । सभी देवशक्तियाँ स्नेहपूर्वक इन आहुतियों को स्वीकारें ॥३५ ॥

३९२. ये देवा ऽअग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥३६ ॥

पूर्व में स्थित वे देवता, जिनका नेतृत्व करने वाले अग्निदेव हैं, दक्षिण दिशा में स्थित वे देवता, जिनका नेतृत्व यम करते हैं, पश्चिम में स्थित वे देवता जिनका नेतृत्व विश्वेदेवा करते हैं, उत्तर में स्थित वे देवता, जिनका नेतृत्व मित्रावरुण या मरुत् करते हैं, द्युलोक में स्थित वे देवता, जिनका नेतृत्व हवि स्वीकार करने वाले सोम करते हैं, (उन सभी) के निमित्त ये श्रेष्ठ आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥३६ ॥

३९३. अग्ने सहस्व पृतनाऽ अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चोधा यज्ञवाहसि ॥३७ ॥

हे अग्निदेव ! आप शत्रु सेना को पराजित कर उनका संहार करें । हे अजेय अग्निदेव ! शत्रुओं का नाश कर यज्ञ करने वाले यजमान को खाद्यान्न प्रदान कर तेजस्वी बनाएँ ॥३७ ॥

३९४. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । उपाꣳशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥३८

संसार को उत्पन्न करने वाले सवितादेव की सृष्टि में प्राणवान् शक्तियों की सामर्थ्य से अश्विनीकुमारों की भुजाओं तथा पूषादेवता के दोनों हाथों से शत्रुओं के संहार के लिए आपको (उपांशु को) यह उत्तम आहुति समर्पित करते हैं। जिस प्रकार आपने शत्रुओं का नाश किया, उसी तरह हम लोग भी दुष्टों का विनाश करें । जैसे यह राक्षस नष्ट हुआ, उसी प्रकार हम भी इन (शत्रुओं—विकारों) को नष्ट करें ॥३८ ॥

३९५. सविता त्वा सवानाᳬ सुवतामग्निर्गृहपतीनाᳬ सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाचऽ इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥३९ ॥

हे याजक !सवितादेव यज्ञ कार्य के लिए तुम्हें प्रेरित करें । अग्निदेव गृहपतियों को प्रेरित करें । सोमदेव तुम्हारे लिए वनस्पति रूपी ओषधियाँ प्रदान करें । मेधा प्राप्ति के लिए बृहस्पतिदेव, बड़प्पन के लिए इन्द्रदेव, पशुधन के लिए रुद्रदेव, सत्य व्यवहार के लिए मित्रदेव तथा धर्म मार्ग में चलने के लिए वरुणदेव प्रेरित करें ॥

३९६. इमं देवाऽ असपत्नᳬ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽ एष वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानाᳬ राजा ॥४० ॥

हे देवगण ! महान् क्षात्रबल के सम्पादन के लिए, महान् राज्य पद के लिए, श्रेष्ठ जनराज्य के लिए, इन्द्रदेव के समान हर प्रकार से विभूतिवान् बनने के लिए, शत्रुओं से रहित, अमुक पिता के पुत्र, अमुक माता के पुत्र को प्रजा के पालन के लिए अभिषिक्त करें ।हे अमुक प्रजाजनो ! आप सभी के लिए तथा हम ज्ञानीजनों के लिए भी यह राजा चन्द्र के समान आह्लादक है ॥४० ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— बृहस्पति, इन्द्र १-१३ । दधिक्रावा वामदेव्य १४, १५ । वसिष्ठ १६, १८-२५ । नाभानेदिष्ठ १७ । तापस २६-३४ । वरुण, देवगण ३५ । देवगण ३६ । देवश्रवा-देववात भारत ३७-४० ।

देवता— सविता १ । इन्द्र २ । रस ३ । लिंगोक्त (ग्रह, सोमग्रह, सुराग्रह) ४ । रथ, पृथिवी, सविता ५ । अश्व ६, १४-१८ । अश्वस्तुति ७,८ । अश्वस्तुति, अश्व ९ । लिंगोक्त १०-१२ । लिंगोक्त, अश्व १३ । प्रजापति, अश्व १९ । प्रजापति २०, २३-२५ । प्रजापति, यजमान २१ । दिशा, पृथिवी, आसन्दी, सुन्वन् २२ । विश्वेदेवा २६ । अर्यमा आदि २७, २९ । अग्नि २८, ३७ । सविता, सुन्वन् ३० । अग्नि आदि ३१ । पूषा आदि ३२ । मित्र आदि ३३ । वसु आदि ३४ । पृथिवी, देवगण ३५ । देवगण ३६ । सविता, राक्षसघाती ३८ । यजमान ३९, ४० ।

छन्द— स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् १ । आर्षी पंक्ति, विकृति २ । निचृत् अति शक्वरी ३ । भुरिक् कृति ४, २० । भुरिक् अष्टि ५ । भुरिक् जगती ६ । उष्णिक् ७ । त्रिष्टुप् ८ । धृति ९ । विराट् उत्कृति १० । जगती ११,१४-१५,१७, २४, ३० । स्वराट् अतिधृति १२ । निचृत् अतिजगती १३ । भुरिक् पंक्ति १६ । निचृत् त्रिष्टुप् १८ । निचृत् धृति १९ । अत्यष्टि २१ । निचृत् अत्यष्टि २२ । स्वराट् त्रिष्टुप् २३, २५ । अनुष्टुप् २६ । स्वराट् अनुष्टुप् २७ । भुरिक् अनुष्टुप् २८ । भुरिक् आर्षी गायत्री २९ । स्वराट् अतिधृति ३१ । कृति ३२, ३३ । निचृत् जगती, निचृत् धृति ३४ । विराट् उत्कृति ३५ । विकृति ३६ । निचृत् अनुष्टुप् ३७ । भुरिक् ब्राह्मी बृहती ३८ । अतिजगती ३९ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ४० ।

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

३९७. अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः। याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥१॥

देवताओं ने मधुर स्वाद वाले, विशिष्ट अन्न- रस से युक्त, राजाओं के द्वारा भी सेवनीय, विवेक प्रदान करने वाले जल को ग्रहण किया । जिस जल से देवताओं का मित्रावरुणों ने अभिषेक किया और जिससे शत्रुओं को नष्ट करने वाले इन्द्रदेव का देवताओं ने राज्याभिषेक किया, उस जल को हम ग्रहण करते हैं ॥१॥

३९८. वृष्णऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्णऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥२॥

(हे कलकल ध्वनि करनेवाली धाराओ !) आप बलवान् पुरुष को उच्च पद पर पहुँचाने तथा राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं । इसके लिए आपको आहुति समर्पित है । आप सुखवर्षक राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं; अत: राज्य देने में समर्थ होकर, राजपद प्रदान करें । आपके लिए यह आहुति समर्पित है । आप राज्य देने में समर्थ हैं । अत: बलवान् सेना से युक्त (यजमान को) राज्य प्रदान करें ॥२॥

३९९. अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥३॥

हे जलसमूह ! आप अर्थोपार्जन करने वाले हैं, अत: हमें राष्ट्र प्रदान करें । इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप ऐश्वर्य के बल से सामर्थ्यवान् हैं, ओजस्वी और पराक्रमी हैं तथा राष्ट्र देने में समर्थ हैं, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप महान् बल तथा उत्तम सेनाओं से युक्त हैं, अत: राष्ट्र देने में समर्थ हैं ; इसके लिए यह आहुति समर्पित है ।आप हर प्रकार की सेना से युक्त, राष्ट्र देने में समर्थ हैं, अत: हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप समस्त जल के पालक, रक्षक तथा उन्हें अपने अधीन रखने में समर्थ हैं; अत: योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥३॥

४००. सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाऽ अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥४॥

हे जल समूह ! आप सूर्य की कान्ति से उत्पन्न हैं, स्वयं प्रकाशित होकर सबको तेज प्रदान करने वाले हैं। आप राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, हमें राष्ट्र प्रदान करें । आप सूर्य के समान तेजस्वी है, (अतः प्रभाव में) सूर्य के समान ही हैं, आप राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं, इसलिए हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। आप मनुष्यों को आनन्द देने वाले होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए उस सुखदाता व्यक्ति को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। आप गवादि पशुओं के पालनकर्त्ता तथा रक्षक होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए रक्षक पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। आप कामनाओं की पूर्ति करनेवाले होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए सामर्थ्यवान् को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। आप अत्यन्त बलशाली एवं महान् पराक्रमी होते हुए राष्ट्र प्रदाता हैं; अतः हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। आप प्रजा को सामर्थ्य प्रदान करने वाले तथा सामर्थ्ययुक्त राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं, अतः सामर्थ्यवान् व्यक्ति को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। आप श्रेष्ठ पुरुषों का पोषण एवं उनको धारण करने वाले हैं; अतः श्रेष्ठ गुणों से युक्त हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। आप समस्त विश्व के पोषणकर्त्ता तथा धारणकर्त्ता हैं, अतः पोषण करने वाले तथा धारण करनेवाले पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें। आप सभी विद्याओं एवं धर्मों के ज्ञाता तथा इन गुणों से युक्त राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं; अतः ऐसे धर्मज्ञ पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। हे मधुर रस वाले जलकणो ! माधुर्यमय जल समूह सहित महान् क्षात्रबल वाले पराक्रमी यजमान के लिए अपने रसों से अभिषिक्त करते हुए राष्ट्र प्रदान करें। हे जलकणो ! राक्षसों से न हारने वाले बल को आप इस क्षत्रिय (रक्षक) में स्थापित करते हुए इस स्थान पर प्रतिष्ठित हों ॥४॥

४०१. सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा ꣳशाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा ॥५॥

अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती, पूषा, बृहस्पति, इन्द्र, श्रेष्ठ उद्घोष, श्रेष्ठकाव्य, ऐश्वर्य, अर्यमादेवता तथा पुण्य-पाप के विभाग करने वाले देवों के निमित्त ये आहुतियाँ दी जाती हैं। जैसे आप ऐश्वर्यों के प्रकाशक हैं, उसी प्रकार हम भी आपके समान कान्तिवान् हों ॥५॥

४०२. पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥६॥

हे कुशद्वय ! इस यज्ञ में आप दोनों को पवित्रकारक के रूप में निरंतर उत्तम रीति से पवित्र करते हैं। आप दोनों पवित्र रहें । जिस प्रकार सूर्य-रश्मियों से जल पवित्र होकर ऊपर जाता है, उसी तरह हम आप दोनों को उन्नत करें । हे जलसमूह ! आप भ्रष्ट पापाचरण से रहित हैं। श्रेष्ठ वाणी द्वारा एक दूसरे से भ्राता के समान रहें। तपः शक्ति से राजा का पद देने में आप समर्थ हैं; अतः राज्य का ऐश्वर्य प्रदान करें । इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥६॥

४०३. सधमादो द्युम्निनीराप ऽ एता ऽ अनाधृष्टा ऽ अपस्यो वसानाः । पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाꣳ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥७॥

(अभिषेक के लिए पात्रों में स्थापित) यह जल आनन्ददायी, तेजस्वी, उत्तमकर्मा तथा पराजित न होने वाला है। यह आवास (घर) की तरह निवास प्रदान करने वाला, धारण करने वाला तथा माता की तरह पोषण देने वाला है। शिशुरूप यजमान आदरसहित इसे स्थापित करते हैं ॥७॥

४०४. क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्। दृवासि रुजासि क्षुमासि पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥८॥

यह मंत्र यज्ञ से उत्पन्न दिव्य वातावरण के प्रति तथा यज्ञ में प्रयुक्त उपकरणों को लक्ष्य करके कहा गया है—

आप क्षात्रबल के लिए उल्ब (गर्भ पोषक जल) एवं जरायु (गर्भ रक्षक झिल्ली) की तरह हैं। आप उसके उत्पादक स्थल तथा केन्द्र भी हैं। (धनुष की तरह) आप इन्द्र (यजमान) के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। मित्र और वरुण (धनुष की दोनों कोटि की तरह) साथ रहकर शत्रुओं का विनाश करें। (आप बाणों की तरह) शत्रुओं को चीरने वाले, उन्हें पीड़ा पहुँचाने वाले तथा भयभीत करने वाले हैं। आप (बाणों या वीरों की तरह इस क्षेत्र के यजमान की) पूर्व दिशा से, पश्चिम दिशा से, उत्तर दिशा से और सभी दिशाओं से रक्षा करें ॥८॥

४०५. आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्तऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाऽ आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाऽ आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवा-वावित्तादितिरुरुशर्मा ॥९॥

समस्त मानव समुदाय इसका (सूक्ष्म वातावण का) संरक्षण करें। इसे गृहपालक अग्निदेव, यशस्वी इन्द्रदेव, व्रतधारी मित्र एवं वरुणदेव, सर्वज्ञाता पूषादेव, समस्त विश्व का कल्याण करने वाले पृथ्वीलोक तथा द्युलोक, सुखस्वरूप देवमाता (अदिति) भी जानें (रक्षा करें) ॥९॥

४०६. अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्तऽ ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥१०॥

काटने वाले (मनुष्य को पीड़ा पहुँचाने वाले सर्पादि अथवा यज्ञ विरोधी तत्त्व) विनष्ट हुए। आप पूर्व दिशा की ओर बढ़ें। गायत्री छन्द, रथन्तर साम, त्रिवृत् स्तोम, वसन्त ऋतु तथा ज्ञानरूप धन (ब्रह्म द्रविण) आपकी रक्षा करें ॥१०॥

४०७. दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽ ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥

आप दक्षिण दिशा की ओर बढ़ें। त्रिष्टुप् छन्द, बृहत् साम, पञ्चदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु और पुरुषार्थरूपी धन आपकी रक्षा करें ॥११॥

४०८. प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् ॥

आप पश्चिम दिशा की ओर बढ़ें। जगती छन्द, वैरूप साम, सप्तदश स्तोम, वर्षा ऋतु तथा पोषणकारी धन आपकी रक्षा करें ॥१२॥

४०९. उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥

आप उत्तर दिशा की ओर बढ़ें। अनुष्टुप् छन्द, वैराज साम, एकविंश स्तोम, शरद ऋतु और फलदायी ऐश्वर्य आपकी रक्षा करें ॥१३॥

४१०. ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥१४॥

आप ऊपर की ओर बढ़ें। पंक्ति छन्द, शाक्वर और रैवत साम, त्रिणव और त्रयस्त्रिंश नामक दोनों स्तोम, हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुएँ तथा तेजरूप धन आपकी रक्षा करें। अनाचार में संलग्न प्रवृत्तियों - व्यक्तियों (नमुचों) को नष्ट कर दिया जाए ॥१४॥

४११. सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाह्योजोसि सहोस्यमृतमसि ॥

आप ऐश्वर्य के प्रकाशक, पराक्रमी, बलशाली तथा जन्म-मरण से मुक्त हैं । आपके ही समान हम प्रकाशवान्, बलशाली एवं पराक्रमी हों । हमारी मृत्यु से रक्षा करें ॥१५ ॥

४१२. हिरण्यरूपाऽ उषसो विरोकऽ उभाविन्द्राऽ उदिथः सूर्यश्च । आरोहतं वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोसि वरुणोसि ॥१६ ॥

हे मित्र ! हे वरुण ! आप दोनों स्वर्ण के समान तेजस्वी, राजा की तरह ऐश्वर्ययुक्त तथा उषाओं को प्रकाशित करते हुए सूर्य-चन्द्र की तरह उदित होते हैं ।अतः आप दोनों रथ पर आरूढ़ होकर विसंगठित व्यवस्था को संगठित करने का उपदेश करें । हे मित्र ! आप सुखस्वरूप हैं , हे वरुण ! आप बाधाओं का निवारण करने वाले हैं ॥१६ ॥

४१३. सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥१७ ॥

(हे यजमान !) आपको चन्द्रमा की कान्ति से, अग्नि के तेज से तथा इन्द्रदेव के बल से हम अभिषिक्त करते हैं । आप शौर्यवान् क्षत्रियों के क्षत्रपति बनें और हानि पहुँचाने वाली शक्तियों से प्रजा की रक्षा करें ॥१७ ॥

४१४. इमं देवाऽ असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽ एष वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥१८ ॥

हे देवो ! महान् क्षात्रबल के सम्पादन के लिए , श्रेष्ठ राज्यपद के लिए, महान् जनराज्य के लिए , इन्द्रदेव के समान ऐश्वर्यशाली बनने के लिए , शत्रुहीन, अमुक पिता के पुत्र, अमुक माता के पुत्र को प्रजापालन के लिए अभिषिक्त करें । हे प्रजाजनो ! यह आप लोगों को उल्लसित करने वाला राजा है और ये सोम हम ब्राह्मणों के राजा हैं ॥१८ ॥

४१५. प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचऽ इयानाः। ताऽ आववृत्र-न्नधरागुदक्ताऽ अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः। विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥१९ ॥

अभिषेक के समय श्रेष्ठ राजा की पीठ से सिंचन करनेवाली जल-धाराएँ इस प्रकार बहती हैं, जैसे पर्वत के पृष्ठ भाग से जलधाराएँ बहती हैं । ये जलधाराएँ जैसे पर्वत के नीचे बहती हुई पर्वत को घेरती हैं, उसी प्रकार ये ऐश्वर्यवान् को घेर कर बहती हैं । यह पृथ्वी (प्रथम चरण में) विष्णु (वामन अवतार) अथवा यज्ञ के द्वारा जीती गयी है । अन्तरिक्ष (द्वितीय चरण में) विष्णु के द्वारा जीता गया है । स्वःलोक (तीसरे चरण में) विष्णु के द्वारा जीता गया है (अभिषिक्त राजा को भी ऐसा ही पराक्रमी होना चाहिए) ॥१९ ॥

४१६. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पितासावस्य पिता वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा । रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन्हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥२० ॥

हे प्रजापालक ! इस संसार में आपके अतिरिक्त और कोई दूसरा स्वामी नहीं है । हम जिस कामना से आपके निमित्त यज्ञ करते हैं, वह पूर्ण हो । यह अमुक का पिता है और इसका पिता यह अमुक है । (आप सभी के पिता हैं) । धर्माचरण और उत्तम व्यवस्था से हम ऐश्वर्यवान् बनें, इस हेतु यह आहुति समर्पित है । हे घर-घर में पूज्य आदरणीय रुद्रदेव ! आपका जो कल्याणकारी और प्रलयंकारी (असुरता के संहार का) स्वरूप है, उसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥२० ॥

४२३. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥२७॥

(यह यजमान) व्रत (यज्ञीय जीवन) को धारण किये हुए , अनिष्ट निवारण में तत्पर, श्रेष्ठ संकल्पों से युक्त होकर साम्राज्य की प्राप्ति के लिए प्रजा के बीच अधिकारी के रूप में (आसन पर) प्रतिष्ठित हो गया है ॥२७॥

४२४. अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि सत्यौजाऽ इन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन मे रध्य ॥२८॥

(हे अक्ष अथवा यजमान !) आप शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं । पाँचों दिशाएँ आपके लिए कल्याणकारी हों । हे महान् शक्तिमान् ! आप सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं । आप सत्यकर्म से ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । आप सत्यबल वाले वरुणदेव हैं । आप प्रजा के सहयोग से पराक्रमी बने इन्द्रदेव हैं । आप सेवा करने योग्य रुद्रदेव हैं, आप बहुत प्रकार के कर्म करने में समर्थ हैं, कल्याणकारी हैं, ऐश्वर्यवान् हैं । (स्फ्य के प्रति) आप इन्द्रदेव के वज्र हैं, हमारे यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२८॥

४२५. अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा। स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥२९॥

महान् पुरुषार्थयुक्त, धर्मपालक, सबके अग्रणी, तेजस्वी अग्निदेव हमारी (आज्य) आहुति स्वीकार करें । (हे अक्षो !) आहुति प्राप्त करके आप सूर्य- रश्मियों से बलशाली होकर सामर्थ्यवान् राजाओं के मध्य (इस यजमान को) सर्वश्रेष्ठ बनाने का प्रयास करें ॥२९॥

४२६. सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्र सर्पामि॥

शुभ कर्मों के उत्पादक सवितादेव के दिव्यगुण से, वाणीरूपी सरस्वती से, प्रजापति के रूप से, पशुधन से युक्त पूषादेव से, वेद ज्ञान से युक्त बृहस्पतिदेव से, राजारूप इन्द्रदेव से, पराक्रमयुक्त वरुणदेव से, तेजस्वी अग्निदेव से, राजा स्वरूप सोमदेव से और पालनकर्ता विष्णुदेव (इन दस देवों) से प्रेरित होकर हम देवत्व के मार्ग पर बढ़ते हैं ॥३०॥

४२७. अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३१॥

इस कण्डिका में हव्यान्न के प्रति कहा गया है—

आप अश्विनीकुमारों के निमित्त, देवी सरस्वती के निमित्त एवं (इन्द्रियादि) देवशक्तियों को नियोजित करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त परिपक्व हों । वायु द्वारा पवित्र हुए इन्द्रदेव से जुड़े हुए, उनके मित्र ऐश्वर्यशाली अभिषुत सोमदेव का अवतरण हो रहा है (उसे धारण करें) ॥३१॥

४२८. कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽ उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥

हे सोम ! प्रजाओं की रक्षा की कामना से आपको ज्ञानवान् , ऐश्वर्ययुक्त अश्विनीकुमारों, देवी सरस्वती तथा इन्द्रदेव के लिए हम उपयाम पात्र में ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार जौ की खेती करने वाले कृषक जौ को सम्हाल कर काटते हैं एवं सुरक्षित रखते हैं, उसी प्रकार देवताओं के प्रिय सोम, दुष्टों का दमन करके उत्तम पुरुषों के कथनानुसार श्रेष्ठजनों को पोषण प्रदान कर उनकी रक्षा करें ॥३२॥

४२९. युवथ्ठं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम्

हे अश्विनीकुमारो ! नमुचि नामक असुर (के अधिकार) में स्थित रमणीय रस (सोम) भली प्रकार प्राप्त करके पान करते हुए, आप दोनों शुभकर्मों के पालक इन्द्रदेव के रक्षक बनें ॥३३॥

४३०. पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दथ्ठं सनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥३४॥

हे इन्द्रदेव ! राक्षसों के संसर्ग में रहे काव्यों (गलत छन्द प्रयोगों) से अशुद्ध सोम का पान कर (स्वयं को संकट में डालकर) अश्विनीकुमारों ने आपकी रक्षा उसी प्रकार की, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है । आपने नमुचि का वध करके जब प्रसन्नता प्रदान करनेवाले सोम का पान किया, तब देवी सरस्वती भी आपके अनुकूल हुईं ॥३४

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— देवश्रवा और देववात भारत १-२१ । संवरण प्राजापत्य २२,२३ । वामदेव २४-२६ । शुनः शेप २७-३० । अश्विनीकुमार ३१ । सुकीर्ति काक्षीवत ३२-३४ ।

देवता— आप:(जल)१ । लिंगोक्त २,३ । लिंगोक्त, आप:(जल) ४,६ । चर्म, अग्नि आदि ५ । वरुण ७,२७ । तार्प्य, पाण्ड्व, अधीवास, उष्णीष, धनु, बाहू, इषु ८ । प्रजापति, अग्नि आदि ९ । मृत्युनाशन, यजमान १० । यजमान ११-१३, १८ । यजमान, असुर १४ । चर्म, रुक्म १५ । मित्रावरुण १६ । सुन्वन् १७ । आप:(जल), यजमान १९ । प्रजापति, रुद्र २० । रथादि लिंगोक्त २१ । इन्द्र २२ । अग्नि आदि, भूमि २३ । सूर्य २४ । शतमानद्वय, शाखा, बाहू २५ । आसन्दी, अधीवास, सुन्वन् २६ । अक्ष अथवा यजमान, ब्रह्मादि लिंगोक्त, स्फ्य २८ । अग्नि, अक्ष २९ । सविता आदि ३० । सुरा, सोम ३१ । सोम ३२ । अश्विनीकुमार-सरस्वती-इन्द्र ३३, ३४ ।

छन्द— निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् १ । स्वराट् ब्राह्मी पंक्ति २ । अभिकृति, निचृत् जगती ३ । जगती, स्वराट् पंक्ति, स्वराट् संकृति, भुरिक् आकृति,भुरिक् त्रिष्टुप् ४ । स्वराट् धृति ५ । स्वराट् ब्राह्मी बृहती ६ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप् ७, २२ । कृति ८ । भुरिक् अष्टि ९ । विराट् आर्षी पंक्ति १० । आर्ची पंक्ति ११, १३ । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् १२ । भुरिक् जगती १४ । विराट् आर्ची पंक्ति १५ । स्वराट् आर्षी जगती १६, २९ । आर्षी पंक्ति १७ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् १८ । विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् १९ । भुरिक् अतिधृति २० । भुरिक् ब्राह्मी बृहती २१ । जगती २३ । भुरिक् आर्षी जगती २४ । आर्षी जगती २५ । भुरिक् अनुष्टुप् २६ । पिपीलिकामध्या विराट् गायत्री २७ । विराट् धृति २८ । भुरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ३० । आर्षी त्रिष्टुप् ३१ । निचृत् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ३२ । निचृत् अनुष्टुप् ३३ । भुरिक् पंक्ति ३४ ।

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

४३१. युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या ऽअध्याभरत॥१॥

सवितादेव (सर्वस्रष्टा परमात्मा अपनी संकल्प शक्ति से) सृष्टि रचना के समय प्रारम्भ में मनस्तत्त्व एवं धी (बुद्धि अथवा धारणशक्ति) का विकास करके, अग्नि से ज्योति जाग्रत् करके उनसे भूमण्डल को भर देते हैं ॥१ ॥

[पदार्थ विज्ञान से प्रभावित दार्शनिक प्रारम्भ में यह मानने लगे थे कि पहले पदार्थ बना, तब धीरे-धीरे उसमें चेतना का विकास हुआ; किन्तु अनुभूतिजन्य वेद का मत है कि पहले चेतना का विस्तार हुआ। इसे अब पाश्चात्य वैज्ञानिक तथा दार्शनिक भी स्वीकार करने लगे हैं ।]

४३२. युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या ॥२ ॥

सर्वस्रष्टा परमेश्वर (सवितादेवता) द्वारा विनिर्मित विश्व में हम अपने मनस् तत्व को परमात्म तत्त्व से युक्त (लगा) करके, पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए उस ज्योति को अपने अन्दर समाहित करते हैं ॥२ ॥

४३३. युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्र सुवाति तान् ॥३ ॥

सर्व प्रकाशक सवितादेव, सुखस्वरूप तथा आलोक-विस्तारक सूर्य आदि देवों को अपनी प्रेरकशक्ति द्वारा तेजस्विता से आपूरित कर देते हैं । सर्वप्रेरक रूप में वही सवितादेव व्यापक प्रकाश को समस्त विश्व में फैलाने के लिए सूर्य आदि देवों को प्रखर सामर्थ्य से ओत-प्रोत कर देते हैं ॥३ ॥

४३४. युञ्जते मन ऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक ऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४ ॥

विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न ऋत्विज, यजमान के यज्ञ (अग्निचयां) को पूर्णरूपेण सफल बनाने के लिए अपने मन और बुद्धि को अभीष्ट कार्य में पूरी तत्परता के साथ नियोजित करते हैं । एक मात्र वह (परमात्म-चेतना) ही समस्त विज्ञान (कर्मों) का ज्ञाता है, (और सम्पूर्ण विश्व का सृजेता) एवं धारणकर्त्ता है । उन (सबके प्रकाशक) सविता देवता की स्तुति महिमामयी है ॥४ ॥

४३५. युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक ऽ एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा ऽ आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५ ॥

हे यजमान दम्पती ! आप दोनों के निमित्त हम (अध्वर्यु) अन्नादि हविष्य द्वारा श्रेष्ठ ज्ञान से सम्पन्न, इस सर्वश्रेष्ठ यज्ञ को सम्पादित करते हैं, जिसकी आहुतियाँ, जिस प्रकार दोनों लोकों (इह लोक एवं परलोक) में पहुँचती हैं; उसी प्रकार यजमान के श्लोक (भावपूरित मन्त्र) भी दोनों लोकों में पहुँचें और उसे दिव्य लोक में निवास करने वाले अमरण धर्मा, प्रजापति के पुत्र, सभी देव भी सुनें (स्वीकार करें और यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करें)॥५॥

४३६. यस्य प्रयाणमन्वन्य ऽ इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा। यः पार्थिवानि विममे स ऽ एतशो रजा ꣳसि देवः सविता महित्वना ॥६ ॥

जिन सवितादेव के कर्म, महिमा और सामर्थ्य शक्ति का अन्य सभी देवता अनुगमन करते हैं, जो अपनी उत्पादक-क्षमता से सम्पूर्ण लोकों के रचयिता हैं, वे (स्रष्टा) सवितादेव अपनी सृजनशीलता से इस विश्व-ब्रह्माण्ड में सर्वत्र संव्याप्त हैं ॥६ ॥

४३७. देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥७॥

हे सवितादेव ! यज्ञीय कर्मों की प्रेरणा आप सभी को दें। यज्ञ कर्म सम्पादित करने वालों को ऐश्वर्य-सम्पदा से युक्त करके सत्कर्म की ओर प्रेरित करें। (हे सवितादेव ! आप) दिव्यज्ञान के संरक्षक, वाणी के अधिपति हमारे ज्ञान में पवित्रता का संचार करें और हमारी वाणी में मधुरता का समावेश करें ॥७॥

४३८. इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्य ँ सखिविद ँ सत्राजितं धनजित ँ स्वर्जितम्। ऋचा स्तोम ँ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥८॥

हे दिव्यगुण सम्पन्न सवितादेव ! आप देवों के पोषक, मैत्रीभाव के विस्तारक, यज्ञीय ऊर्जा के सुनियोजक और सुख एवं समृद्धि प्रदान करने वाले हैं, (आप) हमारे इस यज्ञ को सफल बनाएँ। यज्ञ को ऋग्वेद की ऋचाओं से पोषित करें। गायत्र साम से रथन्तर साम को और उसी से बृहत् साम को भी परिपुष्ट करें। श्रेष्ठ भावना से युक्त हमारी इस आहुति को स्वीकार करें ॥८॥

४३९. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥

सबके सृजेता सवितादेव की प्रेरणा से युक्त हम गायत्री छन्द के प्रभाव से अश्विनीकुमारों के दोनों बाहुओं से तथा पूषादेव के हाथों से (हे अभ्रे !) आपको अंगिरा के समान ग्रहण करते हैं। आप अंगिरा के समान त्रिष्टुप् छन्द की प्रेरणा से पृथिवी को पोषणयुक्त ऊर्जा से परिपूर्ण करें ॥९॥

४४०. अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्नि ँ शकेम खनितु ँ सधस्थऽ आ। जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥१०॥

(हे अभ्रे !) आप अभ्रि (मिट्टी खोदने का साधन) हैं, नारीरूप (शत्रुरहिता या खोदने से भोंथरी न होने वाली) हैं। अतः आपके द्वारा हम जगती छन्द के प्रभाव से पृथिवी पर विद्यमान (यज्ञ वेदिका में स्थित) अग्नि (ऊर्जा विज्ञान) को अंगिरा के समान भली प्रकार प्रखर करने (धारण करने) में सक्षम हों ॥१०॥

४४१. हस्तऽआधाय सविता बिभ्रदभ्रि ँ हिरण्ययीम्। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽ अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥११॥

सर्व उत्पादक सवितादेव (प्रजापति) अपने हाथ में स्वर्ण-निर्मित अभ्रि को धारण करके अंगिरा के समान अग्नि को भूमि (यज्ञ वेदी) के ऊपर प्रतिष्ठित (प्रज्वलित) करें और (यजमान) अनुष्टुप्-छन्द से भली प्रकार उसे पोषित करें अर्थात् प्रदीप्त करें ॥११॥

४४२. प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम्। दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥१२॥

हे अति तीव्र गमनशील अग्नि-ऊर्जा (अश्व) ! आपका द्युलोक (दिव्यलोक) में प्रादुर्भाव हुआ है, अन्तरिक्ष में आपका नाभिस्थल (मध्य भाग) है तथा पृथ्वीलोक आपका (व्याप्त होने का) आश्रयस्थल है। आप पृथ्वी पर शीघ्र ही अपने उपयुक्त स्थान पर स्थापित हों ॥१२॥

४४३. युञ्जाथा ँ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू। अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥१३॥

हे याजक और अध्वर्यु (यजमान दम्पती) ! आप दोनों (धन की वृद्धि करने वाले) हमारे लिए लाभकारी अग्नि को प्रदीप्त करने में समर्थ हैं। आप इस रासभ को—शब्द एवं दीप्तियुक्त अग्नि को—यज्ञकर्म में नियोजित करें ॥१३

४४४. योगे-योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय ऽ इन्द्रमूतये ॥१४॥

अन्यों की अपेक्षा अति सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव को हम सभी पारस्परिक मित्रता बढ़ाने वाले प्रत्येक कार्य में अपनी सुरक्षा के निमित्त एवं प्रत्येक संघर्ष में सहयोग के लिए आवाहित करते हैं ॥१४॥

४४५. प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि। उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥१५॥

हे तीव्र गतिशील (अग्नि-तेजस्) ! दुष्टों का विनाश (अन्धकार-विकार-का विनाश) करते हुए, हमें (यजमान को) सुख (प्रकाश) प्रदान करने के लिए आप पधारें, ऐसा करने से आपको रुद्र (दुष्टों को दण्डित करके रुलाने वाले देवता) का गणपतित्व प्राप्त होगा। (हे रासभ !) तुम ऋत्विज्-यजमानों को निर्भयता प्रदान करते हुए, पृथिवी सहित विशाल अन्तरिक्ष तक कल्याणकारी अन्न-जलयुक्त मार्ग से व्याप्त हो जाओ (पहुँच जाओ) ॥१५॥

४४६. पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥१६॥

हे अभ्रे ! (यज्ञ उपकरणों) आप धरती पर सभी का पालन-पोषण करने वाले, सर्व समर्थ, तेजस्वी, (श्रेष्ठता की दिशा में) अग्रणी रहने वालों के पोषक, अग्निदेव को यहाँ लाएँ, जो पोषण की सामर्थ्य से युक्त हैं, शत्रु-विनाशक तथा नेतृत्व-कुशलता से युक्त हैं। हम विशिष्ट पोषण-क्षमता सम्पन्न, अंगिरा के समान तेजस्वी उन अग्निदेव को अपने यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित करेंगे ॥१६॥

४४७. अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ ॥१७॥

ऋषि यहाँ सर्व प्रकाशक, लोकस्रष्टा आदि ऊर्जा को– अग्नि को-अपनी दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं। उसी के प्रभाव का वर्णन अगले कुछ मंत्रों में किया गया है। उसी को वाजिन्-बलशाली-द्रुतगामी कहकर विशिष्ट यज्ञीय प्रयोजनों के लिए स्तुतियों द्वारा प्रेरित किया जा रहा है–

पहले से ही विद्यमान वे अग्निदेव उषा काल से पहले ही दिन को प्रकाशित करते हैं। वही सूर्य की बहुत सारी किरणों को भी प्रकाशित करते हैं। हम उन लोक-स्रष्टा अग्निदेव को द्युलोक और पृथ्वीलोक में क्रमबद्ध रूप से संचरित होता हुआ अनुभव करते हैं ॥१७॥

४४८. आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधूनुते। अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा नि चिकीषते ॥१८॥

वह वाजी (बलवान् एवं द्रुतगामी चेतना-युक्त ऊर्जा) मार्ग पर संचरित होकर युद्ध (तमस् के विनाश के क्रम में) क्षेत्र को कँपाता हुआ चलता है। वह स्थिर दृष्टि से यज्ञाग्नि का निरीक्षण करता है ॥१८॥

[यहाँ यज्ञीय ऊर्जा के साथ दिव्य ऊर्जा के संयोग का संकेत है॥]

४४९. आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम्। भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥१९॥

हे वाजिन् ! आप पृथ्वी पर तीव्र गति से संचरित होकर, 'अग्नि' की खोज करें। भूमंडल को खोज कर हमें (वह स्थल) बताएँ, जहाँ से हम उसे (अग्नि को अर्थात् ऊर्जा उत्पन्न करने वाले पदार्थों को) खोद कर ले आएँ ॥१९॥

[यहाँ ऊर्जा-उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले खनिजों की शोध का संकेत है॥]

४५७. त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि। त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥२७॥

प्राणिमात्र की रक्षा करने वाले हे अग्निदेव ! आप पावनगुणों से युक्त, तीव्र अंधकार को तत्काल दूर करने वाले, प्रतिदिन प्रदीप्त होते हैं। आप जल से (बड़वाग्निरूप में), पाषाण घर्षण से (चिनगारी रूप में), बाँसों के घर्षण से (दावानलरूप में), ओषधियों से (तेजाबयुक्त ज्वलनशील रूप में) उत्पन्न होने वाले हैं तथा यज्ञ के निमित्त प्रज्वलित अग्निरूप में यजमानों के घरों में प्रदीप्त होते हैं ॥२७॥

४५८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। पृथिव्याः सधस्था- दग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामि। ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतम्। शिवं प्रजाभ्योऽहि ᳪ सन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामः ॥२८॥

हम सर्वप्रकाशक सवितादेव के अनुशासन में, अश्विनीदेवों की भुजाओं एवं पूषादेव के हाथों से, सर्वत्र विचरित अग्निदेव को, भूमि के ऊपरी भाग से, अंगिरा के समान प्रकट करते हैं। हे अग्निदेव ! ज्योतिस्वरूप, श्रेष्ठ शोभायुक्त, अनवरत उज्ज्वल, देदीप्यमान, प्रजाजनों के कल्याण के लिए शान्तरूप, अनिष्ट निवारक, ऐश्वर्य-प्रदायक, आपको भूमि के अन्तरंग भाग से अंगिरस् की तरह हम प्राप्त करते हैं ॥२८॥

४५९. अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्। वर्धमानो महाँ२ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२९॥

इस मंत्र का परम्परागत उपयोग यज्ञ के लिए कमलपत्र आदि वनस्पतियों के आसन स्थापित करते हुए किया जाता रहा है। इसमें तथा पिछले मंत्र में वर्णित भूगर्भ से विकसित ऊर्जा को लक्ष्य करके ऋषि कहते हैं—

आप जल के पृष्ठ (आधार) हैं, अग्नि के उत्पन्नकर्त्ता हैं। आप समुद्र को बढ़ाते हैं, स्वयं सब ओर विस्तार को प्राप्त हुए, महान् जल में भली प्रकार संव्याप्त हैं। द्युलोक की तेजस्विता एवं पृथ्वी की विशालता के अनुरूप आप विस्तार पाएँ ॥२९॥

४६०. शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽच्छिद्रे बहुले उभे। व्यचस्वती सं वसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ॥३०॥

इस तथा अगले मंत्र का प्रयोग आसन बिछाते हुए किया जाता रहा है। आसन कमल-पत्र आदि वनस्पतियों एवं मृग चर्म के रहते थे। उनको संबोधित करते हुए ऋषि प्राणियों एवं वनस्पतियों को लक्ष्य करके कहते हैं—

आप दोनों क्षतिरहित, अतिव्यापक और साधकों के हितैषी एवं सुखदायक हैं। सुरक्षा कवच के समान रक्षा करने वाले, आप दोनों पोषक अग्निदेव के संवर्द्धक बनकर रहें ॥३०॥

४६१. सं वसाथा ᳪ स्वर्विदा समीची उरसा त्मना। अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥३१॥

आप दोनों समानरूप से सतत तेजस्विता से युक्त अग्निदेव को अपने उदर में प्रज्वलित रखें। दिव्यलोक के आधारभूत अग्निदेव को अपने हृदय में सदैव धारण करें ॥३१॥

४६२. पुरीष्योसि विश्वभरा ऽ अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने। त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥३२॥

अखिल विश्व का भरण-पोषण एवं कल्याण करने वाले हे अग्निदेव ! सर्वप्रथम अथर्वा ऋषि ने आपको भली प्रकार मंथन द्वारा उत्पन्न किया। हे अग्निदेव ! ऋषि अथर्वा ने पुष्कर (विस्तृत आकाश) में मंथन द्वारा आपको प्रकट किया और सम्मानपूर्वक उच्च स्थान पर स्थापित किया ॥३२॥

४६३. तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ऽ ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥३३ ॥

हे अग्ने !'अथर्वा' के पुत्र 'दध्यङ् ऋषि' ने शत्रु विध्वंसक और शत्रुओं के किले तोड़ने में सक्षम जानकर आपको प्रकट किया ॥३३ ॥

[विस्फोटक पदार्थों में सन्निहित अग्नि (ऊर्जा) का यहाँ वर्णन है ।]

४६४. तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जय ᳪरणेरणे ॥३४ ॥

सन्मार्गगामी और शक्तिमान् हे अग्निदेव ! शत्रुओं के विनाशक और प्रत्येक युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले आपको हम प्रज्वलित करते हैं ॥३४ ॥

४६५. सीद होतः स्व ऽ उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञ ᳪ सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥३५ ॥

हे होतारूप अग्निदेव ! सब कर्मों के ज्ञाता आप अपने प्रतिष्ठित स्थान को सुशोभित करें और श्रेष्ठ कर्मरूपी यज्ञ को सम्पन्न करें । देवों की तरह तृप्त करने वाले हे अग्ने ! आप याजकों द्वारा प्रदत्त आहुति से देवताओं को आनन्दित करते हुए , उन्हें (याजकों को) धन-धान्य एवं दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥३५ ॥

४६६. नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२ असदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥३६ ॥

देवावाहक, कार्यकुशल, तेजस्वितायुक्त, गतिशील, अति तीक्ष्ण, मेधा-सम्पन्न, श्रेष्ठ स्थान के निवासी, सहस्रों के पोषणकर्त्ता और अतिपावन अग्निदेव अपनी तेजस्विता को प्रकट करते हुए यज्ञवेदी पर सुशोभित होते हैं ॥

४६७. स ᳪसीदस्व महाँ२ असि शोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥३७ ॥

यज्ञीय गुणों से युक्त प्रशंसनीय हे अग्ने ! आप देवताओं के स्नेह-पात्र और महान् गुणों के प्रेरक हैं, यहाँ उपयुक्त स्थान पर पधारें और प्रज्वलित हों तथा घृत की आहुति द्वारा दर्शन-योग्य एवं तेजस्वी होते हुए सघन धूम्र को विसर्जित करें ॥३७ ॥

४६८. अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥३८ ॥

हे यज्ञाग्ने ! मधुर, स्निग्ध, रसरूप (प्राण - पर्जन्ययुक्त) जल को उत्पन्न करें, जो (वृष्टि द्वारा) धरित्री को सिंचित करे । उससे उत्पन्न हुई फलवती ओषधियाँ याजक के क्षय (नाश या रोग विशेष) को रोकने में समर्थ हों ॥३८ ॥

४६९. सन्ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् । यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥३९ ॥

ऊर्ध्वमुख (यज्ञकुण्ड) से युक्त हे पृथिवि ! आपका जो विशाल हृदय है, आप उस को मातृवत् प्राणशक्ति की संचारक वायु, जल एवं वनस्पतियों से पूर्ण करें । हे वायुदेव ! आप दिव्य प्राण-ऊर्जा के साथ संचरित होते हैं, अतः यह पृथिवी आपके निमित्त कल्याणप्रद हो ॥३९ ॥

[अन्तरिक्ष से पोषण प्राप्त करने के कारण पृथ्वी को ऊर्ध्वमुख कहा गया है । साथ ही यह भी भाव है कि वायु पृथ्वी को प्राणशक्ति दे और पृथ्वी वायु को प्रदूषित न करे बल्कि हितकारी बनाये रखे ।]

४१७. इन्द्रस्य वज्रोसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि । अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वारिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥२१ ॥

(रथ के प्रति) आप वज्र (के समान शत्रु संहारक) हैं । आपको मित्र और वरुणदेव-इन दोनों उत्तम शासकों के उत्तम शासनाधिकार से युक्त करते हैं । आपको स्वधा (यज्ञार्थ अथवा स्वयं को धारण करने) के लिए नियुक्त करते हैं । प्रहारों से क्षत न होने वाले, समर्थ, परम तेजस्वी, शत्रु विध्वंसक वीरों की तरह, शक्ति (प्रभाव) से विजय प्राप्त करें, अधिकार प्राप्त करें । हम मन से तथा बल से आपके सहयोगी हैं ॥२१ ॥

४१८. मा तऽ इन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम । तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन् देव यमसे स्वश्वान् ॥२२ ॥

शत्रुओं को शीघ्र ही नष्ट करने में समर्थ, हाथ में वज्र धारण करने वाले आप दिव्यगुणों से सम्पन्न होकर जिस रथ में आरूढ़ होकर सुशिक्षित घोड़ों की लगाम थामते हैं; आपके स्वजन हम उससे विलग होकर हानि न उठाएँ (आपके आश्रय में रहें), ज्ञानरहित न होने पाएँ ॥२२ ॥

४१९. अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मो अहं त्वाम् ॥२३ ॥

गृहपालक अग्नि, वनस्पतिरूपी सोम, मरुद्गणों के ओज एवं इन्द्रदेव के बल के निमित्त यह आहुति समर्पित है ।(यजमान पृथ्वी को लक्ष्य करके कहता है) हे मातृभूमे ! हम आपको कष्ट न दें । आप हमारा विनाश न करें ॥

४२०. हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽ ऋतजाऽ अद्रिजाऽ ऋतं बृहत् ॥२४ ॥

यह प्रार्थना करते हुए यजमान रथ से यज्ञस्थल पर उतरते थे –

आप पवित्र-शुद्ध आचरण वाले, प्रजापालक, अन्तरिक्ष में वायु के रूप में स्थित होकर पालन करने वाले, देवों को यज्ञाहुति देने वाले, यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित तथा अतिथि के समान सर्वत्र पूजनीय हैं । आप ही कष्ट सहन करते हुए भी घर में विद्यमान, नेतृत्व प्रदान करने वालों में प्रतिष्ठित, सत्य पर आश्रित, श्रेष्ठ पदार्थों में सन्निहित तथा आकाश में विद्यमान हैं । आप जल के उत्पादक, विशेष सामर्थ्यवान्, ज्ञानवान्, विदीर्ण न होने वाले बल से सम्पन्न, महान् और सत्यरूप बल-वीर्य को धारण करने वाले हैं ॥२४ ॥

४२१. इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥२५ ॥

'देव शतमान' के प्रतीक को स्पर्श करते हुए कहा जाता है—

आप कितने महान् हैं । आप ही जीवनस्वरूप हैं, अत: हमें दीर्घायु प्रदान करें । आप ही शुभकर्मों से जोड़ने वाले तेजस्वरूप हैं, अत: हमें तेजस्वी बनाएँ । आप बलस्वरूप हैं, अत: हमें बलशाली बनाएँ । (यज्ञ द्रव्य उतारने वाले बाहुओं के प्रति) आप इन्द्रदेव की सामर्थ्यशाली भुजाओं, मित्र और वरुणदेव के समान हैं । हव्य पदार्थों को हम यज्ञ के समीप स्थापित करते हैं ॥२५ ॥

४२२. स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि । स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥२६ ॥

(आसन के प्रति) आप सुखकारी हैं, सुखरूप हैं तथा पौरुष को धारण करने वाले हैं । (हे याजक !) आप सुखकारी आसन पर विराजमान हों । सुखरूप तथा क्षात्रबल के आश्रयरूप इस आसन पर विराजमान हों ॥२६

४५०. द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षᳪ समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥२० ॥

हे वाजिन् ! द्युलोक में आपका पृष्ठ भाग है, पृथ्वी पर आपके पैर हैं और अन्तरिक्ष में आपकी जीवात्मा है । जल आपके लिए योनिरूप (अप्सु योनिर्वा अश्वः—जल में बड़वाग्निरूप में विद्यमान रहने वाला) है । आप अपनी दृष्टि से खोजकर राक्षसों (सृष्टिचक्र में बाधक विकारों) को (उक्त सभी स्थानों पर) आक्रमण करके नष्ट करें ॥२० ॥

४५१. उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् । वय ᳪस्याम सुमतौ पृथिव्या ऽ अग्निं खनन्त ऽ उपस्थे अस्याः ॥२१ ॥

हे अग्निरूप वाजिन् ! आप इस यज्ञस्थल से धन और सौभाग्य प्रदान करने के लिए ऊपर उठें । पृथ्वी के ऊपरी भाग में इस अग्नि पर आधारित शोध कार्य (यज्ञादि) करते हुए हम सद्बुद्धि में स्थित हों ॥२१ ॥

४५२. उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोक ᳪसुकृतं पृथिव्याम् । ततः खनेम सुप्रतीकमग्नि ᳪस्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥२२ ॥

यह अर्वा (चञ्चल), समृद्धिदाता अश्व (अग्नि) पृथ्वी को लाँघता हुआ आया है । इसने श्रेष्ठ लोकों को पुण्यवान् बनाया है, इसलिए श्रेष्ठ लोकों में आरोहण की कामना से हम (याजक) सुन्दर मुखवाले (देव मुख) अग्निदेव को, खोदने का (जाग्रत् करने का) प्रयोग सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति के लिए करते हैं ॥२२ ॥

[इसका तात्पर्य भूगर्भ में ज्वलनशील पदार्थों अथवा पृथ्वी पर ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों की खोज से भी लिया जा सकता है ।]

४५३. आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा । पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥२३ ॥

दिव्य प्रकाश के रूप में अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त, तिरछी ज्योति से फैलने वाले, दीर्घकाल तक व्यापक-विस्तार करने वाले हे अग्ने ! अन्नादि आहुतियों से शक्तिशाली और प्रत्यक्षतः दृश्यमान आपको योगस्थ मन से घृत द्वारा (यज्ञ हेतु) प्रज्वलित करते हैं ॥२३ ॥

४५४. आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत । मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥२४ ॥

हे अग्ने ! सभी जगह पूर्णरूप से संव्याप्त आपको हम घृताहुति से प्रज्वलित करते हैं । आप नष्ट न होने वाली ज्वालाओं से, इस प्रदत्त आहुति को ग्रहण करें । मनुष्यों के लिए अत्यधिक उपयोगी, सुनहरे वर्ण से सुशोभित, वायु की दिशा में इधर-उधर गतिशील, हितकारक अग्निदेव कदापि त्याज्य नहीं; अपितु सर्वथा ग्राह्य हैं ॥२४ ॥

४५५. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२५ ॥

त्रिकालदर्शी, अन्नों के अधिपति अग्निदेव, हविदाता यजमान को रत्न-सम्पदा देते हुए , सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ चारों ओर से प्रदान करते हैं ॥२५ ॥

४५६. परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्र ᳪसहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवे-दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२६ ॥

हे शक्तिशाली अग्निदेव ! विभिन्न स्वरूपों से युक्त, ज्ञानवान्, सामर्थ्यशाली और प्रतिदिन दुष्टों के संहारक, आपके सभी गुण हमारे लिए धारण करने योग्य हैं । सम्मान करते हुए हम आपकी वन्दना करते हैं ॥२६ ॥

४७०. सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः । वासो अग्ने विश्वरूप ँ संव्ययस्व विभावसो ॥४० ॥

हे अग्निदेव ! आप तेजयुक्त ज्वालाओं से विधिवत् प्रज्वलित होकर, श्रेष्ठ सुखप्रद यज्ञ वेदिका को सुशोभित करें । हे कान्तिमान् अग्ने ! आप अपनी विशिष्ट आभा से वस्त्रों की भाँति जगत् को भली प्रकार धारण करें, अर्थात् पृथिवी का आवरण बनकर उसकी सुरक्षा करें ॥४० ॥

४७१. उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया । दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥४१ ॥

हे उत्कृष्ट यज्ञ सम्पादक अग्ने ! आप जाग्रत् हों, दैवी गुणों तथा श्रेष्ठ बुद्धि से हमारा उत्तम संरक्षण करें और अपनी दिव्य प्रकाश रश्मियों (सद्गुणों) से, स्तुति करने वाले प्राणियों के जीवन को भर दें ॥४१ ॥

४७२. ऊर्ध्व ऽ ऊ षु ण ऽ ऊतये तिष्ठा देवो न सविता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥४२ ॥

हे अग्निदेव ! सर्वोत्पादक सवितादेवता जिस प्रकार अन्तरिक्ष से हम सबकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी ऊँचे उठकर अन्न आदि पोषक पदार्थ देकर हमारे जीवन की रक्षा करें । मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवि प्रदान करने वाले याजक आप के प्रज्वलित स्वरूप का आवाहन करते हैं ॥४२ ॥

४७३. स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ऽओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमा ँ स्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥४३ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त मनोरम ओषधियों को पोषण देने वाली शक्ति से युक्त, विलक्षण वर्ण की ज्वालाओं से सुशोभित, नित्य नवीनरूप में होने से शिशु रूप, स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य उत्पन्न होने से गर्भरूप हैं । आप अंधकार को तिरोहित करते हुए मातृस्वरूपा ओषधियों-वनस्पतियों के समीप से शब्दायमान होते हुए तीव्रता से गमन (विचरण) करें ॥४३ ॥

४७४. स्थिरो भव वीड्वङ्ग ऽ आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥४४ ॥

पदार्थ के प्रति गमनशील हे अर्वन् ! (चंचल यज्ञाग्नि) आप सुस्थिर, सुदृढ़ और वेगयुक्त होकर शक्तिशाली बनें तथा सबको वहन करने वाले आप विशद- (सब जगह संव्याप्त) अग्नि को सुख देने वाले बनें ॥४४ ॥

[प्रकृति का संतुलन रखने वाले, विशद (व्यापक) प्रकृतिगत ऊर्जा चक्र को यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा के माध्यम से सहयोग मिलता है, इसलिए उसे विशद अग्नि को सुख देने वाला कहा गया है ।]

४७५. शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥४५ ॥

हे अंगिरः (अंगों में संव्याप्त अग्नि) ! आप मनुष्यों एवं सभी प्राणियों के लिए मंगलकारी हों । आप स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और वनस्पतियों आदि किसी को भी संतप्त न करें ।(मनुष्य आदि प्राणी एवं प्रकृति को असन्तुलित करने वाला पुरुषार्थ न करें ।) ॥४५ ॥

४७६. प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा । वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भ ँ समुद्रियम् । अग्न ऽआ याहि वीतये ॥४६ ॥

यह वाजी (गतिशील यज्ञीय ऊर्जा) ध्वनि (मंत्रों) के साथ आगे प्रस्थान करे, यह तेजस्वी (रासभ) शब्द करता हुआ आगे बढ़े । यह (प्राण) अग्नि को धारण करके, ध्येय से पहले न रुके । अतिशक्ति-सम्पन्न और सामर्थ्य युक्त जल के बीच यह विद्युत् को धारण करके प्रस्थान करे । हे अग्ने !आप हवि को ग्रहण करने के लिए पधारें ॥४६

४७७. ऋत थ्ठसत्यमृत थ्ठसत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः । ओषधयः प्रति मोदध्वमग्निमेत थ्ठशिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः । व्यस्यन् विश्वा ऽअनिरा ऽअमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि ॥४७ ॥

शाश्वत, सत्यस्वरूप, अविनाशी अग्निदेव को अंगिरा के समान ही हम परिपुष्ट करते हैं । हे समस्त ओषधि स्वरूप हवियो ! आप मंगलमय यज्ञकुण्ड में स्थित अग्निदेव को समर्पित होकर आनन्द प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप यहाँ उपस्थित रहकर हमें सभी शारीरिक कष्टों एवं मानसिक संतापों से आरोग्य-लाभ प्रदान करें तथा हमारे दुर्मतिजन्य कुविचारों को समाप्त करें ॥४७ ॥

[यहाँ यज्ञीय ऊर्जा के चिकित्सापरक प्रयोग (यज्ञोपैथी) का संकेत है ।]

४७८. ओषधयः प्रति गृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः । अयं वो गर्भ ऽ ऋत्वियः प्रत्नथ्ठ सधस्थमासदत् ॥४८ ॥

हे ओषधियो ! आप पुष्पयुक्त और उत्तम फलों से युक्त होकर यज्ञीय अग्नि (ऊर्जा) को ग्रहण करें । यह अग्नि गर्भरूप में ऋतु के अनुरूप उत्पन्न होती है । यह यहाँ प्राचीन समय से ही स्थित है ॥४८ ॥

४७९. वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरह थ्ठसुहवस्य प्रणीतौ ॥४९ ॥

हे श्रेष्ठ बल से देदीप्यमान अग्ने ! आप दुष्कर्मियों, राक्षसी वृत्तियों और समस्त मानसिक विकारों को समाप्त करें । हमें श्रेष्ठ कल्याणकारी महायज्ञ के निमित्त (अग्नि के कार्य में) संलग्न करें, जिससे हमें आन्तरिक प्रसन्नता की प्राप्ति हो ॥४९ ॥

४८०. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽ ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥५० ॥

हे जलसमूह ! आप सुख के मूल स्रोत हैं । अतः आप पराक्रम से युक्त, उत्तम, दर्शनीय कार्य करने के लिए हमें परिपुष्ट करें ॥५० ॥

४८१. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥५१ ॥

हे जलसमूह ! आपका जो सबसे कल्याणप्रद रस यहाँ विद्यमान है, उस रस के पान में हमें वैसे ही सम्मिलित करें, जैसे वात्सल्य-स्नेह से युक्त माताएँ अपने शिशुओं को कल्याणकारी दुग्धरस से पुष्ट करती हैं ॥५१ ॥

४८२. तस्मा ऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥५२ ॥

हे जलसमूह ! आपका वह कल्याणकारी रस पर्याप्त रूप में हमें उपलब्ध हो । जिस रस द्वारा आप सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करते हैं और जिसके कारण आप हमारे उत्पत्ति के निमित्त भूत हैं, ऐसे जनोपयोगी अपने गुणों से हमें अभिपूरित करें ॥५२ ॥

४८३. मित्रः स थ्ठसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह । सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सथ्ठ सृजामि प्रजाभ्यः ॥५३ ॥

जिस प्रकार परमेश्वर सूर्यदेव के द्वारा अन्तरिक्ष और भूमि को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार हम भी श्रेष्ठ गुणों से युक्त जातवेदस् अग्नि को प्रजाओं के आरोग्य-लाभ हेतु प्रज्वलित करते हैं ॥५३ ॥

४८४. रुद्राः स ᳪ सृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्त्र ऽ इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥५४ ॥

रुद्र देवों ने भूलोक का सृजन किया और उसको महान् तेजस्वितायुक्त सूर्यदेव से प्रकाशित किया । उन रुद्रों की पवित्र-प्रचण्ड ज्योति ही अन्य देव शक्तियों के अस्तित्व की परिचायक है ॥५४ ॥

४८५. स ᳪ सृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥५५ ॥

अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी सिनीवाली धैर्यवान् वसुओं और रुद्रगणों द्वारा तैयार की गई मृत्तिका को हाथों से मृदु (नरम) बनाकर, उससे उपयोगी मिट्टी के पात्र विनिर्मित करें ॥५५ ॥

४८६. सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥५६ ॥

हे पूजनीय देवमाता ! शोभनीय केशों, उत्तम आभूषणों से सुशोभित और सुन्दर अंगों से युक्त चन्द्र के समान सुन्दर देवी सिनीवाली, आपके लिए अपने दोनों हाथों में (पुरोडाश पकाने का) पाकपात्र 'उखा' को धारण करें ॥५६

४८७. उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ ऽआ । मखस्य शिरोऽसि ॥५७ ॥

अपनी शक्ति-सामर्थ्य द्वारा अदिति देवी सुमतिपूर्वक दोनों हाथों से पाकपात्र को धारण करें और यह उखा पात्र उत्तम रीति से अपने बीच में अग्नि को धारण करे, जिस प्रकार माता अपनी गोद में पुत्र को धारण करती है । हे पाकपात्र ! आप यज्ञ के प्रमुख पात्र हैं ॥५७ ॥

४८८. वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजा ᳪ रायस्पोषं गौपत्य ᳪ सुवीर्य ᳪ सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजा ᳪ रायस्पोषं गौपत्य ᳪ सुवीर्य ᳪ सजातान्यजमानायादित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजा ᳪ रायस्पोषं गौपत्य ᳪ सुवीर्य ᳪ सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि दिशोसि धारया मयि प्रजा ᳪ रायस्पोषं गौपत्य ᳪ सुवीर्य ᳪ सजातान्यजमानाय ॥५८ ॥

यह कण्डिका 'उखा' को सम्बोधित कर रही है—

(हे उखे !) वसुगण, गायत्री छन्द की सामर्थ्य से अंगिरा के समान आपको विनिर्मित करें । आप सुदृढ़ होकर पृथ्वीस्वरूप हैं, हम याजकों के लिए सन्तान, धन, पुष्टि, गौओं का स्वामित्व, श्रेष्ठ पराक्रम, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द्र धारण कराएं । (हे उखे !) रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा की तरह आपको धारण करें, आप सुदृढ़ होकर अन्तरिक्ष तुल्य हैं । हमारे लिए सन्तान धन, पुष्टि, गौओं का स्वामित्व, श्रेष्ठ पराक्रम, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द्र प्राप्त कराएं । (हे उखे !) आदित्यगण जगती छन्द की सामर्थ्य से अंगिरा के समान आपको विनिर्मित करें, आप सुदृढ़ होकर द्युलोकरूप हैं, हमारे लिए (याजकों के लिए) सन्तान, धन, पुष्टि, गौओं का स्वामित्व, श्रेष्ठ पराक्रम, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द्र धारण कराएं । (हे उखे !) विश्वेदेवा अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से आपको अंगिरा के सदृश बनाएं, आप दृढ़तायुक्त होकर दिशास्वरूप हैं, हम याजकों के लिए सन्तान, धन, पुष्टि, श्रेष्ठ पराक्रम, गौएं, श्रेष्ठ शौर्य, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द्र प्रदान करें ॥५८ ॥

४८९. अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु । कृत्वाय सा महीमुखां मृण्मयीं योनिमग्नये । पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥५९ ॥

उखा पात्र में रेखाङ्कन करते हुए कहा जाता है—

हे रेखे ! आप देवमाता के प्रभाव से इस उखा (पाकपात्र) की काञ्ची (मेखला) के स्थान में हैं । हे उखे ! देवजननी आपके मध्य के हिस्से को धारण करें । देवी अदिति इस पृथ्वीरूपी मिट्टी से अग्नि की आधारभूत उखा विनिर्मित करें और अपने देव पुत्रों को (इसे) पकाने के लिए प्रदान करें ॥५९ ॥

४९०. वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥६० ॥

यह कण्डिका भी उखा-पात्र से सम्बद्ध है—

(हे उखे !) गायत्री छन्द के माध्यम से वसुगण अंगिरा के सदृश आप को (सूर्य की धूप) ताप दें । रुद्रगण, त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा के समान आपको सूर्य की गर्मी से तपाएँ । आदित्यगण जगती छन्द के स्तोत्रों से अंगिरा के समान धूप में संस्कारित करें तथा सबके कल्याणकारी विश्वेदेवा अनुष्टुप् छन्द से अंगिरावत् आपको धूप दिखाकर सुखाएँ । इस प्रकार इन्द्रदेव, वरुणदेव और विष्णुदेव सभी आपको ताप देकर सुखाएँ— तैयार करें ॥६० ॥

४९१. अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतूखे धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तूखे ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे ॥६१ ॥

उखा-पात्र को पकाने के क्रम में कहा गया है—

हे अवट (गर्त) ! सम्पूर्ण दैवी गुणों की अधिष्ठात्री, देव वृत्तियों की पोषक, देवमाता भूमि के उच्चस्थ भाग मे अंगिरा सदृश आपका खनन करें । हे उखे ! देवों की शक्तियाँ समस्त दैवी गुणों सहित दीप्तिमान् पृथ्वी के ऊपरी भाग में अंगिरा के समान आपको स्थापित करें । हे उखे ! सम्पूर्ण देवों की अधिष्ठात्री-स्तुत्य, सुमति सम्पन्न, दैवी गुणों से युक्त पृथ्वी के ऊपर अंगिरा के तुल्य आपको प्रज्वलित करें । हे उखे ! समस्त देवगुणों से युक्त अहोरात्र की निर्मात्री भूमि के ऊपर अंगिरा तुल्य आपको पकाएँ । हे उखे ! सभी शक्तियों की पोषक देवी, पृथ्वी के ऊपर अंगिरा के समान आपको पकाएँ । हे उखे ! अनवरत गतिशील देवशक्तियाँ सम्पूर्ण दैवीगुणों सहित पृथ्वी के ऊपर अंगिरा की तरह आपको परिपक्व करें ॥६१ ॥

४९२. मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥६२ ॥

मनुष्यों को पोषण देने वाली शक्ति से प्रकाशवान् , मित्रदेवता के शाश्वत, आश्चर्यजनक पदार्थों से युक्त ऐश्वर्य को हम धारण करें ॥६२ ॥

४९३. देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या । अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश ऽआपृण ॥६३ ॥

(हे उखे !) सर्वोत्पादक सवितादेवता अपनी उत्तम भुजाओं (हाथों) एवं अँगुलियों अर्थात् दिव्य किरणों से, अपनी सामर्थ्य एवं बुद्धिकौशल के बल पर आपको प्रकाशित करें । आप दुःखरहित होकर भूलोक में अपनी शुभाकांक्षाओं और उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करें ॥६३ ॥

४९४. उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मित्रैतां तऽउखां परिददाम्यभित्त्या ऽ एषा मा भेदि ॥६४ ॥

(हे उखे !) आप पाक-गर्त से निकलकर विशालता को प्राप्त हों और स्थायित्व प्राप्त कर अपने कार्य को सम्पादित करें । हे मित्र देवता ! इस पाक-पात्र को क्षतिग्रस्त होने के भय से आपके संरक्षण में सौंपते हैं । यह विखण्डित न हो, भली प्रकार से कार्य सम्पन्न करे ॥६४ ॥

४९५. वसवस्त्वाच्छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाच्छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाच्छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा ऽआच्छृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥६५ ॥

(हे उखे !) गायत्री छन्द के स्तोत्रों से वसुगण, त्रिष्टुप् छन्द से रुद्रगण, जगती छन्द के प्रभाव से आदित्यगण और अनुष्टुप् छन्द की सामर्थ्य से विश्वेदेवा (कल्याणकारी देवताओं की सामूहिक शक्ति) अंगिरा के समान आपको अभिषिक्त करें ॥६५ ॥

४९६. आकूतिमग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥६६ ॥

यज्ञरूपी सत्कर्म के प्रेरक अग्निदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं मन और सद्बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करने वाले अग्निदेव को यह आहुति देते हैं । चित्त और विशिष्टज्ञान को प्रेरित करने वाले अग्निदेव को यह आहुति प्रदान करते हैं । वाणी और विशिष्ट विद्याओं के प्रेरक अग्निदेव को यह आहुति देते हैं । मन्वन्तर-प्रवर्तक प्रजापालक मनुरूप अग्निदेव के निमित्त यह आहुति प्रदान करते हैं । संसार के कल्याणकारी अग्निदेव के निमित्त यह आहुति देते हैं ॥६६ ॥

४९७. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो रायऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥६७ ॥

सभी मनुष्य इस जगत् का संचालन करने वाले परमेश्वर की मित्रता को स्वीकार करें । दिव्यज्ञान एवं सांसारिक वैभव की कामना से उस परमपिता की तेजस्विता को धारण करें, उसके लिए हमारी यह आहुति समर्पित है ॥६७ ॥

४९८. मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥६८ ॥

(हे उखे !) आप कभी क्षतिग्रस्त न हों, कभी नष्ट न हों, दृढ़तापूर्वक श्रेष्ठ-पराक्रमी-शूर की भाँति कर्त्तव्यों को पूरा करें । अग्निदेव और आप दोनों ही इस कार्य को सम्पादित करें ॥६८ ॥

४९९. दृ्ँहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय ऽआसुरी माया स्वधया कृतासि । जुष्टं देवेभ्य ऽ इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥६९ ॥

हे पृथिवीदेवि ! आसुरी माया की भाँति रूप बदलने में समर्थ, आपने कल्याण भावना से युक्त होकर उखा का रूप धारण किया है, श्रेष्ठ रीति से सुदृढ़ होकर रहें । (हे उखे !) यह हविष्यान्न देवशक्तियों के लिए आनन्दप्रद हो । आप यज्ञ की समाप्ति तक यज्ञशाला में ही उपस्थित रहें ॥६९ ॥

५००. द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥७० ॥

वृक्ष की समिधाएँ ही जिनका प्रमुख आहार है तथा घृत, प्रधान पेय; ऐसे अति प्राचीन, देवशक्तियों को आमंत्रण देने वाले तथा बल प्रयोग के साथ अरणि-मंथन द्वारा प्रकट होने वाले अग्निदेव, इस यज्ञ को सफल करें ॥७० ॥

५०१. परस्या ऽअधि संवतोऽवराँ२ अभ्यातर । यत्राहमस्मि ताँ२ अव ॥७१ ॥

हे अग्निदेव ! विरोधी सेना के साथ संघर्ष कर रहे हमारे सभी आस-पास के (निकटस्थ) सैनिकों का संरक्षण करें और जहाँ हम खड़े हैं, वहाँ सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ करें ॥७१ ॥

५०२. परमस्याः परावतो रोहिदश्व ऽ इहा गहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोग्ने त्वं तरा मृधः ॥७२ ॥

रोहित नामक अश्व (उदीयमान सूर्य की आभा) से युक्त हे अग्निदेव ! वैभवशाली एवं अत्यन्त लोकप्रिय आप दूरवर्ती स्थान से भी यहाँ पदार्पण करें और समरभूमि में रिपुओं का संहार करके हमारे यज्ञ कार्य को सफल बनाएँ ॥७२ ॥

५०३. यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥७३ ॥

हे सामर्थ्यवान् अग्निदेव ! जो भी समिधाएं आपके निमित्त समर्पित की जाएँ , वे सभी आपको घृताहुति के समान ही (स्नेहयुक्त) परमप्रिय हों, उन सभी को प्रसन्नता के साथ ग्रहण करें ॥७३ ॥

५०४. यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥७४॥

हे तरुण अग्निदेव ! घुन जिस काष्ठ को चट कर जाता है, दीमक जिस काष्ठ को खा जाती है, ऐसे काष्ठ की समिधाएँ आपको घृतवत् प्रिय हों, उनका भी आप प्रेमपूर्वक सेवन करें ॥७४ ॥

५०५. अहरहरप्रयावं भरन्तोश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै । रायस्पोषेण समिषा मदन्तोग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥७५ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार अश्वशाला में रहने वाले अश्व को नित्य घास देते हैं, वैसे ही आपके आश्रय में रहने वाले हम याजक, यज्ञ के आहार (समिधाओं) को एकत्रित करते हुए , नित्य हविष्यान्न प्रदान करते हुए धन-वैभव प्राप्त कर, प्रसन्न हों, कभी दुःखी न हों ॥७५ ॥

५०६. नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे । इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥७६ ॥

पृथ्वी की नाभि के समान यज्ञकुण्ड में प्रदीप्त होने की स्थिति में, हविष्यान्न से संतुष्टि को प्राप्त करने वाले, अति प्रशंसनीय यज्ञाग्नि का हम आवाहन करते हैं । शत्रुओं को तिरस्कृत कर युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले अग्निदेव से हम महान् धन-ऐश्वर्य प्राप्ति की कामना करते हैं ॥७६ ॥

५०७. याः सेना ऽ अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा ऽउत । ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्ते अग्नेपि दधाम्यास्ये ॥७७ ॥

हे अग्ने ! आक्रमण के लिए तैयार शत्रुओं से सुसज्जित, विरोधियों की सेना को, चोर तथा डाकुओं को आपके प्रज्वलित मुख में झोंकते हैं, अर्थात् आपकी प्रचण्ड तेजस्विता से विरोधी तत्त्वों का विनाश करते हैं ॥७७ ॥

५०८. द ँ्ष्ट्राभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराँ२ उत । हनुभ्या ँ्स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥७८ ॥

हे ऐश्वर्यशाली अग्निदेव ! आप दुष्कर्म में संलग्न दुष्टों को अपनी दाढ़ों से, दस्युओं को दाँतों से और चोर कर्मियों को ठोड़ी से संत्रस्त करें । आतंकित करने वालों को समूल नष्ट कर दें, अर्थात् सभी दुष्कर्मियों से छुटकारा दिलाएँ, जिससे सभी निर्भय होकर सत्कर्म करें ॥७८ ॥

५०९. ये जनेषु मलिम्लवः स्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥

हे अग्ने ! जो मनुष्यों में हीन आचरण करने वाले और चोर हैं, जो निर्जन वन-प्रदेश में घूमने वाले तस्कर हैं और घने स्थानों पर मनुष्यों के प्राणघातक हैं, उन सभी को आपकी दाढ़ों रूपी प्रचण्ड ज्वाला में डालते हैं ॥७९

५१०. यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः । निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु ॥८० ॥

हे अग्निदेव ! जो मनुष्य हम से शत्रुवत् व्यवहार करें और जो पुरुष हमसे ईर्ष्या करें, जो हमारे निन्दक हों तथा जो हमारी निर्भयता में बाधक बनें, उन सभी को नष्ट कर डालें (अर्थात् ऐसे दुर्गुणों को समूल समाप्त कर दें) ॥८० ॥

५११. स ँ्शितं मे ब्रह्म स ँ्शितं वीर्यं बलम् । स ँ्शितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥८१ ॥

हे अग्ने ! आपके प्रभाव से हमारा और जिसके हम पुरोहित हैं, उस यजमान का प्रशंसनीय ब्रह्म (ज्ञान), प्रशंसनीय तेजस्विता तथा प्रशंसनीय विजयशील क्षात्र बल विकसित हो ॥८१ ॥

५१२. उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वाँ२ अहम् ॥८२ ॥

हे अग्निदेव ! दुष्कर्मियों के बाहुबल की अपेक्षा हमारा पराक्रम प्रखर हो, उनके तेज की अपेक्षा हमारा ब्रह्मतेज श्रेष्ठ हो । ज्ञान की तेजस्विता से विरोधियों का समापन हो, हम स्वजनों को ऊँचा उठाते हैं ॥८२ ॥

[सामाजिक सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है कि सज्जन लोग दुर्जनों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी होकर रहें]

५१३. अन्नपतेन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्र दातारं तारिष ऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥८३ ॥

अन्न के स्वामी हे अग्निदेव ! आप हमारे लिए आरोग्यप्रद तथा पोषणयुक्त अन्न प्रदान करें , दानशील मनुष्यों को भली-भाँति पोषित करें । हमारे पुत्र-पौत्रादि और पशुओं के लिए भी शक्तिवर्द्धक अन्न प्रदान करें ॥८३ ॥

* * *

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— प्रजापति अथवा साध्या, सविता १-८। प्रजापति अथवा साध्या ९-११। नाभानेदिष्ठ १२, ७५-८३। कुश्रि १३। शुनः शेप १४-१६। पुरोधस १७। मयोभुव १८-२२। गृत्समद २३, २४, २७-३१, ३६। सोमक २५। पायु २६। गृत्समद, भरद्वाज ३२। भरद्वाज ३३, ३४। देवश्रवा और देववात ३५। प्रस्कण्व ३७। सिन्धुद्वीप ३८-४०, ५०-६१। विश्वमना ४१। कण्व ४२। त्रित ४३-४८। उत्कील कात्य ४९। विश्वामित्र ६२-६६। स्वस्त्य आत्रेय ६७-६९। सोमाहुति ७०। विरूप आंगिरस ७१। आरुणि ७२। जमदग्नि ७३, ७४।

देवता— सविता १-११, ६३, ६७। अश्व १२, १५, १८-२२, ४३। गर्दभ १३। अज १४, ४५। अग्नि १६, १७, २३-२७, ३२-३७, ४०-४२, ४९, ७०-८३। सविता, अग्नि २८। पुष्करपर्ण २९। कृष्णाजिन, पुष्करपर्ण ३०, ३१। आपः (जल) ३८, ५०-५२। पृथिवि, वायु ३९। रासभ ४४। लिंगोक्त, अग्नि ४६। अग्नि, ओषधियाँ ४७। ओषधियाँ ४८। मित्र ५३, ६२। रुद्रगण ५४। सिनीवाली ५५, ५६। अदिति, मृत् पिण्ड ५७। उखा लिंगोक्त ५८, ६०, ६५। रास्ना, उखा, अदिति ५९। अवट, उखा ६१। उषा, मित्र ६४। अग्नि आदि ६६। उखा, अग्नि ६८। उखा ६९।

छन्द— विराट् आर्षी अनुष्टुप् १, ३०। विराट् शंकुमती गायत्री २। निचृत् अनुष्टुप् ३, १८, १९, ३१, ७३, ७९। जगती ४। निचृत् ब्राह्मी उष्णिक् ५। निचृत् आर्षी जगती ६। आर्षी त्रिष्टुप् ७, २३, ५९। भुरिक् शक्वरी ८। भुरिक् अतिशक्वरी ९। भुरिक् अनुष्टुप् १०, ४०, ४१, ४८, ७७। भुरिक् आर्षी पंक्ति ११। आस्तार पंक्ति १२। गायत्री १३, १४, ५०-५२, ६८। आर्षी जगती १५। विराट् त्रिष्टुप् १६। निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् १७, २२। निचृत् आर्षी बृहती २०, ३७। आर्षी पंक्ति २१, २४ निचृत् गायत्री २५, ३३, ३४, ६२। अनुष्टुप् २६, ५४, ६४, ६७, ८०। पंक्ति २७। प्रकृति २८। स्वराट् पंक्ति २९। त्रिष्टुप् ३२, ३६, ४९, ६९। निचृत् त्रिष्टुप् ३५। न्यंकुसारिणी बृहती ३८। विराट् त्रिष्टुप् ३९, ४३, ७५। उपरिष्टात् बृहती ४२, ५३, ८३। विराट् अनुष्टुप् ४४, ५५, ५६, ७४, ८२। विराट् पथ्याबृहती ४५। ब्राह्मी बृहती ४६। विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ४७, ६६। भुरिक् बृहती ५७, ६३। विराट् अभिकृति, अभिकृति ५८। स्वराट् संकृति ६०। भुरिक् कृति, निचृत् प्रकृति ६१। भुरिक् धृति ६५। विराट् गायत्री ७०, ७१। भुरिक् उष्णिक् ७२, ७८। स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् ७६। निचृत् आर्ची पंक्ति ८१।

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

५१४. दृशानो रुक्म ऽ उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः । अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥१ ॥

सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाले, तेजस्वी सूर्यदेव इस लोक में सहज दर्शनीय हैं तथा विभिन्न प्रकार से धन-ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए शोभायमान होते हैं। उसी प्रकार ये अग्निदेव श्रेष्ठ शक्ति-सम्पन्न, अमृतस्वरूप, दुःख नाशक, आयुष्य के संवर्धक हैं। देवताओं द्वारा इन्हें प्रकट किया गया है ॥१ ॥

५१५. नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेक ꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवाऽ अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥२ ॥

जिस प्रकार माता-पिता (विपरीत स्वभाव से युक्त होने पर भी) एक चित्त होकर पारस्परिक सहयोग से बालक का पोषण करते हैं, उसी प्रकार रात्रि-दिवस मानो एक समान एक चित्त होकर अग्निरूपी शिशु को प्रातः-सायं हवि द्वारा पोषित करते हैं, जिससे वे दिव्यलोक और भू-लोक के भीतर सूर्यदेव के समान सुशोभित होते हैं-- ऐसे अग्निदेव को ऐश्वर्य-प्रदायक शक्तियों ने धारण किया है ॥२ ॥

५१६. विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे । वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥३ ॥

वरणीय, त्रिकालदर्शी, सवितादेव उषाकाल के बाद विशेष प्रकाश बिखेरते हैं, जिससे सभी पदार्थ अपने स्वस्थ स्वरूपों को धारण करते हैं। मनुष्यों के साथ सभी प्राणियों को कल्याणकारी मार्ग में प्रवृत्त करते हैं ॥३ ॥

५१७. सुपर्णोसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोमऽ आत्मा छन्दा ꣳस्यङ्गानि यजू ꣳषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥४ ॥

ऊर्ध्वगामी, महान् , हे अग्निदेव ! आप सुन्दर पंखों से युक्त, गरुड़ के सदृश गतिशील हो। त्रिवृत् स्तोम आपके शिर और गायत्री छन्द आपके नेत्र हैं। दो पंख के रूप में बृहत् और रथन्तर साम हैं, यज्ञ आपकी अन्तरात्मा, सभी छन्द आपके शरीर के अंग और यजु आपका नाम है। वामदेव नामक साम आपकी देह, यज्ञायज्ञिय नामक साम आपकी पूँछ और धिष्ण्य स्थित अग्नि आपके खुर-नख हैं। हे अग्ने ! आप गरुड़ की भाँति दिव्यलोक की ओर प्रस्थान करें और स्वर्गलोक को प्राप्त करें ॥४ ॥

५१८. विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गायत्रं छन्दऽ आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द ऽ आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द ऽ आरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभं छन्द ऽ आरोह दिशोनु विक्रमस्व ॥५ ॥

हे अग्ने !आप सर्वव्यापक विष्णुदेव के शत्रुसंहारक कार्यक्रम में गायत्री छन्द के प्रभाव से भूलोक में, त्रिष्टुप् छन्द पर आरोहित होकर अन्तरिक्ष में, जगती छन्द पर आरोहित होकर स्वर्गलोक में और अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से सभी दिशाओं में अपना विशेष पराक्रम प्रदर्शित करें और सभी लोकों की दुष्प्रवृत्तियों को समाप्त करें ॥५ ॥

५१९. अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्। सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥६ ॥

हे अग्ने ! आप आकाश में मेघों के मध्य विद्युत् के रूप में चमकते एवं गर्जना करते हुए पृथ्वी को गुंजायमान करते हैं। प्राण-पर्जन्य के रूप में वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हैं। शीघ्र उत्पन्न और प्रज्वलित होकर सभी को प्रकाशित करते हैं। पृथ्वी और द्युलोक के मध्य विद्युत् के रूप में सुशोभित होने वाले आप स्तुत्य हैं ॥६ ॥

[प्रकृति में विभिन्न रूपों में संव्याप्त ऊर्जा का स्पष्ट उल्लेख यहाँ किया गया है।]

५२०. अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन। सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥७ ॥

सम्मुख प्रकाशित होने वाले हे अग्निदेव ! आप दीर्घायुष्य, तेज, सन्तान, श्रेष्ठ बुद्धि, स्वर्णादि आभूषण तथा शारीरिक पोषण आदि के रूप में अभीष्ट लाभ प्रदान करते हुए हमारे लिए अनुकूल हों ॥७ ॥

५२१. अग्ने अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं तऽ उपावृतः। अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥८ ॥

हे अङ्गिरावत् दीप्तिमान् अग्ने ! आप सैकड़ों बार हमारे आवाहन पर आएँ, आपका यहाँ से विसर्जन भी सहस्रों बार (अनेकों बार) हो। आप पोषण करने वाले धन को बढ़ाते हुए, हमारे खोये हुए धन को पुनः उपलब्ध कराएँ एवं हमें पुनः वैभवशाली बनाएँ ॥८ ॥

५२२. पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽ इषायुषा पुनर्नः पाह्य्ँ हसः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी प्रखर ऊर्जा के साथ पुनः यहाँ उपस्थित हों। अन्न और आयुष्य के संवर्द्धन हेतु पुनः आएँ और आकर पापकृत्यों से हमें मुक्ति दिलाएँ ॥९ ॥

५२३. सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप धन के साथ वापस आएँ और संसार के उपयोग के लिए श्रेष्ठ-पवित्र जलधारा से ओषधियों, वनस्पतियों आदि सभी को अभिषिक्त करें ॥१० ॥

५२४. आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥११ ॥

हे अग्ने ! सम्मानपूर्वक आपको लेकर आए हैं, आप उखा के मध्य भाग में, विचलित हुए बिना स्थिरतापूर्वक उपस्थित रहें। सभी प्रजाएँ आपकी कामना करें, हमारा राष्ट्र आपके तेजस्वितायुक्त गुणों से कभी रहित न हो ॥

५२५. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यम्ँ श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१२ ॥

हे वरुणदेव ! आप तीनों ताप रूपी बन्धन से हमें मुक्त करें। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाश हमसे दूर हों तथा मध्य एवं नीचे के बंधन हमसे अलग करें। हे सूर्य पुत्र ! पापों से रहित होकर आपके कर्मफल-सिद्धांत में अनुशासित हम दयनीय स्थिति में न रहें ॥१२ ॥

५२६. अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात्। अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग ऽ आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१३ ॥

महिमायुक्त अग्निदेव उषा के पहले प्रकट हुए, रात्रिरूपी अँधेरे को दूर करके दिन के प्रकाश के साथ यहाँ उपस्थित हुए हैं । अपनी ज्वालाओं से सुशोभित होते हुए सम्पूर्ण भुवनों को अपने तेज से प्रकाशित करते हैं ॥१३ ॥

५२७. हᳬ्सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऽ ऋतजा ऽ अद्रिजा ऽ ऋतं बृहत् ॥१४ ॥

सब में चैतन्य-स्वरूप, पवित्रता में विद्यमान रहने वाले, अन्तरिक्ष में वायु के रूप में, सभी के आश्रयभूत, यज्ञवेदी में देवताओं के वाहक, यज्ञशाला में वास करने वाले, सबके पूज्य, अतिथि, प्राणाग्नि के रूप में सभी मनुष्यों में, आकाश में विद्युत् रूप में स्थित, जल में बड़वाग्नि रूप में, भूमि में ज्वालामुखी फूटने के रूप में, सत्य-ज्ञान से सम्पन्न, पत्थरों में चिनगारीरूप में उत्पन्न होने वाले —ऐसे सर्वत्र व्यापक अग्निदेव की महिमा प्रशंसनीय है ॥१४ ॥

५२८. सीद त्वं मातुरस्या ऽ उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् । मैनां तपसा मार्चिषाभि शोचीरन्तरस्या ᳬ् शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥१५ ॥

हे अग्ने ! सम्पूर्ण कर्मों के ज्ञान से युक्त आप उखारूपी माता की गोद में स्थित हों । इसे अपनी ताप ऊर्जा से संतप्त न होने दें । ज्वाला से दग्ध न करें । इसके बीच में स्थित आप अपनी शीतल ज्योति से प्रकाशित हों ॥१५ ॥

[ताप और प्रकाश को अलग-अलग करने में आधुनिक विज्ञान को बहुत बाद में सफलता मिली, ऋषि तापमुक्त शीतल ज्योति का प्रयोग वेदकाल में ही करते थे ।]

५२९. अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे । तस्यास्त्व ᳬ् हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी चमक से इस उखा के मध्य में अपने आवास स्थल पर ही प्रज्वलित हों । सर्वज्ञाता अग्ने ! आप ज्वाला से तेजस्वी होते हुए उसका (उखा का) हर प्रकार से हित करें ॥१६ ॥

५३०. शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥१७ ॥

हे अग्ने ! आप हमारे लिए हितकारी होकर यहाँ शान्ति से विराजमान हों । सम्पूर्ण दिशाओं को कल्याण भाव से युक्त करें तथा उखा (पकाने के पात्र) की गोद में (अपने निर्धारित आवास स्थल पर) स्थापित हों ॥१७ ॥

५३१. दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः । तृतीयमप्सु नृमणा ऽअजस्रमिन्धानऽ एनं जरते स्वाधीः ॥१८ ॥

जातवेद अग्निदेव सर्वप्रथम द्युलोक में सूर्यरूप में उत्पन्न हुए, द्वितीय भूलोक में यज्ञाग्नि के रूप में प्रादुर्भूत हुए, तृतीय जल में बड़वाग्निरूप में उत्पन्न हुए, श्रेष्ठ बुद्धि-सम्पन्न यजमान प्रज्वलित होने पर ऐसे अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१८ ॥

५३२. विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा । विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यतऽ आजगन्थ ॥१९ ॥

हे अग्ने ! आपके जो सूर्य, अग्नि और बड़वा तीन तेज हैं, उन्हें हम जानते हैं । गार्हपत्य, आहवनीय, अन्वाहार्य-पचन, आग्नीध्रीय आदि आपके सभी स्थानों को भी हम जानते हैं । आपका जो मंत्र-स्थित गुप्त नाम है, उसको भी हम ज्ञाता हैं और आपके विद्युत्‌रूप में चमकने वाले जलस्रोत से उत्पन्न होने वाले स्थान को भी हम जानते हैं ॥१९ ॥

५३३. समुद्रे त्वा नृमणा ऽ अप्स्वन्तर्नृचक्षा ऽ ईधे दिवो अग्न ऽ ऊधन् । तृतीये त्वा रजसि तस्थिवा ᳬ् समपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥२० ॥

हे अग्निदेव ! मनस्वी जनों ने आपको समुद्र में बड़वानल के रूप में, तेजस्वी प्रजापति ने अन्तरिक्ष के मेघों के बीच विद्युत् रूप में तथा तीसरे द्युलोक में तेजस्वी सूर्य के रूप में प्रकट किया। जल में विद्यमान आपको महान् इच्छा शक्ति-सम्पन्नों ने बढ़ाया ॥२० ॥

[संकल्पशीलों द्वारा जल से ऊर्जाविकास की प्रक्रिया का प्रतिपादन उक्त मंत्रों में है।]

५३४. अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्। सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥२१ ॥

द्युलोक में मेघों के समान गर्जनशील होकर अग्निदेव पृथ्वी को आलोकित करते हैं। वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हुए सब में संव्याप्त होते हैं। शीघ्र प्रकट होकर अपनी तेजस्विता द्वारा द्युलोक और भूलोक के मध्य में प्रकाशमान होते हैं ॥२१ ॥

[यह विज्ञान-सम्मत है कि मेघों में विद्युत् तड़कने से नाइट्रोजन गैस के उर्वरता बढ़ाने वाले संयोग बनते हैं। इस मंत्र में उसी प्रक्रिया का संकेत है।]

५३५. श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः। वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र ऽ उषसामिधानः ॥२२ ॥

ऐश्वर्य के प्रदाता, धन के धारण कर्त्ता, इच्छाओं को परिपूर्ण करने वाले, सोम के संरक्षक, सबके आश्रय, बलपूर्वक अरणि से उत्पन्न होने के कारण बल के पुत्ररूप, जल में विद्युत्‌रूप, उषाकाल के पश्चात् सूर्य के रूप में चमकने वाले अग्निदेव विशेष रूप से सुशोभित होते हैं ॥२२ ॥

५३६. विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ ऽ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः। वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥२३ ॥

विश्व की पताका के रूप में ये अग्निदेव सभी लोकों में प्रदीप्त होकर द्युलोक और पृथ्वीलोक को तेजस्विता से अभिपूरित करते हैं। सर्वत्र गतिशील, अति सुदृढ़ बादलों को भी विदीर्ण कर देते हैं, ऐसे अग्निदेव के निमित्त पंचजन (सम्पूर्ण समाज अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद) संयुक्तरूप से यज्ञ सम्पन्न करते हैं ॥२३ ॥

५३७. उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि। इयर्त्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥२४ ॥

कभी समाप्त न होने वाली शोभा से युक्त, पवित्रतादायक, दुष्टों के संहारक, मेधा-सम्पन्न अग्निदेव, मनुष्यों में स्थापित किये गये हैं। ये अग्निदेव हानि रहित धूम्र को ऊपर भेजते हैं और प्राण-पर्जन्य वर्षा के रूप में पोषण प्रदान करते हैं। साथ ही अपनी पावन महिमा से द्युलोक में संव्याप्त होते हैं ॥२४ ॥

५३८. दृशानो रुक्म ऽ उर्व्या व्यद्यौदुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥२५ ॥

प्रत्यक्ष दिखने वाले स्वयं प्रकाशित अग्निदेव, प्राणियों को शोभायमान करते हुए, पृथ्वी के साथ सब वस्तुओं को आलोकित करते हैं। याजकों द्वारा पुरोडाश आदि से देदीप्यमान, अविनाशी अग्निदेव को देवताओं ने लोक-कल्याण के लिए प्रकट किया (अर्थात् अग्नि का उपयोग विध्वंसक कार्यों में करना, देव-अनुशासन का उल्लंघन है।) ॥२५ ॥

५३९. यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेपूपं देव घृतवन्तमग्ने। प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥२६ ॥

लोक हितकारी दिव्यगुण-सम्पन्न हे अग्निदेव ! आज जो यजमान आपको घृत-सिक्त पुरोडाश समर्पित करते हैं, उन याजकों को सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित करें । हे शक्ति-सम्पन्न अग्निदेव ! देवताओं के लिए उपलब्ध होने वाले श्रेष्ठ सुखों को भी प्रदान करें ॥२६ ॥

५४०. आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न ऽ उक्थ ऽ उक्थ ऽ आ भज शस्यमाने । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥२७ ॥

हे अग्निदेव ! आप यजमान को श्रेष्ठ यज्ञ कर्म में प्रतिष्ठित करें, प्रत्येक प्रशंसित यज्ञानुष्ठान के अवसर पर उसके लिए अनुकूल बनें । उपासक यजमान सूर्यदेव एवं आपके प्रीति-पात्र हों तथा पुत्र-पौत्रादि सभी संतानों के सुख से समृद्ध हों ॥२७ ॥

५४१. त्वामग्ने यजमाना ऽ अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्याणि । त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥२८ ॥

हे अग्निदेव ! अनेक यजमान आपकी सेवा में संलग्न हैं । प्रतिदिन उपलब्ध वैभव-ऐश्वर्य को धारण करते हैं तथा आपके साथ की आकांक्षा करते हुए मेधावी जन यज्ञ के पुण्य कर्मों से— दिव्य प्रकाश किरणों से— युक्त, देवलोक को जाते हैं ॥२८ ॥

५४२. अस्ताव्यग्निर्नरा७ं सुशेवो वैश्वानर ऽ ऋषिभिः सोमगोपाः । अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥२९ ॥

जठराग्निरूप में सभी मनुष्यों के शुभचिन्तक और सोमरक्षक अग्निदेव की ऋषियों द्वारा वन्दना की जाती है । परस्पर द्वेष-भाव से रहित भूमि और द्युलोक के अधिष्ठाता देवशक्तियों का हम आवाहन करते हैं । हे देवो ! हमें बलवान् पुत्रों के साथ अपार धन-सम्पदा प्रदान करें ॥२९ ॥

५४३. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥३० ॥

हे ऋत्विजो ! आप समिधाओं द्वारा अग्निदेव को प्रसन्न करें, अतिथिरूप अग्निदेव को घृताहुतियों द्वारा प्रदीप्त करें तथा इस प्रदीप्त अग्नि में हवन-सामग्री की आहुतियाँ प्रदान करें ॥३० ॥

५४४. उदु त्वा विश्वे देवा ऽ अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्व७ं सुप्रतीको विभावसुः ॥३१ ॥

हे अग्निदेव ! आपको सभी देवत्व-संवर्द्धक शक्तियाँ, श्रेष्ठ वृत्तियों द्वारा परिपोषित करें । आप श्रेष्ठ ज्वालाओं से सुशोभित और प्रचुर वैभव से युक्त होकर हमारे लिए सभी प्रकार से कल्याणकारी सिद्ध हों ॥३१ ॥

५४५. प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् । बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हि७ंसीस्तन्वा प्रजाः ॥३२ ॥

हे अग्निदेव ! आप कल्याणकारी तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त होकर यहाँ पदार्पण करें और व्यापक रश्मियों से प्रकाशित होकर हमारी सन्तानों को प्रत्येक विपत्ति से बचाएँ ॥३२ ॥

५४६. अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥३३ ॥

आकाश में मेघों की तरह गर्जन कर, वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हुए अग्निदेव अपनी ज्वालाओं से पृथ्वी को प्रकाश-युक्त करते हैं । शीघ्र ही प्रकट होकर अपनी विद्युत् किरणों द्वारा पृथ्वी और द्युलोक को प्रकाशित करते हैं ॥३३ ॥

५४७. प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः । अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥३४ ॥

हविष्य प्रदान करने वाले याजक के आमन्त्रण को स्वीकार कर देवों के अतिथि, अग्निदेव अति तेजस्वी होकर सूर्य के समान ही प्रकाश बिखेरते हैं । जो युद्ध क्षेत्र में दुष्प्रवृत्ति रूपी राक्षसों के समक्ष उपस्थित होते हैं और हमारे लिए कल्याणकारी भावों से युक्त होकर प्रज्वलित होते हैं ॥३४ ॥

५४८. आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्व सुरभा ऽ उ लोके । तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥३५ ॥

हे दिव्यतायुक्त जलसमूह ! आप भस्म को ग्रहण करके उपयुक्त, श्रेष्ठ, सुगंधित स्थान पर रखें । श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न स्त्रियाँ जैसे पति के सम्मुख विनम्रतापूर्वक झुकती हैं; वैसे ही अग्निदेव के सम्मुख आप झुकें । इस भस्म को अपने में उसी प्रकार धारण करें, जैसे माता द्वारा शिशु को गोद में धारण किया जाता है ॥३५ ॥

५४९. अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥३६ ॥

हे भस्मरूप अग्निदेव ! आप जल में बड़वाग्निरूप में स्थित हैं । शमी आदि ओषधियों में विद्यमान रहते हैं और अरणि-मन्थन से बार-बार आप प्रकट होते हैं ॥३६ ॥

५५०.गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ।

हे अग्निदेव ! आप ओषधियों, वनस्पतियों, सम्पूर्ण प्राणियों और जल के गर्भ में समाये हुए , हैं अर्थात् (उन सबकी) उत्पत्ति के कारण हैं ॥३७ ॥

५५१. प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने । सᳬ सृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरा सदः ॥३८ ॥

हे अग्निदेव ! आप भस्मरूप से पृथ्वी और जल में स्थापित हैं । मातृरूप जल से अभिषिक्त होकर तेजस्विता से परिपूर्ण हुए यज्ञ में दुबारा उपस्थित होते हैं ॥३८ ॥

५५२. पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थेन्तरस्याᳬ शिवतमः ॥३९ ।

हे अग्निदेव ! अति मंगलमय आप जल और भूमि के स्थान को प्राप्त करते हैं । तत्पश्चात् माता की गोद में सोते हुए बालक की भाँति उखा के गर्भस्थल में (मध्य भाग में) विश्राम करते हैं ॥३९ ॥

५५३. पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न ऽ इषायुषा । पुनर्नः पाह्यᳬ हसः ॥४० ॥

हे अग्निदेव ! आप सामर्थ्य-शक्ति के साथ पुनः पधारें । दीर्घायुष्य के लिए पोषकतत्त्वों के साथ पुनः यज्ञस्थल में आएँ एवं यहाँ आकर हमें पापवृत्तियों से बचाएँ ॥४० ॥

५५४. सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥४१ ॥

हे अग्ने ! अपने अपार वैभव के साथ यहाँ पुनः पधारें और सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी वृष्टिरूप जलधारा से सम्पूर्ण संसार को अभिषिक्त करें ॥४१ ॥

५५५. बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मᳬ हिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः । पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥४२ ॥

उत्तम तरुणरूप, वैभव-सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हमारे महिमायुक्त बार-बार किये गये निवेदन का अर्थ जानें । कोई आपके निंदक हैं, तो कोई प्रशंसा करने वाले हैं, लेकिन हम स्तोता-भाव से युक्त आपके प्रज्वलित रूप की सदैव वन्दना करते हैं ॥४२ ॥

५५६. स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषा ꣳ सि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥४३ ॥

हे धनाधिपति, दाता, अग्निदेव ! आप ज्ञानवान् और वैभव-सम्पन्न हैं, अतः हमारे अभिप्राय को समझें और इसे जानकर हमारे अनिष्टों का निवारण करें । विश्व के समस्त क्रियाकलापों को श्रेष्ठ विधिपूर्वक सम्पादित करने वाले, आपके निमित्त हमारी आहुतियाँ समर्पित हैं ॥४३ ॥

५५७. पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥४४ ॥

हे अग्निदेव ! ऐश्वर्य के निमित्त आदित्यगण, रुद्रगण और वसुगण आपको पुनः प्रज्वलित करें, याजकगण यज्ञकर्म हेतु पुनः आपको प्रदीप्त करें, आप आज्याहुतियों द्वारा अपनी ज्योतिरूपी देह को संवर्धित करें । आपके संवर्द्धन से याजकों को अभीष्ट लाभ प्राप्त हो ॥४४ ॥

५५८. अपेत वीत वि च सर्पतातो येत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः । अदाद्यमोवसानं पृथिव्या ऽ अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥४५ ॥

हे यमदूतो ! आप पुराने या नये जैसी भी स्थिति में हों, इस यज्ञस्थल से दूर चले जाएँ । यह स्थान (वस्तु) यजमान के लिए यमदेव द्वारा निर्धारित किया गया है; अतः आप इस स्थान को छोड़कर आगे बढ़ जाएँ ॥४५ ॥

५५९. संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् । अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचित ऽ ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥४६ ॥

हे उखे ! आप यज्ञीय कर्म द्वारा उत्तम ज्ञान को सम्पादित करती हैं । अतएव आपके ज्ञानार्जन की सामर्थ्य-शक्ति हमें भी उपलब्ध हो, आप अग्निदेव के भस्मरूप (अर्थात् भासक) हैं; अतः अग्निदेव के ही स्वरूप हैं । आप पृथ्वी पर फैलने से सभी जगह संव्याप्त हैं, अतः इस गार्हपत्य अग्नि के स्थान को ग्रहण करें ॥४६ ॥

५६०. अय ꣳ सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः । सहस्त्रियं वाजमत्यं न सप्ति ꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥४७ ॥

इच्छायुक्त इन्द्रदेव ने सहस्रों के उपयोग में आने योग्य आनन्ददायक और तृप्तिप्रद सोमरस को जिस माध्यम से उदर में धारण किया, वह माध्यम, ये अग्निदेव ही हैं । हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! इस प्रकार सोमयुक्त आहुतियाँ ग्रहण करते हुए आप ऋत्विजों की स्तुतियाँ प्राप्त करते हैं ॥४७ ॥

[अग्नि के माध्यम से ही देव शक्तियों तक आहुतियाँ पहुँचती हैं । सेवन किये गये पौष्टिक पदार्थों को जठराग्नि ही शारीरिक ऊर्जा के रूप में स्थापित करती है ।]

५६१. अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥४८ ॥

हे यज्ञाग्नि ! आपकी जिस ज्योति ने स्वर्गलोक को, पृथ्वी पर तेजरूप से ओषधियों को और जल में विद्युत् रूप से अतिव्यापक अन्तरिक्ष लोक को संव्याप्त किया है; सर्वत्र गतिमान् , जगत्-प्रकाशक आपका वह दिव्यतेज मनुष्यों के सभी अच्छे-बुरे कर्मों को देखने वाला है ॥४८ ॥

५६२. अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ२ ऊचिषे धिष्ण्या ये । या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त ऽ आपः ॥४९ ॥

हे अग्निदेव ! आप दिव्यलोक के अमृतरूपी जल को उत्तमरीति से धारण करते हैं । बुद्धि के प्रेरक जो प्राणस्वरूप देव हैं, उनके समक्ष भी आप गतिशील होते हैं । प्रकाशमान सूर्यमण्डल में स्थित, सूर्य से आगे (परे) जो जल है तथा जो जल इसके नीचे है, उस समस्त जल में आप विराजमान हैं ॥४९ ॥

५६३.पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः । जुषन्तां यज्ञमद्रुहोनमीवा ऽ इषो महीः ॥

प्रजापालक, समान विचारशीलों में प्रीतियुक्त, द्रोह भावना से रहित, ये अग्नियाँ इस यज्ञ में आरोग्यप्रद वनौषधियों से युक्त हविष्यान्न को पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करें ॥५० ॥

५६४. इडामग्ने पुरुदꣳ स ꣳ सनिं गोः शश्वत्तम ꣳ हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५१ ॥

हे अग्निदेव ! विभिन्न यज्ञीय कार्यों को सिद्ध करने वाले अन्न एवं गौओं (उनसे प्राप्त दूध, दधि, घृतादि) को दान रूप में स्वीकार करें । हे अग्निदेव ! याजकों को सुन्दर सन्तति, धन-धान्य प्रदान करने वाली आपकी श्रेष्ठ बुद्धि हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥५१ ॥

५६५. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्नऽ आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५२ ॥

हे अग्निदेव ! ऋतु विशेष में सिद्ध हुए गार्हपत्य अग्नि आपके उत्पत्ति स्थान हैं, आप जिस गार्हपत्य से उत्पन्न होकर प्रकाशित होते हैं, उसे जानकर अपने स्थान पर आरोहण करें, तत्पश्चात् हमारे वैभव में वृद्धि करें ॥

५६६. चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद । परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५३ ॥

हे इष्टके ! आप सुखसाधनों को संगृहीत करने वाली हैं । वाक्देवता द्वारा प्राणों के संचार के समान ही आप निर्धारित स्थान पर विराजित हों । हे इष्टके ! आप सभी ओर से अपने स्थान पर विराजित हों । हे इष्टके ! आप सभी ओर से साधनों को एकत्र करने वाली होकर वाणी के देवता द्वारा अंगों में संचरित प्राण के समान ही उपयुक्त स्थल पर विराजमान हों ॥५३ ॥

५६७. लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥५४ ॥

हे इष्टके ! आप गार्हपत्य के चयन स्थल में रिक्त स्थान को पूर्ण करें, छिद्र को भर दें तथा यहाँ सुदृढ़तापूर्वक स्थापित हों । इन्द्रदेव, अग्निदेव और बृहस्पतिदेव ने यह स्थान आपके लिए नियुक्त किया है ॥५४ ॥

[यज्ञकुण्ड निर्माण के समय ईंटों को निर्धारित स्थल पर उत्तम रीति से रखने का-चिति निर्माण का संकेत है ।]

५६८. ता ऽ अस्य सूददोहसः सोम ꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥५५ ॥

देवलोक में स्थित विविध (प्राण-पर्जन्य आदि शक्तिधाराएँ) अन्न से युक्त वे प्रख्यात जल-प्रवाह देवताओं के उदयकाल (संवत्सर) में स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों लोकों में इस यज्ञ से सम्बन्धित सोम को श्रेष्ठ विधि से परिपूर्ण करते हैं ॥५५ ॥

५६९. इन्द्रं विश्वा ऽ अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतम ᳪ रथीनां वाजाना ᳪ सत्पतिं पतिम् ॥५६ ॥

सभी ज्ञान-सम्पन्न वाणियाँ अर्थात् ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व रूप स्तुतियाँ, सागर के समान विस्तृत सभी रथियों की अपेक्षा महारथी तथा ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव का गुणगान करते हुए उनकी महिमा को बढ़ाती हैं ॥५६ ॥

५७०. समितᳪ सङ्कल्पेथाᳪ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ ॥

हे अग्ने ! आप आपसी प्रीति-भावना के प्रेरक, स्वर्णिम कान्ति से युक्त तथा पारस्परिक सामूहिक विचारधारा के प्रेरक हों । (अन्नघृतादि) हविष्यान्न को स्वीकार करें । हमारे अनुकूल होकर यज्ञरूप श्रेष्ठ कार्य को सफल बनाएँ ॥

५७१. सं वां मना ᳪ सि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् । अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न ऽ इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥५८ ॥

हे अग्ने ! हम आपके कार्यों, विचारों एवं भावनाओं को संयुक्त करते हैं । हे पुरीष्य अग्ने ! आप हमारे अधीश्वर हैं, अतएव पोषणशक्ति से युक्त अन्न यजमान के कल्याण हेतु प्रदान करें । ॥५८ ॥

५७२. अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥५९ ॥

सबका कल्याण करने वाले वैभवशाली हे अग्निदेव ! आप सभी प्राणियों का पोषण करते हैं । हमारे लिए सम्पूर्ण दिशाओं को मंगलकारी बनाते हुए, यहाँ अपने स्थान में प्रतिष्ठित हों । ॥५९ ॥

५७३. भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञ ᳪ हि ᳪ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥६० ॥

हे जातवेदस् अग्निद्वय (यज्ञाग्नि और प्रकृतिगत ऊर्जा चक्र में संव्याप्त अग्निदेव) ! आप हमारे अभीष्ट सिद्धि के लिए समान विचारों वाले, समान आस्थाओं वाले तथा प्रमादादि दोषों से रहित हों । हमारे यज्ञ को नष्ट न होने दें । यज्ञ सम्पादन करने वाले यजमान का अनिष्ट न होने दें । आप हमारे लिए ऐसे समय में हर प्रकार से मंगलकारी हों ॥६० ॥

५७४. मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्नि ᳪ स्वे योनावभारुखा । तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥६१ ॥

पृथ्वी (मृत्तिका) द्वारा विनिर्मित उखा प्राणियों का कल्याण करने वाली अग्नि को अपने बीच उसी प्रकार धारण करती है, जिस प्रकार माता द्वारा गर्भस्थ शिशु को धारण किया जाता है । समस्त देवताओं और ऋतुओं द्वारा (इस महान् कार्य के लिए) ऐक्य भाव से प्रेरित उखा को सृष्टि-सृजेता प्रजापति (विश्वकर्मा) पाश से विमुक्त करें ॥६१ ॥

५७५. असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तऽ इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥६२ ॥

हे दुष्ट-दलन में समर्थ शक्ति (निर्ऋति) ! आप यज्ञों से रहित और दानादि धर्मकृत्यों से रहित पुरुषों के पास जाएँ (उन्हें अपने नियंत्रण में लें) । आपकी ऐसी ही कामना हो । हे देवि ! आपके लिए हमारा नमन है ॥६२ ॥

५७६. नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥६३ ॥

हे निर्ऋति ! तीक्ष्ण तेजस्वितायुक्त आपकी शक्ति को नमस्कार है । आप लोहे के समान सुदृढ़ जन्म-मरण रूप पाश से हमें मुक्त करें और अग्नि तथा भूमि के साथ मतैक्य को प्राप्त करने वाले इस यजमान को श्रेष्ठ स्वर्गलोक में विराजित करें ॥६३ ॥

५७७. यस्यास्ते घोरऽ आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः ॥६४ ॥

हे क्रूररूपा निर्ऋति ! इन यजमानों के बन्धनरूपी पाप कृत्यों के नाश हेतु आपके मुख में आहुति समर्पित करते हैं । सामान्य ज्ञान से युक्त मनुष्य आपको "हे भूमि" ऐसा संबोधन करते हैं ; परन्तु हम आपको सब प्रकार से पापमुक्त करने वाली ही मानते हैं ॥६४ ॥

५७८. यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् । तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥६५ ॥

(हे यजमान !) पाप देवी ने आपकी गर्दन में जिस सुदृढ़ पाश को बाँधा था, उसे अग्नि के बीच निर्ऋति की प्रसन्नता से अभी हटाते हैं । पाश-विमोचन के बाद इस पोषक अन्न को ग्रहण करें । जिसकी कृपा से यह कृत्य सम्पन्न हुआ, उस ऐश्वर्यमयीदेवी को हमारा नमन है ॥६५ ॥

५७९. निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः । देव ऽ इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥६६ ॥

यजमान को उसके आवास पर स्थिर करने वाले धनैश्वर्यों के प्रदाता, सत्यधर्म के पालनकर्ता यह अग्निदेव अपने कर्मों से अपने सभी रूपों को प्रकट करते हैं । सवितादेव के सदृश प्रकाशित होकर इन्द्रदेव की तरह ही वे संग्राम में स्थिर रहते हैं ॥६६ ॥

५८०. सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥६७ ॥

मेधावान्, सूक्ष्मदर्शी, अग्नि-विद्या के जानकार, हलों को वृषभों के साथ देवों की प्रसन्नता के लिए नियोजित करते हैं । सबके कल्याण हेतु हल एवं बैलों की जोड़ियों (कार्यों) का विस्तार करते हैं ॥६७ ॥

५८१. युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय ऽ इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥६८ ॥

हे कृषक जनो ! हलादि को व्यवस्थित करके बैलों के कंधे पर जुए को रखो तथा खेत की जुताई करो । तैयार किये गये खेत में बीजों का वपन करो और कृषि विज्ञान के अन्तर्गत फसलों की अनेक प्रजातियाँ श्रेष्ठ विधि से तैयार करो । ऐसे शीघ्र ही काटने-योग्य, पके हुए अन्न हमारे लिए उपलब्ध हों ॥६८ ॥

५८२. शुन ँ सु फाला वि कृषन्तु भूमि ँ शुनं कीनाशा ऽ अभि यन्तु वाहैः । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ऽ ओषधीः कर्तनास्मे ॥६९ ॥

हल के नीचे लगी हुई लोहे से विनिर्मित श्रेष्ठ फाल खेत को भलीप्रकार से जोते और किसान लोग बैलों के पीछे-पीछे आराम के साथ जाएँ । हे वायुदेव और सूर्यदेव ! आप दोनों हविष्य से प्रसन्न होकर पृथ्वी को जल से सींचकर इन ओषधियों को श्रेष्ठ फलों से युक्त करें ॥६९ ॥

५८३. घृतेन सीता मधुना समंज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥७० ॥

समस्त देवताओं और मरुद्गणों द्वारा स्वीकृत हल की फाल, मधुर घृतादि रसों से अभिषिक्त हो । हे हल की फाल ! आप अन्नवती होकर दूध-घी से दिशाओं को परिपूर्ण करती हुई, दुग्धादि पौष्टिक पदार्थ हमारे लिए प्रदान करें ॥७० ॥

५८४. लाङ्गलं पवीरवत्सुशेव ँ सोमपित्सरु । तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥७१ ॥

पृथ्वी को खोदने वाले सोमरक्षक, ये फालयुक्त हल श्रेष्ठ कल्याणकारी है । (कृषि उत्पादन से) भेड़, बकरी, पुष्ट शरीर की गौएँ और रथवाहक वेगवान् उत्तम घोड़े आदि प्रदान करते हैं ॥७१ ॥

५८५. कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ऽ ओषधीभ्यः ॥७२ ॥

समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हे हल ! आप मित्र, वरुण, इन्द्र, अश्विनीकुमारों एवं पूषा आदि देवताओं तथा समस्त प्रजाओं के लिए उपयोगी-श्रेष्ठ ओषधियाँ और अभीष्ट भोग्य-सामग्री उपलब्ध कराएँ ॥७२ ॥

५८६. विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना ऽ अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम ॥७३ ॥

कृषि उद्यम द्वारा देवत्व मार्ग पर ले जाने वाले हे मनुष्य ! वध न किये जाने वाले वृषभ आदि से संसार की सुव्यवस्था के निमित्त आप कृषि-कार्य का सम्पादन करें । आपकी कृपा से हम क्षुधा-पिपासा स्वरूप दुःखों से विमुक्त हों और ज्योतिरूप यज्ञकर्मों को प्राप्त करें ॥७३ ॥

५८७. सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा ऽ अरुणीभिः । सजोषसावश्विना द ँ सोभिः सजूः सूर ऽ एतशेन सजूर्वैश्वानरऽ इडया घृतेन स्वाहा ॥७४ ॥

मास-दिवस आदि अवयवों से प्रीति करने वाले जल प्रदाता संवत्सर के लिए, अरुण रश्मियों से प्रीति करने वाली उषा के लिए, चिकित्सकीय कर्मों से प्रीति करने वाले अश्विनीकुमारों के लिए, अश्वों से प्रीति करने वाले सूर्यदेव तथा घृतादि हविष्य से प्रीति करने वाले अग्निदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥७४ ॥

५८८. याऽ ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामह ँ शतं धामानि सप्त च ॥७५ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में जो ओषधियाँ देवताओं द्वारा वसन्त, वर्षा, शरद् इन तीन ऋतुओं में उत्पन्न हुई हैं, पककर पीत वर्ण से युक्त उन सैकड़ों ओषधियों और ब्रीहि-यवादि सप्त धान्यों की सामर्थ्यों का ज्ञान हमें है ॥७५ ॥

५८९. शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥७६ ॥

हे मातृवत् पोषण- गुण- सम्पन्न ओषधियो ! आप सभी के सैकड़ों नाम हैं और सहस्रों अङ्कुर हैं । सैकड़ों कर्मों को सिद्ध करने वाली हे ओषधियो ! आप सभी हमारे इस यजमान को आरोग्य प्रदान करें ॥

५९०. ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वाऽ इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥७७ ॥

हे ओषधियो ! आप वेगवान् घोड़े के समान ही अनेक प्रकार की शत्रुवत् व्याधियों को तेजी से नष्ट करने वाली हों । पुष्पों से युक्त तथा फलोत्पादित गुणों से सम्पन्न हमारे लिए आनन्दप्रद हों ॥७७ ॥

५९१. ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । सनेयमश्वं गां वास ऽ आत्मानं तव पूरुष ॥

हे ओषधियो ! आप माता के समान पालन-शक्ति से युक्त, दिव्यगुणों से सम्पन्न हैं, ऐसे गुणों की हम प्रशंसा करते हैं । इसे आप स्वीकार करें । हे यज्ञपुरुष ! आप से प्राप्त गाय, घोड़े, वस्त्र और रोग रहित देह के सुखों का हम उपभोग करें ॥७८ ॥

५९२. अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज ऽ इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥७९ ॥

हे ओषधियो ! आपका स्थान पीपल काष्ठ द्वारा विनिर्मित उपभृत् और स्रुच् पात्र में है । पलाशपत्र से विनिर्मित जुहू में आपने स्थान बनाया है । हे आहुति में प्रयुक्त ओषधियो ! आप वायुभूत होकर आकाश का सेवन करें, तत्पश्चात् प्राण-पर्जन्य वर्षा के द्वारा यजमान को अन्नादि से सम्पन्न करें ॥७९ ॥

५९३.यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स ऽ उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥

हे ओषधियो ! अपने शत्रुरूपी रोग पर विजय पाने हेतु आप उसी प्रकार रोगी के समीप जाती हैं, जिस प्रकार राजा असुरों पर विजय पाने के लिए समर भूमि मे प्रस्थान करते हैं । वहाँ आपके द्वारा चिकित्सक रोग रूपी असुरों को परास्त करते हैं । ओषधि द्वारा रोगनाशक होने से ही उन्हें वैद्य कहा जाता है ॥८० ॥

५९४. अश्वावती ᳪ सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ऽ ओषधीरस्मा ऽ अरिष्टतातये ॥८१ ॥

इस यजमान के कष्टप्रद रोगों को दूर करने के लिए , घोड़े की तरह शक्तिशाली, सोमयज्ञ के लिए उपयुक्त शक्ति-सामर्थ्य युक्त पराक्रम की संवर्द्धक तथा ओजस्विता की पोषक; ऐसी समस्त ओषधियों के दिव्य गुणों से हम भली प्रकार परिचित हैं ॥८१ ॥

५९५. उच्छुष्मा ऽ ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धन ᳪ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८२ ॥

हे यज्ञपुरुष ! आपके अग्नि रूपी शरीर के लिए हविष्य के रूप में प्रयुक्त होने वाली ओषधियों से सामर्थ्य-शक्ति प्रकट होती है । जैसे गोशाला से गौएँ अरण्य की ओर जाती हैं, वैसे ही यज्ञ-धूम्र से ओषधियों की सामर्थ्य विस्तृत वायुमण्डल में फैल जाती है ॥८२ ॥

५९६. इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयᳪ स्थ निष्कृतीः । सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥८३ ॥

हे ओषधियो ! आप विकारों को दूर करने वाली माता की भाँति 'निष्कृति' अर्थात् रोगों का निवारण करने वाली हैं । क्षुधाहरण करने वाले अन्न के समान ही आप मनुष्यों में स्थित रोगों को दूर करें ॥८३ ॥

५९७.अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥

चोर द्वारा गौओं के बाड़े पर आक्रमण करने के समान ही, अपने गुणों से सर्वत्र व्याप्त ओषधियाँ भी रोग समूह पर आक्रमण करती हैं । शरीर के समस्त विकारों को अपनी आरोग्यवर्द्धक सामर्थ्य से दूर करती हैं ॥८४

५९८.यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्तऽआदधे ।आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥

विशेष शक्तिगुण सम्पन्न इन ओषधियों को सेवन करने के लिए जब हम हाथ में धारण करते हैं ,तब राजयक्ष्मा (टी.बी.) जैसे भयानक रोग का स्वरूप उसी प्रकार (सेवन करने से पहले ही) अपने को नष्ट मानता है, जैसे वध-गृह में पहुँचने से पूर्व ही वध हेतु ले जाया जा रहा प्राणी अपने को मरा हुआ मानता है ॥८५ ॥

५९९. यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधध्व ऽउग्रो मध्यमशीरिव ॥८६ ॥

हे ओषधियो ! आप रोगी मनुष्य के अंग-प्रत्यङ्ग में जब पूर्ण रूप से समाहित होती हैं, तब वीर पुरुष द्वारा शत्रु के मर्मस्थल को पीड़ित करने की तरह ही यक्ष्मादि शारीरिक रोगों को समूल विनष्ट कर देती हैं ॥८६ ॥

६००. साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना । साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥८७ ॥

हे (यक्ष्म) व्याधि ! रोग नाश के लिए किये गये विवेक-सम्मत प्रयोग से तुम दूर हो जाओ । प्राण-वायु की प्रबल गति के साथ अवशिष्ट रोग को दूर करने की विधि द्वारा नष्ट हो जाओ ॥८७ ॥

६०१. अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या ऽ उपावत । ताः सर्वाः संविदाना ऽ इदं मे प्रावता वचः ॥८८ ॥

हे ओषधियो ! आप परस्पर एक दूसरे के प्रभाव में वृद्धि करें । प्रयोग की गई एक ओषधि दूसरी के संरक्षणार्थ निकट आए , अर्थात् पहली ओषधि के लाभ से अधिक लाभ रोगी को प्रदान करे । सभी ओषधियाँ पारस्परिक सहकार भावना का परिचय देती हुई हमारे निवेदन को स्वीकार करें ॥८८ ॥

६०२. याः फलिनीर्या ऽ अफला ऽ अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳ हसः ॥८९ ॥

फलों से युक्त, फलों से रहित, पुष्पयुक्त तथा पुष्परहित, ऐसी ये सभी ओषधियाँ विशेषज्ञ, वैद्य द्वारा प्रयुक्त होती हुई हमें रोगों से मुक्ति दिलाएँ ॥८९ ॥

६०३. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥९० ॥

हे ओषधियो ! आप कुपथ्यजनित रोगों अथवा निन्दित कुकृत्यों से उत्पन्न जल (शरीर के विकृत-रसों) जनित रोगों, यम के नियमानुशासन के त्यागने से हुए पापकृत्यों तथा दैवी अनुशासन के न पालने से हुए अपराध जनित दुष्कर्म-जैसे सभी विकारों से हमें विमुक्त करें ॥९० ॥

[समग्र चिकित्सा में दैहिक रोगों के साथ-साथ आधिदैविक तथा आध्यात्मिक रोगों के उपचार की आवश्यकता की ओर भी यहाँ संकेत है ।]

६०४.अवपतन्तीरवदन्दिवऽओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥९१

दिव्यलोक से प्राणरूप में धरती पर आने वाली ओषधियाँ आश्वासन देती हैं कि जिस प्राणी ने हमारा सेवन किया (उचित ढंग से उपयोग किया), वह आरोग्य-लाभ से कृतार्थ हुआ, वह समय से पूर्व मृत्यु को प्राप्त नहीं होता ॥९१ ॥

६०५. या ऽ ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे ॥९२ ॥

ऐसी ओषधियाँ, जो असंख्य रोगों को विभिन्न प्रकार से विनष्ट करने में सक्षम हैं, जिनमें सोमवल्ली विशेष गुणों से युक्त है, उन सबके बीच रहने वाली हे ओषधि ! आप सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं । आप अभीष्ट सुख-प्राप्ति एवं हृदय को शक्ति देने में पूर्ण सक्षम हैं ॥९२ ॥

६०६.याऽओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै संदत्त वीर्यम् ।

विभिन्नरूपों में धरती पर विद्यमान सोमवल्ली सदृश विशिष्ट गुण-सम्पन्न विभिन्न ओषधियाँ — विशेषज्ञ, वैद्य द्वारा तैयार करके सेवनार्थ दिये जाने पर इस पुरुष को ओजस्वी-वीर्यवान् बनाएँ ॥९३ ।

६०७.याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोस्यै संदत्त वीर्यम् । ।९४

जो ओषधियाँ सम्पर्क क्षेत्र में हैं या जो हमारे सम्पर्क क्षेत्र से दूरस्थ (दुर्गम हिमालय में) हैं । ऐसी वृक्ष-लतादि विभिन्नरूपों में उगी हुई सभी ओषधियाँ, जो हमारी प्रार्थना सुनती हैं, पारस्परिक सहयोग से इस मनुष्य को शक्ति-ओज से परिपूर्ण करें ॥९४ ॥

६०८. मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपाच्चतुष्पादस्माक ँ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥९५ ॥

हे ओषधियो ! रोगोपचार के लिए आपके मूलभाग को ग्रहण करने की आवश्यकता है; अतएव खुदाई करने वाले पुरुष खनन-दोष से सर्वथा मुक्त रहें एवं जिस रोगी के उपचार हेतु आपका खनन किया जाता है, वे भी दोष-मुक्त हों । हमारे स्त्री-पुत्रादि परिजन तथा गवादि पशु सभी आरोग्य-लाभ प्राप्त करें ॥९५ ॥

६०९. ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त ँ राजन् पारयामसि ॥९६ ॥

हे राजन् सोम ! चिकित्सा विशेषज्ञ जिस रोगी के रोग को दूर करने के लिए हमारे मूल, फल, पत्रादि को ग्रहण करते हैं, उसको हम आरोग्य प्रदान करती हैं—ऐसा अपने स्वामी सोम से ओषधियाँ कहती हैं ॥९६ ॥

६१०. नाशयित्री बलासस्यार्शसऽ उपचितामसि । अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥९७ ॥

हे ओषधे ! आप शक्ति का ह्रास करने वाले कफरोग, बवासीर और गण्डमाला आदि रोगों के निवारण में सक्षम हैं । इस प्रकार आप असंख्य रोगों और रक्तविकार से उत्पन्न पके हुए फोड़े को दूर करने वाली हैं ॥९७ ॥

६११. त्वां गन्धर्वाऽ अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥९८ ॥

हे ओषधे ! गन्धर्वों (ओषधि गुणों को पहचानने वाले) ने आपका खनन किया, इन्द्रदेव और बृहस्पतिदेव (परम वैभव सम्पन्न और वेदवेत्ता विद्वान्) ने आपका खनन किया; तब ओषधिपति सोम ने आपकी उपयोगिता को जानकर क्षय रोग को दूर किया ॥९८ ॥

६१२. सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वं पाप्मान ँ सहमानास्योषधे ॥९९ ॥

हे ओषधे ! आप शरीरस्थ विघातक तत्त्वों (रोगों) के निवारण में सक्षम हैं, अतएव सभी विकारों का शमन करें । हमें शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलाएँ ॥९९ ॥

६१३. दीर्घायुस्तऽ ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ॥१०० ॥

हे ओषधे ! आपके खननकर्ता चिरंजीवी हों, जिस रोगी के रोगोपचार हेतु आपका खनन करें, वह भी दीर्घजीवी हो तथा आप भी दीर्घायु को प्राप्त करें— असंख्य अंकुरों से युक्त हों ॥१०० ॥

[यहाँ ओषधि गुणयुक्त वनस्पतियों के उपयोग के साथ-साथ उनके विकास के लिए भी प्रेरित किया गया है ।]

६१४. त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षाऽ उपस्तयः। उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ२ अभिदासति ॥१०१ ॥

हे ओषधे ! आप श्रेष्ठ गुणों से युक्त हों। समीपस्थ वृक्ष हर प्रकार से आपके लिए कल्याणकारी (उपयोगी) हों। जो हम से ईर्ष्या-द्वेष करने वाले दुर्भावनाओं से ग्रसित हैं, वे भी आपके प्रभाव से हमारे अनुगामी हों (हमारे श्रेष्ठ कार्यों में सहयोग करें) ॥१०१ ॥

६१५. मा मा हि ᳪ सीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिव ᳪ सत्यधर्मा व्यानट्। यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०२ ॥

जो जगदीश्वर, पृथिवी के सृजेता, सत्य धर्म के पालक, दिव्यलोक के रचयिता, आदिपुरुष, संसार के आह्लादक एवं जल उत्पादक हैं, उनके अनुशासन के प्रतिकूल होकर हम दुःखी न हों। हम उनके अनुशासन में रहकर उस परमेश्वर के प्रति आहुति समर्पित करते हैं ॥१०२ ॥

६१६. अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह। वपां ते अग्निरिषितो अरोहत् ॥१०३ ॥

हे भूमे ! यज्ञानुष्ठानों के परिणामस्वरूप होने वाली प्राण-पर्जन्य-वर्षा के साथ आप हमारे लिए अनुकूल बनें। प्रजापति की प्रेरणा से अग्निदेव आपके पृष्ठभाग पर प्रतिष्ठित हों ॥१०३ ॥

६१७. अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्। तद्देवेभ्यो भरामसि ॥१०४ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालारूपी देह शुक्ल वर्ण के समान कान्तिमान्, चन्द्रमा की किरणों के समान आह्लादक, ज्योतिस्वरूप, पावन और यज्ञीय कर्मों के उपयुक्त है। उस ज्योतिस्वरूप, प्रशंसनीय देह को हम देवों के निमित्त हव्य समर्पित करने के लिए प्रदीप्त करते हैं ॥१०४ ॥

६१८. इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम्। आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥१०५ ॥

यज्ञ की उत्पत्ति के मूल, अन्न-घृतादि हविष्य को, महत् कामनायुक्त अग्निदेव के लिए उदीची (उत्तर) दिशा से हम ग्रहण करते हैं। ये सब हमारे समीप आएँ और हमारे पुत्रादि एवं धेनु आदि पशुओं में प्रविष्ट हों। अन्न के अभाव से उत्पन्न हुई प्राणघातक विपत्तियों का हम त्याग करते हैं ॥१०५ ॥

६१९. अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो। बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥१०६ ॥

देदीप्यमान, ऐश्वर्यशाली, त्रिकालदर्शी हे अग्निदेव ! यज्ञ की सूचना देने वाला आपका धूम्र विस्तृत प्रकाशमान होते हुए दिव्यलोक को प्राप्त होता है। आप हविप्रदाता यजमान के लिए शक्ति के साथ यज्ञ के लिए उपयुक्त अन्न आदि प्रदान करते हैं ॥१०६ ॥

६२०. पावकवर्चाः शुक्रवर्चा ऽ अनूनवर्चा ऽ उदियर्षि भानुना। पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥१०७ ॥

हे अग्निदेव ! आप पवित्रता प्रदान करने वाली, उज्ज्वल, सशक्त तेजस्विता से श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करते हैं। सभी ओर विचरणशील होकर संसार का संरक्षण करते हैं। माता-पिता की रक्षा करने वाले सुपुत्र की भाँति आप पृथ्वी और द्युलोक का पालन करते हैं ॥१०७ ॥

६२१. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः । त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥१०८ ॥

अन्न की रक्षा करने वाले हे अग्निदेव ! यज्ञीय कर्मों द्वारा सबका कल्याण करते हुए आप उत्तम स्तोत्रों से प्रसन्नता को प्राप्त करें । अनेकानेक सुरक्षा साधनों से सुरक्षित और उत्तम कुल में जन्म लेने वाले याजकों ने अपने हविष्यरूपी अन्न को आहुति रूप में समर्पित किया ॥१०८ ॥

६२२. इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य । स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥१०९ ॥

हे अविनाशी अग्निदेव ! हविदाता यजमानों द्वारा प्रज्वलित होकर हमें प्रचुर वैभव-सम्पदा प्रदान करें । आप देखने में सुन्दर ज्वालारूपी शरीर से विशिष्ट तरह से प्रदीप्त होते हैं और हमारे शुभ-संकल्पों को परिपूर्ण करते हैं ॥१०९ ॥

६२३. इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्त ꣳ राधसो महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसि ꣳ रयिम् ॥११० ॥

यज्ञ सृजेता, श्रेष्ठ चिन्तनयुक्त हे अग्निदेव ! आप यज्ञस्थल में हविदाता यजमान को प्रचुर धन-वैभव, उत्तम ऐश्वर्य, अन्न तथा शाश्वत आध्यात्मिक सम्पदाएँ प्रदान करते हैं ॥११० ॥

६२४. ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्नि ꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्ण ꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥१११ ॥

हे अग्ने ! सत्यस्वरूप, महिमामय, भूलोक के लिए दर्शनीय, प्रार्थना सुनकर उसको पूर्ण करने वाले, यशस्वी, दिव्यगुणों से सुसम्पन्न आपको यज्ञ कर्म के सम्पादनार्थ पहले स्थापित करते हैं, तत्पश्चात् यजमान नर-नारियाँ स्तुति गान करते हैं ॥१११ ॥

६२५. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥११२ ॥

हे सोम ! चारों ओर की विस्तृत तेजस्विता आपमें प्रवेश करे । आप अपने शक्ति—शौर्य से सभी प्रकार से वृद्धि को प्राप्त करें और यज्ञादि सत्कर्मों के लिए आवश्यक अन्न प्राप्ति के साधनरूप आप हमारे पास आएँ । (हमें उपलब्ध हों) ॥११२ ॥

६२६. सन्ते पया ꣳ सि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवा ꣳ स्युत्तमानि धिष्व ॥११३ ॥

हे सोम ! विविध प्रकार के पोषक एवं विकारनाशक रसों से युक्त आप शक्तिवर्द्धक विविध अन्नों को प्राप्त करें । दिव्य पोषक- तत्त्वों को धारण करते हुए चिरकाल तक वृद्धि करते हुए स्थिर रहें ॥११३ ॥

६२७. आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिर ꣳ शुभिः । भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥११४ ॥

हे अति आह्लादक सोम ! अपने दिव्य गुणों की यश-गाथाओं से चतुर्दिक् व्यापक विस्तार को प्राप्त करें तथा हमारे विकास के निमित्त मित्ररूप में सहयोग करें ॥११४ ॥

६२८. आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥११५ ॥

हे अग्निदेव ! पुत्रके सदृश यह यजमान, (सांसारिक) कर्मों से ध्यान को हटाकर, उत्तम स्तोत्रों से आपकी वन्दना करता है ॥११५ ॥

६२९. तुभ्यन्ता ऽ अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्। अग्ने कामाय येमिरे ॥११६ ॥

हे अति तेजस्वितायुक्त अग्निदेव ! मनोवाञ्छित फल पाने के लिए विविध प्रकार की समस्त प्रार्थनाएँ आपके निमित्त समर्पित की जाती हैं ॥११६ ॥

६३०. अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको वि राजति ॥११७ ॥

याजकों की समस्त वर्तमान एवं भावी आकांक्षाओं को पूरा करने वाले, भली-भाँति विराजमान अग्निदेव, अपने प्रिय आवास (यज्ञ वेदी) पर स्वयं ही सुशोभित हो रहे हैं ॥११७ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— वत्सप्री १, ६-१०, ३३, ४०, ४१ । कुत्स २ । श्यावाश्व ३-५ । ध्रुव ११ । शुनः शेप १२ । त्रित १३, १५-१७ । वामदेव १४ । वत्सप्री भालंदन १८-२९ । विरूपाक्ष आंगिरस ३० । तापस ३१-३२ । वसिष्ठ ३४, ३५ । विरूप ३६-३९, ११६, ११७ । दीर्घतमा ४२ । सोमाहुति ४३-४६ । विश्वामित्र ४७-५१, ५३, ५४ । देवश्रवा और देववात भारत ५२ । प्रियमेध ऐन्द्र ५५ । जेता माधुच्छन्दस ५६-५९, ६१-६५ । गोतम ६० । विश्वावसु देवगन्धर्व ६६ । बुध सौम्य ६७-६८ । कुमारहारित ६९-७४ । आथर्वण-भिषक् ७५-८९ । बन्धु ९०-१०१ । हिरण्यगर्भ १०२-१०५ । पावकाग्नि १०६-१११ । गोतम ११२-११४ । अवत्सार ११५ ।

देवता— रुक्म १ । अग्नि २, ६-११, १३, १५-३४, ३६-४२, ४४, ४७-५२, ५७-६०, १०३, १०४, १०६-१११, ११५-११७ । सविता ३ । गरुत्मान् ४ । उखा-अग्नि लिङ्गोक्त ५ । वरुण १२ । सूर्य १४ । आपः (जल) ३५, ५५ । अग्नि, विश्वकर्मा ४३ । लिङ्गोक्त बहुदेवता ४५ । ऊष, सिकता, परिश्रित ४६ । इष्टका ५३ । लोकंपृणा लिङ्गोक्त ५४ । इन्द्र ५६, ६६ । उखा ६१ । निर्ऋति ६२-६४ । यजमान, भूति ६५ । सीर ६७-६८ । सीता ६९-७२ । अनड्वुत् ७३ । अप् आदि लिंगोक्त ७४ । ओषधियाँ ७५-१०१ । कः (प्रजापति) १०२ । आशीर्वाद १०५ । सोम ११२-११४

छन्द — भुरिक् पंक्ति १, २५ । आर्षी त्रिष्टुप् २, २३ । विराट् जगती ३ । भुरिक् धृति ४ । भुरिक् उत्कृति ५ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ६, १८-२२, २४, ३३, ४५, ६२, १०२ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् ७ । आर्षी त्रिष्टुप् ८, ३४, ३५, ४७, ६१, ६४, ७० । निचृत् आर्षी गायत्री ९, ४०, ११५ । निचृत् गायत्री १०, ३६, ४१, ११२ । आर्षी अनुष्टुप् ११ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप् १२, २६-२९, ४२, ६६, ६८ । भुरिक् आर्षी पंक्ति १३, ४८, ४९, ५१, ६३, १०७, ११३ । भुरिक् जगती १४ । विराट् त्रिष्टुप् १५, १०५ । विराट् अनुष्टुप् १६, १७, ३१, ३२, ५४, ५५, ८२, ८४, ८७-८९, ९४, ९५, ९९ । गायत्री ३०, ६७, ११६, ११७ । भुरिक् आर्षी उष्णिक् ३७ । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् ३८, ५२ । निचृत् अनुष्टुप् ३९, ५६, ७७, ८३, ८६, ९२, ९८, १०१ । आर्ची पंक्ति ४३, ५०, ७२ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् ४४ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् ४६ । स्वराट् अनुष्टुप् ५३ । भुरिक् उष्णिक् ५७, ५९ । भुरिक् उपरिष्टात् बृहती ५८ । आर्षी पंक्ति ६०, ११० । आर्षी जगती ६५, ७४ । त्रिष्टुप् ६९ । विराट् पंक्ति ७१ । भुरिक् आर्षी गायत्री ७३ । अनुष्टुप् ७५, ७६, ७८-८१, ८५, ९१, ९६, ९७ । स्वराट् उष्णिक् ९० । विराट् आर्षी अनुष्टुप् ९३ । विराट् बृहती १०० । निचृत् उष्णिक् १०३ । भुरिक् गायत्री १०४ । निचृत् पंक्ति १०६, १०८ । निचृत् आर्षी पंक्ति १०९ । स्वराट् आर्षी पंक्ति १११ । उष्णिक् ११४ ।

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

६३१. मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निᳬं रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। मामु देवताः सचन्ताम् ॥१ ॥

सर्वप्रथम हम अपार वैभव, सुसंतति की प्राप्ति और श्रेष्ठ शक्ति-सामर्थ्य के लिए अग्निदेव को यज्ञस्थल पर स्थापित करते हैं। इस हेतु देव शक्तियाँ हमें सहयोग प्रदान करें ॥१ ॥

६३२. अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् । वर्धमानो महाँ२ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२ ॥

यज्ञशाला में आसन के रूप में प्रयुक्त होने वाले कमल-पत्र आदि के माध्यम से वनस्पतियों को संबोधित करते हुए ऋषि कहते हैं—

आप जल के पृष्ठ (जल पर उत्पन्न अथवा जल को धारण करने वाले) हैं। (वनस्पति जनित काष्ठादि से अग्नि की उत्पत्ति होने से) अग्नि की उत्पत्ति के कारण हैं। बढ़ने वाले समुद्र के साथ आप विस्तार पाते हैं। अंतरिक्ष की तेजस्विता और पृथ्वी की विशालता से आप विस्तार पाएँ ॥२ ॥

६३३. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽ आवः । स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥३ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मरूप में परमात्म शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, वही शक्ति समस्त ब्रह्माण्ड में व्यवस्था रूप में व्याप्त हुई। यही कान्तिमान् ब्रह्म (सूर्यादि) विविध रूपों में स्थित अन्तरिक्षादि विभिन्न लोकों को तथा व्यक्त जगत् एवं अव्यक्त जगत् को प्रकाशित करते हैं ॥३ ॥

६३४. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ पुरुष (प्रजापति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के एक मात्र उत्पादक और पालक रहे। जो सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति से पहले भी विद्यमान थे, वही स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथिवी को धारण करने वाले हैं, हम उसी आनन्द स्वरूप प्रजापति की तृप्ति के लिए आहुति समर्पित करते हैं ॥४ ॥

६३५. द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥५ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ से ही जो (हिरण्यगर्भ), यज्ञ के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले, प्राण-पर्जन्य युक्त दिव्य रस 'द्रप्स' को देवताओं की तृप्ति के लिए द्युलोक को, वनस्पतियों की वृद्धि के लिए पृथिवी को तथा शरीरधारियों की प्रगति के लिए अपने मूल स्थान—यज्ञस्थल को अभिषिक्त करते हैं। तीनों लोकों में विचरण करने वाले उस द्रप्सरूप आदित्य के लिए हम सात याजक हवि समर्पित करते हैं ॥५ ॥

६३६. नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥६ ॥

जो भी सर्प (गमनशील स्वभाव वाले नक्षत्र- लोक अथवा जीव) पृथिवी के प्रभाव क्षेत्र में हैं, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में हैं, उन सभी सर्पों को हमारा नमन है ॥६ ॥

६३७.याऽ इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ२ रनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यःसर्पेभ्यो नमः ॥

राक्षसों द्वारा छोड़े गये गतिशील बाणों के रूप में जो सर्प हैं, जो वनस्पतियों के आश्रित रहने वाले तथा गड्ढों आदि नीचे के भागों में रहने वाले हैं, उन सभी सर्पों के प्रति हम नमन करते हैं ॥७ ॥

६३८. ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।

जो सर्पादि ज्योतिर्मय द्युलोक में अथवा सूर्य की किरणों में वास करते हैं, जो जल के अंदर अपना आश्रय बनाये हैं, ऐसे सभी सर्पों (जीवों) को हम नमन करते हैं ॥८ ॥

६३९. कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप शत्रुओं को दूर करने में सक्षम हैं । जिस प्रकार सशक्त राजा हाथियों पर सवार होकर राक्षसी वृत्ति के शत्रुओं पर हमला करते हैं, वैसे ही आप भी हमला करें । पक्षियों को पकड़ने वाले, विस्तृत आकार वाले, जाल के समान ही अपनी सामर्थ्य-शक्ति का विस्तार करें तथा सुदृढ़ जाल द्वारा दुष्टों को विविध प्रकार के कष्ट देकर प्रताड़ित करें ॥९ ॥

६४०. तव भ्रमास ऽ आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः। तपू ँ ष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥१० ॥

वायु के सम्पर्क से कम्पायमान द्रुतगामी लपटों से प्रकाशित होने वाले हे अग्निदेव ! आप सन्ताप के योग्य असुरों को लपटों से भस्म करें ।आहुति प्रदान करने पर आप बढ़ी हुई ज्वालाओं के द्वारा असुरों का संहार करें ॥

६४१. प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्याऽ अदब्धः। यो नो दूरे अघश ँ सो यो अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे निकटस्थ या दूरस्थ जो भी शत्रु हैं, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को वश में करने के लिए अतिगतिशील सैनिकों को भेजें । हमारी सन्तानों की रक्षा करें । कोई भी हमें पीड़ा न पहुँचा सके ॥११ ॥

६४२. उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ२ ओषतात्तिग्महेते। यो नो अरातिं ँ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप जीवन्त होकर अपनी ज्वालाओं का विस्तार करें । उन तीव्र ज्वालाओं के प्रभाव से शत्रुओं को पूर्णतः भस्म कर दें । हे ज्योतिर्मय ! आप, हमारे जो वैरी दान में बाधक हैं, उन्हें सूखे वृक्ष को भस्म करने के समान ही समूल भस्म करें ॥१२ ॥

६४३. ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून्। अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आप ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से युक्त होकर हमारे शत्रुओं का पूर्णरूपेण संहार करें । देवत्व संवर्द्धक सत्कर्मों का सम्पादन करें । असुरों के सशक्त शस्त्रों को तेजहीन करें तथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शत्रुओं का विनाश करें । हे स्रुव ! अग्नि के तेज (प्रभाव) द्वारा हम आपको प्रतिष्ठित करते हैं ॥१३ ॥

६४४. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽ अयम्। अपा ँ रेता ँ सि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥१४ ॥

जो अग्निदेव द्युलोक के ऊर्ध्व भाग के समान उन्नत हैं, धरती की पालन शक्ति से सम्पन्न, जल में विद्यमान पोषक तत्त्वों को बढ़ाते हैं । हे स्रुव !इन अग्निदेव के लिए इन्द्रदेव की सामर्थ्य से आपको प्रतिष्ठित करते हैं ॥१४ ॥

६४५. भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप जब अपनी ज्वालाओं रूपी जिह्वा को प्रकट करके हविष्यान्न ग्रहण करते हैं, तब यज्ञ (सत्कर्म) एवं उसकी फलश्रुति रूपी जल (प्राण-पर्जन्य) को प्रेरित करने वाले नायक होते हैं । (साथ ही आप) लोक कल्याण के लिए तीव्र गति से दिव्यलोक में सूर्य को धारण करते हैं ॥१५ ॥

६४६. ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा । मा त्वा समुद्र ऽ उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥१६ ॥

इसमें तथा आगे के मंत्रों के साथ स्वयमातृण्णा नामक स्वाभाविक रंध्रयुक्त (पोरस) पत्थर विशेष की ईंट को स्थापित किया जाता है । उसका निर्माण करने वाले मूल पदार्थ को लक्ष्य करके कहा गया है—

आप (पृथ्वी के रूप में) अखिल विश्व को धारण करती हैं । विश्वकर्मा द्वारा विस्तारित होकर सुदृढ़- सुस्थिर हैं ।समुद्र आपको नष्ट न करे, वायु आपका अवरोधक न हो । आप व्यथित न होकर पृथ्वी को स्थिरता प्रदान करें ॥

६४७. प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥१७ ॥

अपने प्रकटरूप से विस्तार करने वाली हे स्वयमातृण्णे ! आप प्रजापति द्वारा समुद्र के पृष्ठ भाग में स्थापित होकर, जल में व्यापक रूप से विस्तार को प्राप्त करें । पृथ्वी के अंश से विनिर्मित आप उसी की प्रतिरूप हैं ॥१७ ॥

६४८. भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥१८ ॥

भूमि की भाँति सुख देने वाली हे स्वयमातृण्णे ! आप विश्व का पालन करने के कारण देवमाता अदिति हैं । अखिल विश्व के प्राणियों का पोषण करती हैं । आप पृथ्वी पर अनुग्रह करें, भू भाग को दृढ़ता प्रदान करें तथा इसे कभी भी पीड़ित न होने दें ॥१८ ॥

६४९. विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । अग्निष्ट्वाभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१९ ॥

हे स्वयमातृण्णे !समस्त प्राण, अपान, व्यान और उदान नामक शरीरस्थ वायु की प्रतिष्ठा के लिए और सदाचरण की रक्षा के लिए यज्ञस्थल पर आपकी स्थापना करते हैं ।लोक हितकारी अग्निदेव शीतल-सुखद साधनों द्वारा आपकी रक्षा करें ।उस महान् दैवी अनुकम्पा से आप अङ्गिरा के समान ही दृढ़ता एवं स्थिरता प्राप्त करें ॥१९ ॥

६५०. काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥

हे दूर्वा ! आप अनेक ग्रन्थियों एवं मर्मस्थलों से (सभी ओर से) भली-भाँति अंकुरित होती हैं, अतः (अपने समान ही) असंख्यों पुत्र-पौत्रों के रूप में हमारे वैभव को बढ़ायें ॥२० ॥

६५१. या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ।

हे दिव्यगुण-सम्पन्न दूर्वे ! आप जो सैकड़ों शाखाओं और सहस्र अङ्कुरों से अंकुरित होती हैं । ऐसी आपके लिए हम हवि प्रदान करते हैं ॥२१ ॥

६५२. यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥२२ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी जो आभा सूर्यमण्डल में स्थित किरणों के रूप में है, उन सभी रश्मियों द्वारा हमें तथा हमारे पुत्र-पौत्रादि को तेजस्विता प्रदान करें ॥२२ ॥

६५३. या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥२३ ॥

हे इन्द्राग्नी ! हे बृहस्पते ! हे देवजनो ! आपकी जो आभा सूर्यमण्डल में सुशोभित है, जो पुष्टिप्रद दीप्तियाँ गौओं (पोषण देने में सक्षम) और अश्वों (बलशाली गतिशील) में स्थित हैं, उन समस्त दीप्तियों से सुशोभित होकर आप हमारे लिए आरोग्य और कान्ति प्रदान करें ॥२३ ॥

६५४. विराड्ज्योतिरधारयत्स्वराड्ज्योतिरधारयत् । प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । अग्निष्टेधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥२४ ॥

विश्वज्योति को लक्ष्य करके कहा गया है—

इस अति सुशोभित विराट्रूप लोक ने अग्निदेव की ज्योति को धारण किया । स्वयं ज्योतिर्मय दिव्य लोक ने ज्योतिरूप तेज को धारण किया । प्राण, अपान, व्यान आदि की ज्योति से प्रजापालक प्रजापति आपको पृथ्वी की पीठ पर विराजमान करें । आप सम्पूर्ण ज्योति प्रदान करें । अग्निदेव आपके अधीश्वर हैं । उन प्रख्यात देव के साथ सुस्थिर होकर आप अंगिरा के समान ही तेजस्विता से सम्पन्न हों ॥२४ ॥

६५५. मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे । वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥२५ ॥

इस मंत्र के साथ इष्टकाओं- ईंटों को वेदिका पर स्थापित करने की परम्परा रही है—

मधु (चैत्र), माधव (वैशाख) दोनों (मास) वसन्त ऋतु से सम्बन्धित हैं । ऋतुओं की तरह दोनों ईंटें अग्नि के आधार रूप में स्थापित रहें ।(कार्य के अनुरूप) अग्नि का चुनाव करने वाले हम याजकों के उत्कर्ष हेतु ये द्युलोक और पृथिवी लोक परस्पर सहयोग करें । जल और ओषधियाँ हमें श्रेष्ठता प्रदान करने वाली हों ।समान व्रतशील अनेक अग्नियाँ उत्कृष्टता से सहायता - कार्य करें । द्यावापृथिवी के बीच में इस समय समान मनयुक्त जो अग्नियाँ हैं, वे वसन्त ऋतु का सम्पादन करती हुई, इस (यज्ञ) कर्म के आश्रित हों । जिस प्रकार सभी देवशक्तियाँ इन्द्रदेव का आश्रय ग्रहण करती हैं, उसी प्रकार (अग्नि) देवता के साथ आप अंगिरा के समान सुस्थिर होकर स्थापित हों ॥

६५६.अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ॥

हे इष्टके ! आप स्वभाव से शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ तथा शत्रुओं से अपराजित हो । आप शत्रुओं को पराभूत करें, संग्राम की कामना करने वाले शत्रुओं का पराभव करें । आप अत्यन्त पराक्रम से युक्त हों और हमें प्रसन्नता प्रदान करने वाली हों ॥२६ ॥

६५७. मधु वाता ऽ ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥२७ ॥

यज्ञकर्म करने वालों के लिए वायु एवं नदियाँ मधुर प्रवाह पैदा करें ।सभी ओषधियाँ मधुरता से सम्पन्न हों ॥

६५८. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२८ ॥

पिता की तरह पोषणकर्ता दिव्य लोक हमारे लिए माधुर्य युक्त हों, मातृवत् रक्षक पृथिवी की रज भी मधु के समान आनन्दप्रद हो ॥२८ ॥

६५९. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥२९ ॥

सम्पूर्ण वनस्पतियाँ हमारे लिए मधुरता (आरोग्य) प्रदायक हों । सूर्यदेव हमें अपने माधुर्य (प्राण ऊर्जा) से परिपुष्ट करें तथा गौएँ भी हमारे लिए अमृत स्वरूप मधुर दुग्धरस प्रदान करने में सक्षम हों ॥२९ ॥

६६०. अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा ऽ अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥३० ॥

यह मन्त्र कूर्म को सम्बोधन करता है । आचार्य महीधर के अनुसार कूर्म प्रजापति एवं प्राण का पर्याय है—.

आप जल के भीतर गहन स्थल में एवं सूर्य मण्डल में स्थित हों, आपको वहाँ सूर्यदेव संतापित न करें । (सभी मनुष्यों के शरीरों में रहने वाली) वैश्वानर अग्नि भी आपको सन्तापित न कर पाए । प्रजा का आप अनवरत निरीक्षण करें तथा दिव्य वृष्टि आपका सदैव सहयोग करे ॥३० ॥

६६१. त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभऽ इष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥३१ ॥

(हे कूर्मरूप प्राण !) आप इष्टकाओं (विश्व निर्माण में प्रयुक्त इकाइयों) में शक्ति भरने में समर्थ हैं । आपने ही (भोग्य सामग्रीरूप) तीनों लोकों को और समुद्रों को संव्याप्त किया है । आप पशुओं को आच्छादित करते हुए उसी ओर प्रस्थान करें, जहाँ श्रेष्ठ कर्म करने वाले (जीव) पहले ही जा चुके हैं ॥३१ ॥

६६२. मही द्यौः पृथिवी च नऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥३२ ॥

अति विस्तारयुक्त पृथ्वी और द्युलोक हमारे इस यज्ञकर्म को अपने-अपने अंशों द्वारा परिपूर्ण करें तथा भरण-पोषण करने वाली सामग्रियों (सुख-साधनों) से हम सभी को तृप्त करें ॥३२ ॥

६६३. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३३ ॥

हे मनुष्यो ! सर्वव्यापी परमेश्वर के सृष्टि-रचना, पालन और संहाररूप कर्मों को देखो, जिससे उन्होंने सभी व्रतयुक्त नियम-अनुशासनों को विनिर्मित किया है । जीवात्मा (इन्द्र) के सर्वश्रेष्ठ सखा वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही हैं ॥३३ ॥

६६४. ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥३४ ॥

हे उखे !(अग्नि रखने वाला पात्र) आप हवि की धारण क्षमता से युक्त और सुस्थिर हैं । विश्व के सभी पदार्थों के ज्ञान से सम्पन्न जातवेद अग्निदेव सर्वप्रथम आपके यहाँ इन उत्पत्ति स्थानों में प्रादुर्भूत हुए । वे प्रख्यात अग्निदेव अपने कर्म से, उचित ढंग से परिचित गायत्री, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्दों के माध्यम से प्रदत्त आहुतियों द्वारा देवताओं के यहाँ हविष्यान्न को पहुँचाएँ ॥३४ ॥

६६५. इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽ ऊर्जे अपत्याय । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥३५ ॥

हे उखे ! आप अन्न, धन, बल, यश, दुग्धादि रस और पुत्र-पौत्रादि प्रदान करने के निमित्त यहाँ चिरकाल पर्यन्त प्रसन्नतापूर्वक रमण करें । आप भूमि को उचित ढंग से प्रकाशित करने से सम्राट् हैं और स्वयं प्रकाशित होने से स्वराट् हैं । सरस्वती से सम्बन्धित मन और वाणी आपको पालनशक्ति से युक्त करें ॥३५ ॥

६६६. अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥३६ ॥

हे दिव्य लक्षणों से युक्त अग्ने !आपके जो गतिशील अश्व आपको शीघ्रता से यज्ञार्थ ले जाने में सक्षम हैं, ऐसे अश्वों को निश्चयपूर्वक आप रथ में नियोजित करें ॥३६ ॥

६६७. युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ अश्वाँ२ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥३७ ॥

हे अग्ने ! आप देवों का आवाहन करने वाले अश्वों को निश्चय ही रथवाहक के समान शीघ्र ही रथ में नियोजित करें । सर्वप्रथम (प्राचीन) हविदाता होने से आप हमारे इस यज्ञानुष्ठान —यज्ञस्थल में विराजित हों ।

६६८. सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । घृतस्य धाराऽ अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥३८ ॥

उद्‌गम से प्रवाहित होने वाली नदियों की धारा के समान, अन्तर्हृदय एवं मन से पवित्र होकर हमारी वाणियाँ (यज्ञीय मन्त्रों) के रूप में प्रवाहित होती हैं । (हम उन्हें) स्वर्णिम प्रकाश-युक्त यज्ञाग्नि को प्रभावपूर्ण बनाने में घी की धाराओं की तरह (प्रभावकारी) देखते हैं ॥३८ ॥

६६९. ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा। अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥३९ ॥

सत्य, ज्ञान, प्रकाश, विशिष्ट ज्ञान और तेजस्विता प्राप्ति के लिए हम आपका आश्रय ग्रहण करते हैं । आपकी कृपा से इस प्राणिसमूह (आश्रित लोग) तथा सभी मानवों में स्थित वैश्वानर (प्राणाग्नि) के वचन (संकेतों) को समझने में हम समर्थ हुए हैं ॥३९ ॥

६७०.अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् । सहस्रदाऽअसि सहस्राय त्वा ॥

हे तेजस्विन् ! आप ज्योति से प्रकाशित होने से अग्निस्वरूप हैं, तेज से तेजवान् होने से 'रुक्म' अर्थात् सुवर्ण के सदृश हैं । आप ही असंख्य वैभव-सम्पदा को प्रदान करने वाले हैं, प्रचुर ऐश्वर्य और ज्ञान के संरक्षण एवं अर्जन हेतु हम आपकी उपासना करते हैं ॥४० ॥

६७१. आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परि वृङ्ग्धि हरसा माभि मꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४१ ॥

देव शक्तियों के उत्पादन स्थल व पशुओं के भरण-पोषण की शक्ति से सम्पन्न हजारों स्वरूप वाले और विश्व-प्रकाशक अग्निदेव को दुग्धादि से अभिषिक्त करें तथा प्रदीप्त तेजस्विता से सभी रोगों को विनष्ट करें । वे (अग्निदेव) संवर्द्धित होकर यजमान को शतायु बनाएँ एवं अहङ्कार से दूर रखें ॥४१ ॥

६७२. वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳसरिरस्य मध्ये। शिशुं नदीनाꣳहरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४२ ॥

हे अग्निदेव ! वायु के प्रिय, वरुणदेव के नाभिरूप, जल-प्रवाहों के मध्य रहने वाले, नदियों के शिशुरूप, हरित (हरिताभ या गतिमान्), विस्तृत आकाश में समाविष्ट, पर्वतों के मूल कारण या पर्वतों परअपनी गति के चिह्न बना देने वाले इस अश्व (प्रकृति में संव्याप्त पर्यावरण का संतुलन बनाये रखने वाले जल) को आप नष्ट न करें ॥४२

[जल के संयोग से ही हरीतिमा विकसित होती है, इसलिए उसे हरिताभ कहा गया है। वायुमण्डल के साथ घुले जल के कारण ही आकाश नीला दिखाई देता है। पृथ्वी पिण्डों को बाँध कर रखने की क्षमता भी जल में है तथा अपने प्रवाह के चिह्न भी वह बना देता है। इस प्रकार जलरूपी अश्व को दिये गये सभी विशेषण विज्ञान-सम्मत हैं।]

६७३. अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः। स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥४३॥

अविनाशी, ऐश्वर्य सम्पन्न, उत्तेजना से रहित, पूर्व ऋषियों द्वारा ग्रहण योग्य, अन्न द्वारा सबके पोषणकर्ता अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं। वे ख्याति प्राप्त अग्निदेव अमावस्या आदि पर्वों से प्रत्येक ऋतु के अनुकूल कर्मों को सम्पादित करें तथा दुग्धादि देने में सक्षम अदिति (देवताओं की माता) के समान गौ (पोषण क्षमता से सम्पन्न प्रकृति व्यवस्था) को नष्ट न करें ॥४३॥

६७४. वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳरजसः परस्मात्। महीꣳसाहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४४॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम आकाश में स्थापित, विभिन्न रूपों का निर्माण करने वाली, वरुण के नाभिस्वरूप, रक्षणयोग्य, परम उच्च लोक से उत्पन्न हुई महिमामयी, असंख्यों की कल्याणकारक, प्राणियों की संरक्षक 'अवि' को विनष्ट न करें ॥४४॥

[अवि भेड़ को भी कहते हैं और रक्षण क्षमता को भी। प्रकृति की रक्षण क्षमता (पर्यावरण) को अग्नि के प्रदूषण परक प्रयोगों से नष्ट न करने का संकेत है। आधुनिक विज्ञान यह भूल कर चुका है, ऊर्जा के ऐसे प्रयोग किये हैं, जिनसे उत्पन्न प्रदूषण ने पर्यावरण के रक्षा कवच (ओजोन कवच आदि) को खंडित किया है।]

६७५. यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽ उत वा दिवस्परि। येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥४५॥

विराट् अग्नि से उत्पन्न अग्निदेव, प्रजापति के संताप (अभाव दूर करने की पीड़ा) से उत्पन्न हुए, जो दिव्य लोक व पृथ्वी को स्वतेज से प्रकाशमान करते हैं। स्रष्टा ने जिससे सृष्टि की रचना की-ऐसे हे अग्निदेव ! याजक कभी आपके क्रोध से पीड़ित न हों ॥४५॥

६७६. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य ऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥४६॥

दिव्य रश्मियों के रूप में अद्भुत शक्तियों से युक्त, मित्र, वरुण और अग्नि के नेत्ररूप तेजस्वी सूर्यदेव दिव्यलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों को प्रकाशित कर रहे हैं। वे सूर्यदेव जड़ और चेतन जगत् की आत्मा (चेतना) रूप में उदित हुए हैं ॥४६॥

[सूर्य से ही पृथिवी पर जीवन होने के कारण इन्हें जगत् की आत्मा कहा गया है।]

६७७. इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४७॥

यज्ञ हेतु प्रकट किये गये हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों और पशुओं को पीड़ित न करें। आप हजारों नेत्रों से युक्त हों। हमारे लिए पौष्टिक अन्न एवं पशुओं को संवर्धित करें। वैभव को प्राप्त कर हम सुखी-समृद्ध जीवन जिएँ। आपका संतापकारी क्रोध, हिंसक पशुओं को एवं जिनसे हम विद्वेष करते हैं, उन्हें ही पीड़ित करे ॥४७॥

६७८. इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु। गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४८॥

हे अग्निदेव ! आप हिन-हिन शब्द द्वारा स्फूर्ति को व्यक्त करने वाले अतिगतिशील अश्वों को पीड़ित न करें । हानिकारक जंगली पशुओं को पीड़ित करते हुए अपने ज्वालारूपी शरीर को संवर्धित करें । आपका संताप खेती को हानि पहुँचाने वाले पशुओं को और जिनके प्रति हमारी प्रीति नहीं है, उन्हें पीड़ित करे ॥४८ ॥

६७९. इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳसरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्। गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४९ ॥

हे अग्निदेव ! सैकड़ों- हजारों धाराओं की स्रोत, लोकों के मध्य घी (तेजस् अथवा दूध का सारतत्त्व) उत्पन्न करने वाली, परमव्योम (व्यापक आकाश अथवा श्रेष्ठ स्थान) में स्थित, यह जो अदिति (दो भागों में न काटने योग्य- गाय) है, इसे हिंसित न करें । जंगल में रहने वाले गवय आदि पशुओं (खेती को हानि पहुँचाने वाली नील गाय आदि) की ओर आपको निर्देशित किया जाता है । अपनी ज्वालाओं को बढ़ाते हुए आप उनके साथ रहें । जिनसे हम द्वेष करते हैं, ऐसे गवय पशुओं पर आपका क्रोध प्रकट हो ॥४९ ॥

[यह मंत्र द्वि-आर्थिक है— (१) पोषण प्रदान करने वाली 'गाय' आदि पर नहीं, हानिकारक पशुओं पर अग्नि का क्रोध प्रकट हो । (२) लोकों को हजारों धाराओं में पोषण प्रदान करने वाली प्रकृति को अग्नि के विशिष्ट प्रयोग नष्ट न करें, असन्तुलन पैदा करने वाले तत्त्वों तक ही उनका प्रकोप सीमित रहे ।]

६८०. इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्। त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्। उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५० ॥

भेड़ की ऊन के छन्ने में सोमरस छानते हुए इस मंत्र को कहे जाने की परम्परा है । पृथ्वी के चारों ओर एक प्राकृतिक रक्षा आवरण (आयनोस्फियर) है, जो छन्ने के रूप में अंतरिक्ष के हानिकारक उपकणों (सब-पार्टिकिल्स) को प्रविष्ट न होने देकर जीवों की रक्षा करता है । उसकी रक्षा का संकेत इस मंत्र में है—

हे अग्ने ! इस परम व्योम (विशाल आकाश- अथवा श्रेष्ठ स्थल) में— सृष्टि में सबसे पहले उत्पन्न, वरुण (जल) की नाभि (उत्पत्तिस्थल) रूप, त्वचा की तरह चौपायों एवं दोपायों (सभी प्राणियों) की रक्षा करने वाली, इस ऊनयुक्त (भेड़ अथवा प्रकृति की रक्षण क्षमता) को आप हिंसित न करें । आपको जंगली ऊँटों की ओर निर्देशित किया जाता है । उनके साथ विस्तार पाकर आप सुख मानें । जिनसे हम द्वेष रखते हैं, ऐसे (बेडौल- अनुपजाऊ क्षेत्र में रहने के इच्छुक) ऊँट आदि पशुओं पर आपका कोप प्रकट हो ॥५० ॥

६८१. अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे। तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः। शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५१ ॥

यह अज (बकरा अथवा अजन्मा- शाश्वत तेज) परमेश्वर की तेजस्विता से सम्पन्न हुआ है । उसी से वह (जीव) विश्व के रचयिता का साक्षात्कार करने में सक्षम हुआ है, उसी के द्वारा देवता श्रेष्ठ देवत्व के परम पद को प्राप्त करते हैं और उसी की सामर्थ्य-शक्ति से याजकगण स्वर्ग के सुख को प्राप्त करते हैं । हे अग्निदेव ! आपको हम जंगली शरभ (हिंसक पशु) की ओर प्रेरित करते हैं, आपका क्रोध शरभ आदि पशुओं की ओर हो और जिनसे हम प्रीतिरहित हैं, उन्हें आपकी ज्वालाएँ संतप्त करें ॥५१ ॥

६८२. त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः। रक्षा तोकमुत त्मना ॥५२ ॥

हे तरुणतम अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा की जा रही स्तुतियों का श्रवण करें । यज्ञ में आहुति देने वाले यजमानों का संरक्षण करें तथा उनके पुत्र-पौत्रादि का भी रक्षण करें ॥५२ ॥

यहाँ से आगे की कण्डिकाएँ इष्टका- ईंटों को स्थापित करने के संदर्भ में हैं । इष्टकाओं के माध्यम से चेतनायुक्त विभिन्न इकाइयों को सभी उपयुक्त स्थलों पर स्थापित करने का भाव प्रकट किया गया है–

६८३. अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि । गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥५३ ॥

हे (अपस्या नामक) इष्टके ! आपको हम जल के स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं, आपको ओषधियों में स्थापित करते हैं, विद्युत् ज्योति में स्थापित करते हैं, वाणी के स्थान में स्थापित करते हैं । आपको चक्षु स्थान में, श्रोत्र स्थान में, दिव्यलोक में, अन्तरिक्षलोक में, समुद्र में, सिकता में एवं अन्न में स्थापित करते हैं । आपको गायत्री छन्द से, त्रिष्टुप् छन्द से, जगती छन्द से, अनुष्टुप् और पंक्ति छन्द से स्थापित करते हैं, अर्थात् इन सभी स्थानों पर आपकी स्थापना करते हैं ॥५३ ॥

६८४. अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाᳫंशुरुपाᳫंशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५४ ॥

हे इष्टके ! ये अग्निदेव सर्वप्रथम उत्पन्न होने से प्राणरूप में स्थित हैं । यह प्राण भुवनात्मक अग्नि से उत्पन्न होने से प्राणरूप में स्थित है । ये प्राण भुवनात्मक अग्नि से उत्पन्न होने के कारण 'भौवायन' नाम से जाने जाते हैं । इन भौवायन के निमित्त इष्टका को प्रतिष्ठित करते हैं । प्राण से उत्पन्न होने वाले वसन्त ऋतु हैं । वसन्त से गायत्री, गायत्री से गायत्र साम, गायत्र साम से उपांशु नामक प्राण उत्पन्न हुए । उपांशु प्राण से त्रिवृत् नामक स्तोम, त्रिवृत् स्तोम से रथन्तर साम उत्पन्न हुए । इन सभी के प्रवर्त्तक और द्रष्टा सभी प्राणों में प्रधान रूप से विद्यमान ऋषि वसिष्ठ हुए हैं । इन सभी देव शक्तियों के निमित इष्टका प्रतिष्ठित करते हैं । हे चितिशक्ति ! प्रजापालक द्वारा गृहीत (विनिर्मित) आपके सहयोग से प्रजाओं के लिए आरोग्यप्रद प्राण को हम ग्रहण करते हैं, अर्थात् सबके दीर्घायुष्य की कामना करते हैं ॥५४ ॥

६८५. अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारᳫं स्वारादन्तर्यामोन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५५ ॥

विश्वकर्मा नाम से प्रख्यात ये इष्टका दक्षिण-दिशा में प्रस्थापित होती है । वायु देवता का मनन कर हम इष्टका को स्थापित करते हैं । मन उन विश्वकर्मा से उत्पन्न हुआ, मन से ग्रीष्म ऋतु उत्पन्न हुई, सूर्य के प्रखर ताप से युक्त ग्रीष्म ऋतु के मानस् तेज से त्रिष्टुप् उत्पन्न हुए, त्रिष्टुप् छन्द से स्वार साम प्रकट हुए, स्वार साम से अन्तर्याम ग्रह उत्पन्न हुए, अन्तर्याम से पञ्चदश स्तोम प्रकट हुए, पञ्चदश स्तोम से बृहत्साम उत्पन्न हुए, उसके द्रष्टा और सञ्चालक स्वयं प्राण के सदृश भरद्वाज ऋषि हैं । इन समस्त दिव्यशक्ति धाराओं का मनन करते हुए हम इष्टका की स्थापना करते हैं । हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा ग्रहण की हुई (विनिर्मित) आपके सहयोग से हम सब प्रजाओं के लिए मन को धारण करते हैं, अर्थात् सबके मनोबल की कामना करते हैं ॥५५ ॥

६८६. अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऽऋक्समम्ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५६ ॥

विश्वव्यचा (सूर्य) नाम से प्रख्यात ये (इष्टका) पश्चिम दिशा में स्थापित होती है, इनका (सूर्य का) मनन करते हुए इष्टका को प्रतिष्ठित करते हैं । उस विश्वव्यचा सूर्यदेव से नेत्र उत्पन्न हुए (परमेश्वर के चक्षु सूर्य हैं) , वर्षा ऋतु नेत्रों से प्रकट होती है, वर्षाऋतु से जगती छन्द उत्पन्न हुए (समस्त सृष्टि वर्षा ऋतु से प्रकट होती है), जगती छन्द से ऋक्-साम का प्रादुर्भाव हुआ, ऋक्साम से शुक्रग्रह की उत्पत्ति हुई, शुक्र ग्रह से सप्तदश स्तोम उत्पन्न हुए, सप्तदश स्तोम से वैरूप साम अर्थात् विविध जीवसृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ, वैरूप नानाविध जीव-जन्तुओं की रक्षा करने वाले चक्षु—सूर्य के द्रष्टा जमदग्नि ऋषि हैं । इन समस्त देवताओं का मनन करते हुए हम इष्टका की स्थापना करते हैं । हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा गृहीत (विनिर्मित) आपके सहयोग से प्रजाओं के लिए हम नेत्र को धारण करते हैं अर्थात् सबके दूरदर्शी विवेक की कामना करते हैं ॥५६ ॥

६८७. इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳसौवꣳशरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽ ऐड मैडान्मन्थी मन्थिन ऽएकविꣳश ऽ एकविꣳशाद्वैराजं विश्वामित्रऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५७ ॥

उत्तर दिशा की ओर स्थित, स्वर्गलोक से सम्बन्धित श्रोत्र उस प्रजापति के प्रमुख सुख-साधन स्वरूप हैं । उसका मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं । श्रोत्र से शरद् ऋतु का प्रादुर्भाव होता है, शरद् ऋतु से अनुष्टुप् छन्द उत्पन्न हुए, अनुष्टुप् छन्द से एडसाम की उत्पत्ति हुई, एडसाम से मन्थी ग्रह उत्पन्न हुए, मन्थीग्रह से यज्ञ में एकविंश स्तोम की उत्पत्ति होती है, एकविंश स्तोम से वैराज साम का प्रादुर्भाव हुआ । इन सबके द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र हैं । इन समस्त दिव्य शक्तियों का मनन करते हुए इष्टका का स्थापन करते हैं । हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा गृहीत (विनिर्मित) आपकी सहायता से प्रजाओं के लिए हम श्रोत्र को ग्रहण करते हैं अर्थात् सबके दूरश्रवण (युगानुरूप कर्त्तव्यबोध) की कामना करते हैं ॥५७ ॥

६८८. इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत ऽ आग्रयण ऽ आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रि ꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳ शाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्म ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ताऽ इन्द्रम् ॥५८ ॥

सर्वोच्च भाग पर चन्द्रमारूपी मति विराजमान है । उसका मनन करते हुए इष्टका स्थापित करते हैं । उस प्रज्ञा बुद्धि से वाणी का प्रादुर्भाव हुआ, उस वाणी से हेमन्त ऋतु की उत्पत्ति हुई, हेमन्त ऋतु से (हेमन्ती) पंक्ति छन्द उत्पन्न हुआ । पंक्ति छन्द से निधनवत् साम प्रकट हुए, निधनवत् साम से आग्रयण ग्रह की उत्पत्ति हुई, आग्रयण ग्रह से त्रिणव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोम उत्पन्न होते हैं, त्रिणव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोमों से शाक्वर और रैवत नामक साम प्रादुर्भूत होते हैं, इन सबके द्रष्टा विश्वकर्मा ऋषि हैं । इन सभी शक्तियों का मनन करते हुए इष्टका की स्थापना करते हैं । हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा ग्रहण की हुई (विनिर्मित) आपके सहयोग से प्रजाओं के लिए वाणी को ग्रहण करते हैं अर्थात् सबके श्रेष्ठ वक्तृत्व शक्ति की कामना करते हैं । हे समस्त इष्टकाओ ! आप समस्त (छिद्रों) लोकों को सम्पूर्ण करें, आपके लिए समस्त प्रजा स्तोम गान करते हुए इन्द्रदेव का आवाहन करती हैं ॥५८ ॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— अवत्सार १, ३ । गृत्समद २ । हिरण्यगर्भ ४ । देवश्रवा ५-८ । देवा, वामदेव ९-१३ । विरूप १४, ३७-४५, ४७-५१ । त्रिशिरा १५-१९ । अग्नि २०, २१ । इन्द्राग्नी २२-२५ । सविता अथवा देवा २६ । गोतम २७-३१,३४,३५ । मेधातिथि ३२-३३ । भरद्वाज ३६ । कुत्स आंगिरस ४६ । उशना काव्य ५२-५८ ।

देवता— अग्नि १, ९-१३, १५, २२, २३, ३६, ३७, ४१-४५, ४७-५२ ।पुष्करपर्ण २ । आदित्य ३, ५ । कः ४ । सर्पसमूह ६-८ । अग्नि , इन्द्र १४ । स्वयमातृण्णा १६-१९ । दूर्वा-इष्टका २०, २१ । अयंलोक, असौ लोक, विश्वज्योति २४ । ऋतु २५ । इष्टका २६, ५३ । विश्वेदेवा २७-२९ । कूर्म ३०, ३१ । द्यावा-पृथिवी ३२ । विष्णु ३३ । उषा ३४-३५ । लिंगोक्त ३८ । हिरण्यशकल ३९, ४० । सूर्य ४६ । प्राणभृत् ५४-५८ ।

छन्द— आर्ची पंक्ति १ । विराट् त्रिष्टुप् २ ।निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ३,५,१५ । आर्षी त्रिष्टुप् ४ । भुरिक् उष्णिक् ६ । अनुष्टुप् ७, १७, २०, २३ । निचृत् अनुष्टुप् ८, २१, २६ । भुरिक् पंक्ति ९, १० । निचृत् त्रिष्टुप् ११, ४२-४४, ४६ । भुरिक् आर्षी पंक्ति १२ । निचृत् आर्षी अतिजगती १३ । भुरिक् अनुष्टुप् १४, २२ । स्वराट् आर्षी अनुष्टुप् १६ । प्रस्तार पंक्ति १८ । भुरिक् अतिजगती १९ । निचृत् धृति २४ । भुरिक् अतिजगती, भुरिक् ब्राह्मी बृहती २५ । निचृत् गायत्री २७, २९, ३३, ३६, ३७, ५२ । गायत्री २८, ३२ । आर्षी पंक्ति ३० । त्रिष्टुप् ३१, ३८, ४१, ४५ । भुरिक् त्रिष्टुप् ३४ । निचृत् बृहती ३५, ३९ । निचृत् उष्णिक् ४० । विराट् ब्राह्मी पंक्ति ४७ । निचृत् ब्राह्मी पंक्ति ४८ । कृति ४९ । भुरिक् कृति ५०,५१ । भुरिक् ब्राह्मी पंक्ति, ब्राह्मी जगती, निचृत् ब्राह्मी पंक्ति ५३ । स्वराट् ब्राह्मी जगती ५४ । निचृत् अतिधृति ५५, ५६ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ५७ । विराट् आकृति ५८ ।

॥इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

[इस अध्याय की २७ कण्डिकाएँ तथा पन्द्रहवें अध्याय की अनेक कण्डिकाएँ इष्टकाओं को लक्ष्य करके कही गयी हैं। यज्ञशाला की वेदिकाओं के लिए इष्टकाएँ स्थापित करते हुए इनके उच्चारण करने की परम्परा रही है; किन्तु ऋषियों की दृष्टि बड़ी व्यापक रही है। सृष्टि संरचना की सभी मूलभूत इकाइयों को उन्होंने 'इष्टका' कहा है। इष्ट-प्रयोजन के लिए जो अभीष्ट है, वह 'इष्टका' है। अन्न, अस्थि, दिन-रात, ऋतुओं आदि सभी को 'इष्टका' कहा गया है। विशेष संदर्भ के लिए भूमिका देखी जा सकती है; यहाँ मंत्रों के भाव समझने के लिए उक्त व्यापक अर्थ को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।]

६८९. ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया। उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥

हे इष्टके ! आप स्थिर निवास, स्थिर स्वभाव और अविचल स्वरूप से युक्त हैं। आप अग्निदेव के प्रथम ध्वज (ज्वाला) के रूप का सेवन करती हुई सुस्थिर हों और अविचल श्रेष्ठ स्थान अन्तरिक्ष को प्राप्त हों। आप देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमारों द्वारा इस उत्तम स्थल में प्रतिष्ठित हों ॥१॥

६९०. कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः। अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥२॥

हे इष्टके !आप निवास-योग्य घर से युक्त होकर, पौष्टिक घृतादि पदार्थों से सम्पन्न बनकर, पुर को धारण करने वाली पृथ्वी के सुखप्रद गृह में विराजें ।रुद्र एवं वसुगण आपकी स्तुतियाँ करें ।इन मंत्रों को आप अपने सौभाग्य के संवर्द्धन हेतु सुरक्षित करें ।दोनों अश्विनीकुमार अध्वर्युरूप में आपको इस यज्ञस्थल में विराजमान करें ॥२॥

६९१. स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाᳬ सुम्ने बृहते रणाय। पितेवैधि सूनवऽ आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा सं विशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥३॥

शक्ति संरक्षक हे इष्टके ! देव शक्तियों के सुख-संवर्द्धन हेतु आप यहाँ द्वितीय चिति के स्थान पर स्थिर होकर सबका कल्याण करें। पुत्र के सुखी जीवन की कामना करने वाले पिता की भाँति आप भी प्रयासरत रहें। दोनों अश्विनीकुमार आपको यहाँ प्रतिष्ठापित करें ॥३॥

६९२. पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥४॥

पृथ्वी की प्रथम चिति को पूर्ण करने वाली हे इष्टके ! आप जल से उत्पन्न हैं। समस्त देवशक्तियाँ सभी तरफ से आपकी स्तुति करें। आप स्तुतियों के अभिप्राय को जानते हुए हवि-रूप-घृत से तृप्त होकर यहाँ विराजमान हों। हमें पुत्र-पौत्रादि के साथ समृद्ध वैभव प्रदान करें। देवतओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार इस स्थान पर आपको विराजमान करें ॥४॥

६९३. अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्। ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा तऽ ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥५॥

प्राणिमात्र पर शासन करने वाली दिशाओं को स्थिरता प्रदान करने वाली हे इष्टके ! आप अन्तरिक्ष को धारण करने में समर्थ हैं। हम आप को प्रथम चिति पृथिवी के ऊपर स्थापित करते हैं। आप रस-रूपी जल की तरङ्ग के समान हैं ।विश्वकर्मा आपके द्रष्टा ऋषि हैं ।देवों के अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको इस स्थान पर स्थापित करें ॥५॥

६९४. शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे। ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥६ ॥

ज्येष्ठ और आषाढ़ मास के ग्रीष्म ऋतु की भाँति, हे ऋतुरूप दोनों इष्टकाओ ! आप अग्निदेव के बीच ज्वलनशीलता के रूप में विद्यमान हैं । हम प्रगति करते हुए द्युलोक और पृथिवी पर्यन्त विस्तार पाएँ । जल और ओषधियाँ इस कार्य में हमारा सहयोग करें । व्रतशील विभिन्न अग्नियाँ हमें श्रेष्ठता की ओर प्रेरित करें । ग्रीष्म-ऋतु का सम्पादन करने वाली पृथ्वी और द्युलोक के मध्य विराजमान इष्टकाएँ उसी प्रकार सुशोभित हों, जिस प्रकार देवताओं के साथ इन्द्रदेव होते हैं । हे इष्टके ! आप अपने दिव्य गुणों से अङ्गिरावत् स्थिर रहें ॥६ ॥

६९५. सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥७ ॥

हे इष्टके ! ऋतुओं और जल से प्रीतियुक्त शैशवादि अवस्था प्राप्त करने वाले प्राण सहित इन्द्रादि देवों के साथ प्रीतियुक्त आपको अग्निदेव की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करते हैं । इस यज्ञ के प्रधान अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको इस द्वितीय चिति में स्थापित करें । ऋतुओं और जल से प्रीतियुक्त वसुओं के साथ प्रीतियुक्त प्राणों सहित देवताओं के साथ प्रेम व्यवहार से युक्त आपको अग्निदेव की तृप्ति हेतु ग्रहण करते हैं । इस कर्म के प्रधान अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको द्वितीय चिति में स्थापित करें । ऋतुओं, जल, रुद्रों, प्रिय प्राणों के साथ देवताओं से प्रीतियुक्त आपको अग्निदेव की प्रीतियुक्त प्रसन्नता हेतु ग्रहण करते हैं, इस कर्म के मुख्य अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको द्वितीय चिति में स्थापित करें । ऋतुओं और जल के प्रिय, आदित्यगण के प्रिय एवं प्राणों से प्रीतियुक्त आपको अग्निदेव की संतुष्टि हेतु ग्रहण करते हैं । इस कार्य के प्रधान अध्वर्यु अश्विद्वय आपको द्वितीय चिति में विराजमान करें । ऋतुओं से सेवित, प्राणों से प्रीतियुक्त, समस्त देवसमूह से प्रेमयुक्त, प्राणों से प्रिय आपको अग्निदेव की प्रसन्नता हेतु ग्रहण करते हैं । प्रधान अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको इस द्वितीय चिति में विराजमान करें ॥७ ॥

६९६. प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मऽ उर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥८ ॥

हे इष्टके ! आप हमारे प्राण, अपान तथा व्यान की रक्षा करें ।आप हमारे नेत्रों को व्यापक दृष्टि के योग्य बनाएँ तथा कानों को समर्थ बनाएँ ।अपने अनुग्रह से इस पृथ्वी को सिञ्चित करें । आप ओषधियों में पोषक तत्त्व बढ़ाएँ , मनुष्य को सुरक्षित करें, गवादि पशुओं की रक्षा करें तथा द्युलोक से जलवृष्टि हेतु सदैव प्रेरणा दें ॥८ ॥

६९७. मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोनाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्द ऽ उक्षा वयः ककुप् छन्द ऽ ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥९ ॥

गायत्री-रूप से प्रजापति ब्रह्मा ने इच्छाशक्ति द्वारा मूर्धन्य ब्राह्मण की उत्पत्ति की। अनिरुक्त छन्द से संरक्षण-युक्त क्षत्रिय का सृजन किया। जगत् को पोषण देने वाले परमेश्वर ने छन्दरूप हो वैश्य की रचना की। परमेष्ठी विश्वकर्मा ने शक्ति द्वारा छन्दरूप शूद्र की उत्पत्ति की। एकपद नामक छन्द से परमेश्वर ने भेड़ को उत्पन्न किया। पंक्ति छन्द के प्रभाव से मनुष्य को उत्पन्न किया। विराट् छन्द के प्रभाव से प्रजापति ने व्याघ्र पशु को पैदा किया। अतिजगती छन्द से सिंह को प्रकट किया। बृहती छन्द से भारवाहक पशुओं को उत्पन्न किया। ककुप् छन्द से प्रजापति ने उक्षा जाति को पैदा किया। सतोबृहती छन्द से भालू आदि पशुओं की रचना की ॥९ ॥

६९८. अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽ उष्णिक् छन्दस्तुर्यवाड्वयोनुष्टुप् छन्दो लोकं ता इन्द्रम् ॥१० ॥

हे इष्टके ! पंक्ति छन्द होकर प्रजापति ने बलीवर्द (बैल) को उत्पन्न किया। जगती छन्द से प्रजापति ने धेनु जाति की रचना की। त्रिष्टुप् छन्द से त्र्यवि जाति की उत्पत्ति की। विराट् छन्द से दित्यवाट् (भारवाहक) पशुओं की रचना की। गायत्री छन्द से प्रजापति ने पंचावि जाति को उत्पन्न किया। उष्णिक् छन्द से त्रिवत्सा (तीन वत्सर वाले) पशु को पैदा किया। अनुष्टुप् छन्द की सामर्थ्य से प्रजापति ने तुर्यवाट् जाति उत्पन्न की। हे इष्टके ! आप लोक को सुरक्षित करें। सभी प्राणी ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१० ॥

६९९. इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृ ꣳ हतं युवम्। पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च वि बाधसे ॥११ ॥

हे इन्द्राग्नि देवशक्तियो ! आप दोनों पीड़ा-रहित होते हुए इष्टका को स्थिर करें। आप अपने उच्च पृष्ठ भाग से पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को व्याप्त करती हैं ॥११ ॥

७००. विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृ ꣳहान्तरिक्षं मा हि ꣳ सीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१२ ॥

हे इष्टके ! प्रजापति विश्वकर्मा विस्तार-युक्त करते हुए आपको अन्तरिक्ष के उच्च स्थान पर विराजमान करें। आप समस्त विश्व के प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि प्राणों की प्रतिष्ठा के लिए अन्तरिक्ष को धारण करें। उस अन्तरिक्ष को सुदृढ़ करें, अन्तरिक्ष को हानि न पहुँचाएँ। वायुदेव आपको अपने अति कल्याणकारी और प्रखर तेज से रक्षित करें। उन देवताओं द्वारा ग्रहण की हुई आप निश्चित ही अङ्गिरावत् सुस्थिर हों ॥१२ ॥

७०१. राज्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥१३ ॥

हे इष्टके ! आप तेजस्विता- सम्पन्न पूर्वदिशा रूप में सुशोभित हैं, विशिष्ट प्रकार से तेजरूप आप दक्षिण दिशारूप हैं, श्रेष्ठ विधि से विराजमान आप पश्चिमदिशा हैं, स्वयं प्रकाशित आप उत्तरदिशा-रूप हैं, अति संरक्षण से युक्त आप अति विस्तृत ऊर्ध्वदिशा हैं, अर्थात् आप दिशाओं की अधिष्ठात्रीरूप में विराजमान हैं ॥१३ ॥

७०२. विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१४ ॥

हे इष्टके ! नक्ष-सृजेता आपको अन्तरिक्ष के उच्च भाग में विराजित करें । आप याजकों के समस्त प्राण, अपान, व्यान की प्राप्ति हेतु सम्पूर्ण ज्योतियों को प्रदान करें । अपने अधिपति वायुदेव की सामर्थ्य से अङ्गिरावत् इस कार्य में सुस्थिर हों ॥१४ ॥

७०३. नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे । वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥१५ ॥

श्रावण और भाद्रपद मास ये दोनों वर्षा ऋतु से सम्बन्धित हैं । हे इष्टके ! आप प्रकाशमान अग्निदेव के बीच ज्वलनशीलता के रूप में स्थित हैं । हमारे उत्थान हेतु ये द्युलोक और पृथ्वीलोक सहयोग करें, जल और ओषधियाँ हमारा सहयोग करें । एकरूप कार्य में संलग्न अग्नियाँ उत्कर्ष प्रदान करें । ये द्युलोक और पृथ्वी के बीच में वर्तमान जो अग्निदेव हैं, वे वर्षा सम्बन्धी ऋतु को सम्पादित करते हुए इस कर्म को पूर्ण करें । जिस प्रकार देवतागण इन्द्रदेव की प्रशंसा करके उनके सहयोग में स्थित रहते हैं । हे इष्टके ! आप उस प्रमुख देव द्वारा अंगिरा के समान स्थापित हों ॥१५ ॥

७०४. इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे । शारदावृतू अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥१६ ॥

आश्विन और कार्तिक मास शरद् ऋतु के दो माह हैं । हे ऋतु - रूप इष्टकाओ ! आप प्रज्वलित अग्नि के बीच में दृढ़ता के निमित्त स्थापित हैं । हमारी प्रगति के लिए पृथिवी, द्युलोक, जल और ओषधियाँ सहयोग करें । समान विचारों वाली सभी इष्टकाएँ इस यज्ञ में उसी प्रकार एकत्रित हों, जिस प्रकार इन्द्रदेव के पास समस्त देवता पहुँचते हैं । हे इष्टके ! आप इन देवताओं द्वारा अङ्गिरा की तरह सुदृढ़ होकर स्थापित हों ॥१६ ॥

७०५. आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥१७ ॥

हे इष्टके ! आप हमारी आयु को संरक्षित करें, हमारे जीवनाधार प्राण को संरक्षित करें । हमारे अपानवायु को रक्षित करें । हमारे व्यानवायु को रक्षित करें । हमारेनेत्रों की रक्षा करें । हमारे दोनों कानों को सुरक्षित करें । हमारी वाणी को हर्षप्रदायक बनाएँ, हमारे मन को उन्नत विचारों से परिपूर्ण करें, हमारी आत्मा का कल्याण करें और हमारी तेजस्विता को प्रखर बनाएँ ॥१७ ॥

७०६. मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्दऽ उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

हे इष्टके ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक का मनन करते हुए हम आपको स्थापित करते हैं । हम अस्रीवय छन्द, पंक्ति छन्द, उष्णिक् छन्द, बृहती छन्द, अनुष्टुप् छन्द, विराट् छन्द, गायत्री छन्द, त्रिष्टुप् छन्द एवं जगती छन्द का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं ॥१८ ॥

७०७. पृथिवी छन्दोन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोजाछन्दोश्वश्छन्दः ॥१९ ॥

हे इष्टके ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक से संबन्धित छन्दों का मनन करके हम आपको स्थापित करते हैं। वर्षा देवता के, नक्षत्र देवता के, वाक् देवता के, मन देवता के, कृषि देवता के, हिरण्य देवता के, गो देवता के, अजा देवता के एवं अश्व देवता के छन्द का मनन करते हुए हम आपको स्थापित करते हैं ॥१९ ॥

७०८. अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ।

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, आठों वसु देवता, ग्यारह रुद्रगण, बारह आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता और वरुण देवता आदि सम्पूर्ण दिव्य शक्तिधाराओं का मनन करके हम इष्टका को स्थापित करते हैं ॥२० ॥

७०९. मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी । आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥२१ ॥

सर्वोच्च मूर्धाभाग पर स्थित हे इष्टके ! आप स्वयं स्थिरतायुक्त होकर दूसरों को धारण करने की सामर्थ्य से युक्त हों । सम्पूर्ण प्रजा को धारण करने वाली धरती के समान इस स्थान को धारण करें । दीर्घ आयुष्य के लिए हम आपको स्थापित करते हैं, तेजस्विता की प्राप्ति हेतु आपको धारण करते हैं, कृषि उत्पादक अन्नादि की वृद्धि हेतु आपको स्थापित करते हैं और सुख के संवर्द्धन हेतु हम आपको स्थापित करते हैं ॥२१ ॥

७१०. यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री । इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा लोकं ता इन्द्रम् ॥२२ ॥

धरित्री के समान अविचल, नियमानुसार गतिशील हे इष्टके ! आप स्वयं नियमपूर्वक रहकर सभी का नियमानुसार संचालन करती हैं। हम अन्नप्राप्ति के लिए आपको स्वीकार करते हैं, हम पराक्रम हेतु आपको स्वीकार करते हैं, ऐश्वर्य संवर्द्धन हेतु आपको स्वीकार करते हैं तथा सभी के पोषण हेतु आपको स्वीकार कर स्थापित करते हैं। आप सभी लोकों की रक्षा करते हुए इन्द्र आदि देवताओं को सन्तुष्ट करें ॥२२ ॥

७११. आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणऽएकविꣳशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो द्वाविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशो गर्भाः पञ्चविꣳशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्त्तोष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥२३ ॥

हे इष्टके ! त्रिवृत् स्तोम में व्याप्त आपको इस स्थान में विराजित करते हैं। पन्द्रह दिन में घटने-बढ़ने वाली चन्द्र-ज्योति का मनन करके आपको स्थापित करते हैं। प्रजापति सप्तदश स्तोम-स्वरूप हैं, इनका मनन करके आपका स्थापन करते हैं। धारण करने योग्य एकविंश स्तोम का मनन करके आपको स्थापित करते हैं। बारह माह, पाँच ऋतुओं के साथ एक संवत्सर मिलकर अठारह अंगों से युक्त प्रतूर्त्ति स्तोम का मनन करके आपको स्थापित करते हैं। तपःरूप उन्नीस स्तोम हैं, उन देवताओं का मनन कर आपका स्थापन करते हैं। सभी प्राणियों को आवृत करने से युक्त बारह महीने, सात ऋतु एवं संवत्सररूप बीस संख्या के साथ विंश अभीवर्त देवता का मननकर आपको स्थापित करते हैं। महान् तेज को देने वाले द्वाविंश स्तोम हैं, वर्च देवता का मनन करके इष्टका का स्थापन करते हैं। भली प्रकार पुष्टिकारक त्रयोविंश स्तोम है, उस संभरण देवता का मनन करके आपको स्थापित करते हैं। प्रजा के उत्पादक चतुर्विंश स्तोम हैं, उस योनि देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं। त्रिणव ओजस्वी देवता को स्मरण कर इष्टका का स्थापन करते हैं। जो इकतीस अवयवयुक्त यज्ञ के लिए उपयुक्त एकत्रिंश स्तोम हैं, उस क्रतु देवता का मनन करके आपको स्थापित करते हैं। तैंतीस अवयवों से युक्त

प्रतिष्ठा के कारण रूप त्रयस्त्रिंशत् स्तोम हैं, उस प्रतिष्ठा देवता का मनन करके आप को स्थापित करते हैं । सूर्य के निवास स्थल चतुस्त्रिंशत् स्तोम हैं, उस बध्नविष्टप देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं । स्वर्ग को प्रदान करने वाले षट्त्रिंश स्तोम हैं, उस देवता के लिए इष्टका को स्थापित करते हैं । साम के आवर्त्तनों से सम्पन्न अष्टचत्वारिंश स्तोम हैं, उा विवर्त्त देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं । त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश इन चार स्तोमों का समूह चतुष्टोम सबको धारण करने की शक्ति से सम्पन्न है । चतुष्टोम धर्त्र देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं ॥२३ ॥

७१२. अग्नेर्भागोसि दीक्षाया ऽ आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोम ऽ इन्द्रस्य भागोसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳस्पृतं पञ्चदश स्तोमो नृचक्षसां भागोसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृत ꣳसप्तदश स्तोमो मित्रस्य भागोसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृतऽएकवि ꣳश स्तोमः ॥२४ ॥

हे इष्टके ! आप अग्निदेव के अंगरूप हैं, दीक्षा का आधिपत्य आपके ऊपर है, अतः त्रिवृत् स्तोम द्वारा ब्राह्मणों की मृत्यु से रक्षा हुई । त्रिवृत् स्तोम का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । आप इन्द्रदेव के अंगरूप हैं, आपके ऊपर विष्णुदेव का अधिकार है । पंचदश स्तोम से क्षत्रियों की मृत्यु से रक्षा हुई, अतः पञ्चदश स्तोम का मनन करके आपका स्थापन करते हैं । हे इष्टके ! आप मानवों के अच्छे-बुरे कर्मों के ज्ञाता देवताओं के अंगरूप हैं, आपके ऊपर धाता का अधिकार है, आपने सप्तदश स्तोम द्वारा वैश्यवर्ग को मृत्यु से रक्षित किया, सप्तदश स्तोम का मनन करके आपका स्थापन करते हैं । हे इष्टके ! आप मित्र के अंगरूप हैं, आपके ऊपर वरुणदेव का अधिकार है, एकविंश स्तोम द्वारा द्युलोक से सम्बन्धित वर्षा और वायु मृत्यु से संरक्षित हुए हैं, अतः एकविंश स्तोम देवता का मनन करके आपको हम स्थापित करते हैं ॥२४ ॥

७१३. वसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्वि ꣳश स्तोमऽ आदित्यानां भागोसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृताः पञ्चवि ꣳ श स्तोमोदित्यै भागोसि पूष्णऽ आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोसि बृहस्पतेराधिपत्य ꣳ समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः ॥२५ ॥

हे इष्टके ! आप वसुगणों के भाग हैं, रुद्रों का आपके ऊपर अधिकार है, आपने चतुर्विंश स्तोम द्वारा पशुओं को मृत्यु से संरक्षित किया है, चतुर्विंशस्तोम देवता का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं । हे इष्टके ! आप आदित्यगण के भाग हैं, मरुद्गणों का आप पर आधिपत्य है, पञ्चविंश स्तोम द्वारा गर्भस्थित प्राणियों की रक्षा हुई, पञ्चविंश स्तोम देवता का मनन करके आपको इस स्थान में विराजित करते हैं । हे इष्टके ! आप अदिति के भाग हैं, पूषादेव का आपके ऊपर पूर्ण अधिकार है, त्रिणव-स्तोम द्वारा आपने प्रजाओं के ओज को संरक्षित किया है, हम त्रिणवस्तोम देव का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । हे इष्टके ! आप सर्वप्रेरक सवितादेव के अङ्ग हैं । आप पर बृहस्पतिदेव का अधिकार है । आपने चतुष्टोम स्तोम द्वारा सभी मनुष्यों के विचरण-योग्य दिशाओं को रक्षित किया है, उस चतुष्टोम स्तोम देव का मनन करके आप को स्थापित करते हैं ॥२५ ॥

७१४. यवानां भागोस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारि ꣳ श स्तोम ऽ ऋभूणां भागोसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूत ꣳ स्पृतं त्रयस्त्रि ꣳ श स्तोमः ॥२६ ॥

हे इष्टके ! आप शुक्लपक्ष की तिथि के भाग हैं, आपके ऊपर कृष्णपक्षीय तिथि का अधिकार है, आपने चत्वारिंशत् स्तोम द्वारा प्रजा को मृत्यु-मुख से रक्षित किया, उस देव का मनन करके आपको इस स्थल पर स्थापित करते हैं । हे इष्टके ! आप ऋतुओं के भाग हैं, आपके ऊपर समस्त देव-समूह का स्वामित्व है, त्रयस्त्रिंशत् स्तोम द्वारा आपने प्राणिमात्र को मृत्यु से बचाया है ।उस देव का मनन करके आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं ॥२६

७१५. सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे। हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥२७॥

मार्गशीर्ष और पौष मास हेमन्त ऋतु के अवयव हैं। ये दोनों अग्निदेव के अन्तर में स्थित होकर सुदृढ़ता के लिये नियुक्त किये गये हैं । अग्निचयन करते हुए हम याजकों के उत्थानहेतु, ये द्यावापृथिवी अनुग्रह करें। जल और ओषधियाँ हमें आरोग्य प्रदान करें। समान व्रतों में सङ्कल्पित, अनेक नाम वाली अग्नियाँ उत्तम प्रकार से हमारी सहायता करें। ये द्युलोक और पृथ्वी के बीच में वर्तमान समान मन वाली जो अग्नियाँ है, वे हेमन्त ऋतु को सम्पादित करती हुई, उसी प्रकार इस यज्ञ कर्म के आश्रित हों, जिस प्रकार देवता इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हुए आश्रित हैं। हे इष्टके ! इस प्रख्यात देवता द्वारा अंगिरावत् सुदृढ होकर आप प्रतिष्ठित हों ॥२७॥

७१६. एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत् तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥२८॥

प्रजापति स्रष्टा ने एक वाणी से प्रार्थना की जिससे उस परमेश्वर ने अचेतन प्रजा को उत्पन्न किया, प्रजापति ही सबके अधिपति हुए। प्राण, अपान और व्यान इन तीन शक्तियों द्वारा ब्रह्म की उत्पत्ति हुई, इन तीनों द्वारा उसकी स्तुति की गई, ब्रह्मणस्पति उस सृष्टि के अधिपति हुए। पांच प्राणों द्वारा परमेश्वर की स्तुति की गई। उसने पञ्चभूतों का निर्माण किया। उन पञ्चभूतों के स्वामी परमात्मा ही सबके अधिपति हुए। श्रोत्र, नासिका, जिह्वा, नेत्र, इन सातों के सहयोग से सप्तर्षि प्रकट हुए, जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर ही उनके अधिपति हुए ॥२८॥

७१७. नवभिरस्तुवत पितरोसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीदेकादशभिरस्तुवत ऋतवो सृज्यन्तार्त्तवा अधिपतयऽ आसँस्त्रयोदशभिरस्तुवत मासा ऽ असृज्यन्त संवत्सरो धिपतिरासीत् पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोधिपतिरासीत् सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥२९॥

जिस परमेश्वरने पितरों को संरक्षकरूप में उत्पन्न किया, देवमाता अदिति जिसकी अधिपति हुई, उसकी नवप्राणों से स्तुति की गई, जिनसे वसन्तादि ऋतुएँ उत्पन्न हुई तथा जिनके द्वारा ऋतुओं के गुण अपने-अपने विषय के अधिपति होते हैं, उनकी दस प्राणों और ग्यारहवें आत्मा से प्रार्थना की गई। जिसने सभी मासों की रचना की और जो पंद्रह तिथियों के साथ संवत्सरकाल का अधिपति निर्धारित किया गया है; उसकी दस प्राण, ग्यारहवाँ जीवात्मा और दो पादों से स्तुति की गई। जिसने राज्य एवं क्षत्रियवंश को सृजित किया है, उसकी दस पैर की अँगुलियों, दो जङ्घाओं, दो जानुओं और एक नाभि तथा इसके ऊपरी अङ्ग (नेत्र, जिह्वा) — इन पन्द्रहों से स्तुति की गई, जिसने वैश्यवर्ग के अधिकारी की रचना की और ग्राम के गवादि पशुओं की रचना की, उसकी दस पैर की अँगुलियों, घुटने के नीचे एवं ऊपर के चार जोड़ों, दो पैर तथा सत्रहवें नाभि के नीचे के प्रदेश से स्तुति की गई ॥२९॥

७१८. नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तामेकवि ꣳ शत्यास्तुवतैकशफाः पशवोसृज्यन्त वरुणोधिपतिरासीत् त्रयोवि ꣳ शत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् पञ्चवि ꣳ शत्यास्तुवतारण्याः पशवोसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् सप्तवि ꣳ शत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा ऽ आदित्या ऽ अनुव्यायँस्त ऽ एवाधिपतय ऽ आसन् ॥३०॥

हाथों की दस अँगुलियों और शारीरिक नौ प्राणों — इन उन्नीस से स्तुति की गई है, इन उन्नीस आन्तरिक एवं बाहरी अंगों की तरह ही शूद्र और आर्यों (अथवा सेवाभावी और ब्रह्मनिष्ठों) का प्रादुर्भाव हुआ, उनके रात्रि-दिवस स्वामी हुए । हाथों की दस एवं पैरों की दस अँगुलियाँ तथा एक आत्मा शरीर में विद्यमान है, इन से परमात्मा की महिमा का गुणानुवाद हुआ । उन अङ्गों की शक्तियों से क्षुद्र पशुओं का प्रादुर्भाव हुआ, उन सभी के अधिपति पूषा अर्थात् अन्न-प्रदात्री भूमि है । हाथों और पैरों की दस-दस अँगुलियाँ, दो भुजाएँ, दो पैर और पच्चीसवाँ आत्मा — ये पच्चीस देह के अवयव हैं । इनसे विधाता की महिमा का गान किया गया । उन अवयवों से जंगली पशुओं की रचना हुई, इन सबका स्वामी वायु है, हाथों और पैरों की दस-दस अँगुलियाँ, दो भुजाएँ, दो घुटने एवं दो पैर तथा सत्ताइसवाँ आत्मा- इन घटकों से परमेश्वर के कला- कौशल का वर्णन करते हुए महिमा का गुणगान हुआ ।इनके द्वारा ही देवलोक और पृथ्वी दोनों संव्याप्त हैं; उनमें ही आठ वसु, ग्यारह रुद्र (अर्थात् प्राण) और बारह मास भलीप्रकार रहते हैं, वे ही उन दोनों आकाश और भूलोक के अधिपति और पालक हुए ॥३० ।

७१९. नवविंꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोसृज्यन्त सोमोधिपतिरासीदेकत्रिꣳ शतास्तुवत प्रजा ऽ असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय ऽ आसँस्त्रयस्त्रिꣳ शतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासील्लोकं ता ऽ इन्द्रम् ॥३१ ॥

शरीर में हाथों और पैरों की दस-दस अँगुलियाँ और नौ प्राण, इस प्रकार उन्तीस घटक (शक्तियाँ) विश्व को रच रही हैं, उससे विधाता की स्तुति की गई । उन घटकों से ही वनस्पतियों को विनिर्मित किया गया है । सोम उनके अधिपति हैं । हाथ-पैर की दस-दस अँगुलियाँ, दस प्राण, इकतीसवाँ जीवात्मा, इन घटक शक्तियों से सम्पूर्ण शरीर बने हैं , इन शक्तियों से परमात्मा के कौशल की महिमा का गुणगान किया गया । इनसे ही प्रजा का सृजन हुआ है । पुरुष और स्त्रियाँ इनके स्वामी हैं । हाथ-पैरों की दस-दस अँगुलियाँ, दस प्राण, दो चरण और तैंतीसवाँ जीवात्मा इन अवयवों से सम्पूर्ण शरीरों की रचना हुई, इन शक्तियों द्वारा परमपिता परमेश्वर की स्तुति की गई । उनसे ही समस्त प्राणीगण सुखी हुए । परम पद-स्थित प्रजापति परमेश्वर ही सबके अधिपति हुए । सभी ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं । ॥३१ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— उशना काव्य १-६ । विश्वेदेवा ७-३१ ।

देवता— अश्विनीकुमार १-५ । ऋतु ६ । विश्वेदेवा ७ । वायु , आपः (जल) ८ । लिंगोक्त ९, १०, १७-२०, २८-३१ । इन्द्राग्नी , स्वयमातृण्णा ११ । वायु १२, १४ । दिशाएँ १३ । ऋतुएँ १५, १६, २७ । प्राण २१, २२ । त्रिवृदाय लिङ्गोक्त२३ । इष्टका लिङ्गोक्त २४-२६ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १ । निचृत् ब्राह्मी बृहती २ । विराट् ब्राह्मी बृहती ३ । भुरिक् ब्राह्मी बृहती ४ । भुरिक् शक्वरी ५ । निचृत् उत्कृति ६ । भुरिक् प्रकृति, स्वराट् पंक्ति, निचृत् आकृति ७ । भुरिक् अतिजगती ८,१८ । निचृत् ब्राह्मी पंक्ति, स्वराट् ब्राह्मी बृहती ९ । निचृत् अष्टि १० । भुरिक् अनुष्टुप् ११ । भुरिक् विकृति १२ । विराट् पंक्ति १३ । स्वराट् उत्कृति १५ । उत्कृति १६ । विराट् अतिजगती १७ । भुरिक् अतिजगती १८ । आर्षी जगती १९ । भुरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २० । निचृत् अनुष्टुप् २१ । निचृत् उष्णिक् २२ । भुरिक् ब्राह्मी पंक्ति, भुरिक् अतिजगती २३ । भुरिक् विकृति २४ । निचृत् अभिकृति २५ । भुरिक् अतिजगती, भुरिक् ब्राह्मी बृहती २७ । निचृत् विकृति २८ । आर्षी त्रिष्टुप्, ब्राह्मी जगती २९ । स्वराट् ब्राह्मी जगती, ब्राह्मी पंक्ति ३० । स्वराट् ब्राह्मी जगती ३१ ।

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

७२०. अग्ने जातान् प्र णुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् नुद जातवेदः । अधि नो ब्रूहि सुमना ऽ अहेडँस्तव स्याम शर्मं स्त्रिवरूथऽ उद्भौ ॥१ ॥

हे जातवेदा अग्ने !आप हमारे प्रकट हुए विद्रोहियों को भलीप्रकार विनष्ट करें और प्रकट होने वाले शत्रुओं का अवरोध करें । हमारा अपमान न करके हर्षित मन से हमें अभीष्ट वर प्रदान करें । हम आपके श्रेष्ठ सुख के उत्पादक आश्रय में स्थित रहकर तीनों मण्डपों में (आग्नीध्र, हविर्धान व सदोमण्डप) यज्ञ कार्य सम्पन्न करें ॥१ ॥

७२१. सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वय ँ स्याम प्र णुदा नः सपत्नान् ॥२ ॥

हे जातवेदा अग्ने !हमारे शत्रुओं का सब प्रकार से विध्वंस करें ।भविष्य में संभावित रिपुओं को भी नष्ट करें ।आप श्रेष्ठ अन्तःकरण से हमें मार्गदर्शन दें, जिससे हम सभी शत्रुओं का विनाश कर सामर्थ्यवान् बन सकें ॥२॥

७२२. षोडशी स्तोमऽ ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारि ँ श स्तोमो वर्चो द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥३ ॥

हे इष्टके ! सोलह कलाओं से सम्पन्न स्तोम का ध्यान कर आपको स्थापित करते हैं । वे स्तोम पराक्रमयुक्त सम्पदा देते हैं । चौवालीस शक्तियों से युक्त स्तोम का मनन कर आपको स्थापित करते हैं । वे तेज और शक्ति प्रदान करते हैं । आप रक्षक नाम से पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अग्निदेव को पूर्णता प्रदान करते हैं । पूर्ण शक्ति को देवसमूह द्वारा प्रशंसित किया जाता है । सभी शक्तियों और बलशाली पुरुषों से सम्मानित होकर तेजस्विता को धारण करके आप इस स्थान पर विराजमान हों । आप हमारे लिए उपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

७२३. एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दऽ आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप्छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दो अङ्कुपं छन्दोक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः ॥४॥

हे इष्टके ! प्राणियों के लिए विचरण करने योग्य पृथ्वी, प्रभामण्डल-युक्त अन्तरिक्ष, स्वर्गीय आनन्द के प्रदाता द्युलोक एवं सब ओर व्याप्त दिशाओं का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं । प्रजापति का सङ्कल्प, मन की मनन शक्ति, समस्त संसार में व्याप्त गुणयुक्त सूर्य, नाड़ियों द्वारा शरीर में संव्याप्त प्राण-वायु, समुद्र के समान गम्भीर मन तथा मुख से निःसृत वाणी का मनन करके आपकी स्थापना करते हैं । प्राण एवं उदान का मनन कर आपको स्थापित करते हैं । प्रकाश स्वरूप वेदत्रयी, कुटिल मार्गों से भी प्रवाहित होने वाले जल, पृथ्वी, आकाश, पाताल, दिशाएँ एवं देदीप्यमान विद्युत् का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं ॥४ ॥

७२४. आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः स ँ स्तुप्छन्दोनुष्टुप्छन्दऽ एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो अङ्काङ्कं छन्दः ॥५ ॥

हे इष्टके ! शरीर का आच्छादन करने वाले अन्न का मनन कर आपको स्थापित करते हैं । शरीर का प्रक्षालन करने वाले जल का, कर्मों से निवृत्त करने वाली रात्रि का, विशिष्ट व्यापार के प्रवर्त्तक दिवस का मनन कर आपको स्थापित करते हैं । विस्तृत द्युलोक, रथादि के द्वारा गमन करने योग्य पृथिवी का तथा अतिशब्दकारक वायुदेव का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । जहाँ भूत-पिशाच पाप भोगते हैं, वहाँ पोषक अन्न का, प्रकाशमान अग्निदेव का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । वैखरी वाणी, मध्यमा वाणी एवं भूलोक का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । प्रभा मण्डल का मनन करके, बाल्यादि वय का मनन करके, जठराग्नि का मनन करके, आपके प्रचुर ऐश्वर्य प्रदायक स्वर्ग का मनन करके, जहाँ विभिन्न प्रकार के मनुष्य शोभायमान होते हैं, उस भूतल का मनन करके, सूर्य की रश्मियों से व्याप्त अन्तरिक्ष व द्युलोक का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । निष्काम ज्योतिष्टोम यज्ञ की कृपा से सिद्ध ज्ञानरूप सूर्यदेव का मनन करके, अज्ञान का मनन करके, गर्त-पाषाणादि से युक्त जल का मनन करके आपको स्थापित करते हैं ॥५ ॥

आगे की दो कण्डिकाओं (क्र. ६ एवं ७) के मंत्रों में, अंत में 'जिन्व' आया है । यह बहुआर्थिक शब्द है । जिसका अर्थ प्रीति करना, तुष्ट करना, मुक्त करना, आनन्दित करना या होना होता है । संदर्भ विशेष में उसका उपयुक्त अर्थ ही प्रयुक्त किया जाता है । पूर्व आचार्यों (महीधर आदि) ने सभी माध्यमों (रश्मि आदि) को अन्न से जोड़ा है । अन्न सम्बोधन खाद्य पदार्थों, पोषण देने वाले घटकों, सूर्य, विष्णु आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है , इस दृष्टि से विभिन्न संज्ञाओं को पोषण देने वाले सभी माध्यम अन्न कहे जा सकते हैं । इस अनुवाद में उन माध्यमों को बार-बार अन्न कहकर सम्बोधित नहीं किया गया है, किन्तु उस अर्थ का निर्वाह स्वभावतः होता गया है—

७२५. रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्यऽ आदित्याञ्जिन्व ॥६ ॥

हे इष्टके ! तेजस्विता के माध्यम से सत्य (की प्रतिष्ठा) के लिए सत्य को पुष्ट करें । गतिशीलता (आचरण) द्वारा धर्म (की प्रतिष्ठा) के लिए धर्म को तुष्ट करें । दिव्यता से (उसके) अनुगमन द्वारा द्युलोक को तृप्त करें । सन्धि (परस्पर के संचार) के माध्यम से अन्तरिक्ष (पृथ्वी और द्युलोक, पदार्थ और चेतना को मिलाने वाले की प्रतिष्ठा) के लिए अन्तरिक्ष को पुष्ट करें । प्रतिधान (पदार्थ परक प्रतिदान) के माध्यम से पृथिवी (की उर्वरता या यथा-स्थिति बनाये रखने) के लिए पृथ्वी को प्रेम करें । वृष्टि (की सार्थकता) के लिए (वृष्टि से प्राप्त जल आदि को) स्थिरता प्रदान करके वर्षा को आनन्दित करें । दिन (की सार्थकता) के लिए (कर्त्तव्य के अनुरूप) विशिष्ट कर्मठता के माध्यम से दिवस को पुष्ट करें । (शरीर एवं प्रकृति के अवयवों के) अनुकूलन के माध्यम से, रात्रि (विश्राम की स्थिति) से रात्रि को संतुष्ट करें । वसुओं (आवास प्रदान करने वालों की प्रतिष्ठा) के लिए , हित आकांक्षा के माध्यम से वसुओं (सब में वास करने वाली चेतना) को तृप्त करें । ज्ञान-प्रतिभा (के विकास) के माध्यम से आदित्यों (प्रकाश देने वालों की प्रतिष्ठा) के लिए , आदित्यों (प्रकाश-प्रतिभावानों) को पुष्ट करें ॥६ ॥

७२६. तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥७ ॥

हे इष्टके ! तन्तुओं (विस्तार-उत्पादन में समर्थ) के माध्यम से ऐश्वर्य (की प्रतिष्ठा) के लिए सम्पत्ति को पुष्ट करें । श्रुतियों (वेद ज्ञान की प्रतिष्ठा) के लिए सम्यक् प्रसार (प्रचार) के माध्यम से श्रुतियों से प्रेम करें । पदार्थ (पृथिवी से उत्पन्न अन्न-वनस्पति आदि) के गुणों के माध्यम से ओषधियों (उपचार की प्रतिष्ठा) के लिए ओषधियों को पुष्टि प्रदान करें । उत्तमता (विकारों के उच्छेदन की सामर्थ्य) के माध्यम से शरीर (की प्रतिष्ठा) के लिए शरीर

(के अंग-अवयवों) को पुष्ट बनाएँ । अध्ययन (की प्रतिष्ठा) के लिए , अनुभव-सम्पन्नों के माध्यम से अध्ययन से प्रीति करें । तेजस्विता (की प्रतिष्ठा) के लिए , विजयशीलता के माध्यम से (बाधाओं को जीतकर) तेजस्विता को पुष्ट करें ॥७ ॥

७२७. प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा ॥८ ॥

हे इष्टके ! आप जीवन के मूलाधार (अन्नस्वरूप) हैं, अन्न के लिए आपको स्वीकृत करते हैं । आप विचार रूप हैं, अत: बुद्धि के लिए आपको स्थापित करते हैं । आप सम्पत्ति रूप हैं, अत: सम्पत्ति के लिए आपको उपलब्ध करते हैं । आप मनुष्य के शरीर में तेजरूप हैं, अत: तेजस्विता के लिए आपको प्राप्त करते हैं ॥८ ॥

७२८. त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा क्रमोस्याक्रमाय त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥९ ॥

हे इष्टके ! आप कृषि, वर्षा और बीज से उत्पन्न होने वाले अन्न की भाँति हैं, अन्न-वृद्धि के लिए आपको स्थापित करते हैं । आप सत्कर्म-प्रवर्तक हैं, अत: सत्कर्म की प्रवृत्तियाँ उत्पादित करने के लिए आपको स्थापित करते हैं । आप विशिष्ट-विधि से कर्म के सम्पादक हैं, अत: ऐसे शुभकर्मों के लिए आपको विराजित करते हैं । आप श्रेष्ठ आचरण से युक्त हैं, अत: उत्तम चरित्र के लिए आपको स्थापित करते हैं । आप क्षुधा-निवारक अन्न की भाँति हैं । अत: भूख मिटाने के लिए आपको स्थापित करते हैं । आप श्रेष्ठ (विधि से) प्रगतिशील हैं, अत: श्रेष्ठ प्रगति के लिए आपको स्वीकारते हैं । आप उन्नत क्रांति के प्रवर्त्तक हैं, अत: क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए आपको स्थापित करते हैं ॥९ ॥

७२९. राज्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवाऽ अधिपतयोग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोम: पृथिव्या ँ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तर ँ साम प्रतिष्ठित्या ऽअन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१० ॥

हे इष्टके ! आप पूर्व दिशा की स्वामिनी हैं । अष्टवसु आपके पालक हैं । अग्निदेव समस्त अनिष्टों के निवारक हैं । त्रिवृत् स्तोम आपको भूपर स्थापित करें । आज्य और उक्थ आपको सुदृढ़ करने वाले हों । रथन्तर साम अन्तरिक्षलोक में प्रतिष्ठा हेतु आपको दृढ़ करें । सर्वप्रथम उत्पन्न हुए ऋषिगण देवलोक में श्रेष्ठ देवों के साथ आपको स्थिर करें । विशिष्ट रीति से धारणकर्ता अधिपति भी आपको विस्तारित करें, इस प्रकार सम्पूर्ण वसवादि देवता एक साथ मिलकर याजकों को स्वर्ग के सुख से लाभान्वित करें ॥१० ॥

७३०. विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवाऽ अधिपतयऽ इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोम: पृथिव्या ँ श्रयतु प्र उगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥११ ॥

हे इष्टके ! आप विशेषरूप से व्यापक दक्षिण दिशारूप हैं, रुद्रगण आपके पालक हैं, इन्द्रदेव विघ्न-विनाशक हैं, पञ्चदश स्तोम आपको पृथ्वी में प्रतिष्ठित करें । प्रउग नामक उक्थ स्थिरता के लिए आपको सुदृढ़ बनाएँ । बृहत्साम अन्तरिक्ष में आपको स्थापित करें । ऋषिगण दिव्यलोक में— दैवीगुणों में आपको प्रतिष्ठित करें । इस प्रकार वे वसु आदि देवता एकत्रित होकर याजकों को सुख-स्वरूप स्वर्गलोक में पहुँचाएँ ॥११ ॥

७३१. सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवाऽ अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्या ँ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूप ँ साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१२ ॥

हे इष्टके ! आप विशेष दीप्तियुक्त पश्चिम दिशा के समान हैं, आदित्यगण आपके पालनकर्त्ता हैं, वरुणदेव दुःखों के निवारणकर्त्ता हैं, सप्तदशस्तोम आपको भू पर प्रतिष्ठित करें । मरुत् उक्थ आपको दृढ़ता के लिए स्थापित करें । वैरूप साम अन्तरिक्ष में दृढ़ता के निमित्त आपको स्थापित करें । सृष्टि-क्रम में प्रथम प्रादुर्भूत ऋषिगण आपको देवलोक में स्थापित करें ।इसप्रकार सम्पूर्ण वसु आदि देवता याजकों को सुखस्वरूप स्वर्गलोक में पहुँचाएँ ॥१२ ।

७३२. स्वराडस्युदीची दिङ्मरुतस्ते देवाऽ अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकवि ँ शस्त्वा स्तोमः पृथिव्या ँ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराज ँ साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१३ ॥

हे इष्टके ! आप स्वयं दीप्तिमान् होने वाली उत्तर दिशा रूप हैं, मरुत् देवगण आपके स्वामी हैं, सोम व्याधियों के निवारण करने वाले हैं, एकविंश स्तोम आपको पृथिवी में विराजित करें, सुदृढ़ता के लिए आपको निष्केवल्य नामक शस्त्र (स्तोत्र) में स्थित करें, वैराज साम अन्तरिक्ष में आपको सुस्थिर करें । प्रथम उत्पन्न ऋषिगण सम्पूर्ण दिव्यलोक में उत्तम दैवी गुणों को संव्याप्त करें । अभीष्ट निष्पादनकर्त्ता और ये मुख्य स्वाभिमानी देवता भी आपको विस्तारित करें । इस प्रकार वे सम्पूर्ण वसवादि देवता याजकों को एक-मत होकर सुखस्वरूप ऊपर स्वर्गलोक में अवश्य ही पहुँचाएँ ॥१३ ॥

७३३. आधिपत्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवाऽ अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रि ँ शौ त्वा स्तोमौ पृथिव्या ँ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीता ँ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१४ ॥

हे इष्टके ! आप पालनशक्ति से युक्त, विस्तृत, ऊर्ध्व दिशारूप हैं, सब देवशक्तियाँ आपकी पालक हैं, बृहस्पति दुःखों के निवारणकर्त्ता हैं, त्रिणवत्रयस्त्रिंश-स्तोम भूमि में आपको प्रतिष्ठित करें । वैश्वदेव, अग्निदेव, मरुत् देव सम्बन्धी उक्थ (स्तोत्र) सुस्थिरता के लिए आपको स्थापित करें । शाक्वर और रैवत दोनों साम आपको अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित करें । प्रथम उत्पन्न ऋषिगण दिव्यलोक में उत्तम दैवी गुणों को संव्याप्त करें । अभीष्ट कार्य सम्पन्न करने वाले और प्रधान (स्वाभिमानी) देवता भी आपको विस्तारित करें । इस प्रकार वे सभी वसु आदि देवता एकमत होकर, सुखस्वरूप उच्चस्थ स्वर्गलोक में यजमान को अवश्य ही प्रतिष्ठित करें ॥१४ ॥

७३४. अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१५ ॥

सूर्यदेव की भाँति सुनहली आभा से युक्त, देदीप्यमान अग्निदेव पूर्व दिशा में इष्टका के रूप में प्रतिष्ठित है । उन अग्निदेव के रथ विद्या में दक्ष और युद्ध में कुशल सेनापति और ग्रामनायक दोनों वसन्त ऋतु हैं । सत्संकल्प और रूपादि की प्रेरक दिशा और उपदिशा अप्सराओं के रूप में हैं । व्याघ्रादि हिंसक पशु ही इनके आयुध हैं,

लड़-मरना ही इनका वध है । इस प्रकार उन अग्निदेव को सभी सहभागियों के साथ नमन करते हैं । वे सभी हमारी रक्षा करते हुए सुख प्रदान करें । जो हमारे से प्रीतिरहित हैं और हमसे द्वेष करते हैं, उन सभी को हम अग्नि की ज्वालारूपी दाढ़ों में डालते हैं ॥१५ ॥

७३५. अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ । मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षा ᳬसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१६ ॥

दक्षिण दिशा में सभी कर्मों के निर्वाहक-विश्वकर्मा-वायु के रूप में यह इष्टका स्थापित है । रथ में बैठकर शब्द करते हुए शासक, सेनापति और नगर रक्षक ग्रीष्मऋतु रूप है । मेनका (सबके द्वारा माननीय) और सहजन्या (सर्वसाधारण के साथ सामञ्जस्य भावना से स्थित) ये दो अप्सराएँ है, विविध प्रकार की आसुरी वृत्तियाँ ही इनके आयुध तथा अति क्रूर राक्षस इनके तीक्ष्ण शस्त्र हैं । इस प्रकार उस वायुरूप इष्टका को सम्पूर्ण परिचारकों के साथ नमन करते हैं । वे सभी हमें सुखी करें, वे सभी हमारी सुरक्षा करें, जो हमसे प्रीतिरहित हैं और जो हमसे द्वेषभावना से ग्रसित हैं, उन्हें इनकी वेगरूपी दाढ़ों में डालते हैं, अर्थात् उनका विनाश करते हैं ॥१६ ॥

७३६. अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ । प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१७ ॥

सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक आदित्यरूप इष्टका पश्चिम दिशा में स्थापित हैं । युद्ध में धैर्यशाली वीर और महारथी इसके सेनानायक और ग्रामरक्षक वर्षाऋतु है । अपने वेशविन्यास द्वारा सभी के मन को लुभाने वाली, मुग्ध होने वाले व्यक्ति को पुनः मोहित करने वाली प्रम्लोचनी और अनुम्लोचनी दो अप्सराएँ हैं और व्याघ्रादि पशु शस्त्र हैं तथा सर्पादि तीक्ष्ण शस्त्र हैं, उन सबके लिए नमस्कार है । वे सब हमारे लिए सुखप्रद हों, वे सब हमारी रक्षा करें । वे सभी, जिनसे हम प्रीतिरहित हैं और जो हमारे लिए द्वेषभावना से ग्रसित हैं, उन्हें इनकी दाढ़ों में डालते हैं, अर्थात् उन्हें विनष्ट करते हैं ॥१७ ॥

७३७. अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ । विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१८ ॥

यह उत्तर दिशा में प्रतिष्ठित इष्टका धन से सिद्ध होने वाले यज्ञ के रूप में है । उनके अन्तरिक्ष में तीक्ष्ण पक्ष रूपी आयुधों का विस्तार करने वाले और विकार-नाशक अपराजेय हथियारों से युक्त सेनापति और ग्राम-पालक शरद ऋतु है, उसकी विश्व द्वारा वन्दित तथा घृत-भक्षण करने वाली विश्वाची और घृताची दो अप्सराएँ हैं, जल जिनके शस्त्र हैं तथा वायु तीक्ष्ण आयुध हैं , उन सबके लिए हमारा वन्दन हो । वे सभी हमें सुखी करें और हमारी रक्षा करें । वे सब जिनसे हम प्रीतिरहित हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उनको इनकी दाढ़ों में डालते हैं ॥१८ ॥

७३८. अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ । उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१९ ॥

ऊपर मध्य दिशा में वर्तमान इष्टका पर्जन्यरूप है । उनके विजेता और समर्थ सेनायुक्त सेनानायक और ग्राम-पालक हेमन्त ऋतु है, जिनके विस्तृत कार्य को नियंत्रित करने वाली एवं अतिरूपवती होने से व्यक्तियों के मनों को वशीभूत करने वाली उर्वशी और पूर्वचिति दो अप्सराएँ है । भयानक गर्जना जिनका शस्त्र है, विद्युत

तीक्ष्ण आयुध हैं, उन सभी के लिए नमस्कार है । वे सभी हमें सुखी बनाएँ, वे सभी हमें रक्षित करें, वे सब जिनसे हम द्वेष रखते हैं और जो हमसे द्वेष-भाव से ग्रसित हैं, उन्हें इनके दाढ़ों में डाल कर समाप्त करते हैं ॥ १९ ॥

७३९. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽ अयम् । अपा ँ रेता ँ सि जिन्वति ॥२०॥

स्वर्ग के समान मूर्धन्य स्थान में विराजमान ये अग्निदेव बैल के कंधे की भाँति ऊँचे हैं । यही अग्निदेव भूमि के पालक, रक्षक और अधिपति हैं । ये जल की रस रूप शक्तियों को पोषित करते हैं ॥ २० ॥

७४०. अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥२१ ॥

त्रिकालदर्शी ये अग्निदेव सहस्रों सुखों के प्रदायक, सैकड़ों सम्पदाओं से युक्त तथा अन्न के अधिपति हैं । मूर्धारूप उच्च स्थान पर सुशोभित परमैश्वर्य के स्वामी हैं ॥२१ ॥

७४१. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥२२ ॥

इस मंत्र का अर्थ 'आपो वै पुष्करं, प्राणोऽथर्वेति श्रुतेः' (श॰ ब्रा॰ ६.४.२.२) अर्थात् 'जल ही पुष्कर है तथा प्राण अथर्वा हैं' के अनुसार किया गया है—

हे अग्निदेव ! प्राण चेतना अथर्वा ने जल के मंथन से विश्व का वहन करने वाले मूर्धन्य के रूप में आपको प्रकट किया ॥२२ ॥

[शरीरों में स्थित जठराग्नि जल के संयोग से ही जाग्रत् एवं प्रदीप्त होती है । समुद्र स्थित बड़वाग्नि भी जल में ही प्रकट होती है । मेघों के घर्षण से विद्युत् का प्रकट होना भी विज्ञानसम्मत है ।]

७४२. भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥२३ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप हविष्यान्न ग्रहण करने वाली अपनी ज्वालारूपी जिह्वाओं को प्रदीप्त करते हैं, तब आप यज्ञ के परिणाम स्वरूप यज्ञीय ऊर्जा के प्रवर्तक-नायक कहलाते हैं, जहाँ आप कल्याण स्वरूप अश्वों (यज्ञों) के साथ प्राप्त होते हैं, वहाँ दिव्यलोक में विराजमान आदित्य की शोभा को धारण करते हैं ॥२३ ॥

७४३. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वाऽ इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४ ॥

सत्य, ज्ञान और कर्मों से युक्त याजकों की समिधाओं से अग्निदेव उसी प्रकार प्रदीप्त होते हैं, जिस प्रकार अपनी ओर उन्मुख हुई गाय को (माँ को) देखकर बछड़ा (दुग्धपान के लिए प्रेरित होता है ।) सक्रिय होता है । जिस प्रकार उषाकाल में सभी प्राणी चैतन्य बुद्धि-युक्त होते हैं तथा पक्षी ऊपर उड़कर आकाश में फैल जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश आकाश में सर्वत्र फैलता है ॥२४ ॥

७४४. अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे । गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥२५ ॥

त्रिकालदर्शी, शक्तिशाली तथा सेचन में समर्थ यज्ञाग्नि का स्तोत्र पाठ से हम स्तवन करते हैं । आवाहन की गई अग्नि में हविदाता पुरुष स्थिरवाणी से, मन्त्रोच्चारपूर्वक हविष्यान्न उसी प्रकार समर्पित करते हैं, जिस प्रकार द्युलोक में प्रकाशमान आदित्य को सन्ध्योपासना के समय कही गई विशिष्ट महिमायुक्त प्रार्थनाएँ समर्पित की जाती हैं ॥२५ ॥

७४५. अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः । यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे-विशे ॥२६ ॥

यज्ञीय कर्मों के निर्वाहक अग्निदेव यज्ञों में देव आवाहनकर्त्ता ऋत्विजों के द्वारा की गयी प्रशंसनीय स्तुतियों को प्राप्त करने वाले हैं । यज्ञीय कार्य हेतु इस यज्ञवेदी में इन्हें स्थापित किया गया है । यजमानों के उत्कर्ष हेतु भृगुवंशी ऋषियों ने इन विलक्षण एवं विस्तृत कर्मों के सम्पादक अग्निदेव को वनों में प्रज्वलित किया ॥२६ ॥

७४६. जनस्य गोपाऽ अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे । घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥२७ ॥

सम्पूर्ण मनुष्यों के संरक्षक, चैतन्ययुक्त, अतिकुशल, अपनी ज्वालाओं द्वारा आज्याहुति को ग्रहण करने वाले और पावन गुणों से युक्त अग्निदेव नित्य नवीन यज्ञीय कर्म के निर्वाह के लिए ऋषियों द्वारा प्रकट किये गये हैं । ये अग्निदेव अपनी तेजस्वी ज्वालाओं से दिव्यलोक को स्पर्श करते हुए विशेष प्रकाशमान होते हैं ॥२७ ॥

७४७. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वने-वने । स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२८ ॥

हे अङ्गिराप्रिय अग्निदेव ! अंगिरावंशी ऋषियों ने जलरूप गहनस्थलों में स्थित और विभिन्न वनस्पतियों में व्याप्त आपको अन्वेषण करके प्राप्त किया । आप अति बलपूर्वक घर्षण करने के उपरान्त अरणियों से उत्पन्न होते हैं; अतएव मनीषीगण आपको शक्ति-पुत्र कहकर सम्बोधित करते हैं ॥२८ ॥

७४८. सखायः सं वः सम्यञ्चमिष ँ स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥२९ ॥

हे मित्र ऋत्विजो ! यह वरिष्ठ अग्निदेव जल के पौत्ररूप श्रेष्ठ बलों को प्रदान करने वाले हैं । आप इनके निमित्त श्रेष्ठ स्तवनों का गान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करें ॥२९ ॥

[जल से वनस्पतियों की उत्पत्ति तथा काष्ठादि से अग्नि की उत्पत्ति होने से अग्नि को जल का पौत्र कहा गया है ।]

७४९. स ँसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्यऽ आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥

हे शक्ति- सम्पन्न अग्निदेव ! सबके अधिपति आप समस्त यज्ञीय अभीष्ट फलों को सभी तरफ से यजमान को उपलब्ध कराने में समर्थ हैं । आप यज्ञ-स्थल पर स्थित उत्तर वेदिका में भलीप्रकार प्रज्वलित होते हैं—ऐसे यशस्वी आप हमारे लिए भी ऐश्वर्य-सम्पदा को सभी तरफ से प्रदान करें ॥३० ॥

७५०. त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥३१ ॥

प्रेमपूर्वक हविष्य को ग्रहण करने वाले हे यशस्वी अग्निदेव ! आप आश्चर्यजनक वैभव से सम्पन्न हैं । सम्पूर्ण मनुष्य, ऋत्विग्गण यज्ञ-सम्पादन के निमित्त आपका आवाहन करते हुए हवि समर्पित करते हैं ॥३१ ॥

७५१. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे । प्रियं चेतिष्ठमरति ँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥३२ ॥

याजकों के द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न से हम जल के पौत्र, अतिप्रिय, चैतन्यतायुक्त, श्रेष्ठ कर्मों के प्रेरक, यज्ञ सम्पादक, सम्पूर्ण यज्ञादि कर्मों के निर्वाहक होने से दूतरूप अविनाशी अग्निदेव का आवाहन करते हैं ॥३२ ॥

७५२. विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ॥३३ ॥

दूत के समान तत्परतापूर्वक कार्य (यज्ञादि) को सम्पन्न करने वाले, उस अमृत स्वरूप अग्निदेव को हम आवाहित करते हैं । वे प्रख्यात अग्निदेव क्रोधरहित, सम्पूर्ण उत्तम यज्ञों के हिस्से को पाने वाले, अश्वों को अपने रथ में नियोजित करते हैं और श्रेष्ठ विधि से आमन्त्रित वे अतिशीघ्र यज्ञस्थल पर उपस्थित होते हैं ॥३३ ॥

७५३. स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देव ꣳ राधो जनानाम् ॥३४ ॥

श्रेष्ठ याज्ञिकों से युक्त, सत्कर्मरूपी यज्ञ में आवाहित वे प्रख्यात अग्निदेव शीघ्र ही प्रकट होते हैं । वसु, रुद्र, आदित्य आदि देवों वाले यज्ञ में, जहाँ दैवी सम्पदायुक्त व्यक्तियों द्वारा उत्तम विधि से आहुतियाँ समर्पित की जाती हैं, वहाँ आप द्रुतगति से आगमन करते हैं ॥३४ ॥

७५४. अग्ने वाजस्य गोमतऽ ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥३५॥

अरणिमन्थन से उत्पन्न होने वाले हे जातवेद अग्निदेव ! आप अन्न, धन, पशु आदि से सम्पन्न हैं । हमारे लिए भी अपार वैभव प्रदान करें ॥३५ ॥

७५५. सऽ इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥३६ ॥

ज्वालाओं के रूप में अनेक मुख वाले, जाज्वल्यमान हे अग्निदेव ! आप त्रिकालदर्शी एवं सभी के आश्रय-स्थल हैं । दिव्य स्तुतियों से सन्तुष्ट हुए, यज्ञ में सर्वप्रथम उपस्थित होने वाले आप हमें अपनी तेजस्विता से अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥३६ ॥

७५६. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३७ ॥

लपटों के रूप में विकराल दाढ़ों वाले हे तेजस्वी अग्निदेव ! अपने तीक्ष्ण स्वभाव से ही आप असुरों का संहार करने वाले हैं । अतएव हमारे लिए हानिकारक, दिन के और उषाकाल के सभी असुरों (विकारों) को भस्म करें ॥३७ ॥

७५७. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्राऽ उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

ऋत्विजों के आवाहन पर प्रकट होने वाले हे ऐश्वर्यशाली अग्निदेव ! आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । यज्ञकर्म एवं दान हमारे लिए कल्याणकारी होकर मंगल करें तथा आपकी प्रशस्तियाँ भी हमारे लिए सुखकारी हों ॥३८ ॥

७५८. भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । येना समत्सु सासहः ॥३९ ॥

हे अग्ने ! जिस मन: शक्ति से आप (जीवन) समरक्षेत्र में (कुविचाररूपी) शत्रुओं को पराजित करते हैं, उसी मन: शक्ति को हमारे दुष्कर्मरूपी पापों के नाश में नियोजित कर हमारा कल्याण करें ॥३९ ॥

७५९. येना समत्सु सासहोव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥४० ॥

हे अग्निदेव ! आप जिस शक्ति से युद्धों में शत्रुओं का संहार करते हैं, उसी प्रकार से अति संघर्षशील शत्रुओं के सुदृढ़ धनुषों की प्रत्यञ्चा को काट दें । आपके द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य से हम सदा सुखी रहें ॥४० ॥

७६०. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्तऽ आशवोस्तंनित्यासो वाजिनऽ इष ꣳ स्तोतृभ्यऽ आ भर ॥४१ ॥

सबके आश्रय स्थल उन अग्निदेव से हम परिचित हैं, (सायं अग्निहोत्र हेतु) जिन अग्निदेव को प्रदीप्त जानकर गौएँ गोधूलि वेला में अपने-अपने बाड़े में वापस लौटती हैं तथा तीव्रगामी अश्व (भी) नित्य ही उस अग्निदेव को प्रदीप्त देखकर अश्वशाला में लौटते हैं । हे अग्निदेव ! ऐसे आप याजकों के लिए प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥४१ ॥

७६१. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुवः स ꣳ सुजातासः सूरयऽ इषꣳ स्तोतृभ्यऽ आ भर ॥४२ ॥

जो सबके आश्रयभूत तथा धन से सहायक हैं, उन अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । जिनके समीप गौएँ आती हैं और शीघ्र गतिमान् अश्व भी जिनके समीप आते हैं, ऐसे अग्निदेव की उपासना श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर सुसंस्कार सम्पन्न विद्वान् करते हैं । इन गुणों से युक्त हे अग्ने ! याजकों के लिए आप प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥

७६२. उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीषऽ आसनि । उतो नऽ उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पतऽ इषꣳ स्तोतृभ्यऽ आ भर ॥४३ ॥

चन्द्रमा के सदृश सुख-शान्ति देने वाले हे अग्निदेव ! आप अपने मुख में घृतपान हेतु दोनों दर्वीरूप हाथों का उपयोग करते हैं । हे बल के स्वामी ! आप स्तुति द्वारा किये गये यज्ञों से हमें धन-सम्पदा से परिपूर्ण करें और हम याजकों को मंगलकारी प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥४३ ॥

७६३. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्र ꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा तऽ ओहैः ॥४४ ॥

हे अग्निदेव ! आज आपके इस यज्ञ को अभीष्ट फलदायक, सामगान से हम संवर्धित करते हैं । जिस प्रकार नानाविध स्तुतियों से अश्वमेध यज्ञ के अश्वों को विशेषरूप से प्रेरित किया जाता है, वैसे ही हम कल्याणकारी यज्ञीय संकल्पों को सुदृढ़ करते हैं ॥४४ ॥

७६४. अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥४५ ॥

हे अग्निदेव ! सारथी द्वारा सावधानीपूर्वक चलाये जाने वाले रथ की भाँति आप श्रेष्ठ फल प्रदान करने वाले, उत्तम रीति से सम्पादित, कल्याणकारी परिणाम प्रस्तुत करने वाले हमारे यज्ञ को सम्पन्न करें ॥४५ ॥

७६५. एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्क् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना ऽ अनीकैः ॥

हे अग्निदेव ! इन स्तुति-मन्त्रों द्वारा प्रसन्नचित्त होकर आप हमारे सम्मुख प्रकट हों । जिस प्रकार सूर्यदेव उदित होकर सम्पूर्ण रश्मियों से संसार के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं, उसी प्रकार हमारी प्रार्थना सुनकर आप हमारे जीवन को आलोकित करें ॥४६ ॥

७६६. अग्नि ꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनु ꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । यऽ ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥४७ ॥

जो दैवीगुणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ कर्म के सम्पादक अग्निदेव, देवताओं के समीप जाने वाले, ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तारयुक्त होकर, अनवरत घृतपान की अभिलाषा करते हैं, उन अग्निदेव को देव आवाहनकर्त्ता, दानकर्त्ता, सबके आश्रयभूत (निवासक), मन्थन होने से शक्ति के पुत्र, सर्वज्ञानसम्पन्न, शास्त्रज्ञाता, ब्रह्मनिष्ठज्ञानी के सदृश हम स्वीकार करते हैं ॥४७ ॥

७६७. अग्ने त्वं नो अन्तमऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तम ꣳ रयिं दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४८॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे अति निकट रहने वाले हैं, हमारे श्रेष्ठ संरक्षक और मंगलकारी हैं, आप सबके अग्रगामी, सबके निवासक और परमवैभव द्वारा अति यशस्वी हैं । हे पावन अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञस्थल में पधारें और अति तेजस्विता सम्पन्न सम्पदाएँ प्रदान करें । हे सर्वप्रकाशक अग्निदेव ! हम मित्रों के लिए और सुखों के निमित्त आपसे निश्चय ही प्रार्थना करते हैं ॥४८ ॥

७६८.येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना ऽ अग्निᳩ स्वराभरन्तः। तस्मिन्नहं नि दधे नाके अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णबर्हिषम् ॥४९ ॥

जिस मन को केन्द्रित करने वाली तपसाधना से ऋषियों ने अग्नि को प्रज्वलित करके देवत्व प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थ किया, उसी मन की एकाग्रता रूप तप-साधना से हम भी दैवी क्षमताओं को जाग्रत् करने के लिए अग्निदेव की स्थापना करते हैं।उन अग्निदेव को मनीषीगण यज्ञीय श्रेष्ठ कर्मों को सफल बनाने वाला सम्बोधित करते हैं।

७६९. तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः। नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥५० ॥

हे दैवीगुण सम्पन्नो ! पुण्यकर्मों से प्राप्त तीसरे ज्योतिर्मय दिव्यलोक में श्रेष्ठ आनन्दमय स्थान को उपलब्ध करने की इच्छा करते हुए, हम सहधर्मिणियों, पुत्रों, बन्धु-बान्धवों तथा स्वर्णादि पदार्थों के साथ अग्नि का सेवन करते हैं। इससे हम श्रेष्ठ देवलोक को प्राप्त करेंगे ॥५० ॥

७७०. आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥५१ ॥

विश्व के भरणकर्ता, श्रेष्ठ महामानवों के पालक, चैतन्य (ज्ञानवान्), भूमि के उच्च भाग में स्थित, अति प्रकाशमान हे अग्निदेव ! आप मंत्रोच्चार के बीच चयन स्थल (यज्ञस्थल) में स्थापित होने वाले हैं। सैन्य शक्ति से सम्पन्न जो दुष्ट-दुराचारी हमसे युद्ध करना चाहते हैं, आप उन्हें पददलित करें अर्थात् नष्ट करें ॥५१ ॥

७७१. अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन्। विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽ उप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥५२ ॥

अतिशय बलवान्, हविष्यान्न ग्रहण करने में समर्थ, हजारों कार्यों के साधक हे अग्निदेव !आप प्रारम्भ किये गये धर्मानुष्ठान को पूर्ण करने के लिए आलस्यरहित होकर प्रकट हों। तीनों लोकों (मेखलाओं) के बीच में विशेष प्रकाशमान होकर, हमें दिव्य लोकों को उपलब्ध कराएं ॥५२ ॥

७७२. सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्। पुनः कृण्वाना: पितरा युवानान्वाताᳩ सीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३ ॥

हे ऋषियो ! आप सभी इन अग्निदेव के निकट आएँ, निकट आकर भलीप्रकार इसे प्रज्वलित करें। हे अग्ने ! आप हमारे देवयान मार्ग को प्रशस्त करें (प्रकाशित करें)। वाणी और मन को तरुण करते हुए ऋषियों ने इस यज्ञ में आपको श्रेष्ठ रीति से विस्तारित किया है ॥५३ ॥

७७३. उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳩ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥५४ ॥

हे अग्निदेव ! आप जाग्रत् हों और प्रतिदिन यजमान को भी जाग्रत् करें। इस यज्ञ में यजमान के साथ सुसंगत हों। आपके अनुग्रह से इस यजमान की श्रेष्ठ इच्छाओं की पूर्ति हो, हे विश्वेदेवो ! याजकगण, देवताओं के योग्य सर्वश्रेष्ठ स्थान-देवलोक में चिरकाल तक निवास करें ॥५४ ॥

७७४. येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे। ॥५५ ॥

हे अग्निदेव ! आप जिस शक्ति से सहस्र दक्षिणा वाले और सर्वमेध अर्थात् सर्वस्व समर्पित करने वाले यज्ञों को सम्पन्न करते हैं, उसी पराक्रम से हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न करें। यज्ञ के प्रभाव से हम याजक देवत्व के परम पद को प्राप्त करें ॥५५ ॥

७७५. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न ऽ आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५६ ॥

हे अग्ने ! यह गार्हपत्य अग्नि आपका उत्पत्ति-स्थल है, जिस ऋतुकाल वाले गार्हपत्य से उत्पन्न हुए आप यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के निमित्त प्रदीप्त होते हैं । उस गार्हपत्य को भली-भाँति अनुभव करके हे अग्ने ! आप दक्षिण कुण्ड में स्थापित हों, तदुपरान्त हमारे लिए धनैश्वर्य को भलीप्रकार से संवर्धित करें ॥५६ ॥

७७६. तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे । शैशिरावृतू अभिकल्पमानाऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम् ॥५७ ॥

माघ और फाल्गुन मास शिशिर ऋतु से सम्बन्धित हैं । हे इष्टके ! आप प्रज्वलित अग्नि में उसकी सुदृढ़ता के लिए स्थित हों । आपके द्वारा द्युलोक और भूलोक आनन्दप्रद हों, जल और सोमलतादि ओषधियाँ आनन्दप्रद हों । सम्पूर्ण अग्नियाँ हम याजकों के उत्थान के लिए अनुकूल हों । जो द्यावापृथिवी के बीच में समान मन वाली अनेक अग्नियाँ हैं, वे इस शिशिर ऋतु से सम्बन्धित होकर उसे उसी प्रकार सुदृढ़ करें, जिस प्रकार देव शक्तियाँ इन्द्रदेव को अपना आश्रय मानकर कर्म सम्पादन करती हैं । उस प्रधान देवता द्वारा अंगिरा की तरह ही स्थित होकर हे इष्टके ! आप भी सुदृढ़ता को धारण करें ॥५७ ॥

७७७. परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५८ ॥

हे जाज्वल्यमान इष्टके ! वायुरूप आपको विश्वकर्मा ऊपर स्वर्गलोक में विराजमान करें । सूर्यदेव आपके स्वामी हैं । आप याजकों के प्राण, अपान और व्यान के उत्थान हेतु ज्योति-अनुदान प्रदान करें । आप वायु देवता की सामर्थ्य से यज्ञकार्य में अङ्गिरावत् अविचल रूप से सुस्थिर रहें ॥५८ ॥

७७८. लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन् ॥५९ ॥

हे इष्टके ! आप पहले से स्थापित इष्टकाओं द्वारा स्पर्श न होती हुई, चयन स्थल के रिक्त स्थान को पूर्ण करें और दृढ़तापूर्वक स्थित हों । इन्द्रदेव, अग्निदेव तथा बृहस्पतिदेव ने इस स्थल में आपको विराजित किया है ॥५९ ॥

७७९. ता अस्य सूददोहसः सोम ँ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥

दिव्यलोक के जल से तथा प्राणपर्जन्य से परिपूर्ण जो सूर्यदेव की किरणें हैं, वे देवताओं के उत्पादन काल (संवत्सर) में तीनों लोकों के मध्य अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में याजकों के लिए सोमरूपी पोषक तत्त्वों को परिपक्व करती हैं ॥६० ॥

७८०. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतम ँ रथीनां वाजाना ँ सत्पतिं पतिम् ॥६१ ॥

याजक द्वारा की गई स्तुतियाँ सुदृढ़, गम्भीर, विशाल, श्रेष्ठ महारथी, धन-धान्य के अधिष्ठाता तथा धर्म निष्ठों के पालनकर्त्ता इन्द्रदेव का गुणगान करती हैं ॥६१ ॥

७८१. प्रोथदश्वो न यवसेविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्। आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥६२ ॥

जिस समय उत्तम काष्ठरूप अरणियों के मन्थन से अग्निदेव प्रज्वलित होते हैं, उस समय भोजन की इच्छा से घास के प्रति प्रेरित अश्व की भाँति वे शब्द करते हैं। तत्पश्चात् वायु उनकी ज्वालाओं के साथ अनुगमन करते हुए उन्हें अधिक प्रज्वलित करते हैं। उस समय अग्निदेव की प्रगति का मार्ग कृष्णवर्ण धूम्र से परिपूर्ण होता है ॥६२ ॥

७८२. आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायाया ᳪ समुद्रस्य हृदये । रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥६३ ॥

तेजस्वी रश्मियों के प्रकाश से सुशोभित हे स्वयमातृण्णे ! जल की वर्षा करने वाले सागर की भाँति पोषक-तत्त्वों की वृष्टि द्वारा संसार का पालन करने वाले, आदित्य के हृदय स्थल में हम आपको प्रतिष्ठित करते हैं। आप पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को अपने दिव्य प्रकाश से परिपूर्ण अर्थात् ज्योतिर्मय कर देती हैं ॥६३ ॥

७८३. परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृ ᳪ ह दिवं मा हिᳪ सीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। सूर्यस्त्वाभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥६४ ॥

सम्पूर्ण जगत् में अपने तेज का विस्तार करने वाली हे स्वयमातृण्णे ! संसार का सृजन करने वाले विश्वकर्मा आपको दिव्यलोक के ऊपर स्थापित करें। आप समस्त प्राणियों के प्राण, अपान, व्यान और उदान की शक्ति को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु अपने स्थल पर प्रतिष्ठित हों तथा सदाचरण के विस्तार में सहायक हों। सूर्यदेव आपकी भली-भाँति रक्षा करें। आप दिव्य गुणों को नष्ट न होने दें। अपने उस अधिष्ठाता देव की अनुकूलता से अङ्गिरा के समान अविचल होकर स्थापित हों ॥६४ ॥

७८४. सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोसि सहस्राय त्वा ॥६५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हजारों इष्टकाओं (शक्तियों) के मापदण्ड हैं, आप असंख्य वैभवों की प्रतिमा रूप हैं तथा सहस्राधिक स्थान पर विराजमान होने योग्य हैं। इसी कारण आप हजारों इष्टकाओं के ऊपर अधिष्ठित होने के लिए उपयुक्त हैं। हम असंख्य (सहस्र) उच्च श्रेणियों की प्राप्ति के लिए आपको स्वीकार करते हैं ॥६५ ॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— परमेष्ठी १-१९ । विरूप २०,२१ । भरद्वाज २२ । त्रिशिरा २३ । बुध-गविष्ठिर २४, २५ । वामदेव २६ । सुतंभर २७,२८ । इष २९ । संवनन ३० । प्रस्कण्व ३१ । वसिष्ठ ३२-३४, ६२-६५ । गोतम ३५-३७ । सौभरि ३८-४० । कुमार-वृष ४१-४७, ४९-५८ । बन्धु आदि ४८ । देवश्रवा-देववात भारत ५९ । प्रियमेध ऐन्द्र ६० । जेता माधुच्छन्दस ६१ ।

देवता— अग्नि १,२,२०-५६, ६२, ६५ । लिंगोक्त (इष्टका) ३-१९ । ऋतुएँ ५७ । सूर्य ५८ । लोकंपृणा लिंगोक्त ५९ । आपः (जल) ६० । इन्द्र ६१ । स्वयमातृण्णा ६३, ६४ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १ । भुरिक् त्रिष्टुप् २ । ब्राह्मी त्रिष्टुप् ३,७ । निचृत् आकृति ४ । निचृत् अभिकृति ५ । विराट् अभिकृति ६ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् ८ । विराट् ब्राह्मी जगती ९ । विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्, ब्राह्मी बृहती १० । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्, ब्राह्मी बृहती ११, १३ । भुरिक् ब्राह्मी जगती, ब्राह्मी बृहती १२ । ब्राह्मी जगती, ब्राह्मी त्रिष्टुप् १४ । विकृति १५ । निचृत् प्रकृति १६ । कृति १७ । भुरिक् अतिधृति १८ । निचृत् कृति १९ । निचृत् गायत्री २०-२२ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् २३, ५२ । निचृत् त्रिष्टुप् २४,२५ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् २६, ५० । निचृत् आर्षी जगती २७ । विराट् आर्षी जगती २८ । विराट् अनुष्टुप् २९-३१, ५९, ६०, ६५ । विराट् बृहती ३२ । निचृत् बृहती ३३ । आर्षी अनुष्टुप् ३४ । उष्णिक् ३५, ३८ । निचृत् उष्णिक् ३६, ३७, ३९-४० । निचृत् पंक्ति ४१, ४३ । आर्षी पंक्ति ४२ । आर्षी गायत्री ४४ । भुरिक् आर्षी गायत्री ४५, ४६ । विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ४७ । स्वराट् ब्राह्मी बृहती ४८ । आर्षी त्रिष्टुप् ४९, ५४ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् ५१ । भुरिक् आर्षी पंक्ति ५३ ।निचृत् अनुष्टुप् ५५, ५६, ६१ । स्वराट् उत्कृति ५७ । ब्राह्मी बृहती ५८ । विराट् त्रिष्टुप् ६२, ६३ । आकृति ६४ ।

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ षोडशोऽध्याय: ॥

इस अध्याय के सभी मंत्र 'रुद्र' के प्रति कहे गये हैं। शिव के असुर विनाशक रौद्र रूप, सूर्य के प्रचण्ड रूप, अग्नि के विकराल रूप— इन सभी को रुद्र कहा गया है— 'अग्निरपि रुद्र उच्यते' (निरुक्त १०.७), 'यो वै रुद्रः सोऽग्निः' (शत० ब्रा० ५.२.४.१३)। रुद्र ग्यारह कहे गये हैं, इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। शत० ब्रा० में दस प्राणों तथा ग्यारहवें आत्मा को मिलाकर एकादश रुद्र कहा गया है (११.६.२.७)। मंत्र के भावानुसार रुद्र का यही स्वरूप यहाँ प्रकट किया गया है—

७८५. नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतो तऽइषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१ ॥

हे (दुष्टों को रुलाने वाले) रुद्रदेव ! आपके मन्यु (अनीति-दमन के लिए क्रोध) के प्रति हमारा नमस्कार है। आपके बाणों के लिए हमारा नमस्कार है। आपकी दोनों भुजाओं के लिए हमारा नमस्कार है ॥१ ॥

७८६. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥२ ॥

हे रुद्रदेव !आप (अति उच्च) पर्वत की सुरक्षित गुहा में रहते हैं।आपका कल्याणकारी शान्तरूप, पापों के विनाशक होने के कारण सौम्य और बलशाली भी है।अपने उसी मंगलमय रूप से हमारे ऊपर कृपा-दृष्टि डालें ॥२॥

७८७. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिᳬसीः पुरुषं जगत् ॥३ ॥

हे रुद्रदेव ! आप पर्वत में स्थित रहकर प्राणियों की रक्षा के लिए समर्पित हैं। जिस बाण को शत्रुओं के विनाश के निमित्त हाथ में धारण करते हैं, उसी बाण को कल्याण-प्रयोजनों में प्रयुक्त करें। वे (बाण) मनुष्यों और जगत् के प्राणियों की हिंसा में प्रयुक्त न हों ॥३ ॥

७८८. शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छावदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्म ᳬ सुमनाऽअसत् ॥४ ॥

हे पर्वत-निवासी रुद्रदेव ! हम मंगलमय स्तुतियों से प्रार्थना करते हैं कि आप इस सम्पूर्ण जगत् को रोग से दूर रखें और उत्तम विचारयुक्त मन प्रदान करें ॥४ ॥

७८९. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥५ ॥

(ज्ञान के) प्रमुख प्रवक्ता, देवों में प्रथम पूज्य, स्मरण मात्र से भवरोगादि दूर करने वाले वैद्य तुल्य रुद्रदेव ने (अपने वीरभद्रों से) कहा—आप सभी सर्प आदि क्रूर प्राणियों को नष्ट करें और अधोगामी प्रवृत्तियों वाली राक्षसी स्त्रियों (वृत्तियों) को दूर करें ॥५ ॥

७९०. असौ यस्ताम्रो अरुणऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैन ᳬरुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाᳬ हेडऽईमहे ॥६ ॥

यह (सूर्यरूप) रुद्रदेव उदय काल में ताम्र वर्ण, मध्याह्न-काल में अरुणिम और अस्तकाल में भूरे रंग के हैं। (सूर्य की बिखरी सहस्रों रश्मियों के सदृश) रुद्रदेव की अंश रूप सहस्रों शक्तियाँ अनेकों दिशाओं में अवस्थित हैं। (हम उनके प्रति विनम्र अभिवादन शील रहते हैं) उनका क्रोध हमारे प्रति शान्त हो ॥६ ॥

७९१. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपाऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥७॥

यह रुद्र (सूर्य) देव नीलग्रीवा (तेजस्वी होने पर सूर्यमण्डल में नीलवर्ण दिखता है) तथा विशेष रक्तवर्ण युक्त होकर निरन्तर गतिमान् रहते हैं। इनके दर्शन उदयकाल में नित्य गोप (गौ चराने वाले) और जल ले जाने वाली नारियाँ करती हैं। ऐसे उन रुद्रदेव (आदित्य) के दर्शन हमारे लिए अत्यन्त कल्याणकारी हैं ॥७॥

७९२. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥८॥

नीले कण्ठ वाले (सूर्य-किरणरूप) सहस्र नेत्र वाले, (प्राण-पर्जन्य की) वर्षा करने वाले रुद्रदेव (सूर्य) के लिए हमारा नमन हो, इनके जो सत्वरूप अंश (अनुचर) हैं, उनके लिए भी हम नमस्कार करते हैं ॥८॥

७९३. प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्तऽइषवः परा ता भगवो वप ॥९॥

हे (आदित्यरूप) भगवान् रुद्रदेव ! (सायंकाल के समय) धारण किये हुए, अपने धनुष की दोनों कोटियों में स्थित प्रत्यञ्चा (किरणों) को उतार लें (समेट लें) और हाथों में धारण किये बाण (अत्यधिक उष्णता) का परित्याग करें ॥९॥

७९४. विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ उत। अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥

इन जटाधारी रुद्रदेव का धनुष प्रत्यंचारहित होकर आवश्यकता विहीन हो जाए, तरकस बाणों से खाली हो जाए, इनके बाण कहीं दिखाई न पड़ें। इनके खड्ग रखने का स्थान खाली हो जाए ॥१०॥

[सर्वत्र शान्ति का वातावरण छा जाने के उपरान्त ही रुद्र देवता के लिए आयुधों की आवश्यकता नहीं रहेगी।]

७९५. या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज ॥

हे सुखदायक रुद्रदेव ! आप के हाथों में जो धनुष और हथियार हैं। उन विध्वंसरहित शस्त्रों से आप सब ओर से हमारी भली प्रकार से रक्षा करें ॥११॥

७९६. परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो यऽइषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् ॥

हे रुद्रदेव ! आपके धनुष-बाण आदि शस्त्र सब ओर से हमारी रक्षा करें। (आन्तरिक एवं बाह्य) शत्रुओं के आक्रमण से हमें बचाते रहें और आपके तरकस हमसे दूर रहें। (हम आपके क्रोधभाजन न बनें।) ॥१२॥

७९७. अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥

हे सहस्र नेत्रधारी रुद्रदेव ! आपके सैकड़ों तरकस हैं। अपने धनुष की प्रत्यंचा उतार कर बाणों के नुकीले फलकों को भी आप निकाल फेंकें। इस तरह हमारे लिए आप कल्याण करने वाले और उत्तम मन वाले हों ॥१३॥

७९८. नमस्तऽआयुधायानातताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१४॥

हे रुद्रदेव ! आपके धनुष पर न चढ़ाये जाने वाले बाण को नमस्कार है। आपकी दोनों भुजाओं के लिए और सामर्थ्यवान् धनुष के लिए भी नमस्कार है ॥१४॥

७९९. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नऽउक्षन्तमुत मा नऽउक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥१५॥

हे रुद्रदेव ! हमारे महान् ज्ञानी गुरुजनों, छोटे बालकों, युवा पुरुषों, गर्भस्थ शिशुओं, पितृजनों, माताओं और प्रिय पुत्र-पौत्रादिकों को नष्ट न करें (अपितु उनका कल्याण करें ।) ॥१५ ॥

८००. मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥१६ ॥

हे रुद्रदेव ! आप हमारे पुत्र-पौत्रों को नष्ट न करें । हमारी आयु में कमी न आए । हमारी गौओं और अश्वों (आदि पशुधन) का अहित न हो । हमारे (सहयोगी) पराक्रमी-वीरों का वध न करें । हम आहुति प्रदान करते हुए , आपका (इस यज्ञ की सफलता के लिए) आवाहन करते हैं ॥१६ ॥

८०१. नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥१७ ॥

स्वर्ण-अलंकारों से सुशोभित भुजाओं वाले, दिशाओं के स्वामी (सम्पूर्ण जगत् के रक्षक) सेनानायक, पत्तों के सदृश हरे (स्निग्ध) बालों वाले, वृक्षों के तुल्य (सर्व हितकारी), पशुओं (जीवों) के पालनकर्त्ता, तेजस्वी, नव अंकुरण के समान पीत वर्ण वाले, मार्गों के पति (मार्गदर्शक, प्रेरणादायी), उपवीत धारण करने वाले, जरारहित (ज्ञान व गुण सम्पन्न), समर्थ मनुष्यों के अधिपति (महादेव) रुद्र को हम नमस्कार करते हैं ॥१७ ॥

८०२. नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ॥१८ ॥

बभ्रु वर्णवाले, शत्रुओं को नष्ट करने वाले, अन्न के पोषणकर्ता, संसार के लिए आयुधधारी (जग-रक्षक), जगत् के पालनकर्त्ता, आततायियों के लिए आयुध धारण करने वाले, क्षेत्रों और वनों के पालक तथा वध न किये जा सकने वाले सारथीरूप (देवाधिदेव) रुद्रदेव को नमस्कार है ॥१८ ॥

८०३. नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमऽ उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥१९ ॥

लोहित वर्ण वाले, विश्वकर्मारूप (गृहादि स्थापक), वृक्षों के पोषक, भूमण्डल के विस्तारक, ऐश्वर्यों के स्थापक, ओषधियों के पोषक, व्यापारकुशल, जनों को श्रेष्ठ प्रेरणा देने वाले, वनों के गुल्म-वीरुध (काटने पर पुनः बढ़ने वाले) आदि के पालक, संग्राम में शत्रुओं को रुलाने वाले, भयंकर गर्जना करने वाले तथा पंक्तिबद्ध पैदल सेना के अधिपति रुद्र देवता को नमस्कार है ॥१९ ॥

८०४. नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिनऽ आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ॥२० ॥

हमारी रक्षा के निमित्त धनुष तैयार कर शत्रु पर चढ़ाई करने वाले, सब सात्त्विक पुरुषों के पालक, शत्रुजयी और वैरियों के विनाशक, अपनी पराक्रमी सेना के नायक, उपद्रवकारियों पर खड्ग प्रहार करने वाले, चोरों के नियंत्रणकर्त्ता, अपहरणकर्त्ताओं - उपद्रवियों के नियंत्रणकर्त्ता और वनों के पालक रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२० ॥

८०५. नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिणऽइषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघां—सद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥२१ ॥

ठगने और लूटने का कार्य करने वालों पर दृष्टि रखने वाले रुद्रदेव को नमन है । गुप्तचरों के नियन्त्रक रुद्रदेव को नमन है । खड्ग और बाणधारियों (उपद्रवकारियों) के निरोधक रुद्रदेव को नमन है । तस्करों के नियंत्रणकर्ता रुद्रदेव को नमन है । शस्त्र (वज्र) युक्त शत्रुओं के विनाशक रुद्रदेव को नमन है । खड्ग धारण कर रात्रि में विचरण करने वालों के नियंत्रक रुद्रदेव को नमन है । सेंध लगाकर परधन हरने वाले दस्युओं को पीड़ा देने वाले रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२१ ॥

८०६. नमऽउष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नमऽइषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नमऽआतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नमऽआयच्छद्भ्यो ऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ॥

पगड़ी धारण कर पर्वत पर विचरने वाले रुद्रदेव को नमन है । बलात् परद्रव्य-हरणकर्त्ताओं के नियंत्रक रुद्रदेव को नमन है । दुष्टों के निमित्त भय प्रकट करने वाले—धनुष और बाण धारक रुद्रदेव को नमन है । दुष्टों के दमन के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर धनुष खींचने व चलाने वाले रुद्रदेव को नमन है । हे बाण प्रहारक रुद्रदेव ! आपको बारम्बार नमन है ॥२२ ॥

८०७. नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्यऽ आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ॥२३ ॥

दुष्टों पर बाण चलाने वाले रुद्रदेव को नमन है । शत्रुओं के भेदक रुद्रदेव को नमन है । शयन करने वालों, जाग्रत् अवस्था वालों, आसन पर प्रतिष्ठित होने वालों, ठहरने वालों और वेगवान् गति वालों के अन्तःकरण में अवस्थित रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२३ ॥

८०८. नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्यो ऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नमऽ आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नमऽउगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः ॥२४॥

सभारूप रुद्रदेव को नमन है । सभापतिरूप रुद्रदेव को नमन है । अश्वों में बलरूप रुद्रदेव को नमन है । अश्व-अधिपति रुद्रदेव को नमन है । श्रेष्ठ भृत्य-सेना में स्थित रुद्रदेव को नमन है । संग्राम में सहायक होकर शत्रु पर प्रहार करने वाले रुद्रदेव को भी नमस्कार है ॥२४ ॥

८०९. नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥२५ ॥

सेना के समूहरूप और उनके अधिपतिरूप रुद्रदेव को नमन है । विशिष्ट (आक्रमणकारी) समूह और उनके अधिपतिरूप रुद्रदेव को नमन है । बुद्धिमान् वर्गरूप और उनके समूहरूप रुद्रदेव को नमन है । विविधरूप वाले और असंख्य रूप वाले रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२५ ॥

८१०. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥२६ ॥

सेनारूप रुद्रदेव को नमन और सेनापतिरूप रुद्रदेव को नमन है । रथ वाले वीरों को नमन और रथहीन वीरों को नमन है । संग्राम करने वाले वीररूप-रथ-सामग्रीयुक्त वीररूप रुद्रदेव को नमन है । वरिष्ठ पूज्यरूप और कनिष्ठ वीररूप रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२६ ॥

८११. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कमरिभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥२७ ॥

तरकस और रथ-निर्माण में श्रेष्ठ कलाकार के रूप में रुद्रदेव को नमन है। मिट्टी के पात्रादि के निर्माता (कुम्हार) और लोहे के शस्त्रादि के निर्माता (लोहार) रूप रुद्रदेव को नमन है। पर्वत निवासी भीलों (निषाद) और पुञ्जिष्ठ (वन-जाति) के अन्तस् में स्थित रुद्रदेव को नमन है, कुत्तों के गले में रस्सी बाँधकर धारण करने वालों के रूप वाले रुद्रदेव को नमन और मृगों की कामना करने वाले व्याधों के रूप वाले रुद्रदेव को नमन है ॥२७ ॥

८१२. नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२८ ॥

श्वानों के अन्तस् में प्रतिष्ठित देव को नमन, कुत्तों के स्वामी किरातों के अन्तस् में प्रतिष्ठित देव को नमन, जिनसे सम्पूर्ण विश्व का सृजन हुआ, उन्हें नमन, पापनाशक रुद्रदेव को नमन, नील ग्रीवाधारी रुद्रदेव को नमन, नीलातिरिक्त शिति (श्वेत) कण्ठधारी रुद्रदेव को नमन है ॥२८ ॥

८१३. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥२९ ॥

जटाजूटधारी रूप को नमन और मुण्डित केशरूप को नमन, सहस्र चक्षुरूप को नमन और शत धनुर्धारी रूप को नमन, समस्त प्राणियों में व्याप्त विष्णुरूप को नमन, तृप्ति प्रदान करने वाले मेघरूप को नमन और बाण धारण करने वाले रुद्ररूप को नमन है ॥२९ ॥

८१४. नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥३० ॥

अल्प शरीर वाले रूप को नमन, छोटे कद वाले रूप को नमन, प्रौढ़ अंग वाले रूप को नमन, वृद्धांग वाले रूप को नमन, अति वृद्ध रूप को नमन, आकर्षक तरुणरूप को नमन, सब में अग्रणी (अधिकारयुक्त) पुरुषरूप को नमन और सब में श्रेष्ठ (गुण-सम्पन्न) पुरुषरूप देव को नमन है ॥३० ॥

८१५. नमऽआशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नमऽ ऊर्म्याय चा- वस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥३१ ॥

शीघ्र गतिमान् को नमन और शीघ्रकर्मी को नमन है। वेग से चलने वाले और प्रवहमान रूप को नमन है। जल तरंगों में गतिरूप और स्थिर जल में विद्यमान रूप को नमन है। नदी में स्थित रहने वाले और द्वीप में स्थित रहने वाले देवरूप को नमस्कार है ॥३१ ॥

८१६. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥३२ ॥

ज्येष्ठरूप वाले और कनिष्ठरूप वाले को नमन, रचना के आरम्भ में उत्पन्न (पूर्वज) रूप और वर्तमान में विद्यमानरूप को नमन है। सन्तान-रूप से उत्पन्न होने वाले रूप, अप्रगल्भ अण्ड-रूप में उत्पन्नरूप को नमन है। पशु आदि रूप में अवस्थित और वृक्षादि के मूल में अवस्थित देव को नमन है ॥३२ ॥

८१७. नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमऽउर्वर्याय च खल्याय च ॥३३ ॥

सोम्य (मनुष्यलोक) रूप को नमन और शत्रुओं पर आक्रमण कर पराजित करने में समर्थरूप को नमन है। न्यायरक्षक और व्यवहारकुशल रूप को नमन है। मन्त्र व्याख्या में कुशलरूप और कार्य समाप्ति में कुशल रूप को नमन है। अचल ऐश्वर्यों के अधिपतिरूप और अन्नादि पदार्थों के संचय आदि में कुशल देवरूप को नमन है॥

८१८. नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमऽआशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥३४॥

वन के वृक्षादि में स्थित और घास आदि (ओषधिरूप) में स्थित देव को नमन है। ध्वनि में स्थित और प्रतिध्वनि में स्थित देव को नमन है। शीघ्र संचालित सेना में स्थित, शीघ्रगामी रथों में अवस्थित देव को नमन है। शूर-वीरों में विद्यमान और शत्रु के हृदय को वेधने वाले शस्त्रास्त्रों में विद्यमान देव को नमन है॥३४॥

८१९. नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥३५॥

शिरस्त्राण (शस्त्र प्रहार से सिर की रक्षा करने वाले उपकरण) धारण करने वाले और कवच धारण करने वाले को नमन है। रथ के भीतर या हाथी की अम्बारी* में बैठने वाले को नमन है। प्रसिद्ध होने वाले और प्रसिद्ध सेना के स्वामी को नमन है। रण-दुन्दुभि को नमन और वाद्य-साधन प्रयोक्ता को नमन है॥३५॥

[* हाथी के पीठ पर रखने का हौदा, जिसके ऊपर एक छज्जेदार मण्डप होता है।]

८२०. नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥३६॥

संघर्षशील वीरों को नमन, विचारशील वीरों को नमन, खड्गधारी वीरों को नमन, तरकसधारी वीरों को नमन, तीक्ष्ण बाण-प्रहारक और उत्तम आयुधों से सज्जित वीरों को नमन, उच्चकोटि के आयुधधारी वीरों और श्रेष्ठ धनुषधारी वीरों को नमन है॥३६॥

८२१. नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥३७॥

(ग्राम के) क्षुद्र मार्ग में स्थित देव को और राजमार्ग में स्थित देव को नमन है। दुर्गम मार्ग में स्थित तथा पर्वत के नीचे भाग में स्थित देव को नमन है। नहर के मार्ग में स्थित और सरोवर आदि में स्थित देव को नमन है। नदी के जल में स्थित और अल्प सरोवर (पोखर) आदि में स्थित देव को नमन है॥३७॥

८२२. नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥३८॥

कूप में अवस्थित देव को नमन, गर्त में उपस्थित देव को नमन, अति प्रकाश में अवस्थित देव को नमन, सूर्य-आतप में अवस्थित देव को नमन, मेघ में अवस्थित और कड़कती धूप में अवस्थित देव को नमन, वृष्टि धारा में अवस्थित और वृष्टि रोकने में सहायक देव को नमन है॥३८॥

८२३. नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥३९॥

वायु-प्रवाह मे स्थित देव को नमन तथा प्रलयरूप पवन में स्थित देव को नमन, वास्तुकला में स्थित देव और वास्तु-गृह के पालक देव को नमन, चन्द्रमा में प्रतिष्ठित देव को नमन, पापनाशक रुद्रदेव को नमन, सायं-कालीन (ताम्रवर्ण) सूर्यरूप में विद्यमान और प्रातः कालीन (अरुणिम वर्ण) सूर्यरूप में विद्यमान देव को नमन है॥३९॥

८२४. नमः शङ्गवे च पशुपतये च नमऽउग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥४० ॥

कल्याणमयी वाणीरूप रुद्रदेव को नमन, प्राणियों के पालक देव रुद्र को नमन, शत्रुओं के लिए कठोर हृदय रूप रुद्रदेव को और शत्रुओं में भय उत्पादक रुद्रदेव को नमन, प्रत्यक्ष शत्रु के हन्ता और दूरस्थ शत्रु के हन्ता रुद्रदेव को नमन, शत्रुओं का हनन करने वाले और प्रलयंकारी रूप रुद्रदेव को नमन, पर्णरूप हरित केश वाले वृक्ष रूप को नमन तथा संसार सागर से पार लगाने वाले विराट् रुद्रदेव को नमन है ॥४० ॥

८२५. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१ ॥

दिव्य आनन्द देने वाले और सांसारिक सुख देने वाले रुद्रदेव को नमन है । कल्याण करने वाले और सुख बढ़ाने वाले रुद्रदेव को नमन है । सब प्रकार से मंगल करने वाले और अपने भक्तों को पवित्रता प्रदान करके, गति देने वाले देव रुद्र को नमन है ॥४१ ॥

८२६. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥४२ ॥

समुद्र के पार अवस्थित और समुद्र के इस पार अवस्थित देव को नमन, पार लगाने में प्रयुक्त साधनरूप और स्वयं पार करने वाले रूप में अवस्थित देव को नमन, तीर्थ में अवस्थित और जल के किनारे अवस्थित देव को नमन, कुशादि में अवस्थित और समुद्र के फेन में स्थित देव को नमन है ॥४२ ॥

८२७. नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमऽ इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥४३ ॥

नदी की रेत में अवस्थित और नदी के प्रवाह आदि में अवस्थित देव को नमन है । नदी की तलहटी में वृक्ष-कंकड़ादि में अवस्थित और स्थिर जल में अवस्थित देव को नमन है । कौड़ी-सीप आदि में अवस्थित और पूर्णतया जल में सन्निहित देव को नमन है । तृणादिरहित ऊसर भूखण्ड पर अवस्थित और विशिष्ट जल-प्रवाहों में अवस्थित देव को नमन है ॥४३ ॥

८२८. नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥४४ ॥

गौओं के चरने के स्थान में और गोशाला में अवस्थित देव को नमन, शय्या में अवस्थित तथा गृह आदि में अवस्थित देव को नमन है । हृदय में जीवरूप से अवस्थित और हिमशिखरों में अवस्थित देव को नमन, दुर्गम मार्ग में अवस्थित तथा पर्वतीय गुफा या गहन जल में अवस्थित देव को नमन है ॥४४ ॥

८२९. नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्म्याय च ॥४५ ॥

शुष्क काष्ठादि में विराजित, हरित पर्ण आदि में विराजित देव को नमन है । पुष्पों की छवि में विराजित और धूलिकणों में विराजित देव को नमन है । अदृश्य स्थान में विराजित और तृणादि में विराजित देव को नमन है । पृथ्वी के उर्वर भू-भाग में विराजित और महाप्रलय की विकराल अग्नि में विराजित देव को नमन है ॥४५ ॥

८३०. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम ऽ उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नमऽआखिदते च प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬहृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नमऽआनिर्हतेभ्यः ॥४६ ॥

पर्ण में विराजित, गिरे हुए पत्तों में विराजित देव को नमन, उत्पत्ति के निमित निरन्तर उद्यमशील में विराजित, शत्रुओं का संहार करने वाले रूप में विराजित देव को नमन, अकर्मण्यों को दुःख देने वाले रूप में विराजित, त्रिविध ताप के उत्पत्तिकर्ता रूप में विराजित देव को नमन, बाणादि उत्पन्न करने वाले और धनुषादि निर्माण करने वाले रूप में विराजित देव को नमन, देवताओं के हृदय रूप सूर्य-वृष्टि आदि द्वारा जगत् संचालक रूप में विराजित तथा धार्मिकवृत्ति और पापवृत्ति में संलग्न रहने वालों के विभाजनकर्ता के रूप में विराजित देव को नमस्कार है ॥

८३१. द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किंचनाममत् ॥४७ ॥

हे रुद्रदेव ! आप पापियों को अधम गति में ले जाने वाले, अन्नादि के स्वामी, अपरिग्रही, नील-लोहित वर्ण वाले हैं । आप इन प्रजाओं-पशुओं को कष्ट में न पड़ने दें । पशुओं में भय न आने दें और किसी भी प्रकार हमें रोगग्रस्त न होने दें ॥४७ ॥

८३२. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽ अस्मिन्ननातुरम् ॥४८ ॥

हम अपनी इन बुद्धियों को दुर्धर्ष वीरों के प्रेरक महाबली रुद्रदेव के प्रति समर्पित करते हैं, ताकि दो पाये (मनुष्यादि) और चौपाये (पशुआदि) सभी शान्ति से रहें । यह ग्राम (क्षेत्र) अनातुर (चिंतारहित) तथा परिपुष्ट विश्व (की इकाई) के रूप में स्थित रहे ॥४८ ॥

[आदर्श विश्व व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि (१) बुद्धि अनाचार के प्रतिरोध में समर्थ हो और (२) प्रत्येक छोटी इकाई (ग्राम आदि) स्वावलम्बी इकाई के रूप में विकसित हो, अपने को विश्व परिवार की इकाई माने ।]

८३३. या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी । शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥४९ ॥

हे रुद्रदेव ! जो आपका कल्याणकारी रूप है, जो विश्व की व्याधि को मुक्त करने वाला ओषधिरूप है, शरीर को नवजीवन प्रदान करने वाला ओषधिरूप बल है, अपने उस बल से हमारे जीवन को सुखी बनाएँ ॥४९ ॥

८३४. परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः । अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥५० ॥

रुद्रदेव के आयुध हम से दूर रहें । क्रोधित मुद्रा युक्त दुर्मति हम से दूर रहे । हे इष्टप्रदायक रुद्रदेव ! ऐश्वर्यवान् यजमान का भय दूर करने के निमित्त अपने धनुष की प्रत्यंचा उतार दें और हमारे पुत्र-पौत्रों के लिए सुख-सौभाग्य प्रदान करें ॥५० ॥

८३५. मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव । परमे वृक्षऽआयुधं निधाय कृत्तिं वसानऽआ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ॥५१ ॥

हे इष्टफल प्रदायक रुद्रदेव ! आप हमारे निमित्त कल्याण करने वाले हैं । आप सदा शान्त और श्रेष्ठ मन वाले हैं । अपने शस्त्र-साधन ऊँचे वृक्ष पर रख कर, (निःशस्त्र होकर) चर्म (रूप वस्त्र) धारण करके आगमन करें । आप (शत्रुनाशक केवल) धनुष को धारण करके यहाँ आएँ ॥५१ ॥

८३६. विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्रᳬहेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥५२ ॥

हे भगवन् (रुद्र) ! आप अत्यंत शुद्धस्वरूप वाले और उपद्रवों का नाश करने वाले हैं। आपको नमस्कार है। आपके जो सहस्रों शस्त्र हैं, वे हमें छोड़ कर अन्य उपद्रव करने वालों पर पड़ें (उन्हें नष्ट करें) ॥५२ ॥

८३७. सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि॥

हे भगवन् (रुद्र) ! आपकी भुजाओं में सहस्रों प्रकार के खड्ग-शूलादि आयुध हैं। हे स्वामी ! आप इन संहारक आयुधों के मुख, हम से परे फेर लें (जिससे हमें कोई हानि न हो) ॥५३ ॥

८३८. असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधि भूम्याम्। तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५४ ॥

असंख्यों-प्राणियों को नियंत्रित करने वाले, रुद्रदेव के जो हजारों गण आदि भूमि के ऊपर अधिष्ठित हैं, हे भव्य रुद्रदेव ! उनके धनुषों को हम से हजारों योजन दूर स्थित करें ॥५४ ॥

८३९. अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽअधि। तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

जो इस अन्तरिक्ष में और विशाल सागर के आश्रय में घनीभूत, (प्रलयंकारी शक्तिरूप) रुद्रगण हैं, हे महारुद्र ! उनके धनुषों को हम से सहस्र योजन दूर प्रत्यंचारहित रखें ॥५५ ॥

८४०. नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवᳬरुद्राऽउपश्रिताः। तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५६ ॥

जो नीली गर्दन वाले और श्वेतकंठ वाले रुद्रगण द्युलोक के आश्रय में अधिष्ठित हैं, हे महारुद्र ! उनके धनुषों को हमसे सहस्र योजन दूर प्रत्यंचा रहित रखें ॥५६ ॥

८४१. नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽअधः क्षमाचराः। तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५७ ॥

जो नीली गर्दन वाले और श्वेतकंठ धारी (शर्व नामक) रुद्रगण नीचे भूमण्डल में विचरते हैं, हे महारुद्र ! उनके सब धनुषों को प्रत्यंचारहित करके हम से दूर रखें ॥५७ ॥

८४२. ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५८ ॥

जो नीलकण्ठ वाले, हरित वर्ण-तेजस्विता सम्पन्न रुद्रगण वृक्षादि में अधिष्ठित हैं, (हे महारुद्र !) उनके सब धनुषों को प्रत्यंचाहीन करके हमसे सहस्र योजन दूर स्थापित करें ॥५८ ॥

८४३. ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

(हे महारुद्र !) जो सभी प्राणियों के रक्षक हैं, मुण्डित सिरयुक्त एवं जटाधारी हैं, उन रुद्रगणों के सब धनुष प्रत्यंचाहीन करके हम से सहस्र योजन दूर स्थापित करें ॥५९ ॥

८४४. ये पथां पथिरक्षयऽऐलबृदाऽआयुर्युधः। तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

(हे महारुद्र !) जो विविध मार्गों के पथिकों के रक्षक हैं और अन्न से प्राणियों को पुष्ट करने वाले तथा जीवन पर्यन्त संग्राम में जूझने वाले हैं, उन सब रुद्रगणों के धनुष प्रत्यंचाहीन करके हमसे सहस्र योजन दूर स्थापित करें ॥

८४५. ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषा ँ्सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६१ ॥

जो रुद्रगण हाथ में भाले लेकर, तलवार बाँधकर तीर्थों में विचरण करते हैं, (हे महारुद्र !) उनके सब धनुषों को प्रत्यंचाहीन करके हम से सहस्र योजन दूर रखें ॥६१ ॥

८४६. येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषा ँ्सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

जो रुद्रगण अन्न ग्रहण करने वाले प्राणियों को प्रताड़ित करते हैं, (रोगग्रस्त करते हैं) और पात्रों में जल, दूध आदि पीने वालों को पीड़ा पहुँचाते हैं, (हे महारुद्र !) उनके सब धनुषों को प्रत्यंचाहीन करके हमसे सहस्र योजन दूर रखें ॥६२ ॥

८४७. य एतावन्तश्च भूया ँ्सश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे। तेषा ँ्सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६३ ॥

जो रुद्रगण इन दिशाओं में या अन्यान्य दिशाओं में स्थित रहते हैं, (हे महारुद्र !) उनके सब धनुषों को प्रत्यंचाहीन करके हम से सहस्र योजन दूर करें ॥६३ ॥

८४८. नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६४ ॥

जो रुद्रगण (रुद्र की शक्तियाँ) द्युलोक में अधिष्ठित हैं; जिनके बाण, वृष्टि धाराएँ हैं, उन्हें नमन है। उन रुद्रों को पूर्व दिशा में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर और ऊर्ध्व दिशा में हाथ जोड़कर नमन करते हैं। वे रुद्रगण हमारी रक्षा करें, हमें सुख प्रदान करें । जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उन्हें हम रुद्रगणों की दाढ़ में (मुख में) स्थापित करते हैं ॥६४ ॥

८४९. नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६५ ॥

उन रुद्रगणों को नमन है, जो अन्तरिक्ष में अधिष्ठित हैं, जिनके बाण विविध प्रकार के पवन हैं। उन्हें पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम मे, उत्तर में और ऊर्ध्व दिशा में हाथ जोड़ कर नमन करते हैं। वे रुद्रगण हमारी रक्षा करें । वे हमें सुख प्रदान करें । जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उन्हें हम रुद्रगणों की दाढ़ में (मुख में) स्थापित करते हैं ॥६५ ॥

८५०. नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६६ ॥

उन रुद्रगणों के लिए नमन है, जो पृथ्वी में अधिष्ठित हैं, जिनके बाण अन्नरूप हैं, उन्हें पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में और ऊर्ध्वदिशा में नमन करते हैं। वे रुद्रगण हमारी रक्षा करें । वे हमें सुख प्रदान करें। जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उन्हें हम उन रुद्रगणों की दाढ़ में (मुख में) स्थापित करते हैं ॥६६ ॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— परमेष्ठी प्रजापति अथवा देवगण प्रजापति १-१४ । कुत्स १५-६६ ।

देवता— एक रुद्र १-१६, ४७-५३ । बहुरुद्रगण १७-४५, ५४-६६ । बहुरुद्रगण, अग्नि-वायु-सूर्य ४६ ।

छन्द— आर्षी गायत्री १ । आर्षी स्वराट् अनुष्टुप् २ । विराट् आर्षी अनुष्टुप् ३, ५४, ६२ । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् ४, ८, १२, १३, ५३, ५६-५८, ६०-६१ । भुरिक् आर्षी बृहती ५, ४७ । निचृत् आर्षी पंक्ति ६ । विराट् आर्षी पंक्ति ७ । भुरिक् आर्षी उष्णिक् ९, ५५ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् १०, ६३ । निचृत् अनुष्टुप् ११ । स्वराट् आर्षी उष्णिक् १४ । निचृत् आर्षी जगती १५, १६ । निचृत् अतिधृति १७, २१ । निचृत् अष्टि १८, २२ । विराट् अतिधृति १९ । अतिधृति २० । निचृत् अतिजगती २३ । शक्वरी २४ । भुरिक् शक्वरी २५ । भुरिक् अतिजगती २६, २९ । निचृत् शक्वरी २७ । आर्षी जगती २८, ४८ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप् ३० । स्वराट् आर्षी पंक्ति ३१, ३९ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् ३२, ३४-३६ । आर्षी त्रिष्टुप् ३३, ४४, ५० । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ३७, ४२, ४५ । भुरिक् आर्षी पंक्ति ३८ । अतिशक्वरी ४० । स्वराट् आर्षी बृहती ४१ । जगती ४३ । स्वराट् प्रकृति ४६ । आर्षी अनुष्टुप् ४९, ५२, ५९ । निचृत् आर्षी यवमध्या त्रिष्टुप् ५१ । निचृत् धृति ६४ । धृति ६५, ६६ ।

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

८५१. अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्यऽ ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि सम्भृतं पयः। तां नऽइषमूर्जं धत्त मरुतः सᳪंरराणा अश्मँस्ते क्षुन्मयि त ऽ ऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१ ॥

हे मरुद्गण ! आप हमें अन्नादि से सम्पन्न करने मे सक्षम हैं । आप पर्वतों में—पाषाणों में आश्रित बलों को, जल, ओषधियों, वनस्पतियों से निःसृत रसों को तथा श्रेष्ठ अन्न और ओज को हमारे लिए धारण करें । हे सर्वभक्षी (सब कुछ आत्मसात् कर लेने वाले) अग्निदेव ! आप की क्षुधा-तृप्ति हो (अर्थात् अधिक हविष्यान्न प्राप्त हो) आपका साररूप भाग हमें प्राप्त हो । आपके क्रोध का प्रभाव उन पर पड़े, जो द्वेष रखते हैं ॥१ ॥

८५२. इमा मे अग्नऽ इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्नऽ इष्टका धेनवःसन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! ये इष्टकाएँ (अर्पित हव्य की सूक्ष्म इकाइयाँ) हमारे लिए (अभीष्ट फलप्रदायक कामधेनु) गौओं के सदृश हो जाएँ । ये इष्टकाएँ एक, एक से दस गुणित होकर दस, दस की दस गुणित होकर सौ, सौ की दस गुणित होकर सहस्र (हजार), सहस्र की दस गुणित होकर अयुत (दस हजार), अयुत की दस गुणित होकर नियुत (लक्ष), नियुत की दस गुणित होकर प्रयुत (दस लाख), प्रयुत की दस गुणित होकर कोटि (करोड़), कोटि की दस गुणित होकर अर्बुद (दस करोड़), अर्बुद की दस गुणित होकर न्यर्बुद (अरब-अब्ज) इसी प्रकार दस के गुणक में बढ़ती हुई। न्यर्बुद की दस गुणित खर्व (दस अरब), खर्व की दस गुणित पद्म (खरब), पद्म की दस गुणित महापद्म (दस खरब), महापद्म की दस गुणित शंकु (नील), शंकु की दस गुणित समुद्र (दस नील)। समुद्र, समुद्र की दस गुणित मध्य (शंख-पद्म), मध्य की दस गुणित अन्त (दस शंख) और अन्त की दस गुणित होकर परार्द्ध (लक्ष-लक्ष कोटि) संख्या तक बढ़ जाएँ । ये बढ़ी हुई इष्टकाएँ हमारे लिए इस लोक में और परलोक में हर प्रकार से अभीष्ट फल प्रदायक कामधेनु गौओं के सदृश हो जाएँ ॥२ ॥

[इस कण्डिका में यज्ञ की सूक्ष्मीकरण शक्ति के विकास की प्रार्थना की गयी है । विज्ञान का यह मान्य सिद्धान्त है कि पदार्थ के कण जितने सूक्ष्म होते जाते हैं, उनका प्रभाव उतना ही अधिक बढ़ जाता है । ओषधियों को माइक्रो फाइन बनाने का अर्थ है, एक कण को दस लाख कणों में विभक्त करना ($१x १०^{-६}$) यज्ञ इन्हें परार्ध तक अर्थात् दस लाखवें भाग के दस लाखवें भाग के लाखवें भाग तक विभाजित करता है । यह सूक्ष्मीकरण माइक्रो का लगभग तीन गुना ($१x१०^{-१७}$) अधिक है । इसी कारण यज्ञ से सूक्ष्मीकृत पदार्थ सबसे अधिक प्रभावशाली होकर प्रकृति चक्र को संतुलित एवं पुष्टिदायक बनाते है ।]

८५३. ऋतवः स्थऽ ऋतावृधऽ ऋतुष्ठाः स्थऽ ऋतावृधः । घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा ऽ अक्षीयमाणाः ॥३ ॥

हे इष्टके ! आप सत्यरूप यज्ञ के सदृश पोषण करने वाली हैं । यज्ञ को बढ़ाने वाली ऋतुओं में अधिष्ठित हों । आप घृतरूप रस और मधुरूप रस का सिंचन करने वाली, देदीप्यमान, अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाली और कभी नष्ट न होने वाली हैं ॥३ ॥

[विज्ञान भी मानता है कि पदार्थ की सूक्ष्म इकाइयाँ नष्ट नहीं होती, केवल स्थानान्तरित होती हैं ।]

८५४. समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यᳪं शिवो भव ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपको समुद्र के शैवाल आदि (ताप कुचालकों) से घेर कर सुरक्षित रखते हैं । (जीवन को) पवित्र बनाते हुए आप हमारा कल्याण करें ॥४ ॥

८५५. हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यᳬ शिवो भव ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हिम के जरायु (संरक्षक आवरण) के सदृश चारों ओर से लपेटकर हम आपकी रक्षा करते हैं । आप हमारे लिए पवित्रकर्त्ता और कल्याण रूप सिद्ध हों ॥५ ॥

[हिम को गलने न देने के लिए जिस प्रकार ताप के कुचालकों का आवरण बनाया जाता है, उसी प्रकार का आवरण ताप को नष्ट न होने देने के लिए भी किया जाता है । ऋषि भी अग्नि रक्षा के लिए उसी तरह के प्रयोग की बात कहते हैं ।]

८५६. उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णᳬ शिवं कृधि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! भूमि के ऊपर आएँ और वेतस् (बड़वानल) के साथ नदियों में प्रवाहित हों; क्योंकि आप जल के तेजस् रूप हैं । हे मण्डूकि ! (तुम भी) अग्नि का अनुसरण करते हुए पृथ्वी से बाहर निकल कर जल में प्रवेश करो । हमारे इस यज्ञ को पवित्र और कल्याणप्रद बनाओ ॥६ ॥

[सर्दियों में मेढक सर्दी न सह पाने के कारण भूमि के अंदर निश्चेष्ट होकर पड़े रहते हैं, इसे विज्ञान की भाषा में 'हायबरनेशन' कहते हैं । जब वातावरण में गर्मी आती है, तो वे भी बाहर निकलकर जल में विचरण करने लगते हैं ।]

८५७. अपामिदं न्ययनᳬ समुद्रस्य निवेशनम् । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यᳬ शिवो भव ॥७ ॥

यह अग्नि जल के आश्रय स्थल समुद्र के गम्भीर स्थान में बड़वाग्नि के रूप में अधिष्ठित है ।हे अग्ने !आपकी ज्वालाएँ हमें छोड़कर अन्यान्य शत्रुओं को संताप दें ।आप हमारे लिए पवित्रकर्त्ता और कल्याण रूप सिद्ध हों ॥७ ॥

८५८. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥८ ॥

सबको पवित्र करने वाले, दिव्य गुणों से सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप अपने दीप्तिमान् , आनन्ददायी ज्वालाओं रूपी मधुर जिह्वा से देवों को बुलाएँ और यजन करें ॥८ ॥

८५९. स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ २ इहा वह । उप यज्ञᳬ हविश्च नः ॥९ ॥

हे पवित्रकर्त्ता, देदीप्यमान अग्ने ! आप देवों को हमारे इस यजन कर्म में बुलाएँ और यज्ञ के समीप प्रतिष्ठित कर, उन्हें हविष्यान्न प्राप्त कराएँ ॥९ ॥

८६०. पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचऽ उषसो न भानुना । तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रणऽ आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥१० ॥

जो पवित्र करने वाली ज्वालाओं से प्रज्वलित अग्निदेव हैं, वह भूमण्डल पर उसी प्रकार सुशोभित होते हैं, जैसे उषाकाल सूर्य-रश्मियों से शोभायमान होता है । वह अग्निदेव पूर्णाहुति के समय प्रखरतापूर्वक जाज्वल्यमान होकर युद्ध में शत्रुओं का हनन करने वाले गतिमान् अश्व पर आरूढ़ वीर सैनिकों के सदृश अपनी तेजस्विता से सुशोभित होते हैं ॥१० ॥

८६१. नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यᳬशिवो भव ॥११ ॥

हे अग्ने !आपकी दीप्तिमान् ज्वालाएँ सब रसों को आकर्षित करने वाली हैं ।आपके तेज को नमन है । आपकी ज्वालाएँ हमें छोड़कर अन्यों को संताप पहुँचाएँ ।आप हमारे लिए पवित्रकर्त्ता और कल्याणकारी हों ॥

८६२. नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥१२ ॥

यह अग्नि मनुष्यों में जठराग्नि के रूप में अधिष्ठित है, उसके निमित्त यह आहुति समर्पित है । यह अग्नि समुद्र में बड़वानल के रूप में अधिष्ठित है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति समर्पित है । यह अग्नि कुशादि रूप ओषधि में अधिष्ठित है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति अर्पित है । यह अग्नि वृक्षों में दावानलरूप में अधिष्ठित है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति अर्पित है । यह अग्नि द्युलोक में अवस्थित सूर्यरूप में प्रसिद्ध है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति अर्पित है ॥१२ ॥

८६३. ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳬ संवत्सरीणमुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३ ॥

जो देवगण आहुतियाँ दिये बिना ही हविष्यान्न ग्रहण करते हैं, वे प्राणरूप देवगण इस यज्ञ में मधु, घृत आदि हविभाग का स्वयं पान करें । जो देवगण यजन के निमित्त प्रतिष्ठित देवों के मध्य देदीप्यमान हैं, वे वर्ष की समाप्ति पर होने वाले यज्ञ के हविभाग का सेवन करते हैं ॥१३ ॥

८६४. ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरऽएतारो अस्य । येभ्यो नऽऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्याऽ अधि स्नुषु ॥१४ ॥

जिन देवों (प्राणों) ने इन्द्रादि की भाँति ही देवत्व का अधिकार प्राप्त किया है, जो आत्माग्नि के सम्मुख संचरण करते हैं, जिनके बिना शरीर किञ्चित् भी चेष्टा नहीं कर सकता, वे प्राण न द्युलोक में हैं और न ही पृथ्वी में हैं, अपितु प्रत्येक इन्द्रिय में विद्यमान हैं ॥१४ ॥

८६५. प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यᳬ शिवो भव ॥१५ ॥

याजकों को प्राण, अपान, व्यान आदि वायु, पराक्रम एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! आपके शस्त्रास्त्र हमारे लिए पवित्र करने वाले और कल्याणप्रद हों तथा हमारे शत्रुओं को सन्तप्त करें ॥१५ ॥

८६६. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥१६ ॥

ये अग्निदेव, तीक्ष्ण, तेजस्विता युक्त ज्वालाओं से अच्छे कार्यों में बाधा डालने वाले सभी राक्षसों का पूरी तरह से विनाश करें और ये अग्निदेव हमें ऐश्वर्य से युक्त करें ॥१६ ॥

८६७. य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः । सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ २ आ विवेश ॥१७ ॥

हमारे पोषणकर्त्ता पितारूप जो परमात्मा इन सम्पूर्ण लोकों के प्राणियों का संहार करने वाले होकर स्वयं सूक्ष्म द्रष्टा (ऋषि) और याजकों में अधिष्ठित रहते हैं, वे परमात्मा सबकी, धन-सम्पदा की इच्छाओं को पूर्ण करते हुए सबको अपने अधीन करके रखते हैं और अधीनस्थ प्राणियों में संव्याप्त हो जाते हैं ॥१७ ॥

८६८. किᳬ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् । यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥१८ ॥

सृष्टि निर्माण के पूर्व परमात्मा किस आश्रय पर अधिष्ठित थे ? सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला मूल द्रव्य क्या था ? कैसा था ? जिससे वह विश्वकर्मा परमात्मा, इस सुविस्तृत पृथ्वी का निर्माण करके अपनी महान् सामर्थ्य से सम्पूर्ण सृष्टि का द्रष्टा होकर विशेषरूप से द्युलोक में संव्याप्त हो जाता है ॥१८ ॥

८६९. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देवऽएकः ॥१९ ॥

सर्वत्र आँख वाले, सब ओर मुख वाले, सब ओर भुजाओं वाले और सब ओर चरणों वाले, उस अद्वितीय परमात्मा ने अपनी भुजाओं से पृथिवी और द्युलोक को बिना आश्रय के प्रकट किया ।वे प्रकृति के परमाणुओं के संयोग अथवा वियोग से नवीन संसार की रचना अथवा विलय करते हुए इसे सुव्यवस्थित रखते हैं ॥१९ ॥

[पृथ्वी एवं अंतरिक्ष के ग्रह-नक्षत्रादि बिना किसी स्थूल आश्रय के स्थापित किये गये हैं तथा सृजन एवं विलय की क्रियाएँ सृष्टि में समानान्तर चल रही हैं—यह विज्ञान-सम्मत तथ्य यहाँ स्पष्टता से प्रकट किया गया है ।]

८७०. कि०३ स्विद्वनं कऽउ स वृक्षऽ आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥२० ॥

वह वन कौन सा है ? वह वृक्ष कौन सा है ? जिससे कि विश्वकर्मा ईश्वर ने द्युलोक और पृथिवीलोक का सृजन किया । हे विवेकवान् पुरुषो ! विचार करके यह प्रश्न पूछो कि समस्त भुवनों को धारण करते हुए वह विश्वकर्मादेव किस स्थान पर अधिष्ठित हैं ? ॥२० ॥

अगले मंत्रों में परमात्मा की सृजन शक्ति, विश्वकर्मा रूप के संकल्प से उत्पन्न यज्ञ कर्म द्वारा सूक्ष्म-अदृश्य से ही दृश्य जगत् के सृजन की बात स्पष्ट की गयी है—

८७१. या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥२१ ॥

हे विश्व के रचयिता परमात्मन् ! हे सबके धारक-पोषक ईश्वर ! जो आपके उच्चतम, नीचेवाले और मध्यम कोटि के धाम हैं, उन सबको तथा हम यजमानों को आप ही मित्रभाव से प्रदर्शित करते हैं (उनका बोध कराते हैं) । आप ही हम सब जीवों के शरीर को वृद्धि प्रदान करते हुए स्वयं ही उत्तम हवि (सूक्ष्म प्राण तत्त्व) द्वारा यजन करें । (यह कार्य दूसरे के लिए शक्य नहीं है) ॥२१ ॥

[विश्व के कर्त्ता परमात्मा सब भुवनों के सब प्राणियों के पोषण हेतु स्वयं ही महान् प्रकृति-यज्ञचक्र का सम्पादन करते हैं ।]

८७२. विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्। मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्नाऽ इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥२२ ॥

हे विश्व के कर्त्ता परमात्मन् ! हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यात्र द्वारा प्रसत्र होकर आप हमारे यज्ञ में पृथ्वी के सब आश्रितों के हितार्थ स्वयं यजन करें । आप सब शत्रुओं को अपने बल से मोहग्रस्त करें । इस (महान् प्रकृति) यज्ञ में इन्द्रदेव हमारे निमित्त आत्मज्ञान का उपदेश करने वाले विद्वान् रूप हों ॥२२ ॥

८७३. वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३ ॥

आज हम जीवन-संग्राम में अपनी रक्षा के लिए ज्ञान के भण्डार मन की तीव्र गति के समान वेगवान् सृष्टि के रचयिता परमपिता परमेश्वर का आवाहन करते हैं । सत्कर्म की प्रेरणा देकर कल्याण करने वाले वे विश्वकर्मा हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यात्र को हमारी रक्षा के निमित प्रेमपूर्वक ग्रहण करें ॥२३ ॥

८७४. विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥२४ ॥

हे विश्व के रचयिता परमेश्वर ! हवि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाले आपने इन्द्रदेव को विश्व का रक्षक और अपराजेय बनाया है । पूर्व काल के ऋषियों के तुल्य हम भी उन इन्द्रदेव को झुककर नमन करते हैं । ये पराक्रमी इन्द्रदेव आपकी शक्ति से ही सब प्रकार समर्थ हुए हैं । हम उनका आवाहन करते हैं ॥२४ ॥

८७५. चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने । यदेदन्ता ऽ अददृहन्त पूर्वऽ आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२५ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में पूर्वज ऋषियों द्वारा पृथ्वी व द्युलोक के आन्तरिक भाग को सुदृढ़ता प्रदान किये जाने के उपरान्त उन दोनों का विस्तार हुआ । तब चक्षु आदि सब इन्द्रियों के पालक स्रष्टा ने मन के द्वारा धैर्यपूर्वक इस द्युलोक और पृथ्वी के अन्दर रसरूप जल को उत्पन्न किया ॥२५ ॥

८७६. विश्वकर्मा विमना ऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् । तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर ऽएकमाहुः ॥२६ ॥

हे मनुष्यो ! सृष्टिनिर्माण में विश्वकर्मा की शक्ति के साथ मिलकर कार्य करने वाले सप्त ऋषियों का समूह अद्वितीय है । ये दिव्य ज्ञान से सम्पन्न मन वाले सर्वत्र संव्याप्त, सबके धारण-पोषणकर्त्ता, सृष्टि रचयिता और श्रेष्ठ हैं । इनके अनुग्रह से जीव अपने इच्छित फल पाकर हर्षित होता है । हविष्यान्न से पुष्ट एवं प्रसन्न होने वाले उन परमेश्वर की उपासना करो ॥२६ ॥

८७७. यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा ऽएक ऽएव तᳬ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥२७ ॥

जो परमेश्वर हम सबके पालन करने वाले और उत्पन्न करने वाले हैं, जो सबके धारणकर्त्ता हैं, जो सम्पूर्ण स्थानों और लोकों के ज्ञाता हैं, जो एक होकर भी विविध देवों के विविध नामों को धारण करते हैं; सभी लोकों के प्राणी अन्ततः उनको ही प्राप्त होते हैं ॥२७ ॥

८७८. तऽआयजन्त द्रविणᳬ समस्माऽऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना । असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥२८ ॥

अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूप से वास करने वाले जिस परमेश्वर ने समस्त प्राणियों की रचना की है, उस स्रष्टा के लिए पूर्वज ऋषिगण स्तुति करते हुए यज्ञ में महान् वैभव समर्पित करते हैं ॥२८ ॥

८७९. परो दिवा परऽ एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति । कᳬस्विद् गर्भं प्रथमं दध्र ऽआपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥२९ ॥

जो हृदयस्थ ईश्वरीय तत्त्व है, वह द्युलोक से परे है, इस पृथ्वी से परे है, देवों और असुरों से भी परे है । जल ने सर्वप्रथम किस गर्भ को धारण किया ? वह गर्भ कैसा विलक्षण था ? जहाँ पूर्वकालीन देवगण (ऋषिगण) उस परमतत्त्व का सम्यक् दर्शन पाते एवं देवत्व के परम पद को प्राप्त करते हैं ॥२९ ॥

८८०. तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र ऽ आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे । अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥३० ॥

सृष्टि के आदि से ही विद्यमान उस परमतत्त्व ने जल के गर्भ को धारण किया है, जहाँ सम्पूर्ण देवशक्तियों का आश्रय-स्थल है । इस अजन्मा ईश्वर के नाभि केन्द्र में एक ही परम तत्त्व अधिष्ठित है, जिसमें समस्त भुवन आश्रित होकर स्थिर हैं ॥३० ॥

८८१. न तं विदाथ य ऽ इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप ऽ उक्थशासश्चरन्ति ॥३१ ॥

हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है, उसे आप लोग नहीं जानते । वह परम तत्त्व सबसे भिन्न होकर भी सबके भीतर प्रतिष्ठित है। अज्ञान के व्यापक अंधकार से घिरे हुए केवल वार्ता या विवाद में लगे हुए मात्र प्राण-रक्षण व पोषण की चिन्ता से संतप्त लोग उस परमेश्वर के सम्बन्ध में व्यर्थ विवाद करते हुए विचरते हैं। उसका साक्षात्कार नहीं कर पाते ॥३१ ॥

८८२. विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवऽआदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः। तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ॥३२ ॥

सृष्टि क्रम में सर्वप्रथम ब्रह्माण्ड के संचालक देवगण आविर्भूत हुए, इसके पश्चात् पृथ्वी को धारण करने वाले (अग्नि-सूर्य) देव प्रकट हुए। तृतीय क्रम में ओषधियों के उत्पादक और पालक प्राण-पर्जन्य उत्पन्न हुए । वह (विश्वसृजेता) सभी जल के गर्भ को विविध रूपों में धारण करता है ॥३२ ॥

८८३. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिषऽएकवीरः शतꣳ सेनाऽअजयत् साकमिन्द्रः ॥३३ ॥

शत्रुओं पर तीव्रवेग से आक्रमण करने वाले, हथियारों को तीक्ष्ण बनाकर रखने वाले, वृषभ के समान विकराल ध्वनि (गर्जना) करने वाले, शत्रुसेना को क्षुब्ध कर देने वाले, शत्रुओं को बुलाकर आघात पहुँचाने वाले, अत्यन्त स्फूर्त (सचेत) एवं वीर इन्द्रदेव सैकड़ों शत्रुओं की सेनाओं को एक साथ पराजित करने में समर्थ होते हैं ॥३३ ॥

८८४. संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नरऽइषुहस्तेन वृष्णा ॥३४ ॥

हे योद्धा पुरुषो ! आप सब धैर्यपूर्वक गर्जना द्वारा शत्रुओं को भयभीत करने वाले, विविध आक्रामक मुद्राओं से अविलम्ब युद्ध में उद्यत होने वाले, बाणधारी, विजेता, अजेय, इच्छित बाणवर्षक इन्द्रदेव की सामर्थ्यों से जुड़कर, शत्रुसेना को पराजित करके विजयी हों और सुखी जीवन जिएँ ॥३४ ॥

८८५. सऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युधऽइन्द्रो गणेन। सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५ ॥

वे शत्रुओं को वश में करने वाले इन्द्रदेव, बाणधारी- खड्गधारी वीरों को सैन्य दल में भली प्रकार व्यवस्थित करते हुए संग्राम में शत्रुओं से युद्ध करने वाले हैं। एकत्रित शत्रुओं को जीतने वाले, उत्तम धनुष से शत्रुओं पर बाणों का प्रहार करने वाले तथा यज्ञों में सोम पान करने वाले वह इन्द्रदेव हमारी रक्षा करें ॥३५ ॥

८८६. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ२ अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६ ॥

हे बृहस्पते ! आप राक्षसों का विनाश करने वाले, रथ द्वारा सर्वत्र भ्रमण करने वाले तथा शत्रु-सेनाओं को छिन्न-भिन्न करके उन्हें पीड़ा देने वाले हैं। हिंसा करने वाले हमारे शत्रुओं को युद्ध में पराजित करके हमारे रथों की रक्षा करें ॥३६ ॥

८८७. बलविज्ञाय स्थविरःप्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान ऽ उग्रः। अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥३७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रु के बलों को जानने वाले, युद्ध में अतिकुशल, अतिसामर्थ्यवान्, बलवान्, उग्र वीरों से घिरे हुए श्रेष्ठ पुरुषों के सहायक, प्रसिद्ध बलों से युक्त, शत्रुओं का पराभव करके भूभाग को जीतने वाले हैं । आप सदैव विजयी रथ पर विराजमान रहते हैं ॥३७ ॥

८८८. गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमꣳ सजाताऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳसखायो अनु सꣳरभध्वम् ॥३८ ॥

एक समान जन्म लेने वाले (मित्र सदृश) हे देवताओ ! शत्रु वंश का विनाश करने वाले, भूभागों पर अधिकार कर लेने वाले, वज्रधारी भुजा वाले, युद्ध विजेता, अपने पराक्रम से शत्रुओं के विनाशक, विद्वान्, इन्द्रदेव को वीरोचित कर्मों के निमित्त आप उत्साह दिलाएँ, स्वयं भी श्रेष्ठ कार्य के लिए उत्साहित हों ॥३८ ॥

८८९. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥३९ ॥

अपने बल से शत्रु प्रदेशों को निर्दयतापूर्वक रौंदते हुए, अत्यंत क्रोध मे भरे हुए, शत्रु सेना को पराजित करने वाले, पराक्रमी इन्द्रदेव युद्ध में हमारी सेना को उत्तम प्रकार से संरक्षण प्रदान करें ॥३९ ॥

८९०. इन्द्रऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥४० ॥

शत्रुओं के मद को चूर कर, उन्हें परास्त करके विजय प्राप्त करने वाली देवताओं की सेना का नेतृत्व इन्द्रदेव और बृहस्पतिदेव (बल और ज्ञान) मिलकर करते हैं । ऐसी सेना के आगे-आगे मरुद्‌गण चलते हैं । यज्ञपुरुष विष्णु-देव दाहिनी ओर तथा सोम-देव पीछे-पीछे गमन करते हैं ॥४० ॥

[सेना की दाहिनी ओर यज्ञपुरुष विष्णु के होने का तात्पर्य है कि यह अभियान पोषण-यज्ञ प्रधान है । पीछे-पीछे सोम का भाव है कि वे शांति-संतोष की स्थापना करते हुए आगे बढ़ते हैं ।]

८९१. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञऽआदित्यानां मरुताꣳशर्धऽउग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥४१ ॥

युद्ध क्षेत्र में स्थिर मन से शत्रु पक्ष की सेना का विध्वंस करने में समर्थ, विजय प्राप्त करने वाले देवों की, आदित्यों की, मरुद्‌गणों की, वरुणदेव की तथा इच्छानुसार वृष्टि करने वाले इन्द्रदेव की सेना का श्रेष्ठ बलयुक्त जयनाद उत्तम रीति से गुञ्जायमान हुआ ॥४१ ॥

८९२. उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाꣳसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥४२ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप अपने आयुधों को उत्तम रीति से तीक्ष्ण करके देव पक्ष के वीरों के मन को उत्साहित करें । अश्वों को शीघ्रगमन के निमित्त उत्तेजित करें । हे शत्रुनाशक इन्द्रदेव ! विजयी रथों के जयघोष चतुर्दिक् गुञ्जायमान हों, अर्थात् चारों ओर देवताओं की विजय का जय-जयकार हो ॥४२ ॥

८९३. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं याऽ इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीराऽउत्तरे भवन्त्वस्माँ २ उ देवाऽअवता हवेषु ॥४३ ॥

रथों पर लगे ध्वजों के उत्तम रीति से फहराये जाने पर (युद्ध की स्थिति में) शत्रुनाशक इन्द्रदेव और हमारे बाण उत्तेजित होकर शत्रु पर विजय प्राप्त करें । हमारे वीर पुरुष युद्ध में श्रेष्ठ हों (विजयी हों) तथा समस्त देव शक्तियाँ सुरक्षा प्रदान करें ॥४३ ॥

८९४. अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि। अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥४४ ॥

हे व्याधे ! आप शत्रुसेना में व्याप्त होकर उनके शरीरों को कष्ट देने वाली और उनके चित्त को मोहित कर देने वाली हैं । हमसे दूर रहकर शत्रुओं के अंगों को जकड़ें । दीप्तिमान् ज्वालाओं के समान आगे बढ़कर शत्रुओं के हृदय को शोकाग्नि से संतापित करें । इस शोक-पीड़ा से शत्रु गहन तमिस्रा में डूब जाएँ ॥४४ ॥

८९५. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते। गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥४५ ॥

हे बाणरूपी अस्त्र ! मन्त्रों के प्रयोग से तीक्ष्ण किये हुए आप, हमारे द्वारा छोड़े जाते हुए शत्रु सेना पर एक साथ प्रहार करें और उन्हें संतप्त करें । उनके शरीरों में प्रविष्ट होकर सभी का विनाश करें । किसी भी दुष्ट को जीवित न बचने दें ॥४५ ॥

८९६. प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥४६ ॥

हे वीरपुरुषो ! शत्रु सेनाओं पर शीघ्रता से आक्रमण करो और विजयश्री का वरण करो । नेतृत्वकर्त्ता इन्द्रदेव आपको विजय-सुख प्रदान करें । आपकी भुजाएँ अत्यन्त बलशाली हों, जिससे कोई भी शत्रु आप पर आक्रमण न कर सके ॥४६ ॥

८९७. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति नऽओजसा स्पर्धमाना। तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यं न जानन् ॥४७ ॥

हे मरुद्गणो ! जो यह शत्रुओं की सेना अपने बल के अहंकार से स्पर्धा को उद्यत होकर हमारी ओर बढ़ती चली आ रही है, उस सेना को गहन अन्धकार से आच्छादित करें, जिससे ये शत्रु भ्रमवश एक दूसरे को जान न सकें और आपस में ही लड़ मरें ॥४७ ॥

८९८. यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा ऽ इव। तत्रऽ इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥४८ ॥

जिस संग्राम में हमारे सैनिकों के बाण इधर-उधर ऐसे गिरते हों, जैसे शिखारहित बालक (चंचल बालक) इधर-उधर घूमते-गिरते हैं । उस संग्राम में बृहस्पतिदेव, देवमाता अदिति और इन्द्रदेव हमें कल्याणकारी संरक्षण प्रदान करें तथा शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त करने का सुख अनुभव कराएँ ॥४८ ॥

८९९. मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥४९ ॥

वीर पुरुष मर्म-स्थलों को सुरक्षा-कवच से आच्छादित करते हैं । वरुणदेव इस कवच को सुदृढ़ता एवं स्थायित्व प्रदान करें । राजा सोम आपको अमृत देकर परिरक्षित करें और समस्त देवगण आपकी विजय में सहायक होकर आपको हर्षित करें ॥४९ ॥

९००. उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण सꣳसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥५० ॥

हे अग्ने ! याजकों द्वारा प्रदान की गई घृत की आहुतियों से तृप्त होकर आप उन्हें प्रचुर मात्रा में धन-सम्पदा के रूप में अपार वैभव प्रदान करें । पुत्र-पौत्रादि देकर सन्तान सुख से लाभान्वित करें ॥५० ॥

९०१. इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदाऽ असत् ॥

हे इन्द्रदेव ! इस यजमान को उत्कृष्टता की ओर बढ़ाएँ, जिससे यह बंधु-बान्धवों को अपने अनुकूल पाने में समर्थ हो ।इसे तेजस्वी वैभव प्रदान करें, जिससे यह यज्ञ के रूप में देवों को उनका भाग देने में समर्थ हो ॥५१ ॥

९०२. यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम्। तस्मै देवाऽ अधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥५२ ॥

हे अग्ने ! हम जिस याजक के आवास पर यज्ञकर्म करते हैं, आप उसके वैभव को बढ़ाएँ । सभी देवगण उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करें । वह यजमान यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का सदैव पालन करते हुए सुखी-समृद्ध जीवन का अधिकारी हो ॥५२ ॥

९०३. उदु त्वा विश्वे देवाऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥५३ ॥

हे अग्ने ! दिव्यगुण-सम्पन्न समस्त देवमानव (देवतागण) नित्य यज्ञादि कर्मों एवं श्रेष्ठ विचारों द्वारा आपका विस्तार करें । (मंत्रों के साथ आहुतियाँ देकर यज्ञाग्नि को बढ़ाएँ) आप हम याजकों को अपार तेजस्वी वैभव प्रदान कर हमारा कल्याण करने का अनुग्रह करें ॥५३ ॥

९०४. पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः । रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥५४ ॥

हम याजकों की मन्दबुद्धि और दुर्बुद्धि को, इन्द्र, यम, वरुण, सोम और ब्रह्मा से सम्बन्धित पाँचों दिव्य दिशाएँ (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्य) दूर करें । यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म करने वाले यजमान को अपार धन- वैभव प्राप्त कराएँ और हमारे यज्ञों की सुरक्षा करें । धन की वृद्धि के साथ ही साथ हमारे यज्ञ (दान आदि सत्कर्म) समृद्धि को प्राप्त हों ॥५४ ॥

९०५. समिद्धे अग्नावधि मामहानऽउक्थपत्रऽईड्यो गृभीतः । तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥५५ ॥

जब दिव्यगुण सम्पन्न-याजक तप्त घृत को लेकर यजन कर्म करते और घृतयुक्त हविष्यान्न द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, तब वेदमंत्रों द्वारा अत्यन्त पूज्य, स्तुत्य देवों की स्तुतियाँ करके यज्ञ को उत्तम प्रकार से सम्पन्न (या सिद्ध) किया जाता है ॥५५ ॥

९०६. दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः । परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥५६ ॥

श्रेष्ठ पुरुष देवों के निमित्त यज्ञ कर्म की कामना करते हैं । वे दिव्य गुणों और सम्पदा के स्वामी, उत्तम मन वाले और सैकड़ों गौओं के दुग्धादि पदार्थों से पुष्ट होने वाले पुरुष, यज्ञ में आते हैं और दिव्यगुण सम्पन्न, विश्व को धारण करने वाले, प्रेमभावयुक्त परमात्मा की स्तुतियाँ करके उसके आश्रय को प्राप्त होते हैं ॥५६ ॥

९०७. वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति। ततो वाकाऽआशिषो नो जुषन्ताम् ॥५७ ॥

जब उदारमना सौम्य पुरुष द्वारा सौम्य (संस्कारित) हवियों वाला यज्ञ देवों की तृप्ति-तुष्टि हेतु सम्पन्न होता है, तो वह तुरीय (चतुर्थ अथवा श्रेष्ठ) यज्ञ कहा जाता है । उस समय यज्ञ में उच्चारित वेद-मंत्रों के आशीर्वचन हमारे अनुकूल फलित होते हैं ॥५७ ॥

१०८. सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२ अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥५८॥

हरित वर्ण वाली वनस्पतियों और इस पर आश्रित सभी जीवों का पोषण करने वाले परम ज्योतिष्मान् सूर्यदेव अपनी रश्मियों को पूर्व से ही प्रकट कर देते हैं। जितेन्द्रिय, विद्वान् और पोषणकर्त्ता सूर्यदेव उत्पन्न हुए सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते और सतत गमनशील होते हैं ॥५८॥

[वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित है कि सूर्य अपनी रश्मियों के विशिष्ट गुण (अपवर्तन) के कारण कुछ समय पूर्व ही उदित (प्रकट) हुआ प्रतीत होता है।]

१०९. विमानऽ एष दिवो मध्यऽ आस्तऽ आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्। स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥५९॥

जगत्-रचना में समर्थ सूर्यदेव द्युलोक के मध्य में अवस्थित हैं। यह द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्ष लोक तीनों को अपने तेज से पूर्ण दीप्तिमान् करते हैं। यह सूर्यदेव सम्पूर्ण विश्व को अपने आश्रय में लेने वाले, जल धारण करने वाले तथा सब कुछ देखने वाले हैं। इस लोक-परलोक और मध्यलोक में स्थित प्राणियों के सूक्ष्म भावों को भली-भाँति जानते हैं ॥५९॥

११०. उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश। मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥६०॥

जो सूर्यदेव वृष्टि द्वारा सिंचन करने वाले, समुद्र से जल धारण करने वाले, रक्त वर्णयुक्त आकाश में निरन्तर गतिशील हैं। अनेक रश्मियों से युक्त पूर्व दिशा से उदित होकर द्युलोक के गर्भ में समाविष्ट होते हैं, वे आकाश में गमन करते हुए सब लोकों को सब ओर से परिरक्षित करते हैं ॥६०॥

१११.इन्द्रं विश्वाऽअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः। रथीतमꣳरथीनां वाजानाꣳसत्पतिं पतिम्॥

समुद्र के तुल्य व्यापक, सब रथियों में महानतम, अन्न के स्वामी और सत्प्रवृत्तियों के पालक इन्द्रदेव को समस्त स्तुतियाँ अभिवृद्धि प्रदान करती हैं ॥६१॥

११२. देवहूर्यज्ञऽ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ ऽ आ च वक्षत्। यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ आ च वक्षत्।

देवों का आवाहन करने वाला यज्ञ, देवों के लिए हविष्यान्न वहन करे और उनका यजन करे। सम्पूर्ण सुखों का आवाहन करने वाला यज्ञ देवों को हवि पहुँचाने का कार्य सम्पन्न करे। अग्निदेव समस्त देवताओं को यज्ञशाला में अधिष्ठित करके यजन-कार्य पूर्ण करें ॥६२॥

११३. वाजस्य मा प्रसव ऽ उद्ग्राभेणोदग्रभीत्। अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ अकः ॥६३॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे (सत्कर्म करने वाले याजकों के) लिए अन्न उत्पन्न करने वाले होकर प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हुए उच्चतम स्थिति प्रदान करें और हमारे शत्रुओं को निम्न स्थिति में पहुँचाकर अधोगति प्रदान करें ॥६३॥

११४. उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा ऽ अवीवृधन्। अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥६४॥

हे देवो ! हम सत्कर्म करने वालों को उत्तम सामर्थ्य धारण करने की स्थिति में और शत्रुओं को पतन के गर्त में पहुँचाएँ। आप हमारे ज्ञान को अनवरत बढ़ाएँ। इन्द्रदेव और अग्निदेव हमारे शत्रुओं का विविध प्रकार से पूर्णरूपेण विनाश करें ॥६४॥

११५. क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः । दिवस्पृष्ठꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥६५ ॥

हे याज्ञिको ! अग्निदेव से उत्तम सुख को प्राप्त करके, उखा पात्र को हाथों में धारण करके शौर्य दिखाओ । आप देवगणों के साथ मिलकर दिव्यलोक में जाकर सुखपूर्वक निवास करो ॥६५ ॥

११६. प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह । विश्वा ऽ आशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥६६ ॥

हे अग्ने ! आप पूर्व दिशा की ओर उन्मुख हों । अग्रगामी होकर सबका नेतृत्व करें । सम्पूर्ण दिशाओं को दीप्तिमान् ज्वालाओं (प्रकाश) से संव्याप्त करें और हमारे पुत्र-पौत्रों तथा गवादि पशुओं में बल स्थापित करें ।

११७. पृथिव्या ऽ अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥६७ ॥

हम पृथ्वी से उच्च अवस्थित अन्तरिक्ष में आरूढ़ होते हैं और अन्तरिक्ष से उच्च अवस्थित द्युलोक में आरूढ़ होते हैं और तब द्युलोक के सुखस्वरूप वलय (चक्र) से उच्च अवस्थित परम ज्योतिष्मान् सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं ॥६७ ॥

[यज्ञादि आध्यात्मिक प्रयोगों से आत्म चेतना को ऊर्ध्वलोकों तक गतिशील बनाने का भाव है ।]

११८. स्वर्यन्तो नापेक्षन्त ऽ आ द्याꣳ रोहन्ति रोदसी । यज्ञं ये विश्वतोधारꣳसुविद्वाꣳसो वितेनिरे ॥६८ ॥

जो उत्तम विद्वान् विश्व को (विश्व की चक्रीय व्यवस्था को) धारण करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न करके अपने यश को फैलाते हैं, वे अत्यन्त सुखकारी स्वर्ग को भोगते हुए लौकिक भोगों की अपेक्षा नहीं करते हैं; वरन् द्यावा-पृथ्वी से ऊपर उठकर स्वर्ग में आरोहण करते हैं ॥६८ ॥

११९. अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् । इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥६९ ॥

हे अग्ने ! आप दिव्य गुणों की इच्छा करने वाले यजमानों में प्रमुख हैं । देवों और मनुष्यों के नेत्ररूप द्रष्टा हैं, अतः आप अग्रणी-सबके मार्गदर्शक हैं । यज्ञ की इच्छा करने वाले, पापों को मिटाकर सबसे प्रेम करने वाले याजकों का कल्याण करके आप उन्हें स्वर्ग लोक को प्राप्त कराते हैं ॥६९ ॥

१२०. नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा ऽ अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥७० ॥

कृष्णवर्ण रात्रि एवं शुक्लवर्ण दिन के मध्य (सन्ध्या काल में अग्निहोत्र के लिए प्रकट अग्नि) सुशोभित अग्निदेव अनुकूल विचारों वाले माता-पिता से उत्पन्न सुसन्तति के रूप में प्रतिष्ठित हैं । यही अग्निदेव पृथ्वी और अन्तरिक्ष के मध्य दिव्य प्रकाश के रूप में सुशोभित होते हैं । यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के परिणाम-स्वरूप याजकों को अपार वैभव प्रदान करने वाले देवगण, यज्ञ सम्पन्न करने के लिए यज्ञाग्नि को ग्रहण कर रहे हैं ॥७० ॥

१२१. अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः । त्वꣳ साहस्रस्य रायऽईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१ ॥

हे सहस्रों नेत्रों वाले ! हे सौ सिरों वाले अग्ने ! आपके सैकड़ों प्राण हैं, सहस्रों व्यान हैं । आप सहस्रों सम्पदाओं के स्वामी हैं । आपके लिए हम हविष्यान्न प्रदान करते हैं । हमारी आहुति स्वीकार करें ॥७१ ॥

१२२. सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद। भासाऽन्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश ऽ उद्दृᳬह ॥७२ ॥

सुन्दर पंख वाले गरुड़ पक्षी के रूप में हे अग्ने ! आप सुख से परिपूर्ण और गुरुता (दिव्यता या श्रेष्ठता) से सम्पन्न हैं । पृथ्वी तल पर अधिष्ठित होकर आप अपनी कान्ति से अन्तरिक्ष को अभिपूरित करें । अपनी ज्योति से द्युलोक का उत्थान करें और तेज से दिशाओं को सुदृढ़ता प्रदान करें ॥७२ ॥

१२३. आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमा सीद साधुया। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥७३ ॥

हे अग्ने ! आप विनयपूर्वक आवाहित किये हुए, उत्तम गुणों से युक्त, उत्तम स्थान में पहले से ही स्थित हैं । दिव्य गुणों से सम्पन्न यह यजमान अग्निदेव के साथ (यज्ञादि सत्कर्म करते हुए प्रगतिशील जीवन जीकर) उच्चतम सोपानों को प्राप्त करे ॥७३ ॥

१२४. ताᳬ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬ सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥७४ ॥

कण्व-गोत्रीय ऋषि ने सवितादेव की पुष्टिकारक सहस्रों रश्मियों को धारण करने वाली पयस्विनी महान् गौ (पोषण क्षमता) को दुहा । सबके द्वारा स्वीकार्य सवितादेव की उस अद्भुत, सबका हित करने वाली, सृजनात्मक श्रेष्ठमति (बुद्धि) को हम स्वीकार करते हैं ॥७४ ॥

१२५. विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे। यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीᳬषि जुहुरे समिद्धे ॥७५ ॥

हे अग्ने ! सबसे उत्कृष्ट स्थान में जन्म लेने वाले आपको हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं । आप जिस स्थान से प्रकट होते हैं, उस स्थान को यजन के अनुकूल बनाते हैं । हम उत्तम प्रकार से प्रदीप्त आप में आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥७५ ॥

१२६. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वाᳬ शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥७६ ॥

हे तरुण अग्ने ! अनवरत (अर्पित) समिधाओं द्वारा प्रज्वलित होकर आप हमारे सम्मुख देदीप्यमान हों । हम आपको सदैव हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥७६ ॥

१२७. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रᳬ हृदिस्पृशम्। ऋध्यामात ऽओहैः ॥७७ ॥

हे अग्ने ! आज आपके अश्वों (यज्ञीय प्रभावों) को हम अपने कल्याणकारी यज्ञीय कृत्ययुक्त तथा संकल्पों से युक्त हृदयस्पर्शी स्तोत्रों द्वारा संवर्धित करते हैं ॥७७ ॥

१२८. चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा ऽ इहागमन्वीतिहोत्रा ऽ ऋतावृधः। पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यᳬहविः ॥७८ ॥

हम मनोयोग से घृत-आहुतियों द्वारा इस चिति में स्थित अग्निदेव को पुष्ट करते हैं । जिससे इस यज्ञ में आहुतियों की इच्छा करने वाले और यज्ञ को बढ़ाने वाले देवगण उत्साहपूर्वक पधारें । हम इस विशालमना, विश्व के स्वामी, विश्व-रचयिता, विश्व संतापहर्ता ईश्वर के निमित्त श्रेष्ठ हविष्यान्न प्रदान करते हैं ॥७८ ॥

९२९. सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥७९॥

हे अग्ने ! सात प्रकार की विशिष्ट समिधाओं से आप प्रज्वलित होते हैं, ज्वालारूप सात जिह्वाओं से हवि का रस ग्रहण करते हैं, सप्तऋषि उसके स्वरूप द्रष्टा हैं, सात गायत्री आदि छन्द आपके प्रिय धाम हैं, सात होता आपके निमित्त सात अग्निहोत्र करते हैं, सात चिति आपके उत्पत्ति-केन्द्र हैं, जो घी की आहुतियों से पूर्ण होते हैं। यह आहुति उत्तम प्रकार से स्वीकार करें ॥७९॥

९३०. शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च। शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यꣳहाः॥

उत्तम ज्योति वाले, विविध ज्योति वाले, सत्यरूप ज्योति वाले, तेजस्वी दीप्तिमान्, यज्ञरक्षक, पापरहित, मरुद्गण यज्ञ में पधारें। उनके निमित्त यह आहुति अर्पित है ॥८०॥

९३१. ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च। मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥८१॥

यज्ञ में अर्पित हविष्यान्न (पुरोडाश) को सामान्य दृष्टि से देखने वाले, अन्य दृष्टि से देखने वाले, समान रीति से देखने वाले, समानभाव से देखने वाले, समान मन वाले, पूर्णतया सम्मिलित मन वाले, समान शस्त्रास्त्र धारण करने वाले मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें। उनके निमित्त यह आहुति अर्पित है ॥८१॥

९३२. ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च। धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥८२॥

शुद्ध और सत्य स्वरूप, स्थिर, धारणशील, धर्त्ता, विधर्त्ता और विविध भाँति से धारणकर्त्ता, (उञ्वास मरुद्गण) हमारे यज्ञ में पधारें। उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८२॥

९३३. ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च। अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ॥८३॥

शुद्ध स्वरूप के विजेता, सत्यरूप के विजेता, शत्रु सेनाओं के विजेता, श्रेष्ठ सेनाओं वाले, मित्रों के समीप रहने वाले, शत्रुओं को दूर हटाने वाले तथा संघ बद्ध रहने वाले ये मरुद्गण हमारे इस यज्ञ में पधारें। उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८३॥

९३४. ईदृक्षास ऽ एतादृक्षास ऽ ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास ऽ एतन। मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥८४॥

हे मरुद्गण ! आप विविध कोणों से देखने वाले, समान कोण से देखने वाले, प्रत्येक समान कोण से देखने वाले, मिश्रित कोण से देखने वाले, समान प्रकार के मिश्रित कोण से देखने वाले तथा समान अलंकारों के धारक हैं। आप आज हमारे इस यज्ञ में पधारें। आपके निमित्त यह आहुति अर्पित है ॥८४॥

९३५. स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च। क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥८५॥

स्वयं अर्जित तपोबल से सम्पन्न और पुरोडाश आदि का भक्षण करने वाले, शत्रुओं को संतप्त करने वाले, गृहस्थ धर्म के पालक, क्रीड़ाशील, बलशाली, यशस्वी, विजयशील मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें। आपके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८५॥

९३६. इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोनु- वर्त्मानोऽभवन्। एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥८६॥

शक्तिशाली मरुद्गणों के रूप में देवताओं की सेना जिस प्रकार से इन्द्रदेव की प्रजारूप और उनकी अनुगामिनी है, उसी प्रकार से समस्त दैवी गुण और मनुष्यरूप सब प्रजा इस यजमान का अनुगमन करें ॥८६॥

९३७. इमᳬ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियᳬ सदनमा विशस्व ॥८७ ॥

हे अग्ने ! जल के मध्य अवस्थित विशिष्टरस से परिपूर्ण, घृत धारा से युक्त स्रुक् (घी होमने वाले पात्र) रूप स्तन का पान करें । हे अर्वन् ! (गमनशील अग्ने) मधुर स्वाद वाले घृत से भरे स्रुक् का स्नेहपूर्वक पान करें और तृप्त होकर समुद्र (चयन याग) सम्बन्धी इस यज्ञस्थल में शीघ्र प्रविष्ट हों ॥८७ ॥

९३८. घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥८८ ॥

हम घृत को अग्नि के मुख में समर्पित करने की इच्छा करते हैं । अग्नि की उत्पत्ति का मूलकारण घृत है, यह घृत के आश्रित है । घृत ही अग्नि का आधार है । हे अध्वर्यु ! हवि को अनुकूल (संस्कारित) कर अग्निदेव का आवाहन करो, उसे तृप्त करके कहो-पर्जन्य की वर्षा करने वाले हे अग्निदेव ! आहुति द्वारा समर्पित हविष्यान्न को देवों तक पहुँचाएँ ॥८८ ॥

९३९. समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ उदारदुपाᳬशुना सममृतत्वमानट्। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥८९ ॥

मधुर रसयुक्त तरंगें, घृतरूप समुद्र से उठती हुई प्राणभूत अग्निदेव से एकीकृत होकर अमरता को प्राप्त होती हैं । उस घृत का गुप्त नाम देवों की जिह्वा और अमृत की नाभि के रूप में कहा गया है ॥८९ ॥

९४०. वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः। उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौरऽ एतत् ॥९० ॥

हम इस यज्ञ में घृत के नाम को उच्चारित करते हुए हविरूप अन्न द्वारा यज्ञ को पुष्ट करते हैं । यज्ञ में ब्रह्मा संज्ञा से विभूषित विद्वान् स्तुति में अर्पित घृत के नाम को सुनें । यह चार प्रकार के होताओं वाला, गौरवर्ण घृत, यज्ञ के फल को प्रकट करता है ॥९० ॥

९४१. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां२ आविवेश ॥९१ ॥

ब्रह्मा, उद्‌गाता, होता और अध्वर्यु ये चार इस यज्ञ के शृङ्ग हैं । ऋक्, यजु और सामरूपों वाले तीन चरण हैं । हविर्धान और प्रवर्ग्य रूप वाले दो शिर हैं । सात छन्दों के रूप में इसके सात हाथ हैं । यह तीन सवनों— प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवन में आबद्ध है । यह अत्यन्त बलवान्, महान्, शब्द करने वाला सर्वोत्तम पूजनीय देव (यज्ञ) मनुष्यलोक में अधिष्ठित है ॥९१ ॥

९४२. त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्। इन्द्रऽ एकᳬ सूर्यऽ एकं जजान वेनादेकᳬ स्वधया निष्टतक्षुः ॥९२ ॥

तीनों लोकों में स्थित असुरों से छिपाकर रखे, यज्ञ के फलरूप प्राप्त घृत को देवों ने गौओं में से प्राप्त किया । उसके एक भाग को इन्द्रदेव के निमित्त और दूसरे भाग को सूर्यदेव के निमित्त प्रकट किया तथा तीसरे भाग को यज्ञ-साधन रूप अग्निदेव से आहुति के रूप में (यज्ञ धूम्र से) ब्राह्मणों ने प्राप्त किया ॥९२ ॥

९४३. एता ऽ अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे। घृतस्य धाराऽ अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽ आसाम् ॥९३ ॥

इस यज्ञ में अनेकों प्रकार की गतिमान् घृत-धाराएँ उसी प्रकार प्रवाहित होती हैं, जैसे हृदयरूपी समुद्र से संकल्प के साथ उल्लास – उमंगरूपी धाराएँ फूटती हैं । ये धाराएँ शत्रु के प्रहार से टूटती नहीं हैं । इसके मध्य में अधिष्ठित तेजस्वी अग्निदेव को हम सब ओर से देखते हैं ॥९३ ॥

९४४. सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना ऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽ इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥९४ ॥

शरीर के अन्तर्मन और हृदय से पवित्र हुई वाणियाँ उसीप्रकार स्रवित होती हैं, जैसे शब्दायमान सरित्-प्रवाह । ये घृत तरंगें यज्ञाग्नि की ओर उसी प्रकार प्रवाहित होती हैं, जैसे व्याध से डरकर भागते हुए मृग दौड़ते हैं ॥९४ ॥

९४५. सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः । घृतस्य धाराऽ अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥९५ ॥

घृत की बहती धाराएँ यज्ञाग्नि पर ऐसे गिरती हैं, जैसे तीव्र वेग से प्रवाहित नदी की वायु के संयोग से उठती तरंगें विषम प्रदेश में गिरती हैं और जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त बलशाली अश्व युद्धस्थल में शत्रुओं की सेनाओं का बेधन करता हुआ श्रम से निःसृत पसीने का पृथ्वी पर सिंचन करता हुआ गमन करता है ॥९५ ॥

९४६. अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् । घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥९६ ॥

जिस प्रकार समान मन वाली रूप-लावण्ययुक्त स्त्रियाँ हर्ष व प्रसन्नता व्यक्त करती हुई अपने-अपने पति को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार घृत धाराएँ प्रदीप्त अग्नि को प्राप्त होकर उसे व्याप्त करती हैं । वे जातवेदा (सब कुछ जानने वाले अग्निदेव) उन धाराओं की अनवरत कामना करते हैं ॥९६ ॥

९४७. कन्याऽ इव वहतुमेतवा ऽ उ अञ्ज्यञ्जाना ऽ अभि चाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽ अभि तत्पवन्ते ॥९७ ॥

जिस प्रकार अपने सुन्दररूप को प्रकट करती हुई कन्या स्वयंवर के समय अपने पति के समीप जाती है, उसी प्रकार जहाँ सोम का अभिषव किया जाता है, जहाँ यज्ञ होता है, वहाँ ही घृत धाराओं को गमन करते हुए देखा जाता है ॥९७ ॥

९४८. अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥९८ ॥

हे देवो ! आप श्रेष्ठ स्तुतियों वाले घृतयुक्त यज्ञ को सब ओर से प्राप्त हों । जिस यज्ञ में मधुर स्वादयुक्त घृत धाराएँ गिरती हैं, उस समय की इन मधुर आहुतियों को देवलोक में प्राप्त कराएँ और हमें सब प्रकार के कल्याणकारी धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥९८ ॥

९४९. धामं ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे यऽ आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं तऽ ऊर्मिम् ॥९९ ॥

हे अग्ने ! आपने अपनी धारक सामर्थ्य से सम्पूर्ण लोकों को आश्रय दिया है । सागर के बीच में, हृदय में, जीवनकाल में, जल के संघात में और यज्ञ कार्य में भी आपका श्रेष्ठ रूप सन्निहित है, उस मधुर आनन्दयुक्त, रस रूप तरंगों को हम प्राप्त करें ॥९९ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— कुत्स १-७, ७० । वसूयव ८ । मेधातिथि ९ । भरद्वाज १०, १६ । ऋषिसुता लोपामुद्रा ११-१५ । विश्वकर्मा भौवन १७-३२ । अप्रतिरथ ३३-५२, ५४-५८, ६० । तापस ५३ । विश्वावसु ५९ । जेता माधुच्छन्दस ६१ । विधृति ६२-६९, ७१-७३ । कण्व ७४ । गृत्समद ७५, ८८ । वसिष्ठ ७६, ७८ । कुमार-वृष ७७ । सप्त ऋषिगण ७९-८७ । वामदेव ८९-९९ ।

देवता— मरुद्गण, अश्मा, आशीर्वाद, आभिचारिक १ । अग्नि २-१२, १५, १६, ५०, ५३, ५५, ५६, ५८, ६५-७३, ७५-७७, ७९, ८७-९० । प्राण-समूह १३, १४ । विश्वकर्मा १७-३२, ७८ । इन्द्र ३३-४४, ५१, ६१, ६३ । इषु ४५ । योद्धागण ४६ । मरुद्गण ४७, ८०-८६ । लिंगोक्त ४८, ४९, ५२ । दिशाएँ ५४ । हविर्यज्ञ ५७ । आदित्य ५९, ६० । यज्ञ ६२ । इन्द्राग्नी ६४ । सविता ७४ । यज्ञपुरुष ९१-९९ ।

छन्द— भुरिक् अतिशक्वरी १ । निचृत् विकृति २ । विराट् आर्षी पंक्ति ३, १५, ५६ । भुरिक् आर्षी गायत्री ४-५ । आर्षी त्रिष्टुप् ६, २१, २५, २९, ३०, ३३, ३५-३७, ४१, ४९, ५८, ५९, ७०, ७३, ७५, ८७, ९२, ९५, ९८ । आर्षी बृहती ७ । आर्षी गायत्री ८, ७७, ८१, ८२ । निचृत् आर्षी गायत्री ९, १६ । निचृत् आर्षी जगती १०, १३, ८४ । भुरिक् आर्षी बृहती ११ । निचृत् गायत्री १२ । आर्षी जगती १४, ७९ । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् १७, २२, २४, २७, ३९, ४३, ४७, ६०, ६६, ७४, ८८, ८९, ९३, ९४, ९६, ९७ । भुरिक् आर्षी पंक्ति १८, ३१, ५५, ६९, ७१ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् १९, २३, २६, २८, ३८ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् २०, ३४, ५४, ९९ । स्वराट् आर्षी पंक्ति ३२ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप् ४०, ४२, ४४, ९०, ९१ । आर्षी अनुष्टुप् ४५, ५१, ६४ । विराट् आर्षी अनुष्टुप् ४६, ५०, ५३, ६२, ६३, ६५ । पंक्ति ४८ । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् ५२, ६१, ६८ । निचृत् आर्षी बृहती ५७ । पिपीलिकामध्या बृहती ६७ । निचृत् आर्षी पंक्ति ७२ । आर्षी उष्णिक् ७६, ८० । विराट् अतिजगती ७८ । भुरिक् आर्षी उष्णिक् ८३ । स्वराट् आर्षी गायत्री ८५ । निचृत् शक्वरी ८६ ।

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

९५०. वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१ ॥

इस यज्ञ से हमारे लिए अन्न-सम्पदा, ऐश्वर्य, पुरुषार्थ-परायणता, प्रबन्ध-क्षमता, बुद्धि की निर्णय क्षमता, कर्तृत्व-शक्ति, स्वर, श्लोक (यश-सम्पदा), श्रवण-क्षमता, ज्ञान-संपदा, तेजस्विता और आत्मशक्ति (स्वत्व) प्राप्त हो ॥१ ॥

९५१. प्राणश्च मेपानश्च मे व्यानश्च मेसुश्च मे चित्तं च म ऽ आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२ ॥

हमें प्राण वायु, अपान वायु, व्यान वायु, मुख्य प्राण, चिंतन, अध्यवसाय, वाणी, मन, दृष्टि-क्षमता, श्रवण-दक्षता, और बल यह सब यज्ञ की फलश्रुति के रूप में प्राप्त हों ॥२ ॥

९५२. ओजश्च मे सहश्च मऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेङ्गानि च मेस्थीनि च मे परूꣳषि च मे शरीराणि च मऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३ ॥

इस यज्ञ के फल से हमारा ओज, सहिष्णुता, आत्मबल और शरीर बल बढ़े । सुख-सम्पदा, कवच, (शारीरिक सुरक्षा) अंगों की पुष्टता, अस्थियों की दृढ़ता, अँगुली आदि की संधियों में दृढ़ता, शारीरिक आरोग्यता, आयुष्य और परिपक्वता में अभिवृद्धि हो ॥३ ॥

९५३.ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेमश्च मेम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४ ॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारी श्रेष्ठता, स्वामित्व, अनीति के प्रति क्रोध , दुष्टता के विरुद्ध प्रतिकारक क्षमता बढ़े । हमारी परिपक्वता, जीवनी - शक्ति, विजयशीलता, महत्ता, उत्कृष्टता, व्यापकता, दीर्घायुष्य, बड़प्पन, वंश-परंपरा और उत्कृष्टता में अभिवृद्धि हो ॥४ ॥

९५४.सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५ ॥

यज्ञ के फल-स्वरूप हम में सत्य और श्रद्धा की वृद्धि हो । हमारे लौकिक पदार्थ, धन-सम्पदा, विश्वस्तर, महत्ता, क्रीड़ा, मोद (हर्ष), संतान, सूक्त (ऋचाएँ) और उन पर आधारित कर्मों में सब प्रकार अभिवृद्धि हो ॥५ ॥

९५५.ऋतं च मेमृतं च मेयक्ष्मं च मेनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेनमित्रं च मेभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६ ॥

यज्ञादि कर्मों के फल से श्रेष्ठ कर्म, अमृत-तत्त्व, क्षयादि रोगों का अभाव, आरोग्य, प्रतिरोधक क्षमता, दीर्घायुष्य, शत्रुओं का अभाव , निर्भयता, आनन्द, सुखकारक शयन, संध्योपासना हेतु सुप्रभात और उत्तम दिन में अभिवृद्धि हो ॥६ ॥

९५६.यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥७ ॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमें नेतृत्व-क्षमता, धारण-क्षमता, सम्पत्ति-रक्षण-क्षमता प्राप्त हो । हमें धैर्य, सभी लौकिक ऐश्वर्य, महान् सामर्थ्य प्राप्त हो । हमारी ज्ञान एवं विज्ञान क्षमता, कृषि के साधन और सांसारिक बाधाओं से निवृत्ति की क्षमताएँ प्राप्त हों ॥७ ॥

९५७ . शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥८ ॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल से सब सुख, सब आनन्द, प्रिय पदार्थ, अनुकूल पदार्थ , भोग्य पदार्थ, उत्तम मन, ऐश्वर्य, धन-सम्पदा, श्रेय-कल्याण, गृह-सुख, यश आदि अभिवृद्धि को प्राप्त हों ॥८ ॥

९५८ . ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥९ ॥

यज्ञादि के फलस्वरूप हमें अन्न, ज्ञानमयी वाणी, दूध, रसयुक्त पेय, घृत, मधु आदि प्राप्त हों । हम अपने बन्धुओं के साथ मिलकर भोजन करने वाले और दुग्धादि पान करने वाले हों । वृष्टि हमारे लिए धान्य उत्पन्न करने वाली तथा हमारी कृषि सुविकसित और अनुकूल बने । हमारे वृक्षों की बढ़ोत्तरी भली प्रकार हो और हम विजय के लिए उपयुक्त शक्ति-सम्पन्न होकर शत्रुजयी बनें ॥९ ॥

९५९.रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेक्षितं च मेन्नं च मेक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१० ॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल से हमारी संपदा, हमारे ऐश्वर्य हर प्रकार से पुष्ट हों । शरीर आदि की भी सब प्रकार से पुष्टि हो । हमारी व्यापकता, प्रभुता, पूर्णता और धन-धान्य की प्रचुरता में पर्याप्त वृद्धि होती रहे । हमारे कुयव (मनुष्यों के न खाने योग्य-पशुओं के उपयुक्त) धान्य, क्षयरहित अन्न , पुष्टिकारक अन्न और हमारी क्षुधा में भी अभिवृद्धि होती रहे ॥१० ॥

९६०. वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च मऽ ऋद्धं च मऽऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल से हमारे धन-द्रव्यादि में निरंतर अभिवृद्धि हो । पूर्व संचित धन और भावी प्राप्य धन में वृद्धि हो । धन प्राप्ति के कर्म सुगम और पथ अवरोधों से मुक्त हों, यज्ञीय सत्कर्म समृद्ध हों । हमारे ये कर्म श्रेष्ठ द्रव्य और सत् सामर्थ्य बढ़ाने वाले हों । ये (यज्ञीय सत्परिणाम) हमारी मति को उच्च बनाने वाले व सबके लिए हितकारी (मंगलमय) हों ॥११ ॥

९६१.व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१२ ॥

यज्ञादि कर्मों के फलस्वरूप हमारे लिए व्रीहि धान्य, जौ, उड़द, तिल, मूँग, चना, प्रियङ्गु (मालकाँगनी, राई) अणव (छोटे तन्दुल-चावल), साँवा चावल, नीवार धान्य, गेहूँ और मसूर आदि सब धान्यों में वृद्धि हो ॥१२ ॥

९६२.अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१३ ।

यज्ञादि कर्मों के फल से हमारे (खनिज तत्त्वों) पाषाण, उत्तम मिट्टी, छोटे पर्वत, बड़े पर्वत, रेत, वनस्पतियाँ, सुवर्ण, लोहा, ताम्रलोह, श्याम लोह, सीसा और टीन आदि में बढ़ोत्तरी होती रहे । ।१३ ॥

९६३.अग्निश्च मऽआपश्च मे वीरुधश्च म ऽ ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशवऽआरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१४ ॥

यज्ञ के फल से देवगण हमारे लिए अग्नि को और आकाशीय जल को अनुकूल बनाएँ । गुल्म, तृण, वनस्पति, ओषधियाँ, प्रयासपूर्वक उत्पन्न ओषधियाँ और स्वत: उत्पन्न ओषधियाँ पूर्णरूप से विकसें । यह यज्ञ ग्राम्य और जंगली पशुओं को पुष्ट करे । पूर्व प्राप्त और भावी प्राप्य धन, पुत्रादि सुख और ऐश्वर्य आदि में अभिवृद्धि हो ॥१४ ॥

९६४.वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेर्थश्च मऽएमश्च मऽइत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१५ ॥

यज्ञादि कर्मों के फल से देवगण हमें उपयोगी धन-संपदा व गृह-संपदा से पुष्ट करें । इच्छित कर्म हेतु एवं इसे पूर्णता तक पहुँचाने हेतु अभीष्ट सामर्थ्य भी प्राप्त कराएँ । आवश्यक धन, इष्ट साधन, इष्ट प्राप्ति का उपाय और गति-सामर्थ्य से भी अभिपूरित करें ॥१५ ॥

९६५. अग्निश्च मऽइन्द्रश्च मे सोमश्च मऽइन्द्रश्च मे सविता च मऽइन्द्रश्च मे सरस्वती च म ऽइन्द्रश्च मे पूषा च मऽइन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६ ॥

यज्ञ के फल से हमारे निमित्त अग्निदेव के साथ इन्द्रदेव की, सोमदेव के साथ इन्द्रदेव की, सवितादेव के साथ इन्द्रदेव की , देवी सरस्वती के साथ इन्द्रदेव की, पूषादेव के साथ इन्द्रदेव की और बृहस्पतिदेव के साथ इन्द्रदेव की अनुपम कृपा में अभिवृद्धि हो ॥१६ ॥

९६६. मित्रश्च मऽइन्द्रश्च मे वरुणश्च मऽइन्द्रश्च मे धाता च मऽइन्द्रश्च मे त्वष्टा च मऽइन्द्रश्च मे मरुतश्च मऽइन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा ऽ इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१७ ॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप हमारे निमित्त मित्रदेव के साथ इन्द्रदेव की, वरुणदेव के साथ इन्द्रदेव की, धाता देव के साथ इन्द्रदेव की, त्वष्टादेव के साथ इन्द्रदेव की, मरुद्देव के साथ इन्द्रदेव की, विश्वेदेवा के साथ इन्द्रदेव की अनुपम कृपा में अभिवृद्धि हो ॥१७ ॥

९६७.पृथिवी च मऽइन्द्रश्च मेन्तरिक्षं च मऽइन्द्रश्च मे द्यौश्च मऽइन्द्रश्च मे समाश्च मऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽइन्द्रश्च मे दिशश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८ ॥

यज्ञ कर्म के फलस्वरूप हमारे निमित्त भूमिदेव, अन्तरिक्षदेव, द्युलोक के देव, वृष्टि के देव, नक्षत्रों के देव, दिशाओं के देवगणों की अनुपम कृपा की प्राप्ति हो; पर इन सब देवगणों के साथ-साथ देवों के राजा इन्द्र की कृपा अनिवार्यत: प्राप्त हो ॥१८ ॥

९६८. अ ꣳ शुश्च मे रश्मिश्च मेदाभ्यश्च मेधिपतिश्च मऽउपा ꣳ शुश्च मेन्तर्यामश्च म ऽऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मऽआश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९ ॥

यज्ञकर्म के फलस्वरूप अंशुग्रह, रश्मिग्रह, अदाभ्यग्रह, अधिपतिग्रह , उपांशुग्रह, अन्तर्यामग्रह, ऐन्द्रवायवग्रह, मैत्रावरुणग्रह, आश्विनग्रह, प्रतिप्रस्थानग्रह, शुक्रग्रह, मन्थीग्रह आदि सभी सहायक होकर हमें पुष्ट करें ॥१९ ॥

९६९. आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मऽऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२० ॥

यज्ञकर्म के फलस्वरूप आग्रयण, वैश्वदेव, ध्रुव, वैश्वानर, ऐन्द्राग्न, महावैश्वदेव, मरुत्वतीय, निष्केवल्य, सावित्र, सारस्वत, पात्नीवत और हारियोजन आदि सभी अनुकूल होकर हमें पुष्ट करें ॥२० ॥

९७०. स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेधिषवणे च मे पूतभृच्च मऽआधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१ ॥

यज्ञ के फल से हमारे निमित्त स्रुच, चमस, वायव्य आदि यज्ञ पात्र, द्रोणकलश, ग्रावा, अधिषवण फलक (काष्ठफलक), पूतभृत् (सोमपात्र), आधवनीय पात्र, वेदिका और कुशा, अवभृथस्नान और शम्युवाक पात्र अनुकूल होकर अभीष्ट पूर्ति करें ॥२१ ॥

९७१.अग्निश्च मे घर्मश्च मेर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२ ॥

यज्ञ के फल से हमारे लिए अग्नि, प्रवर्ग्य, पुरोडाश सम्बन्धीयाग, सूर्य, प्राण, अश्वमेध, भूमि, दिति और अदिति, द्युलोक, विराट् पुरुष के अवयव, शक्तियाँ और दिशाएँ आदि सब सहायक होकर हमें अभीष्ट प्राप्त कराएँ ॥२२ ॥

९७२.व्रतं च म ऽ ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३ ॥

यज्ञ के फलस्वरूप व्रत, ऋतु, तप, संवत्सर, दिन-रात, ऊर्वष्ठी, बृहद्रथन्तर साम आदि सब हमारे अनुकूल होकर हमें अभीष्ट प्राप्त कराएँ ॥२३ ॥

९७३.एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽएकवि ꣳ शतिश्च मऽएकवि ꣳ शतिश्च मे त्रयोवि ꣳ शतिश्च मे त्रयोवि ꣳ शतिश्च मे पञ्चवि ꣳ शतिश्च मे पञ्चवि ꣳ शतिश्च मे सप्तवि ꣳ शतिश्च मे सप्तवि ꣳ शतिश्च मे नववि ꣳ शतिश्च मे नववि ꣳ शतिश्च मऽएकत्रि ꣳ शच्च मऽएकत्रि ꣳ शच्च मे त्रयस्त्रि ꣳ शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४ ॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारे निमित्त एक संख्यक स्तोम, तीन संख्यक, पाँच संख्यक, सात संख्यक, नौ संख्यक, ग्यारह संख्यक, तेरह संख्यक, पंद्रह संख्यक, सत्रह संख्यक, उन्नीस संख्यक, इक्कीस संख्यक, तेईस संख्यक, पच्चीस संख्यक, सत्ताइस संख्यक, उनतीस संख्यक, इकतीस संख्यक और तैंतीस संख्यक स्तोम सहायक होकर अभीष्ट प्राप्त कराएँ ॥२४ ॥

[इस कंडिका में विषम (ऊनी) संख्याओं का क्रम दिया गया है। प्रत्येक संख्या के साथ 'च' जुड़ा है। इसका अर्थ + १ कर लेने पर ये सम संख्याएँ बन जाती हैं। 'वैदिक सम्पदा' नामक पुस्तक में इसी से पहाड़ों एवं वर्गमूल आदि के सूत्रों का विकास भी सिद्ध किया गया है। यज्ञ का एक अर्थ संगतिकरण है, अंकों से अंकों की संगति बिठाने से अंक विद्या बनती है। यज्ञेन कल्पंताम् का अर्थ अंकों की संगति बिठाने के संदर्भ से भी लिया जाता है।]

९७४.चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे वि ᳪ शतिश्च मे वि ᳪ शतिश्च मे चतुर्वि ᳪ शतिश्च मे चतुर्वि ᳪ शतिश्च मेऽष्टावि ᳪ शतिश्च मेऽष्टावि ᳪ शतिश्च मे द्वात्रि ᳪ शच्च मे द्वात्रि ᳪ शच्च मे षट्त्रि ᳪ शच्च मे षट्त्रि ᳪ शच्च मे चत्वारि ᳪ शच्च मे चत्वारि ᳪ शच्च मे चतुश्चत्वारि ᳪ शच्च मे चतुश्चत्वारि ᳪ शच्च मेऽष्टाचत्वारि ᳪ शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५ ॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारे निमित्त चार संख्यक स्तोम, आठ संख्यक, बारह संख्यक, सोलह संख्यक, बीस संख्यक, चौबीस संख्यक, अट्ठाइस संख्यक, बत्तीस संख्यक, छत्तीस संख्यक, चालीस संख्यक, चौवालीस संख्यक और अड़तालीस संख्यक स्तोम सहायक होकर अभीष्ट प्राप्त कराएँ ॥२५ ॥

९७५.त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२६ ॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारे निमित्त डेढ़ वर्ष का बछड़ा और बछिया, दो वर्ष का बछड़ा और बछिया, ढाई वर्ष का बछड़ा और बछिया, तीन वर्ष का बैल और गाय तथा साढ़े तीन वर्ष (अर्द्धांक गणना के सूत्र) का बैल और गाय सहायक होकर प्राप्त हों ॥२६ ॥

९७६.पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२७ ॥

यज्ञ के फल से चार वर्ष का वृषभ और गाय, सेचन-समर्थ वृषभ और बन्ध्या गाय, पुष्ट वृषभ और गर्भघातिनी गाय, गाड़ी वहन करने में समर्थ बैल और नवप्रसूता गौ आदि हमें प्राप्त हों, अर्थात् हम सब प्रकार की पशु-सम्पदा से युक्त हों ॥२७ ॥

९७७. वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैन ᳪ शिनाय स्वाहा विन ᳪ शिन ऽ आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा। इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऽ ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥२८ ॥

(अन्न प्राचुर्य के कारण) वाज (अन्न) रूप चैत्र के लिए, (जल क्रीडादि की प्रमुखता का परिचय देने वाले) प्रसवरूप वैशाख मास के लिए, (जल क्रीड़ादि में अधिक आनन्द देने वाले) अपिज रूप ज्येष्ठ मास के लिए, (चातुर्मास्यादि यागों की प्रचुरता के हेतु) क्रतुरूप आषाढ़ मास के लिए, (चातुर्मास्य में यात्रा के निषेधक) वसुरूप श्रावण मास के लिए, (वर्षानन्तर तीव्रातपकारी) अहर्पति रूप भाद्रपद मास के लिए, (तुषारपात के कारण) मुग्ध (मोह) रूप आश्विन मास के लिए, (दिनमान घटने के कारण विनाशशील तथा स्नान-दानादि के कारण पापनाशक) अमुग्ध एवं विनंशी स्वरूप कार्तिक मास के लिए, (दक्षिणायन के अन्त में स्थित होने वाले) अविनाशी विष्णुरूप मार्गशीर्ष मास के लिए, (जठराग्नि को दीप्त करने के हेतुभूत) भौवन स्वरूप पौष मास के लिए, (सम्पूर्ण भूतजात-प्राणिमात्र के पालन करने वाले) भुवनपति रूप माघ मास के लिए, (वर्ष के अन्त में होने तथा शैत्य की कमी के कारण अधिक रुचिकर अथवा वसन्त ऋतु के आविर्भाव के कारण अधिक स्वास्थ्यकर—सुन्दर) प्रजापति रूप फाल्गुन मास के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं। हे प्रजापते ! इस अपने राज्य में आप इस यजमान के मित्रवत् हितैषी हैं। आप यज्ञादि क्रियाओं के नियन्ता हैं। पोषक अन्नरूप ऊर्जा की वृद्धि के लिए, (धन-धान्य प्राप्ति के निमित्त) वृष्टि के लिए प्रजाओं के अधिपति रूप में संरक्षण के लिए हम आपको प्रीतिपूर्वक नमन करते हैं ॥२८ ॥

१७८.आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ᳪ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता ᳪ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा ऽ अगन्मामृता ऽ अभूम प्रजापतेः प्रजा ऽ अभूम वेट् स्वाहा ॥२९ ॥

यज्ञ के फल से हमारी आयु में अभिवृद्धि हो। प्राण तेजयुक्त बलों से पूर्ण हो। चक्षु और श्रवण इन्द्रियाँ उत्कृष्टता से अभिपूरित हों। वाणी उत्कृष्ट हो। मन सामर्थ्यवान् हो। आत्मा परम आनन्द में पूर्ण हो। वेदों के ज्ञाता (ब्रह्मा) सन्तोष से परिपूर्ण हों। यज्ञ से ज्योतिर्मान् परमतत्त्व की प्राप्ति हो। यज्ञ से स्वर्ग प्राप्त हो। स्वर्गिक सुख प्राप्त हो। यज्ञ से यज्ञ उत्कर्षता को प्राप्त हो। स्तुति के मन्त्र, यजु, ऋक्, साम, बृहत् और रथन्तर भी हमारी अभीष्ट प्राप्ति में सहायक हों। समस्त देवगण स्वयं प्रयत्नपूर्वक हम में देवत्व स्थापित करके, स्वर्ग के अमृतमय सुखों को प्राप्त कराएँ। हम भी प्रजापति परमात्मा की प्रजारूप में सुख भोग करें। इसी अभिलाषा से प्रेरित यह विशिष्ट आहुति समर्पित है ॥२९ ॥

१७९. वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥३० ॥

अपने दिव्य रसों एवं अन्न से समस्त प्राणियों को पोषण देने वाली अखण्ड पृथ्वी की हम उत्तम स्तुतियों से वन्दना करते हैं, उसमें सम्पूर्ण लोक समाविष्ट हैं। सम्पूर्ण जगत् को अपनी दिव्य किरणों से प्रेरित करने वाले सवितादेव इस पृथ्वी में हमारी स्थिति को सुदृढ़ करें ॥३० ॥

१८०.विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऽ ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवाऽ अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥३१ ॥

आज हमारे इस यज्ञ में सम्पूर्ण मरुद्गण पधारें। संरक्षण करने वाली समस्त देव सत्ताएँ (विश्वेदेवा आदि) रक्षा साधनों सहित यज्ञ में पधारें। समस्त अग्नियाँ प्रदीप्त हों। हमें महान् ऐश्वर्य व अन्न प्राप्त कराएँ ॥३१ ॥

१८१. वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः। वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥

हमारे अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य, पराक्रम आदि चारों लोकों और सातों दिशाओं में अभिवृद्धि को प्राप्त हों। समस्त दिव्य शक्तियाँ हमारे धन-धान्य की रक्षा करें ॥३२ ॥

१८२. वाजो नो अद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ२ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा ऽ आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥३३ ॥

अन्न के अधिष्ठाता देव आप हमें अन्नदान की प्रेरणा दें। सब देवगणों को ऋतुओं के अनुकूल हविष्यान्न प्राप्त होता रहे। अन्नदेव हमें (पुत्र-पौत्रादि) वीरों से सम्पन्न करें। हम अन्न के अधिपति देवरूप को ग्रहण कर सब दिशाओं में प्रगति करें ॥३३ ॥

१८३. वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वाऽ आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥३४ ॥

अन्न हमारे आगे और घरों के मध्य उत्पन्न होता है, अन्न हवियों द्वारा देवगणों को तृप्त (पुष्ट) करता है। अन्न ही हमें (पुत्र-पौत्रादि) वीरों से युक्त करता है। हम अन्न के अधिपति होकर सभी दिशाओं में प्रगति करें ॥३४ ॥

१८४.सम्मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सम्मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः । सोहं वाज ँ्ऽ सनेयमग्ने ॥३५ ॥

हे अग्ने ! हम इस पृथ्वी पर उपलब्ध होने वाले रसों को अपने आप से संयुक्त करते हैं । हम जल और ओषधियों को भी अपने से संयुक्त करते हैं । हम ओषधियों और जल रूप में पोषक अन्न प्राप्त करते हैं ॥३५ ॥

१८५.पयः पृथिव्यां पय ऽ ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६ ॥

हे अग्ने ! आप इस पृथ्वी पर समस्त पोषक रसों को स्थापित करें । ओषधियों में जीवन रस को स्थापित करें । द्युलोक में दिव्यरस को स्थापित करें । अन्तरिक्ष में श्रेष्ठ रस को स्थापित करें । हमारे लिए ये सब दिशाएँ व उपदिशाएँ अभीष्ट रसों को देने वाली हों ॥३६ ॥

१८६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥३७ ॥

सवितादेव के उदय होने पर उनकी प्रेरणा से दोनों अश्विनीकुमारों की बाहुओं एवं पूषादेव के दोनों हाथों से, देवी सरस्वती की वाणी और नियामक सत्ता के नियमन से तथा अग्निदेव के साम्राज्य से हे यजमान ! अनुदानों की वर्षा के रूप में आपका अभिषेक किया जा रहा है ॥३७ ॥

१८७. ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८ ॥

क्र० ३८ से ४३ तक की कण्डिकाओं में 'इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु' का सम्पुट है । अधिकतर इसका अर्थ किया जाता है, 'इस ब्राह्मण एवं क्षत्रिय की रक्षा करें'; किन्तु यज्ञ के प्रभाव से यज्ञ में लगने वाली प्रवृत्तियों 'ब्रह्मवृत्ति— ब्रह्मनिष्ठा एवं क्षात्र - पराक्रम की वृत्ति, की रक्षा का भाव अधिक युक्तिसंगत बैठता है—

सत्य के बल से विजय पाने वाले, श्रेष्ठ आधार वाले, पृथिवी को धारण करने वाले अग्निदेव ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि श्रेष्ठ वर्णों, द्विजातियों अर्थात् संस्कारवान् नागरिकों की रक्षा करने वाले हों । उनके निमित्त यह आहुति प्रीतिपूर्वक अर्पित है । प्राणियों में हर्ष का संचार करने वाली ओषधियाँ उस अग्निरूपी गन्धर्व की अप्सरारूप हैं, वे हमारी रक्षा करें । उन्हें प्रीतिपूर्वक यह आहुति समर्पित है ॥३८ ॥

१८८. सँ्ऽहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस ऽ आयुवो नाम । स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३९ ॥

दिन और रात्रि को मिलाने वाले, सामवेद की उत्तम ऋचाओं द्वारा स्तुत्य, पृथ्वी के कर्त्ता-धर्त्ता सूर्यदेव हमारे सुवर्णों अर्थात् संस्कारवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों की रक्षा करें । उनके निमित्त यह आहुति अर्पित है । परस्पर संयोग के गुणवाली व्यापक गन्धर्वरूप सूर्य रश्मियाँ इनकी अप्सराओं के रूप में हैं, वे हमारी रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥३९ ॥

१८९.सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४० ॥

उत्तम आह्लाद प्रदायक, सूर्य रश्मियों से प्रकाश पाने वाले चन्द्रमा रूप गन्धर्व हमारे ब्राह्मबल और क्षात्रबल की रक्षा करें । उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है । विशेष रूप से कान्तिमान्, आरोग्यवर्धक, शीतल रश्मियाँ उनकी अप्सराएँ हैं, वे हमारी रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥४० ॥

११०. इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरसऽ ऊर्जो नाम। स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१ ॥

शीघ्र गमनशील, सर्वत्र व्याप्त इस भूमि को धारण करने वाले जो गन्धर्वरूप वायु देव हैं, वे हमारे ब्राह्म और क्षात्र बल की रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति समर्पित है । प्राणियों के जीवन-रस रूप जल इनकी अप्सराएँ हैं, वे हमारी रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥४१ ॥

१११.भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽ अप्सरस स्तावा नाम। स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२ ॥

प्राण-पर्जन्य के रूप में पोषक पदार्थों के दाता, सदैव उत्तम गमनशील यज्ञरूप गन्धर्व हैं, वे हमारे ब्राह्म बल और क्षात्र बल की रक्षा करें । उनके निमित्त श्रेष्ठ आहुति अर्पित है । श्रेष्ठ स्तुतिरूप स्तावा नामक दक्षिणा उस यज्ञ की अप्सरा हैं, वे हमारी रक्षा करें । उनकी प्रीति के निमित्त श्रेष्ठ आहुति अर्पित है ॥४२ ॥

११२. प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरसऽ एष्टयो नाम। स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४३ ॥

प्रजा के पालक, समस्त विश्व के कर्त्ता, मनरूप गन्धर्व हमारे क्षात्र और ब्राह्म बल की रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक यह आहुति अर्पित है । अभीष्ट प्रदायक एष्टि नाम की ऋक् और सामवेद की ऋचाएँ मन की अप्सराओं के समान हैं, वे हमारी रक्षा करें । यह आहुति उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक अर्पित है ॥४३ ॥

११३. स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तऽउपरि गृहा यस्य वेह। अस्मै ब्रह्मणेस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥४४ ॥

विश्व का पालन करने वाले हे प्रजापते ! ऊपर ऊर्ध्वलोक के ग्रह अथवा इस लोक के ग्रह सब आपके ही आश्रय पर अवलम्बित हैं। ऐसे आप हमारे इस ब्राह्मणत्व और क्षात्रत्व को महान् सुख देने वाले हों। आपके निमित्त प्रीतिपूर्वक यह आहुति समर्पित है ॥४४ ॥

११४.समुद्रोसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा। मारुतोसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहावस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥४५॥

हे वायो ! आप सागर के सदृश अगाध जल से पूर्ण हैं, नभमण्डल में सर्वत्र व्याप्त रहने वाले, वृष्टि द्वारा भूतल को आर्द्र करने वाले, सब सुखों को प्रदान करने वाले तथा परम हर्ष उत्पन्न करने वाले हैं। आप अन्तरिक्ष में गमनशील, मरुद्गण स्वरूप हैं। सबको अपने आश्रय में संरक्षण देने वाले, अन्न उत्पन्न करने वाले, सम्पूर्ण सुख और हर्ष उत्पन्न करने वाले हैं, आप हमें परिरक्षित करें । आपके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥४५ ॥

११५. यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः। ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥४६ ॥

हे अग्ने ! आपका दिव्य प्रकाश सूर्य रश्मियों द्वारा द्युलोक को प्रकाशित करता है । वह ज्योति आज दिव्य कान्तियुक्त होकर हमें और हमारे पुत्र-पौत्रादि को तेज-सम्पन्न बनाने के लिए प्रकाशित हो ॥४६ ॥

११६ या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः। इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचन्नो धत्त बृहस्पते ॥

हे इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति आदि विश्व की समस्त देवशक्तियो ! आपकी जो दीप्तियाँ सूर्यमण्डल में विद्यमान हैं और जो दीप्तियाँ गौओं और अश्वों में तेजरूप में समाविष्ट हैं, उन सम्पूर्ण दीप्तियों से प्रकाशित हुए आप हमारे अन्दर दिव्य तेज को धारण कराएँ ॥४७ ॥

९९७. रुचन्नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच ँ् राजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥४८ ॥

हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों में तेजस्विता स्थापित करें । हमारे क्षत्रियों में तेजस्विता स्थापित करें । वैश्यों को तेजस्विता धारण कराएँ और शूद्रों में तथा हममें दिव्य तेजों को धारण कराएँ (जिससे कि हमारे राष्ट्र में चारों वर्ण तेजस्वी हों) ॥४८ ॥

९९८.तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ँ् स मा न ऽ आयुः प्र मोषीः ॥४९ ॥

वेद मन्त्रों द्वारा अभिनन्दित हे वरुणदेव ! हवियों का दान देकर यजमान लौकिक सुखों की आकांक्षा करता है । हम वेद- वाणियों के ज्ञाता (ब्राह्मण) यजमान की तुष्टि व प्रसन्नता के निमित्त स्तुतियों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं । सबके द्वारा स्तुत्य देव ! इस स्थान में आप क्रोध न करके हमारी प्रार्थना सुनें । हमारी आयु को किसी प्रकार क्षीण न करें ॥४९ ॥

९९९. स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥५० ॥

सर्वत्र प्रकाश बिखेरने वाले आदित्यदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है । सूर्यरूप अग्निदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है । शुभ्र तेजों से युक्त देव के निमित्त यह आहुति समर्पित है । अन्तर्निहित ज्योति के निमित्त यह आहुति समर्पित है । अन्त: प्रकाशित सूर्य के निमित्त यह आहुति समर्पित है । यह सब आहुतियाँ उत्तम प्रकार से स्वीकृत हों ॥५० ॥

१०००.अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्य ँ् सुपर्णं वयसा बृहन्तम् । तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टप ँ् स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥५१ ॥

दिव्य गुणसम्पन्न, श्रेष्ठ गति वाले, आज्याहुतियों से वृद्धि को पाने वाले अग्निदेव को हम बलदायक घृत से सुसम्पन्न करते हैं । हम इस माध्यम से आदित्यलोक को गमन करेंगे, फिर ऊपर स्वर्ग को गमन करते हुए संताप रहित सर्वोत्तम लोक को प्राप्त होंगे ॥५१ ॥

१००१. इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्या ँ् रक्षा ँ् स्यपह ँ्स्यग्ने । ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५२ ॥

हे अग्ने ! आपके ये दोनों पंख कभी न जीर्ण होने वाले और उड़ने में सदैव प्रवृत्त रहने वाले हैं, जिसके द्वारा आप राक्षसों का विनाश करते हैं । उन पंखों के सहारे ही हम पुण्यात्माओं के दिव्यलोक को गमन करें, जहाँ प्रथम उत्पन्न पूर्वकालीन ऋषिगण गये हैं ॥५२ ॥

१००२.इन्दुर्दक्षः श्येन ऽ ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः । महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽ आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हि ँ् सीः ॥५३ ॥

हे अग्ने ! आप चन्द्र के तुल्य आनन्द प्रदान करने वाले, सतत प्रयत्नशील, बाज़ के तुल्य वेगवान्, सत्यरूप कर्म वाले, स्वर्णिम (सत्य) पक्ष वाले, शक्तिमान् , भरण-पोषण के आधार रूप, महान् सामर्थ्यवान्, अटल, यज्ञ में अविच्छिन्न रूप से स्थित रहने वाले हैं, आपको सतत नमन है । आप हमें किसी प्रकार पीड़ा न दें ॥५३ ॥

१००३.दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्। विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥

हे अग्ने ! आप स्वर्गलोक के मस्तक तुल्य मूर्धन्य और पृथ्वी के नाभि स्वरूप केन्द्र बिन्दु हैं। आप जल और ओषधियों के साररूप हैं। समस्त प्राणियों के जीवन आधार, सुख-प्रदायक आप समान रूप से व्याप्त होकर स्थित हैं। सबके पथ-प्रकाशकरूप, आपके लिए सतत नमन है ॥५४ ॥

१००४. विश्वस्य मूर्धन्नधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त। दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥५५ ॥

हे अग्ने ! सर्वत्र व्याप्त होकर आप विश्व के सर्वोच्च स्थान में अधिष्ठित हैं। आपका हृदय अन्तरिक्ष मे तथा आयु जल में व्याप्त होकर प्रतिष्ठित है। आप द्युलोक से, अन्तरिक्ष से, पृथिवी के गर्भ तथा अन्य स्थानों से जल लाकर पृथिवी पर वृष्टि द्वारा हमारी रक्षा करें। मेघों को विदीर्ण कर जल प्रदान करें ॥५५ ॥

१००५.इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः। तस्य नऽ इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥५६ ।

हे द्रविण (धन) ! आप हमारे इष्टरूप, हमसे प्रीति करने वाले हैं। धन की कामना करने वाले यजमान के घर को अपने वैभव से सम्पन्न करें। इच्छित फल देने वाला यह यज्ञ भृगुओं (शत्रु विनाशक वीरों) और वसुओं (निवासक वीरों- भू सम्पदावान् वीरों) द्वारा उत्तम प्रकार से सम्पादित किया गया है ॥५६ ॥

१००६. इष्टो अग्निराहुतः पिपर्त्तु नऽ इष्ट ँ हविः। स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥५७ ॥

यज्ञ सम्पादन में सबसे प्रमुख अग्निदेव, याजकों द्वारा प्रदत्त हवि से तृप्त होकर हमारे अभीष्ट को पूर्ण करें और स्वयं गमनशील होकर यह हवि देवताओं को प्राप्त कराएँ ॥५७ ॥

१००७.यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा। तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५८ ॥

हे ऋत्विजो ! जो ज्ञान अन्तर्प्रेरणा से, हृदय से, मानस से या नेत्रादि इन्द्रियों से सम्यक् प्रकार स्रवित हुआ है, उसके अनुगामी होकर आचारवान् सत्पुरुषों के दिव्यलोक को ही प्राप्त करें, जहाँ प्रथम उत्पन्न पूर्वकालीन ऋषिगण प्राप्त हुए हैं ॥५८ ॥

१००८. एत ँ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः। अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र त ँ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥५९ ॥

स्वर्ग मे निवास करने वाली हे दिव्य शक्तियो ! अग्निदेव ने जिस यज्ञ के सुखमय फल को यजमान के लिए प्रदान किया है, उस फल को हम आपके लिए अर्पित करते हैं। हे देवो ! यजमान आपके पास आयेगा; परम (व्यापक अथवा श्रेष्ठ) स्वर्ग मे आये यजमान को आप जानें। (अभीष्ट प्रदान करें।) ॥५९ ॥

१००९. एतं जानीथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य। यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृणवाथाविरस्मै ॥६० ॥

परम श्रेष्ठ स्वर्ग में स्थित हे देवो ! इस यजमान से एवं इसके श्रेष्ठस्वरूप से अवगत हों। जिस समय यह देवयान मार्ग (देवों के गमन योग्य मार्ग) से गमन करे, तब यज्ञ कर्मों के सम्पूर्ण फल इस यजमान के निमित्त प्रकाशित करें, अर्थात् उसे प्रदान करें ॥६० ॥

१०१०. उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ँ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥६१ ॥

हे अग्ने ! आप उत्तम रीति से प्रज्वलित होकर चैतन्यता को धारण करें । अभीष्ट पूर्ति वाले इस यज्ञ के फल स्वरूप यजमान की सत् आकांक्षाओं को पूर्ण तथा उसके जीवन को भी चैतन्य करें । हे विश्वेदेवो ! आपके लिए कर्म करने वाला यह यजमान देवों के साथ रहने योग्य होता हुआ, स्वर्गलोक में चिरकाल तक अधिष्ठित रहे ॥

१०११.येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे । ।६२ ॥

हे अग्ने ! आप जिस सामर्थ्य से सहस्र दक्षिणा वाले यज्ञ को सम्पादित करते हैं, जिससे सर्वज्ञ होने का गौरव प्राप्त करते हैं । उसी सामर्थ्य से हमारे इस यज्ञ को अर्थात् यज्ञ में समर्पित हविष्यान्न को स्वर्गस्थ देवताओं तक पहुँचाने की कृपा करें । याजकों को दिव्यगुणों से अभिपूरित करें ॥६२ ॥

१०१२. प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥

हे अग्ने ! हमारे प्रस्तर, परिधि, स्रुक्, वेदी, कुशा और ऋचा आदि से सम्पन्न इस यज्ञ को (यज्ञीय पोषक तत्त्वों को) देवों के पास पहुँचाने के लिए दिव्यलोक की ओर प्रेरित करें । ।६३ ॥

१०१३. यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥

हे विश्वकमर्न्-अग्निदेव ! हमारे द्वारा दीन-दुखियों, अतिथियों एवं ब्राह्मणों को धन -साधनादि के रूप में दिये गये दान को तथा कूप-बावड़ी आदि के निर्माण जैसे श्रेष्ठ कार्यों में खर्च किये गये धन अर्थात् यज्ञ दक्षिणा को स्वर्गस्थ देवशक्तियों तक पहुँचाएँ ॥६४ ॥

१०१४. यत्र धारा ऽ अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥

यह विश्वकर्मा अग्नि जहाँ मधु की , घृत की और दूध-दही आदि की, कभी क्षीण न होने वाली धाराएँ सतत प्रवहमान रहती हैं, ऐसे दिव्यलोक में (सद्‌गुणों से सुशोभित सुखद स्थिति में) हम याजकों को पहुँचाएँ ॥६५ ॥

१०१५.अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं मऽ आसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥६६ ॥

सम्पूर्ण जगत् को जानने वाले, अर्चन के योग्य, ऋक्, यजु, साम से लक्षित होने वाले, जल के निर्माता, अविनाशी अग्निदेव उत्पत्ति से ही यज्ञद्रष्टा हैं । उनकी आँखें घृत हैं, मुख में हविरूप अमृत तत्त्व है । वे तीक्ष्ण आदित्य-रूप और पुरोडाश आदि हविष्यान्न भी वही हैं ॥६६ ॥

१०१६. ऋचो नामास्मि यजू ᳪषि नामास्मि सामानि नामास्मि । ये अग्नयः पाञ्चजन्याऽ अस्यां पृथिव्यामधि । तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥६७ ॥

अद्वैतवादी याजक स्वयं को अग्निरूप में अनुभव करता हुआ कहता है कि ऋग्वेद नामक अग्नि मैं ही हूँ । मैं यजुर्वेद और सामवेद नामक अग्नि भी हूँ । इस पृथिवी पर जो पाँचों प्रजाजनों के निमित्त हितकारक अग्नि है, उनमें हे विशिष्ट यज्ञाग्नि ! आप श्रेष्ठ हैं । सत्कर्मरत हम याजकों को आप दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥६७ ॥

१०१७.वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥६८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का हनन करने वाले हैं, शत्रुओं पर आक्रमण कर उन्हें पराजित करने वाले, अति सामर्थ्यवान् हैं, हम आपको बार-बार बुलाते हैं ॥६८ ॥

१०१८. सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् । अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥६९ ॥

अनेकों याजकों द्वारा हवि प्राप्त करने वाले हे इन्द्रदेव ! समीपस्थ शत्रु और कुत्सित वचन कहने वाले शत्रु को हस्तहीन (शस्त्रहीन) करके कुचल डालें । हे इन्द्रदेव ! आप वृद्धि को प्राप्त होने वाले तथा सब ओर हिंसा का आतंक फैलाने वाले हैं । आप वृत्रासुर को पादरहित अर्थात् गतिहीन करके विनष्ट करें ॥६९ ॥

१०१९. वि नऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो अस्माँ२ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥७० ॥

हे इन्द्रदेव ! संग्राम में हमारे शत्रुओं को पूरी तरह पराजित करें । युद्ध की कामना करते हुए जो हमारे विरुद्ध सैन्य बल खड़े करने वाले हैं, उन शत्रुओं को नीचे पहुँचा दें । जो शत्रु हमें वश में करके दासत्व देने की इच्छा करें, उन्हें गहन तमिस्रा के गर्त में डाल दें ॥७० ॥

१०२०. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽ आ जगन्था परस्याः । सृक ꣳ स ꣳ शाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥७१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कुटिल चाल वाले, पर्वत की गुफाओं मे रहने वाले, सिंह के सदृश, विकराल, दूरस्थ शत्रुओं को सब ओर से घेर लें । अपने तीक्ष्ण वज्र से शत्रु के शरीर को क्षत-विक्षत करके उन्हें प्रताड़ित करें तथा शत्रुसेना को पीछे भगा दें ॥७१ ॥

१०२१. वैश्वानरो नऽ ऊतयऽ आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥७२ ॥

प्राणि मात्र का कल्याण करने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारी उत्तम स्तुतियों का श्रवण करें । दूर देश से भी पधारकर सत्कर्मरत हम याजकों की रक्षा करें ॥७२ ॥

१०२२.पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥७३ ॥

प्राणि-मात्र का कल्याण करने वाले अग्निदेव से द्युलोक में स्थापित आदित्य-रूप के विषय में पूछा गया है । अन्तरिक्ष में विद्यमान जल में व्याप्त विद्युद्रूप के विषय में पूछा गया है । पृथ्वी के ऊपर सम्पूर्ण ओषधियों में प्रविष्ट हुए अग्नितत्त्व के विषय में तत्सम्बन्धी शोध हेतु पूछा गया है । बल पूर्वक मन्थन से उत्पन्न होने वाले हे अग्निदेव ! आप कौन हैं ? आप हमें दिन और रात्रि में हिंसा से संरक्षित करें । ॥७३ ॥

१०२३.अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् ।अश्याम वाजमभि वाजयन्तोश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७४ ॥

हे अग्निदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर हम कामनाओं को पूर्ण करें । हे ऐश्वर्यवान् ! आपकी कृपा से हम उत्तम वीर-सन्तान और ऐश्वर्य को प्राप्त करें । संग्राम में शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त कर ऐश्वर्य को प्राप्त करें । हे जरारहित ! आपकी कभी क्षीण न होने वाली तेजस्विता को हम प्राप्त करें ॥७४ ॥

१०२४.वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥७५ ॥

हे अग्ने ! हम ऊंचे किये हाथों से नमस्कार कर आपके समीप पहुँचते हैं । आज हम यज्ञ- अनुष्ठान में तत्पर हैं । एकाग्रचित्त और मननशील मन से, अभीष्ट हव्य को आपके निमित्त अर्पण करते हैं । हे अग्ने ! इस उत्तम हवि को बुद्धिमान् देवों तक पहुँचाएँ ॥७५ ॥

१०२५.धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥

सब लोकों को धारण करने वाले देवगण, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, बृहस्पति एवं उत्तम बुद्धि वाले हे विश्वेदेवो ! आप हमारे यज्ञ को श्रेष्ठ धाम में स्थापित करें । याजकों के इस श्रेष्ठ कर्मरूप यज्ञानुष्ठान को दिव्यलोक तक पहुँचाएँ ॥७६ ॥

१०२६.त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥७७ ॥

हे अति जाज्वल्यमान युवा अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा वेदमन्त्रों के रूप में स्तुतियों का श्रवण करें और यजमान के पुत्र-पौत्रादि का रक्षण करें । सत्कर्मरत याजकों से सम्बन्धित सभी मनुष्यों की सुरक्षा करें ॥७७ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द- विवरण—

ऋषि— देवगण १-३० । लुशोधानाक ३१-४५, ४८ । इन्द्राग्नी ४६, ४७ । शुनः शेप ४९-५५ । गालव ५६,५७ । विश्वकर्मा ५८-६०, ६३-६५ । बन्धु आदि ६१,६२ । देवश्रवा और देववात भारत ६६, ६७ । इन्द्र, विश्वामित्र ६८, ६९ । शास भारद्वाज ७० । जय ऐन्द्र ७१, ७२ । कुत्स ७३ । भरद्वाज ७४ । उत्कील कात्य ७५, ७६ । उशना काव्य ७७ ।

देवता— अग्नि १-२९, ३५, ३६, ४६-४८, ५०-५५, ५७-५९, ६१-६६, ७४, ७५, ७७ । पृथिवी ३० । विश्वेदेवा ३१, ७६ । अन्न ३२-३४ । सविता, लिंगोक्त ३७ । गंधर्व, अप्सराएँ ३८-४३ । प्रजापति ४४ । वायु ४५ । वरुण ४९ । यजमान ५६ । अग्नि अथवा देवगण ६० । आत्मा, अग्नि ६७ । वृत्रहा (इन्द्र) ६८-७१ । वैश्वानर ७२, ७३ ।

छन्द— शक्वरी १, ९ । भुरिक् अतिजगती २ । भुरिक् शक्वरी ३, ११, १८,२२ । निचृत् अत्यष्टि ४, १९ । स्वराट् शक्वरी ५, ८, १७ । भुरिक् अतिशक्वरी ६, १२, १३ । भुरिक् अतिजगती ७ । निचृत् शक्वरी १० । भुरिक् अष्टि १४ । विराट् आर्षी पंक्ति १५ । निचृत् अतिशक्वरी १६ । स्वराट् अतिधृति २० । विराट् धृति २१ । पंक्ति २३ । संकृति, विराट् संकृति २४ । भुरिक् पंक्ति, निचृत् आकृति २५ । ब्राह्मी बृहती २६ । भुरिक् आर्षी पंक्ति २७, ४४ । भुरिक् आकृति, आर्ची बृहती २८ । स्वराट् विकृति, ब्राह्मी उष्णिक् २९ । स्वराट् जगती ३० । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ३१, ४९, ५९, ६० । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् ३२, ६२ । त्रिष्टुप् ३३, ३४ । विराट् आर्षी अनुष्टुप् ३५ । आर्षी अनुष्टुप् ३६, ४७ । आर्षी पंक्ति ३७, ५३ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप् ३८ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् ३९ । निचृत् आर्षी जगती ४०, ५८ । ब्राह्मी उष्णिक् ४१ । आर्षी त्रिष्टुप् ४२, ६१, ६९, ७१, ७३, ७५ । विराट् आर्षी जगती ४३, ५२ । निचृत् अष्टि ४५ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् ४६, ४८ । भुरिक् आर्षी उष्णिक् ५०, ५४ । स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप् ५१ । आर्षी जगती ५५, ६७ । आर्षी उष्णिक् ५६ । निचृत् आर्षी गायत्री ५७ । निचृत् अनुष्टुप् ६३, ६४, ७०, ७६ । विराट् अनुष्टुप् ६५ । निचृत् त्रिष्टुप् ६६, ७४ । निचृत् गायत्री ६८, ७७ । आर्षी गायत्री ७२ ।

॥ इति अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥

१०२७. स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन। मधुमतीं मधुमता सृजामि सᳯं सोमेन। सोमोस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥१ ॥

उत्तम स्वादयुक्त, तीक्ष्ण, अमृतोपम गुणवाली, मधुर रसवाली (हे ओषधि !) आपको अति स्वादिष्ट, तीक्ष्ण, अमृतोपम और मधुर सोम के साथ मिश्रित करते हैं। हे ओषधे ! सोम के संसर्ग से आप सोम के तुल्य हो गयी हैं। आप दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त परिपक्व हों। देवी सरस्वती के निमित्त परिपक्व हों और सब प्रकार संरक्षण देने वाले इन्द्रदेव के लिए भी परिपक्व हों ॥१ ॥

१०२८. परीतो षिञ्चता सुतᳯं सोमो य उत्तमᳯं हविः। दधन्वा यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! यह सोम उत्तम हविरूप है। यह सोम याज्ञिकों का हितकारी होकर उनके निमित्त सुख धारण करता है। जल के मध्य व्याप्त इस सोम को पाषाणों द्वारा (कूटकर) निचोड़ो और उस पवित्र सोम को गोदुग्ध के साथ सम्मिश्रित करो ॥२ ॥

१०२९. वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा। वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३ ॥

यह दिव्य सोम जब ऊपर से (अन्तरिक्ष से) अवतरित होता है, तब वायु के द्वारा शुद्ध होकर इन्द्रदेव (नियन्त्रक देवशक्ति) का मित्र बनता है। यही सोम जब नीचे से ऊपर (यज्ञादि द्वारा) जाता है, तब भी वायु से शुद्ध होकर इन्द्रदेव का मित्र सिद्ध होता है ॥३ ॥

१०३०. पुनाति ते परिस्रुतᳯं सोमᳯं सूर्यस्य दुहिता। वारेण शश्वता तना ॥४ ॥

हे यजमान ! जिस प्रकार सोम को शाश्वत छन्ना (प्रकृतिगत शोधन प्रक्रिया) पवित्र करता है, उसी प्रकार श्रद्धा तुम्हें पवित्र करती है। (देवशक्तियों के लिये उपयोगी बनाती है) ॥४ ॥

१०३१. ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज ऽ इन्द्रियᳯं सुरया सोमः सुत ऽ आसुतो मदाय। शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥५ ॥

हे दिव्य सोम ! आप अपने शुभ्र तेज से देवों को प्रसन्न करें। रसयुक्त अन्न को यजमान के लिए प्रदान करें। अभिषुत हुआ यह सोम, ब्रह्मबल और क्षात्रबल को पवित्र करता है तथा उनके तेज और इन्द्रिय-सामर्थ्य को प्रकट करता है। तीक्ष्ण स्वभाव वाली, उत्तम रसरूप ओषधि से संयुक्त होकर यह सोम और भी अधिक आनन्ददायक हो जाता है ॥५ ॥

१०३२. कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम ऽ उक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण ऽ एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥६ ॥

हे सोम ! जैसे यवादि अन्न से सम्पन्न कृषक पर्याप्त जौ प्राप्ति के लिए शीघ्रता से उसे काटकर सुरक्षित रखते हैं। वैसे ही आप इस यजमान के लिए सब भोज्य पदार्थों को तैयार रखें। कुश-आसन पर विराजित ये

यजमान हविष्यान्न लेकर मन्त्रों के साथ यजन करते हैं। हे हव्यरूप सोम !आप उपयाम पात्र में गृहीत होते हैं। हम आपको अश्विनीकुमारों के निमित्त ग्रहण करते हैं। यह आपका उत्पत्ति स्थान है, अतः इस स्थान पर हम आपको स्थापित करते हैं। सरस्वती देवी के निमित्त आपको स्थापित करते हैं। रक्षा करने वाले श्रेष्ठ इन्द्रदेव के निमित्त आपको स्थापित करते हैं। शौर्य और बल-सम्पन्नता के निमित्त भी आपको यहाँ स्थापित करते हैं ॥६ ॥

[इस अध्याय की कण्डिकाओं में सुरा एवं सोम का नाम अनेक बार आया है। सोमलता आदि लताओं से निचोड़े गये पोषक रस को 'सोम' कहा जाता था और ओषधियों का आसवन करके निकाले गये द्रव को सुरा कहते थे। कुछ रोगनाशक एवं पुष्टिकारक ओषधियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें हलकी तंद्रा लाने का गुण (सैडेटिव इफैक्ट) होता है । सुरा उसी प्रकार का उपयोगी द्रव था। कालांतर में सुरा शब्द विशुद्धरूप से शराब आदि नशीले पेयों के लिए प्रयुक्त होने लगा। वेदोक्त 'सुरा' को वर्तमान प्रचलन के अर्थों में प्रयुक्त नहीं करना चाहिए।]

१०३३.नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳ सृक्षाथां परमे व्योमन्। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम ऽ एष मा मा हिꣳ सीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥७॥

हे सुरा (ओषधिरस) और सोम ! जैसे देवों के हितकारी आप दोनों यज्ञशाला में पृथक्-पृथक् स्थित होते हैं, वैसे ही अत्यन्त ऊँचे आकाश में (यजन के बाद) भी आप संयुक्त न हों।हे सुरे !आप बलशाली रसरूप हैं और यह सोम आपसे भिन्न प्रकृति वाला है, अतः उसके स्थान में प्रवेश करते हुए आप सोम की प्रकृति नष्ट न करें ॥७ ॥

१०३४. उपयामगृहीतोस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम्। एष ते योनिर्मोदाय त्वा नन्दाय त्वा महसे त्वा ॥८ ॥

हे सोम ! आप उपयाम पात्र में संगृहीत हों। यह आपका स्थान है, इस स्थान में आपको अश्विनीकुमारों के तेज, देवी सरस्वती के बल एवं इन्द्रदेव के शौर्य की प्राप्ति के निमित स्थापित करते हैं। हे सोम ! आपको देवों के हर्ष, आनन्द एवं उनकी महत्ता के लिए उन्हें प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१०३५. तेजोसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोसि सहो मयि धेहि ॥९ ॥

हे तेजस्वी ! हमें तेजयुक्त करें। हे वीर्यवान् ! हमें पराक्रमी बनाएँ । हे बलशाली ! हमें बलवान् बनाएँ। हे ओजस्वी ! हमें ओजवान् बनाएँ। हे मन्युरूप ! हमें अनीति प्रतिरोध की क्षमता प्रदान करें। हे संघर्षशील ! (आक्रमणकारियों को प्रत्युत्तर देने में समर्थ) हमें संघर्ष की क्षमता दें ॥९ ॥

१०३६. या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति। श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳ हꣳ सेमं पात्वꣳ हसः ॥१० ॥

जो विसूचिका (रोग की अधिष्ठात्री देवी) बाघ और भेड़िया इन दोनों की रक्षा करती है और वेग से जा टूटने वाले दोनों श्येन तथा सिंह की भी रक्षा करती है, वह इन याजकों की भी रक्षा करे। [अर्थात् जिस प्रकार पुरुषार्थी भूचरों एवं नभचरों पर विसूचिका का असर नहीं होता, वैसे ही याजकों पर भी न हो] ॥१० ॥

१०३७. यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्। एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया। सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥११ ॥

बालक (अनजाने में ही) दूध पीकर, हर्षित होता हुआ (हाथ-पैर पीटकर) माँ को प्रताड़ित करता है । हे अग्निदेव ! हम इस प्रकार माता-पिता के प्रति हुए ऋणों से आपकी साक्षी में उऋण होना चाहते हैं । अपनी जानकारी से हमने अपना कल्याण करने वाले माता-पिता का अहित नहीं किया है । आप संयोग कराने में समर्थ हैं, हमें कल्याण से युक्त करें। आप वियोग करने में समर्थ हैं, हमें पापों से विमुक्त करें ॥११ ॥

१०३८.देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना। वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥१२ ॥

देवों ने ओषधियों का हवन कर यज्ञ का विस्तार किया । वैद्य अश्विनीकुमारों ने और देवी सरस्वती ने वेद-वाणियों से इन्द्रदेव के लिए इन्द्रिय-सामर्थ्यों को धारण किया ॥१२ ॥

१०३९.दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि। क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥१३ ॥

नवोत्पन्न व्रीहि (चावल) दीक्षा यज्ञ के लिए अनिवार्य है । नवीन जौ प्रायणीय यज्ञ के रूप हैं । खरीदे गये लाजा (खीलें) तथा शहद सोम के रूप हैं ॥१३ ॥

१०४०.आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः। रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥

व्रीहि आदि धान्यों, ओषधियों के मिश्रित चूर्ण आतिथ्य रूप में उपादेय हैं । शुद्ध धान्य महावीरों के लिए उपादेय हैं । उपसद प्रक्रिया के अन्तर्गत तीन रात्रि तक अभिषुत होकर रस 'सुरा' बन जाता है ॥१४ ॥

१०४१.सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते। अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥१५ ॥

अश्विनीकुमारों द्वारा दोहन किये गये ओषधि रसों और देवी सरस्वती द्वारा दोहन किये गये दुग्ध को उत्तम प्रकार से मिश्रित किया जाता है, वही ऐश्वर्यवानों द्वारा क्रय किये हुए सोमरस का रूप है । यह ऐश्वर्य के अधिपति इन्द्रदेव के लिए है ॥१५ ॥

१०४२. आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी। अन्तरऽ उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥१६ ॥

राजा के आसन के समान आसन पर सोम स्थापित है । वेदिका पर सुरा (ओषधि रस) का कुंभ स्थापित है । दोनों के बीच का खाली स्थान उत्तरवेदी (अगले चरण में उपयोग के स्थल) रूप में है । (ओषधि और अनुपान को मिलाने वाले कुशल ओषधिकर्त्ता) भिषक् के रूप में कारोत्तर (छानने का यंत्र) स्थापित है ॥१६ ॥

१०४३.वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्। यूपेन यूपऽ आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥१७ ॥

प्रकृति में चल रहे विराट् यज्ञ के घटकों से इस यज्ञ के घटक प्राप्त किये गये हैं, इस भाव से यह मंत्र फलित होता है—

इस यज्ञ के लिए वेदी (पृथ्वी) से यह वेदिका, कुशाओं से कुशा, (दिव्य) इन्द्रियों से पुरुषार्थ, स्तंभ रूप (वृक्षों) से स्तंभ और दिव्य अग्निदेव से अग्नि को सम्यक्‌रूप से प्राप्त किया गया है ॥१७ ॥

१०४४.हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती। इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥

यज्ञ में जो अश्विनीकुमार हैं, उनकी अनुकम्पा से सोम सम्बन्धी हव्य पदार्थ प्राप्त होते हैं । जो देवी सरस्वती हैं, उनकी अनुकम्पा से सोम सम्बन्धी आग्नीध्र प्राप्त होते हैं । इन्द्रदेव के लिए उनके ऐश्वर्य के अनुरूप हवियाँ, सभागृह में (ज्ञानयज्ञ), पत्नीशाला में (बलिवैश्व यज्ञ) एवं गार्हपत्य अग्नि में (देवयज्ञ द्वारा) प्रस्तुत की जाती हैं ॥१८॥

१०४५.प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिरनुयाजान् वषट्कारेभिराहुतीः॥

प्रैष-आज्ञादि कर्मों से आज्ञाकारियों की, तृप्तिकारक क्रियाओं से तृप्ति प्रदाताओं की, श्रेष्ठ यज्ञ साधनों से यज्ञादि क्रियाओं की और वषट्कार (स्वाहाकार) आदि से आहुतियों की प्राप्ति होती है ॥१९ ॥

१०४६. पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवी॑ᳬ ष्या। छन्दोभिः सामिधेनी-र्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥२० ॥

पशुओं के माध्यम से पशुओं की, पुरोडाश से हव्य पदार्थों की, छन्दों से छन्दों (काव्य शक्ति) की, सामधेनी (विशिष्ट ऋचाओं) से सामधेनियों (रहस्यात्मक ज्ञान) की तथा यज्ञादि क्रियाओं से यज्ञ के अनुरूप आचरण की प्राप्ति होती है ॥२० ॥

१०४७.धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि। सोमस्य रूप॑ᳬ हविषऽ आमिक्षा वाजिनं मधु ॥२१ ॥

भूने हुए धान्य, लप्सी, सत्तू आदि- यह हव्य पदार्थ एवं दुग्ध, दधि आदि सोम के रूप हैं । छेना, शहद और अन्नादि हविष्य रूप हैं ॥२१ ॥

१०४८. धानाना॑ᳬ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः। सक्तूना॑ᳬ रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥२२ ॥

मूल धान्य ही भुने हुए अन्न के रूप में, गेहूँ के पके हुए पुरोडाश आदि हव्य पदार्थों के रूप में,(चूर्ण बनाया हुआ) बेर सत्तूरूप में और यव लप्सी के रूप में यज्ञार्थ प्रयुक्त हैं ॥२२ ॥

१०४९.पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि। सोमस्य रूपं वाजिन॑ᳬ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥२३ ॥

यह जो यव है, वह दुग्ध के समान पौष्टिक रूप में है, बेर दही के रूप में है तथा अन्न सोम के रूप में है और दही मिश्रित दुग्ध एवं सोम रस चरु के सदृश है ॥२३ ॥

[**यहाँ दूध आदि पौष्टिक पदार्थों के अभाव में उनकी पूर्ति अन्न आदि भूमि उत्पादनों से करने का संकेत है ।**]

१०५०.आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः। यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः ॥२४ ॥

स्तोत्र की पहली तीन ऋचाएँ "आश्रावाय" शब्द को लक्षित करती हैं तथा अन्तिम तीन ऋचाएँ "प्रत्याश्राव" को । धाय्या नामक ऋचाएँ "यज" पद से प्रारम्भ होती हैं । प्रगाथा रूप ऋचाओं का प्रारम्भ "ये यजामहे" पद से होता है ॥२४ ॥

१०५१.अर्धऋचैरुक्थाना॑ᳬ रूपं पदैराप्नोति निविदः । प्रणवैः शस्त्राणा॑ᳬ रूपं पयसा सोमऽ आप्यते ॥२५ ॥

अर्द्ध ऋचाओं के उच्चारण से उन मन्त्रों का बोध होता है, जो उक्थ नाम से जाने जाते हैं । पदों से 'निविद' नामक ऋचाओं के उच्चारण का बोध किया जाता है । प्रणवों से शस्त्रों (स्तोत्रों) के रूप का अनुभव करते हैं तथा दुग्ध से सोम के रूप का आभास होता है ॥२५ ॥

१०५२.अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यंदिनम्। वैश्वदेव॑ᳬ सरस्वत्या तृतीयमाप्त॑ᳬ सवनम् ॥२६ ॥

"प्रातः सवन" की प्राप्ति दोनों अश्विनीकुमारों द्वारा होती है, "माध्यन्दिन सवन" की प्राप्ति इन्द्र देवता सम्बन्धी इन्द्रदेव के मन्त्रों से होती है और "तृतीय सवन" की प्राप्ति विश्वेदेवों से सम्बन्धित देवी सरस्वती के माध्यम से होती है ॥२६ ॥

१०५३.वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम्। कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥२७ ॥

प्रकृति में चल रहे विराट् यज्ञ के घटकों से इस यज्ञ के घटक प्राप्त किये गये हैं। इस भाव से यह मन्त्र घटित होता है—

वायव्य पात्रों की प्राप्ति (अनन्त अन्तरिक्ष स्थित) महान् वायव्य सोमपात्रों से होती है और द्रोण कलश की प्राप्ति वेतस् (बेंत) पात्र द्वारा; सोम सवन होने पर दोनों कुम्भियों के द्वारा पूतभृत् और आधवनीय की प्राप्ति होती है तथा स्थालियों की प्राप्ति याज्ञिक यजमान को दिव्य स्थालियों द्वारा होती है ॥२७ ॥

१०५४.यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः। छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथऽआप्यते ॥२८ ॥

यजुर्मन्त्रों के द्वारा यजु, सब ग्रह-पात्रों के द्वारा ग्रहपात्र, सब स्तोमों (प्रशस्तियों) द्वारा स्तोम, उत्तम स्तुतियों द्वारा स्तुति, छन्दों द्वारा सब उक्थ और शस्त्र (स्तोत्र), साम मन्त्रों से साम तथा अवभृथ स्नान से अवभृथ (का पुण्य) प्राप्त होता है ॥२८ ॥

१०५५. इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः। शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥२९ ॥

यज्ञ मे प्रयुक्त होने वाले अन्न के त्याग (हविष्यान्न आदि) से प्राणपर्जन्यरूपी पोषक पदार्थों की प्राप्ति होती है। उत्तम मन्त्र रूपी शुभ वचनों के प्रयोग से आशीष की प्राप्ति होती है। संयम से पति-पत्नी के प्रीति-संबंध की प्राप्ति और सामूहिक रूप से सम्पन्न होने वाले यज्ञानुष्ठानों से संगठित समाज की प्राप्ति होती है ॥२९ ॥

१०५६.व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥३० ॥

व्रतपूर्वक यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करने पर मनुष्य (दीक्षा) दक्षता को प्राप्त करता है; दक्षता से प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है; प्रतिष्ठा से श्रद्धा की प्राप्ति होती है और श्रद्धा से सत्य (रूप परमेश्वर) को प्राप्त करता है ॥३० ॥

१०५७. एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम्। तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥

देवों और ब्रह्मा द्वारा सम्पादित यज्ञ का उत्तम-स्वरूप सौत्रामणी- यज्ञ रूप में वर्णित है। इस सौत्रामणी यज्ञ में सोम का अभिषवण होने पर यज्ञ पूर्णता को प्राप्त होता है ॥३१ ॥

१०५८.सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः। दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥३२ ॥

स्तुतिगान द्वारा, दिव्यलोक मे निवास करने वाले देवताओं के निमित्त सोमरस को धारण करते हुए श्रेष्ठ याज्ञिक एवं कुशा के आसन पर विराजमान देवताओं से युक्त सोम रस को विनिर्मित करने वाले उत्तम ऋत्विज, सौत्रामणी नामक यज्ञ को संवर्धित करते हैं। ऐसे इस श्रेष्ठ यज्ञ में हम महान् वैभव से सम्पन्न इन्द्रदेव के लिए यजन करते हुए हर्षित हों ॥३२ ॥

१०५९. यस्ते रसः सम्भृत ऽ ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य। तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥३३ ॥

हे सोमरस ! ओषधियों मे संगृहीत किया गया आपका जो सारतत्व है, वह तीक्ष्ण ओषधिरस है। अभिषुत सोम में जो पोषक तत्त्वरूप बल है, उस आनन्दप्रदायक रसरूप सार से यजमान, देवी सरस्वती, दोनों अश्विनीकुमारों और अग्निदेव को संतुष्ट करें ॥३३ ॥

१०६०. यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय। इमं तᳬ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुᳬ सोमᳬ राजानमिह भक्षयामि ॥३४॥

दोनों अश्विनीकुमारों ने असुर पुत्र नमुचि के पास से जिस सोम को उपलब्ध किया, देवी सरस्वती ने जिसे इन्द्रदेव की पराक्रमशक्ति बढ़ाने के निमित्त ओषधि रूप में अभिषुत किया। वैभव-सम्पन्न, सुसंस्कृत राजा (तेजस्वी व्यक्ति) मधुरतायुक्त रस वाले उस सोम का सोमयज्ञ में सेवन करते हैं ॥३४॥

१०६१.यदत्र रिप्तᳬरसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः। अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमᳬ राजानमिह भक्षयामि ॥३५॥

रसयुक्त अभिषुत हुए सोम का जो भाग यहाँ विद्यमान है और जिसे अपने बल-पराक्रम से इन्द्रदेव ने पिया है, उस दीप्तिमान् सोम का अपने कल्याण की भावना तथा उत्तम मन से, इस यज्ञ में, हम सेवन करते हैं ॥३५॥

१०६२.पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन् पितरोमीमदन्त पितरोतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥३६॥

स्वधा (अन्न) को धारण करने वाले पितरों को स्वधा संज्ञक अन्न प्राप्त हो। स्वधा को धारण करने वाले पितामह को स्वधा संज्ञक अन्न प्राप्त हो। स्वधा को धारण करने वाले प्रपितामह को स्वधा संज्ञक अन्न प्राप्त हो। पितरों ने हविष्यान्न के रूप में समर्पित आहार को ग्रहण करके तृप्ति को प्राप्त किया। पितर तृप्त होकर हमें भी तृप्त करते हैं। हे पितृगण! आप लोग शुद्ध होकर हमें भी पवित्र जीवन की प्रेरणा प्रदान करें ॥३६॥

१०६३. पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥

सौम्यता से परिपूर्ण, पवित्र हुए पितर-गण सौ वर्ष के पूर्ण जीवन से हमें पवित्र बनाएँ। पितामह हमें पवित्र बनाएँ॥ प्रपितामह हमें पवित्र बनाएँ। पवित्र हुए पितामह सौ वर्ष के पूर्ण जीवन से हमें पवित्र बनाएँ। प्रपितामह हमें पवित्र बनाएँ। इस प्रकार आपकी प्रेरणा से पवित्र जीवन से लाभान्वित होकर हम अपनी पूर्ण आयु का उपयोग करें ॥३७॥

१०६४.अग्न ऽ आयूᳬषि पवस ऽ आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥

दीर्घायुष्य प्रदायक, यज्ञादि कर्म सम्पन्न कराने वाले हे अग्ने! आप हमें पोषक अन्न और दुग्ध आदि रस प्रदान करें। दुष्ट-दुराचारियों से हमारे जीवन की रक्षा करते हुए बाधाओं को दूर करें ॥३८॥

१०६५. पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३९॥

देवत्व के मार्ग का अनुगमन करने वाले पुरुष हमें पवित्र बनाएँ। सुविचारों से सुवासित मन एवं बुद्धि हमें पवित्र बनाएँ। सम्पूर्ण प्राणी हमें पवित्र बनाएँ। हे जातवेदः! (अग्निदेव) आप भी हमें पवित्र बनाएँ ॥३९॥

१०६६. पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ १ रनु ॥४०॥

हे दिव्यगुण-सम्पन्न अग्निदेव! आप अपनी जाज्वल्यमान एवं पवित्र तेजस्विता से हमें पवित्र करें। हमारे कर्मों के द्रष्टारूप आप अपने पवित्र कर्मों से हमें पवित्र करें ॥४०॥

१०६७.यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥४१ ॥

हे अग्ने ! आपकी तेजस्वी ज्वालाओं के मध्य में जो परम पवित्र सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप विविध लक्षणों से युक्त ब्रह्म विस्तृत हुआ है, उससे हमारे जीवन को पवित्र करें ॥४१ ॥

१०६८.पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा ॥४२ ॥

जो पवित्रता प्रदान करने वाले विलक्षण द्रष्टा, वायुदेव सर्वज्ञाता और स्वयं पवित्र हैं, वे आज अपनी पवित्रता से हमारे जीवन को पवित्र करें ॥४२ ॥

१०६९. उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। मां पुनीहि विश्वतः ॥४३ ॥

हे सर्व-प्रेरक सवितादेव ! आप अपने दोनों प्रकार के स्वरूपों से अर्थात् अपनी (यज्ञ के लिए) आज्ञा से और प्रत्यक्ष पवित्र स्वरूप से, सब ओर से हमारे जीवन को पवित्र बनाएँ ॥४३ ॥

१०७०. वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः। तया मदन्तः सधमादेषु वय ँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥४४ ॥

पूर्व आचार्यों के मतानुसार यह कण्डिका दक्षिणाग्नि के ऊपर स्थापित शतातृण्णा कुंभी अथवा 'उखा' पात्र अथवा वाणी को लक्ष्य करके कही गयी है—

यह विश्वदेवी (वाणी) पवित्रता का संचार करती हुई हमें प्राप्त हो। इन्हें जानकर बहुत से शरीरधारी तथा हम सब समान स्थान में आनन्दपूर्वक रहते हुए ऐश्वर्यों के अधिकारी बनें ॥४४ ॥

१०७१.ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। तेषाँल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५ ॥

विश्व की नियामक सत्ता 'यमराज' के अधीन रहने वाले, समान मन और समान चित्त वाले, जो हमारे पितर हैं, उनके पास तक हमारा स्वधा संज्ञक हविष्यान्न और मन्त्ररूप अभिवादन पहुँचे। हमारा यह यज्ञानुष्ठान समस्त दिव्य शक्तियों को सन्तुष्ट करने वाला हो ॥४५ ॥

१०७२.ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः। तेषा ँ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शत ँ समाः ॥४६ ॥

इस विश्व के जीवित प्राणियों में जो भी हमारे स्नेही परिजन समान मन और समान चित्त वाले हैं, उनका यश और अपार धन-वैभव इस लोक में सौ वर्ष पर्यन्त विद्यमान रहे। ये सब हमसे संयुक्त होकर सुशोभित हों ॥४६ ॥

१०७३.द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्। ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७ ॥

हमने मृत्युधर्मा मनुष्यों के गमन योग्य दो मार्ग सुने हैं। एक पितरों का पितृयान मार्ग और दूसरा देवों का देवयान मार्ग है। माता-पिता के संयोग से बना यह जो जीव-जगत् है, वह इन दोनों मार्गों के द्वारा ही चलता है ॥

१०७४.इदँ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरँ सर्वगणँ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥

हमारा यह हविष्यान्न सन्तानों की वृद्धि करने वाला, दसों इन्द्रियों की सामर्थ्य को बढ़ाने वाला, समस्त अंगों को पुष्ट करने वाला, आत्म-सुख प्रदान करने वाला, प्रजा की वृद्धि करने वाला, गौ आदि पशुओं की वृद्धि करने वाला, समाज में प्रतिष्ठा दिलाने वाला, अभय प्रदान करने वाला तथा सबके लिए कल्याणकारी हो। हे अग्ने ! आप हमारी प्रजा की वृद्धि करें और हम में अन्न, दुग्ध और वीर्य को धारण कराएँ ॥४८ ॥

१०७५. उदीरतामवरऽ उत्परासऽ उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं यऽ ईयुरवृका ऽ ऋतज्ञास्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ॥४९ ॥

जो निम्न श्रेणी के (समीपस्थ), उच्च श्रेणी के (दूरस्थ) और मध्यम श्रेणी के सौम्य प्रवृत्ति के पितर हैं, वे हमें उत्तम प्रेरणा दें। शत्रु-हीन-सत्य के ज्ञाता, जो पितर हवि आदि में समाहित प्राण की रक्षा करते हैं, वे हमारी भी रक्षा करें ॥४९ ॥

१०७६.अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वाऽ अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५० ॥

अग्नि के समान तेजस्वी, नवीन वाणियों के प्रेरक, शत्रुओं से परास्त न होने वाले, दुष्टों को भूनने वाले और सौम्य प्रवृत्ति वाले, जो हमारे पितर हैं, वे हमें सद्बुद्धि प्रदान करें। उनकी कल्याणकारिणी बुद्धि यज्ञादि सत्कर्म करने वाले हम सब याजकों का कल्याण करे ॥५० ॥

१०७७. ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः सꣳ रराणो हवीꣳ ष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥५१ ॥

जो सौम्य प्रवृत्ति वाले, विशिष्ट सुखों में रहने वाले, वसिष्ठ गोत्रीय हमारे पूर्व पितर हैं, वे सोमपान करने के योग्य उत्तम आचरण वाले हैं। वे पितर हमारे मंगल की कामना करने वाले हों। हमारे आवाहन पर इस यज्ञ में नियमनकर्त्ता यम के साथ पधारें तथा हवियों को ग्रहण करते हुए तृप्त हों ॥५१ ॥

१०७८. त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्। तव प्रणीती पितरो नऽ इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥५२ ॥

अति देदीप्यमान हे सोम ! आप अपनी बुद्धि द्वारा अति सुगम देवत्व के मार्ग की ओर ले जाने वाले हैं। हे सोम ! आपके सहयोग को प्राप्त करके हमारे धैर्यवान् पितरों ने यज्ञ-अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ कर्म सम्पादित किये तथा इनकी सुखद फलश्रुतियों को प्राप्त किया ॥५२ ॥

१०७९. त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः। वन्वन्नवातः परिधीँ२ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥५३ ॥

हे पवित्र सोम ! आपके सहयोग से ही हमारे पूर्वकालीन पितरों ने समस्त यज्ञादि कर्मों को सम्पादित किया। आप इस समय हमारे निमित्त यज्ञीय कर्मों में संयुक्त होकर विघ्नकारियों को दूर भगाएँ। वीर अश्वारोही इन्द्रदेव के समान आप ऐश्वर्य- प्रदाता सिद्ध हों ॥५३ ॥

१०८०.त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ। तस्मै त ऽ इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४ ॥

हे सोम ! हमारे पालकों-पूर्वजों के साथ सम्मिलित होकर आप द्युलोक और पृथ्वी में सुखों को विस्तृत करें। हे प्रकाशक सोम ! हम आपके लिए हवि देकर यज्ञ करते हैं। आप हमारे लिए महान् ऐश्वर्य उपलब्ध कराएँ ॥५४ ॥

१०८१. बर्हिषदः पितरऽ ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। तऽ आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥५५ ॥

कुश-आसन पर विराजित होने वाले हे पितरो ! आपके लिए इन हविष्यान्नों को हम समर्पित करते हैं। आप इन्हें अपनी तृप्ति के लिए प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें। आप अत्यन्त सुखकारी रक्षण-साधनों के साथ इस यज्ञ में पधारें। सब प्रकार के भय, पाप और दुःखों को दूर करके हमें सुखी बनाएँ ॥५५ ॥

१०८२.आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ २ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः । बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त ऽ इहागमिष्ठाः ॥५६ ॥

हम विविध ज्ञानों के उत्तम ज्ञाता, अपने पितरों के शुभ ज्ञान को ग्रहण करें । व्यापक परमेश्वर के शाश्वत गतिशील सृष्टि-चक्र के क्रम को समझें । कुश के आसन पर अधिष्ठित स्वधा (पितरों के निमित्त प्रदत्त अन्न आदि) युक्त सोमरस का पान करने वाले हमारे सभी पितर इस यज्ञस्थल पर पधारें ॥५६ ॥

१०८३.उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु । त ऽ आ गमन्तु त ऽ इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥५७ ॥

जो सोम की इच्छा करने वाले कुशादि पर विराजित अति प्रिय पितर हैं, उनका हम इस यज्ञ में आवाहन करते हैं । वे इस यज्ञ में पधारें । हमारे वचनों को सुनें । पिता की भाँति वे हम पुत्रों को प्रेरक उपदेश करें और हमारी रक्षा करें ॥५७ ॥

१०८४.आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोधि ब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥५८ ॥

जो सोम के समान सौम्य प्रवृत्ति वाले, अग्निवत् तेजस्विता धारण करने वाले हमारे पितर हैं, वे देवों के लिए दिव्यमार्ग से इस यज्ञ में पधारें ।यहाँ स्वधा से सन्तुष्ट होकर हमें दिव्य ज्ञान का उपदेश करें और हमारी रक्षा करें ।

१०८५.अग्निष्वात्ताः पितरऽ एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः । अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥५९ ॥

हे अग्निवत् तेजस्वी पितृगण ! आप हमारे यज्ञानुष्ठान में पधारें और उत्तम रीति से संस्कारित सर्वोच्च स्थान में प्रतिष्ठित होकर अति प्रयत्न से सिद्ध हुए हविष्यान्नों को ग्रहण करें । फिर कुश— आसनों पर विराजित आप, हम याजकों को वीर-पराक्रमी सन्तानें और धन-धान्य आदि महान् ऐश्वर्यों को प्रदान करें ॥५९ ॥

१०८६.येऽ अग्निष्वात्ता येऽ अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥६० ॥

जो अग्नि संस्कार से ऊर्ध्वगति को प्राप्त हुए पितर हैं अथवा जो अभी ऊर्ध्वगति को प्राप्त नहीं हुए हैं, द्युलोक के मध्य विद्यमान वे सब पितर स्वधा-संज्ञक अन्न पाकर आनन्दित होते हैं । उन सभी को स्वयं विराट् परमात्मा, मनुष्य के लिए प्राप्त होने वाले शरीर को कर्मफल की मर्यादा के अनुसार प्रदान करते हैं ॥६० ॥

१०८७. अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं यऽ आशुः । ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१ ॥

अग्नि के माध्यम से ऊर्ध्वगति को प्राप्त हुए पितर (अग्नि विद्या के ज्ञाता-पितर) जो यज्ञादि कर्मों में सोम पीने वाले हैं, उत्तम पुरुषों के योग्य प्रशंसा करते हुए हम उनका आवाहन करते हैं । वे ज्ञान-सम्पन्न पितर हमारे लिए धन-धान्यादि के रूप में अपार वैभव प्रदान करें ॥६१ ॥

१०८८. आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे । मा हिꣳसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व ऽ आगः पुरुषता कराम ॥६२ ॥

हे सम्पूर्ण पितरो ! हम लोग दायें घुटने को टेककर (हनुमान् मुद्रावत्) बैठकर आप सबका सत्कार करते हैं । आप हमारे यज्ञ कर्मों की उत्तम समीक्षा कर अपने अभिमत प्रकट करें । कदाचित् यज्ञ-कर्मों के पुरुषार्थ में कोई त्रुटि हो जाए, तो आप हम याजकों को किसी भी प्रकार से हिंसित न करें, अपितु हमारी रक्षा करें ॥६२ ॥

१०८९. आसीनासोऽ अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त ऽ इहोर्जं दधात ॥६३ ॥

दिव्य प्रकाश से अभिपूरित सूर्यलोक में विराजमान हे पितरो ! आप यज्ञादि अनुष्ठान करने वाले श्रेष्ठ मनुष्यों के लिए ऐश्वर्य प्रदान करें । इनके पुत्रों को भी श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे वे सब गृहस्थाश्रम में रहकर बल-वैभव को धारण करें तथा सुखी जीवन जिएँ ॥६३ ॥

१०९०. यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥६४ ॥

विद्वानों द्वारा स्तुत्य गुणों व सामर्थ्यों को धारण करने वाले हे अग्ने ! आप वाणियों द्वारा वर्णनीय, विद्वानों द्वारा स्तुत्य, जिन गुणों एवं सामर्थ्यों को श्रेष्ठ मानते हैं, उन्हें हमारे लिए भी उपलब्ध कराएँ । हमारे द्वारा देवताओं की तृप्ति के लिए समर्पित हवि उन तक पहुँचाएँ ॥६४ ॥

१०९१. यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः। प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्यऽ आ ॥६५ ॥

कव्य (पितरों के लिए आहुति) वहन करने वाले हे अग्निदेव ! आप सत्यरूपी यज्ञ को बढ़ाने वाले हैं । आप पितरों एवं देवताओं तक हमारे द्वारा समर्पित हवियाँ पहुँचाएँ ॥६५ ॥

१०९२.त्वमग्न ऽ ईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवीꣳषि ॥६६ ॥

हे कव्यवाहन (विद्वानों द्वारा वर्णित गुणों एवं सामर्थ्यों के धारक) अग्ने ! आप स्तुतियों को प्राप्त होकर उत्तम सुगंधयुक्त अन्नादि पदार्थों को वहन करें । इसे स्वधारूप में पितरों को प्रदान करें । हे देव ! आप भी प्रीतिपूर्वक हविष्यान्नों को ग्रहण करें ॥६६ ॥

१०९३. ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ२ उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व ॥६७ ॥

हमारे जो (पालकजन) पितर यहाँ अधिष्ठित हैं और जो यहाँ अधिष्ठित नहीं हैं । हम जिनको निश्चय से जानते हैं और हम जिन्हें निश्चय से नहीं जानते । हे जातवेदः ! (अग्ने !) वे जितने भी हों, उन्हें आप जानें । अन्नादि पोषक पदार्थों से स्वधापूर्वक उत्तम प्रकार से सम्पादित इस यज्ञ को आप सभी स्वीकार कर सन्तुष्ट हों ॥६७ ॥

१०९४. इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य ऽ उपरास ऽ ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥६८ ॥

जो पूर्व पितर स्वर्ग में गमनशील हुए, जो मुक्ति पाकर विलीन हो चुके हैं, जो पृथ्वी में ज्योतिरूप में अवस्थित हैं अथवा जो उत्तम धर्म-पालकों और बलयुक्त प्रजाओं के सहायकरूप हैं; उन सब पालक पुरुषों को (पितरों को) आदर सहित यह अन्न प्राप्त हो ॥६८ ॥

१०९५.अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्नऽ ऋतमाशुषाणाः। शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ॥६९ ॥

हे अग्ने ! जैसे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए हमारे पूर्व के पालक जनों (पितरों) ने शरीर त्याग कर पवित्र और सत्यलोक को प्राप्त किया । उत्तम ज्ञान का विस्तार करते हुए और अविद्या-रूपी अन्धकार के आवरण को भेदते हुए हम भी यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करें । इस प्रकार अपने पूर्वजों की भाँति दिव्यलोक को प्राप्त करें ॥६९ ॥

१०९६. उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशतऽ आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥७० ॥

हे अग्ने ! यज्ञ व अर्थ प्राप्ति की कामना करते हुए हम आपको यहाँ स्थापित करते हैं, यज्ञ-सम्पादन की इच्छा से आपको प्रज्वलित करते हैं । सदैव अग्रणी रहने वाले आप स्वधा की कामना वाले पितरों को हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए बुलाएँ ॥७० ॥

१०९७.अपां फेनेन नमुचेः शिरऽ इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥७१ ॥

युद्ध में विशाल शत्रु सेना को परास्त करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपने नमुचि नामक असुर को पानी के फेन से सरलता से काट दिया था ॥७१ ॥

१०९८. सोमो राजामृतꣳ सुतऽ ऋजीषेणाजहान्मृत्युम्। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७२ ॥

अभिषुत हुए रसों का राजा सोम अमृत के समान ही है; क्योंकि वह सरलता से मृत्यु को दूर कर देता है । वह यज्ञ से सत्य, बल, अन्न, वीर्य, इन्द्रिय-सामर्थ्य, दुग्धादि पेय, अमृतोपम आनन्द और मधुर पदार्थों को हमारे निमित्त उपलब्ध कराता है ॥७२ ॥

१०९९. अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७३ ॥

शरीर के अंगों का रस पीने वाला प्राण, उस हंस के समान है, जो जल के बीच से दुग्धरूपी सारभूत अंश को पृथक् करके पीता है । यही ऋत से सत्य की प्राप्ति कराता है । यही प्राण हमें पान के निमित्त प्रयुक्त साधन, बल, अन्न, तेज (वीर्य), इन्द्रिय-सामर्थ्य, दुग्धादि पेय, अमृतोपम आनन्द और मधुर पदार्थ प्राप्त कराता है ॥७३ ॥

११००.सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हꣳसः शुचिषत्। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७४ ॥

हंस के समान, परमव्यापक आकाश में गमनशील आदित्यदेव जल युक्त सोम को रश्मियों से पृथक् करके सोम पान करते हैं ।इस परम सत्य से ही लौकिक सत्य प्रकट होता है ।यही सोम हमें उपयोग के निमित्त साधन, बल, अन्न, तेज(वीर्य), इन्द्रिय-सामर्थ्य, दुग्धादि पेय, अमृतोपम आनन्द और मधुर पदार्थ को प्राप्त कराता है ॥७४ ।

११०१. अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७५ ॥

वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों के साथ प्रजापति, परिस्रुत हुए अन्नों के रस में से सोम रस रूप दुग्ध को पृथक् करके पान करते हैं और क्षात्रबल को धारण करते हैं ।उक्त (ऋत) सत्य से ही (अगला) सत्य प्रकट होता है । यह अन्न-रसरूप सोम, बल, अन्न, तेज (वीर्य), सामर्थ्य, दुग्धादि पेय और मधुर पदार्थों को हमारे निमित्त उपलब्ध कराता है ॥७५ ॥

११०२.रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृतऽ उल्बं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७६ ॥

जिस प्रकार गर्भ अपनी रक्षा के लिए स्वयं को जरायु से आवृत करता है; परन्तु जन्म के पश्चात् उसे विदीर्ण कर उसका परित्याग कर देता है । एक ही मार्ग से परिस्थितिवश भिन्न-भिन्न पदार्थ (मूत्र एवं वीर्य) निःसृत होते हैं । लौकिक सत्य इसी सत्य का रूप है । यह अन्न रसरूप सोम, पान के विशिष्ट साधन, बल, अन्न, तेज (वीर्य), इन्द्रिय-सामर्थ्य, दुग्धादि पेय और मधुर पदार्थ को हमारे निमित्त प्रदान कराता है ॥७६ ॥

११०३.दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेदधाच्छ्रद्धाꣳसत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७७ ॥

प्रजापति ने भली प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य दोनों स्वरूपों को पृथक्-पृथक् देखकर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने असत्य को अश्रद्धा के रूप में तथा सत्य को श्रद्धा के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्रस्तुत सत्य उसी (ऋत) सत्य का रूप है। यह अन्न रसरूप सोम, विभिन्न पान करने के साधन, बल, अन्न, तेज, इन्द्रिय सामर्थ्य, दुग्धादि पेय, अमृतोपम मधुर पदार्थ प्रदान करता है ॥७७ ॥

११०४.वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७८ ॥

प्रजापति ने सत्य ज्ञान रूप वेदत्रयी से प्रेरित होकर इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य और अग्राह्य पदार्थों को विचार करके स्वीकार किया है। इस परम सत्य पर ही लौकिक सत्य आधारित है। यह अन्न रसरूप सोम, पान करने के विशिष्ट साधन, बल, तेज, इन्द्रियबल, दुग्धादि पेय, अमृतोपम मधुर पदार्थ प्रदान करता है। ॥७८ ॥

११०५. दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७९ ॥

प्रजापति ने शुद्ध किये हुए दीप्तिमान् सोम, रस को दूध के साथ पान किया और इस (शाश्वत) सत्य से (लौकिक) सत्य को जाना। यह अन्न रसरूप सोम पान करने के विशिष्ट साधन— बल, अन्न, तेज, इन्द्रिय-सामर्थ्य (तेज), दुग्धादि पेय और मधुर पदार्थ प्रदान करता है ॥७९ ॥

११०६. सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिणऽ ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति। अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥८० ॥

जिस प्रकार सीसे (धातु विशेष) के यन्त्र एवं ऊन आदि कोमल सूत्र वाले पदार्थों की सहायता से (पटरूप में) वस्त्र बुना जाता है, उसी प्रकार दोनों अश्विनीकुमार, सर्व प्रेरक सवितादेवता, सरस्वती, वरुण और मेधावी, क्रान्तदर्शी इन्द्रदेव के रूप को ओषधि द्वारा पुष्ट करते हैं और इस प्रकार मनोयोगपूर्वक सौत्रामणी नामक यज्ञ को सम्पन्न करते हैं ॥८० ॥

११०७.तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः स ꣳ रराणाः। लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माꣳ समभवन्न लाजाः ॥८१ ॥

इस यज्ञ में दोनों अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने मिलकर अपनी शक्ति द्वारा इन्द्रदेव के विराट् अविनाशी स्वरूप का अन्वेषण किया। यह प्रकट किया कि यज्ञ में प्रमुख बड़ी घास-वनस्पतियाँ इन्द्रदेव के शरीर के रोम हुए। यज्ञ में त्वक् से त्वचा को प्रकट किया और खीलें अर्थात् यज्ञ हवि में प्रयुक्त लाजा उनके मांस को पुष्ट करने वाले हुए ॥८१ ॥

११०८.तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम्। अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥८२ ॥

रुद्रदेव के समान स्वभाव वाले वैद्य अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने पृथिवी के ऊपर सोम को स्थापित करते हुए इन्द्रदेव के विराट् शरीर की रचना को परिपूर्ण किया। वह रचना हाड़, मज्जा और परिपक्व ओषधि रसों (हार्मोन स्राव) से निर्मित उत्तम शिल्पी के तुल्य निर्माण का परिचय देती है ॥८२ ॥

११०९. सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः । रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥८३ ॥

अश्विनीकुमारों के साथ मिलकर देवी सरस्वती, मननपूर्वक, अतिसुन्दर, स्वर्णिम, आभायुक्त, पुष्ट और दर्शनीय शरीर की रचना करती हैं। धैर्यपूर्वक इन्होंने फिर इन्द्रदेव के शरीर की सुषमा और तेजस्विता के लिए विकार-नाशक लोहित वर्णयुक्त रस (रक्त) को शरीर में उत्पन्न किया ॥८३ ॥

१११०. पयसा शुक्रममृतं जनित्र ँ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः । अपामतिं दुर्मतिं बाधमानाऽ ऊवध्यं वात ँ सब्वं तदारात् ॥८४ ॥

अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने दूध से जीवनी शक्ति बढ़ाने वाले, अमृत तुल्य प्रजननशील वीर्य को उत्पन्न किया । निकट स्थित होकर अज्ञान और दुर्मति जन्य तमिस्रा का उच्छेदन किया । वे आमाशय में स्थित असार भाग को वातनाड़ी से अपानवायु द्वारा और पक्वाशय में स्थित अन्न को विभिन्न रसों द्वारा संयुक्त करके असार भाग को मूत्र मार्ग से बाहर निकाल देते हैं ॥८४ ॥

११११. इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान । यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥८५ ॥

शरीर की सर्वोत्तम रक्षा करने वाले इन्द्रदेव ने हृदय से और सवितादेवता ने पुरोडाश संज्ञक अन्न से सत्यरूप यज्ञ के शरीर को पुष्ट किया । वरुणदेव ने ओषधि-चिकित्सा द्वारा यकृत और गले की नाड़ी को ठीक किया है । वायुरूप प्राणों ने हृदय की दोनों पसलियों की अस्थि और पित्त को व्यवस्थित किया है ॥८५ ॥

१११२. आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥८६ ॥

अभिमंत्रित स्थाली (यज्ञ पात्र विशेष) एवं अन्य पात्रों से सम्पादित आँतें एवं मलद्वार मधु (अन्नादि के सार भाग) को सर्वत्र संचरित करने वाले हैं । ये हमारे लिए दुधारू गौओं की तरह हैं । श्येन पक्षी के पंख के रूप में (हृदय के बायें भाग में) प्लीहा स्थित है । नाभिरूप राज-आसन्दी संचालन केन्द्र की तरह है और उदर माता की तरह (सारे अवयवों को पोषण देने में समर्थ) है ॥८६ ॥

१११३. कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः । प्लाशिर्व्यक्तः शतधारऽ उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८७ ॥

आसवन की गयी ओषधियों के रस के लिए स्थापित कुंभ ने कर्म के द्वारा बड़ी आँत को विकसित किया । कुंभ के अंदर गर्भरूप में स्थापित सोम के द्वारा जननेन्द्रिय का उद्भव हुआ । शतधाराओं वाले स्रोत का दोहन करके सुराधानी कुंभी ने पितरों को तृप्त किया ॥८७ ॥

१११४. मुख ँ सदस्य शिरऽ इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती । चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥८८ ॥

इन्द्रदेव के इस विराट् शरीर में मुख और मस्तक सत्य से पवित्र हैं । मुख में स्थित जिह्वा सत्य वाणी और सत्य स्वाद से पवित्र है । दोनों अश्विनीकुमार और देवी सरस्वती के द्वारा इन अंगों के संचालन से पवित्रता व्याप्त होती है । शरीर में गुदाद्वार मल विसर्जित कर शरीर को पवित्र और शान्त बनाने के लिए है और बाल शारीरिक दोषों को बाहर निकालने वाले भिषक् (उपचारकर्त्ता) रूप होते हैं । शरीर में "वस्ति" मूत्र स्थान और वेगवान् वीर्ययुक्त शेप-प्रजनन इन्द्रिय के रूप में है ॥८८ ॥

१११५. अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन। पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥८९ ॥

दोनों अश्विनीकुमारों ने ग्रहों के रूप में दो शाश्वत नेत्रों को निर्मित किया । उस हवि द्वारा उनके नेत्रों में तेज व्याप्त हुआ, जो अजा के दुग्ध से परिपक्व हुई थी । नेत्रों के नीचे वाले लोम गेहूँ के बाल से और बेरों से ऊर्ध्वलोम स्थापित किये, जो नेत्रों के शुक्ल और कृष्णरूप को संरक्षित करते हैं ॥८९ ॥

१११६.अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽ अमृतो ग्रहाभ्याम् । सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥९० ॥

उस विराट् की नासिका में बल वृद्धि के लिए 'भेड़' कारण बनी ।ग्रहों से अनश्वर प्राण का मार्ग प्रवहमान हुआ ।सरस्वती ने यव अंकुरों से व्यान वायु प्रकट किया ।बेरों और कुशाओं के द्वारा नासिका के लोम उत्पन्न हुए॥

१११७. इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳬं श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥९१ ॥

ऋषभ ने बल के निमित्त इन्द्र (इन्द्रियों) का रूप विनिर्मित किया । इन्द्र सम्बन्धी ग्रहों द्वारा अविनश्वर शब्दों को ग्रहण करने वाली श्रोत्र शक्ति से युक्त दोनों कानों की रचना हुई । जौ और कुशा से भौंहों के बालों की उत्पत्ति की और बेर से मुख में मधु के सदृश लार की उत्पत्ति की ॥९१ ॥

१११८.आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिᳬंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥९२ ॥

उस विराट् इन्द्रदेव के शरीर में उपस्थभाग के और अधोभाग के लोम वृक (भेड़िया) के लोम रूप हुए । मुख में जो मूँछ और दाढ़ी के बाल हैं, वे व्याघ्र के लोम के रूप में हुए । शिर में यश के निमित्त बाल, शिखा शोभा के निमित्त और अन्य स्थानों के बाल सिंह के लोम रूप हुए ॥९२ ॥

१११९. अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती। इन्द्रस्य रूपᳬं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥९३ ॥

अश्विनीकुमारों ने अनेकों प्राणियों द्वारा पूजित इन्द्रदेव के रूप को तथा उनकी पूर्ण आयु को, चन्द्रमा की आह्लादक ज्योति के साथ संयुक्त करके अनश्वरता प्रदान की है । अश्विनीकुमारों ने शरीर के अंगों को आत्मा के साथ संयुक्त किया और देवी सरस्वती ने उस आत्मा को अंगों के साथ सुनियोजित किया ॥९३ ॥

११२०.सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति। अपाᳬं रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳬं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥९४ ॥

सरस्वतीदेवी अश्विनीकुमारों की पत्नी बनकर उत्तम प्रकार से उस विराट् इन्द्रदेव को धारण करती हैं । जल के अधिपति वरुणदेव जल के साररूप रसों से और सामबल से, ऐश्वर्य के निमित्त इन्द्रदेव को पुष्ट करते हैं । इस प्रकार देवी सरस्वती, इन्द्रदेव को जन्म देती हैं ॥९४ ॥

११२१.तेजः पशूनाᳬं हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम ऽ इन्दुः ॥९५ ॥

चिकित्सा करने वाले दोनों अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने शक्तियुक्त-वीर्ययुक्त पशुओं के दुग्ध-घृत को मधुमक्खियों की मधु के साथ संयुक्त करके इन्द्रदेव के लिए तेजस्वी पेय विनिर्मित किया । परिस्रुत दुग्ध से अमृत के सदृश शक्तिवर्द्धक सोम को तैयार किया ।(ऐसे सौत्रामणी यज्ञकर्त्ताओं को नमन-वन्दन) ॥९५ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— प्रजापति, अश्विनीकुमार, सरस्वती १ । भारद्वाज २ । आभूति ३-५, ७-९ । सुकीर्ति काक्षीवत ६ । हैमवर्चि १०-३६ । प्रजापति ३७ । वैखानस ३८-४८ । शंख ४९-७१ । अश्विनीकुमार, सरस्वती, इन्द्र ७२-९५ ।

देवता— सुरासोम, सूर्य १ । सोम २-४, ६, ८, ४२ । सुरासोम ५, ७ । पय, सुरा ९ । विषूचिका १० । अग्नि, पयोग्रह, सुराग्रह ११ । सोमसम्पत् १२-३१ । अश्विनी-सरस्वती-इन्द्र ३२-३५, ८०-९५ । पितर ३६, ३७, ४५, ४९-७० । पवमान अग्नि ३८ । लिंगोक्त ३९ । अग्नि ४० । अग्नि, ब्रह्म ४१ । सविता ४३ । विश्वेदेवा ४४ । यजमान आशीर्वाद ४६, ४८ । देवयान-पितृयान ४७ । इन्द्र ७१ । ग्रह-समूह ७२-७९ ।

छन्द— निचृत् शक्वरी १,९ । स्वराट् अनुष्टुप् २ । भुरिक् त्रिष्टुप् ३, ७, ७२, ७८, ८०, ८१, ८३, ८५, ८९, ९१ । आर्षी गायत्री ४ । निचृत् जगती ५, ५९, ९५ । विराट् प्रकृति ६ । निचृत् पंक्ति ८,५७ । आर्षी उष्णिक् १० । शक्वरी ११ । भुरिक् अनुष्टुप् १२, १६, २५, २७ । अनुष्टुप् १३-१५, १७, २१-२३, २६, २८, ३०-३१, ३९, ४६, ६५ । निचृत् अनुष्टुप् १८,१९, २४, २९, ४५, ७० । भुरिक् उष्णिक् २० । निचृत् त्रिष्टुप् ३२, ६२, ६६, ८४ । त्रिष्टुप् ३३-३४, ५३, ५६, ६१, ६९, ७४, ८२, ८६, ९२, ९३ । विराट् त्रिष्टुप् ३५, ४४, ४९,५०,६० । निचृत् अष्टि ३६, ४८ । भुरिक् अष्टि ३७ । गायत्री ३८, ४२, ७१ । निचृत् गायत्री ४०, ४१, ४३ । स्वराट् पंक्ति ४७, ५२, ६७-६८,९४ । भुरिक् पंक्ति ५१, ५४-५५, ८७,९० । विराट् पंक्ति ५८ । स्वराट् त्रिष्टुप् ६३, ८८ । विराट् अनुष्टुप् ६४ । स्वराट् ब्राह्मी उष्णिक् ७३ । भुरिक् अतिजगती ७५, ७९ । भुरिक् अतिशक्वरी ७६ । अतिशक्वरी७७ ।

॥ इति एकोनविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ विंशोऽध्यायः ॥

११२२. क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मा त्वा हि ꣳ सीन्मा मा हि ꣳ सीः ॥१ ॥

(हे आसन्दी !) आप क्षात्रबल के आश्रय-स्थल हैं । क्षात्रबल के नाभिरूप केन्द्रबिन्दु हैं । (हे कृष्णाजिन !) यह आसन्दी आपको पीड़ा न दे । आप भी हमें पीड़ित न करें ॥१ ॥

११२३. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥२ ॥

(आसन्दी पर बैठे हुए हे यजमान !) यज्ञ के लिए संकल्पित, अनिष्ट निवारण में संलग्न तथा शुभसंकल्पयुक्त आप साम्राज्य की कामना से मानो प्रजा के ऊपर ही विराजमान हैं । (हे सौवर्ण रुक्म !) आप अकालमृत्यु के कारणों से सबकी सुरक्षा करें । विद्युत्पात जैसी विपत्तियों से रक्षित करें ॥२ ॥

११२४.देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्ये- न्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेभिषिञ्चामि ॥३ ॥

(हे यजमान !) सूर्योदय काल में अश्विनीकुमारों की बाहुओं, पूषादेवता के हाथों और अश्विनीकुमारों के ओषधि उपचारों से दिव्य तेज, ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति के निमित्त आपको हम इस स्थान में अभिषिक्त करते हैं । देवी सरस्वती द्वारा ओषधि उपचार से बल के निमित्त और अन्न की प्राप्ति के निमित्त हम आपका अभिषेक करते हैं । इन्द्रदेव की सामर्थ्य के लिए, बल-ऐश्वर्य के लिए और यश प्राप्ति के लिए आपका अभिषेक करते हैं ॥३ ॥

११२५. कोसि कतमोसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥४ ॥

हे उत्तमकीर्ति वाले ! हे उत्तम-मंगल कार्यों को करने वाले यजमान ! आप कौन से प्रजापति हैं ? आप अधिष्ठित पुरुषों में कौन हैं ? प्रजापति किस पद के लिए आपको अभिषिक्त करते हैं ?(आपको प्रजापति के सर्वोपरि पद के लिए अभिषिक्त करते हैं ।) हे श्रेष्ठ सत्यव्रती ! इस उद्देश्य के लिए आप यहाँ आएँ ॥४ ॥

११२६.शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि । राजा मे प्राणो अमृत ꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥५ ॥

(अभिषिक्त याजक-यजमान प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि) हमारा सिर ऐश्वर्य-सम्पन्न हो । हमारा मुख यशस्वी हो । हमारे केश व मूँछें कान्तियुक्त हों । हमारा श्रेष्ठ प्राण अमृत के समान हो । हमारे नेत्र प्रजाजनों को जानने वाले हों । हमारे श्रोत्र प्रजाजनों के सम्पूर्ण व्यवहारों का श्रवण करने वाले हों ॥५ ॥

११२७. जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः । मोदाः प्रमोदा ऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥६ ॥

हमारी जिह्वा कल्याणरूप वचन वाली हो । वाणी महिमा से युक्त हो । हमारा मन अनाचारियों पर क्रोध करने वाला हो । हमारी अँगुलियाँ स्पर्श सुख पाने वाली हों । हमारे सभी अंग सुख देने वाले हों । हमारे मित्र शत्रुओं को परास्त कर सकें ॥६ ॥

११२८. बाहू मे बलमिन्द्रिय ँ हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥७ ॥

हमारी दोनों भुजाएँ और इन्द्रियाँ बल-सम्पन्न हों । हमारे दोनों हाथ कर्मशील हों । हमारी आत्मा और हमारा हृदय क्षत्रिय धर्म के अनुकूल सामर्थ्यवान् हो ॥७ ॥

११२९. पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरम ँ सौ ग्रीवाश्च श्रोणी । ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥८ ॥

हमारा पृष्ठ भाग (पीठ) राष्ट्र के समान सबको धारण करने में समर्थ हो । उदर, दोनों कन्धे, गर्दन, दोनों जंघाएँ, भुजा का मध्यभाग, कटि, घुटने आदि हमारे सभी अंग प्रजा की भाँति पोषण करने योग्य हों ॥८ ॥

११३०. नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः । जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥९ ॥

हमारी नाभि ज्ञानरूप हो । हमारी गुदेन्द्रिय विज्ञान (शारीरिक संतुलन) का आधार हो । हमारी स्त्री प्रजनन में समर्थ हो । हमारे कोश (वृषण) आनन्द से युक्त हों । महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्रियों से सम्पन्न हमारा शरीर सौभाग्य युक्त हो । जंघाओं और पैरों सहित सब अंगों से धर्मरूप होकर हम समाज में प्रतिष्ठा को प्राप्त करें ॥९ ॥

११३१. प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥

हम क्षत्रियों (शौर्यवानों) एवं राष्ट्र में (उन्हें अपने वश में करके) प्रतिष्ठित होते हैं । अश्व और गो आदि पशुओं में (उन्हें प्राप्त करके) प्रतिष्ठित होते हैं ।प्राणों एवं अङ्गों में (नीरोगिता प्राप्त करके) प्रतिष्ठित होते हैं । आत्मा में (मानसिक क्लेशरहित होकर) प्रतिष्ठित होते हैं । पुष्टि में (धन-समृद्धियुक्त होकर) प्रतिष्ठित होते हैं । द्यावापृथिवी में (अलौकिक यश प्राप्त करके) प्रतिष्ठित होते हैं और यज्ञ में (यज्ञ करके) प्रतिष्ठित होते हैं ॥।१० ॥

११३२.त्रया देवाऽ एकादश त्रयस्त्रि ँ शाः सुराधसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ॥११ ॥

विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न, ग्यारह-ग्यारह देवों के तीन समूहों में ये तैंतीस देवता उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त बृहस्पतिदेव को पुरोहित बनाकर सविता के अधिशासन में रहें और वे समस्त देव अपनी दिव्य सामर्थ्यों से हमारी रक्षा करें ॥११

११३३. प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजू ँ षि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोनुवाक्याभिः पुरोनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा ऽआहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२ ॥

प्रथम देवता वसु रुद्र के साथ, दूसरे देवता रुद्र आदित्य के साथ तथा आदित्य सत्य के साथ हमारे सहायक हों । सत्य यज्ञ से युक्त हो, यज्ञ यजुष् से युक्त हो, यजुर्वेद-सामवेद से युक्त हो, सामवेद ऋचाओं से युक्त हो, ऋचाएँ पुरोनुवाक्या से युक्त हों, पुरोनुवाक्या यज्ञमन्त्रों से, यज्ञमंत्र वषट्कारों से युक्त हों, वषट्कार आहुतियों से युक्त हों, आहुतियाँ समर्पण के साथ इस पृथ्वी पर हमारी कामनाओं को भली प्रकार सिद्ध करने वाली हों ॥१२ ॥

११३४.लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्मऽ आनतिरागतिः । मा ँ सं मऽ उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा मऽ आनतिः ॥१३ ॥

हमारे शरीर के समस्त रोम सक्रिय हों । हमारी त्वचा नमनशील और सबको लुभाने वाली हो, हमारा मांस नमनशील (शरीर को लचीला बनाने वाला) हो और अस्थियाँ संसार के आधारभूत धनरूप हों । हमारी वसा शरीर को नम्रता प्रदान करने वाली हो ॥१३ ॥

११३५. यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ꣳ हसः ॥१४ ॥

हे दिव्य गुणों से देदीप्यमान देवो ! हमने आपका जो भी कोई अपराध किया है, अग्निदेव हमें उस अपराध से और अन्य सभी अधर्म के मूल कार्यों से बचाएँ । पाप से हमारी रक्षा करें ॥१४ ॥

११३६.यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳ सि चकृमा वयम्। वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥१५ ॥

यदि हमने दिन में या रात्रि में कोई पाप किया हो, तो वायु देवता हमें उस पाप से और अन्य सभी अनाचारों से भी मुक्त करें ॥१५ ॥

११३७. यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽ एनाꣳ सि चकृमा वयम्। सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ꣳ हसः ॥१६ ॥

जाग्रत् अथवा सुप्तावस्था में अर्थात् जानते हुए या अनजाने में हमसे जो भी पाप कर्म हुए हों, उन सभी से सूर्यदेव हमें बचाएँ, हमारी रक्षा करें ॥१६ ॥

११३८.यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥१७ ॥

जो ग्राम में, जो जंगल में, जो सभा में, जो इन्द्रियों से सम्पन्न कार्यों में, शूद्र अथवा वैश्य वर्ग के साथ जो भी पाप कर्म हमने किये हैं और जो अपराध किसी अधिकार को धारण करने में किया है, (हे वरुणदेव !) आप हमारे उन सभी पापों का निवारण करें ॥१७ ॥

११३९. यदापो अघ्न्याऽ इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि॥

हे वरुणदेव ! हमने अनुचित (असत्य) वार्ता के रूप में जो पाप किये हैं, उनसे आप हमें मुक्त करें । हे अवभृथ (स्नान योग्य जलप्रवाह) ! आप अनवरत गमनशील हैं, तो भी आप इस यज्ञ स्थान में मन्दगति वाले हों । हे मन्द प्रवाहित वरुण ! देवों के निमित्त देव कार्यों में हमने जो कुछ पाप कर्म किये हैं, उनका हमने प्रायश्चित्त कर लिया है । हमने मानवी व्यवहारों में जो पाप किये हैं, वे सभी दूर करें । हे वरुणदेव ! आप अनेकों हिंसक शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥१८ ॥

११४०. समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१९ ॥

हे सोम ! सागर के जल में जहाँ आपका हृदय स्थित है, वहीं आप विराजमान होते हैं । वहाँ जल के संयोग से आपके अंदर दिव्य ओषधि गुण समाविष्ट हों । जल और ओषधियाँ हमारे निमित्त मित्र की भाँति कल्याणकारी हों । जो दुराचारी (रोगादि) हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं, उनके लिए जल और ओषधियाँ शत्रु के रूप में विनाशकारी सिद्ध हों ॥१९ ॥

११४१.द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥

दिव्य गुणों से सम्पन्न जल के सम्पर्क से हम उसी प्रकार पापों से मुक्त हों, जैसे पैर से उतारते ही पादुकाएँ अलग हो जाती हैं, जैसे जल से स्नान करके व्यक्ति पसीना और मैल से रहित हो जाता है और जैसे छन्ने से छना हुआ घृत मैलरहित होता है, वैसे ही, हे आपोदेव ! आप हमें पवित्र करें ॥२० ॥

११४२.उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

हम इस भूलोक से श्रेष्ठ स्वर्गलोक में अधिष्ठित, ज्योतिष्मान् , दिव्यतेज से युक्त सूर्यदेव को देखते हुए तम (अज्ञानान्धकार) से मुक्त हों ॥२१ ॥

११४३. अपो अद्यान्वचारिषꣳरसेन समसृक्ष्महि। पयस्वानग्नऽ आगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥२२ ॥

हे अग्निदेव ! आज हमने (अवभृथरूप) जल से संसर्ग किया है । जल के रस से पवित्र हुए हम निर्मल मन से युक्त होकर ही आपके पास आए हैं । आप हमें तेज से, प्रजा से और धन से सम्पन्न करें ॥२२ ॥

११४४. एधोस्येधिषीमहि समिदसि तेजोसि तेजो मयि धेहि। समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून् कामान् व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३ ॥

अग्निदेव को समर्पित होने वाली हे समिधे ! आप वृद्धि करने वाली हैं, आपकी अनुकम्पा से हम वृद्धि को प्राप्त हों । आप उत्तम प्रकार दीप्तिमान् हैं और आप तेजरूप हैं, हमें भी दिव्यतेज प्रदान करें । भूमि हमें उत्तम प्रकार से सुख प्रदान करे । यह उषा, यह सूर्यदेव और यह सम्पूर्ण जगत् भी हमें सुखों में स्थित करें । हम सब प्राणियों को प्रकाशित करने वाली वैश्वानर ज्योतिरूप को प्राप्त करें तथा उनके अनुग्रह से सभी महती कामनाओं की पूर्ति करें । प्राणियों के कल्याणरूप में यह आहुति आपको समर्पित है ॥२३ ॥

११४५. अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥२४ ॥

हे कर्मों के अधिपति अग्ने ! हम ये समिधाएँ आपमें स्थापित करते हैं । हम यज्ञ-अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ कर्म करते हुए श्रद्धा के साथ आपको प्रज्वलित करते हैं ॥२४ ॥

११४६. यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥२५ ॥

जहाँ ब्राह्मण वर्ण और क्षत्रिय वर्ण दोनों ही सम्यक्‌रूप से मिलकर विचरण करते हैं, जहाँ विद्वान् ब्राह्मण-जन अग्निदेव के समान क्षत्रियोचित तेज के साथ निवास करते हैं, उस पुण्य (पवित्र) और दिव्य ज्ञानमय लोक को हम प्राप्त करें ॥२५ ॥

११४७. यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह। तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥

जहाँ इन्द्रदेव और वायुदेव एक साथ मिलकर सहयोगपूर्वक विचरण करते हैं और जहाँ धन-धान्य की कमी के कारण कोई दुःख व्याप्त नहीं है । उस पवित्रतम और दिव्य ज्ञानमय लोक को हम प्राप्त करें ॥२६ ॥

११४८. अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ॥२७ ॥

हे ओषधिरस ! आपका भाग सोम के भाग के साथ संयुक्त हो, आपके सूक्ष्म अंग सोम के अंगों से मिलें । आपकी सुगन्धि सोमरस से संयुक्त होकर हम सभी को दिव्य आनन्द की अनुभूति कराने में समर्थ हो ॥२७ ॥

११४९. सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च। सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥२८ ॥

बल को धारण करने वाली, यज्ञ द्वारा वायुभूत होने वाली ओषधियों का रस पीने से इन्द्रदेव हर्ष को प्राप्त होकर प्राणपर्जन्य वर्षा से अन्नादि पदार्थों को सींचते हैं और बल-ऐश्वर्य से पवित्र करते हैं। और क्या ? और क्या (चाहिए) ? यह बोलते (पूछते) रहते हैं ॥२८ ॥

११५०. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥२९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रातःकाल हमारे द्वारा समर्पित विविध धान्यों से युक्त दही, लपसी, सत्तू, मालपुए आदि मधुर आहार के सहित पुरोडाश और श्रेष्ठ स्तुतियों को ग्रहण करें ॥२९ ॥

११५१. बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥३० ॥

हे मरुद्‌गण ! आप वृत्रासुर का हनन करने वाले इन्द्रदेव के लिए बृहत् साम का गान करें। यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की वृद्धि करने वाले ऋत्विजों ने इसी सामगान द्वारा इन्द्रदेव के लिए चैतन्यरूप जाज्वल्यमान तेजस्विता को प्रकट किया ॥३० ॥

११५२.अध्वर्यो अद्रिभिः सुत ꣳ सोमं पवित्रऽ आनय। पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३१ ॥

हे अध्वर्युगण ! आप पाषाण से अभिषुत हुए सोम को इस स्थान में लाएँ और इन्द्रदेव की तृप्ति के निमित्त इसे शोधित करें ॥३१ ॥

११५३. यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽ अधि श्रिताः। य ऽ ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥३२ ॥

परमपिता परमात्मा, जो सब प्राणियों के स्वामी हैं, जिनके अधीन रहकर समस्त लोक पोषण पाते हैं और जो महान् होकर सभी विभु पदार्थों को वश में करने वाले हैं। हे ग्रहपात्र ! हम आपको (उस परमात्मा से प्राप्त) सामर्थ्य को स्वीकार करते हैं और आपको ग्रहण (स्थापित) करते हैं ॥३२ ॥

११५४. उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽ एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३ ॥

हे ओषधि रूप रस ! आप दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त अभिषुत होकर उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हैं। हम आपको देवी सरस्वती के लिए, इन्द्रदेव के लिए और उत्तम संरक्षण के लिए ग्रहण करते हैं। यह आपका उत्पत्ति स्थान है। दोनों अश्विनीकुमारों, सरस्वती और इन्द्रदेव की अनुकम्पा से हम सुरक्षित हों ॥३३ ॥

११५५.प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे। वाचो मे विश्वभेषजो मनसोसि विलायकः ॥३४ ॥

हे ओषधे ! आप हमारे प्राणों के रक्षक, अपानों के रक्षक, नेत्रों के रक्षक और श्रोत्रों के रक्षक हैं। हमारी वाणी सहित समस्त इन्द्रियों की अपने दिव्य ओषधीय गुणों से रक्षा करें। आप इन इन्द्रियों के चालक मन को विषयों से विरक्त कर (उसका आत्मा में) विलय करें ॥३४ ॥

११५६. अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य। उपहूतऽ उपहूतस्य भक्षयामि ॥३५ ॥

हे ओषधे ! हम अश्विनीकुमारों द्वारा संस्कारित, देवी सरस्वती द्वारा बल से पुष्ट हुए और उत्तम रक्षक इन्द्रदेव द्वारा उत्पन्न आपको सादर आमंत्रित करते हैं अर्थात् स्वस्थ दीर्घजीवन की कामना से आपका सेवन करते हैं ॥३५ ॥

११५७. समिद्धऽ इन्द्रऽ उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः। त्रिभिर्देवैस्त्रि ँ शता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥३६ ॥

उत्तम प्रकार से जाज्वल्यमान, उषाकाल में सर्वप्रथम पूर्व दिशा को प्रकाशित करने वाली दीप्तियों को फैलाते हुए, तैंतीस कोटि देवताओं के साथ आगे बढ़ने वाले, सूर्य के समान वज्रधारी इन्द्रदेव ने मार्ग के अवरोधक वृत्रासुर का हनन करते हुए, पुर के सब द्वारों को खोलकर प्रकाश प्रकट किया है ॥३६ ॥

११५८. नराश ँ सः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम। गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७ ॥

सभी जनों से प्रशंसा को प्राप्त, यज्ञ स्थान और अन्यान्य उत्तम पदार्थों के निर्माता, बलिष्ठ, वीर, शरीररक्षक, गौओं के दुग्ध का पान करने वाले, मधुर स्वादयुक्त घृत द्वारा पुष्ट हुए, स्वर्णादि निर्मित भूषणों से कान्तिमान् और उत्तम बुद्धि वाले इन्द्रदेव का यजमान नित्य यजन करते हैं ॥३७ ॥

११५९. ईडितो देवैर्हरिवाँ२ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्धमानः। पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरा यातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥३८ ॥

देवों द्वारा स्तुत्य, तेजस्वी किरणों से युक्त, सम्पूर्ण यज्ञों में पूज्य, ऋत्विजों द्वारा हवियों के निमित्त बुलाये गये, अत्यन्त शक्तिशाली, शत्रु-पुरों के भेदक, असुरवंश के नाशक, वज्रधारी इन्द्रदेव हमारे इस यज्ञ का सेवन करने के लिए यहाँ पधारें ॥३८ ॥

११६०. जुषाणो बर्हिर्हरिवान् नऽ इन्द्रः प्राचीन ँ सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः। उरुप्रथाः प्रथमान ँ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥३९ ॥

तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, सबके प्रीति पात्र हे इन्द्रदेव ! आप पृथ्वी की दिशा विशेष में सुशोभित आसन को देखते हुए, बारह आदित्यों और आठ वसुओं के साथ हमारे प्राचीन यज्ञ स्थान में पधारें और विशाल सुखकारी उस कुश- आसन का उपयोग करें ॥३९ ॥

११६१. इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः। द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ता ँ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥४० ॥

जिस प्रकार मेधा-सम्पन्न पतिव्रता स्त्री अपने पति के साथ शोभायुक्त होती है, उसी प्रकार उत्तम वीरों और महान् शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेनाओं से सुशोभित पराक्रमी इन्द्रदेव सजे हुए विशाल द्वारों से युक्त, सब ओर से सुव्यवस्थित यज्ञशाला को सुशोभित करें ॥४० ॥

११६२. उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम्। तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥४१ ॥

दुग्धादि उत्तम रसों से युक्त, महान् विस्तार को प्राप्त करने वाली, अनुपम संगठनयुक्त उषा और रात्रि, महान् पराक्रमी देवों के अधिपति इन्द्रदेव को देदीप्यमान करती हैं ॥४१ ॥

११६३. दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होतराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा। मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥४२ ॥

यज्ञ-अनुष्ठानादि श्रेष्ठ कार्य करने वाले याजकगण श्रेष्ठ स्तोत्रों से सर्वप्रथम यज्ञ शिरोमणि इन्द्रदेव को स्थापित करते हैं और दिव्य होता (वायु और अग्नि) पूर्व दिशा में स्थित, आवाहन करने योग्य अग्नि को मधुर हवियाँ प्रदान करते हुए बढ़ाते हैं ॥४२ ॥

११६४. तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमानाऽ इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः। अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥४३ ॥

दिव्यगुणों से युक्त, सर्वत्र गमनशील, सरस्वती, भारती और इला (इडा) तीनों देवियाँ धारण-पोषण करने वाली साध्वी स्त्रियों के समान इन्द्रदेव को पुष्ट करती हैं। वे देवियाँ हमारे यज्ञ को दुग्ध और हवि से सम्पादित करें और हमें विघ्नों से बचाएँ ॥४३ ॥

११६५. त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णोपाकोचिष्टुर्यशसे पुरूणि। वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥४४ ॥

तेजस्वी, वीर, शत्रुशक्ति के भेदक त्वष्टादेव, इन्द्रदेव के लिए बल को धारण करें तथा अत्यन्त प्रशंसनीय, यश के लिए पूजित, प्रचुर सम्पदाओं को धारण करें। वे ही अभीष्ट वर्षा करने वाले अत्यन्त पराक्रमी, बल-सम्पन्न इन्द्रदेव का सहयोग प्राप्त करते हुए यज्ञ के मूर्धन्य देवों को तृप्त करें ॥४४ ॥

११६६. वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः। इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥४५ ॥

समस्त बन्धनों से मुक्त, आत्म-सामर्थ्य से प्रकाशित, वनस्पतियों के देवता घृतादि मधुररस से यज्ञ को सिद्ध करते हैं तथा इन्द्रदेव के उदर की जठराग्नि को हवियों से तृप्त करते हैं ॥४५ ॥

११६७. स्तोकानामिन्दुं प्रति शूरऽ इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट्। घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवाऽ अमृता मादयन्ताम् ॥४६ ॥

पराक्रमी शत्रुओं के प्रति गर्जनशील, सुखवर्षक, हिंसक शत्रुओं का मर्दन करने वाले इन्द्रदेव, स्वाहारूप में प्राप्त घृत से तृप्त होते हैं और अमृतमय दिव्यगुण-सम्पन्न अल्प बिन्दुरूप में (भी) सोम को पाकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं ॥४६ ॥

११६८.आ यात्विन्द्रोवसऽ उप नऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः। वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥४७ ॥

बलशाली इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त यहाँ समीप आएँ, वे स्तुति को प्राप्त होकर समस्त जनों के साथ बैठकर प्रसन्नता से पूर्ण हों। जिनके पूर्व सामर्थ्य द्वारा बड़े महान् कार्य सम्पन्न हुए हैं—ऐसे इन्द्रदेव शत्रु के पराभव में समर्थ हमारे क्षात्रबल को द्युलोक के सदृश विस्तृत और पुष्ट करें ॥४७ ॥

११६९. आ नऽ इन्द्रो दूरादा नऽ आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः। ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥४८ ॥

अभीष्टों को पूर्ण करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी, बलों से युक्त, मनुष्यों के पालक, वज्रधारी, अनेक छोटे-बड़े युद्धों में शत्रुओं का मर्दन करने वाले इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त दूर अथवा निकट जहाँ भी हों, वहाँ से यहाँ पधारें ॥४८ ॥

११७०. आ नऽ इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोवसे राधसे च। तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥४९ ॥

महान् ऐश्वर्यवान्, वज्रधारी इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त और धन देने के निमित्त हमारे लिए अनुकूल होकर हरिनामक अश्वों से भली प्रकार यहाँ पधारें। हमारे इस यज्ञ में अपने उपयुक्त हविष्यान्न के भाग को ग्रहण करने के लिए यहाँ (यज्ञशाला में) विराजमान हों ॥४९ ॥

११७१. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५० ॥

हम रक्षा करने वाले, इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। पालन करने वाले इन्द्रदेव का यज्ञ में बार-बार आवाहन करते हैं। पराक्रमी इन्द्रदेव का उत्तम रीति से आवाहन करते हैं। अत्यन्त समर्थ, अनेकों द्वारा स्तुति किये जाते हुए इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें ॥५० ॥

११७२. इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः। बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५१ ॥

उत्तम रक्षा करने वाले, बहुत से सहायक पुरुषों वाले, विश्व के सब ऐश्वर्यों से युक्त इन्द्रदेव अन्नादि पदार्थों से प्रजा का पोषण करें। वे इन्द्रदेव हमारे दुर्भाग्य को दूर करें। हमें भय-रहित करें। उनकी अनुकम्पा से हम उत्तम बल और पराक्रम से संयुक्त हों ॥५१ ॥

११७३. तस्य वयꣳ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम। स सुत्रामा स्ववाँ२ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥५२ ॥

हम इन्द्रदेव के निमित्त किये यज्ञ कार्यों में उनकी उत्तम बुद्धि के अनुगत रहें और उनके कल्याणकारी मन में भी रहें। वे उत्तम रक्षा करने वाले धनवान् इन्द्रदेव हमसे दूर अवस्थित होते हुए भी भविष्य में आने वाले हमारे दुर्भाग्य को सदा दूर करें ॥५२ ॥

११७४. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा के चिन्नि यमन् विं न पाशिनोति धन्वेव ताँ२ इहि ॥५३ ॥

हे इन्द्रदेव ! मोर पंखों के समान आकर्षक रोम वाले और गंभीर शब्द वाले अपने अश्वों द्वारा यहाँ यज्ञशाला में पधारें। पाश फेंककर पक्षी को फँसाने वाले शिकारी के तुल्य दुष्ट शत्रु आपको फँसा न पाएँ। आप उन दुष्ट शत्रुओं को बड़े धनुर्धारी के समान दूर करके यहाँ पहुँचें ॥५३ ॥

११७५. एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः। स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४ ॥

(अभीष्ट) वर्षक और वज्र के समान भुजा वाले इन्द्रदेव की महर्षि वसिष्ठ के वंशज, मन्त्रों द्वारा पूजा करते हैं। वे यशस्वी कर्मों से स्तुति को प्राप्त हुए इन्द्रदेव, हमारे वीरों और गौ आदि पशुओं को अपने संरक्षण में धारण करें। हे देवो ! आप सब भी हमारे लिए सदैव कल्याण करने वाले और रक्षा करने वाले हों ॥५४ ॥

११७६. समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः। दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥५५ ॥

(होता का कथन) हे अश्विनीकुमारो ! अग्निदेव अपने तेज से अत्यधिक देदीप्यमान होकर, यज्ञ में प्रदीप्त हैं, इस अग्नि की तृप्ति के लिए विराट् (अन्तरिक्ष) से सोम को निचोड़ा गया है। गौ के दोहन के सदृश देवी सरस्वती अनेकों सार पदार्थों से शुभ्र, कान्तिमान् और बलशाली सोम का दोहन करने वाली हैं ॥५५ ॥

११७७. तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥५६ ॥

अपने दिव्य ओषधीय गुणों से हमारे शरीर की रक्षा करने वाले वैद्य दोनों अश्विनीकुमार और देवी सरस्वती अत्यन्त मधुर ओषधिरस को अनेक लोकों के अनेक मार्गों से इन्द्रदेव की पुष्टि के लिए ले जाते हैं ॥५६ ॥

११७८. इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम्। अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥५७ ॥

यज्ञ के साथ ही साथ देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए सोम और महौषधियों के तत्त्व को स्थापित किया तथा वैद्य अश्विनीकुमारों ने निकाले गये उस मधुर ओषधिरूपी सोम को धारण किया ॥५७ ॥

११७९. आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम्। इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः ॥५८ ॥

इन्द्रदेव का आवाहन करने वाली देवी सरस्वती और दोनों अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव के लिए इन्द्रियों में बल और वीर्य को स्थापित किया। गवादि पशुओं के साथ सम्पूर्ण अन्न, दुग्ध, दधि और उत्तम धन को भी धारण किया ॥५८ ॥

११८०.अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता। सरस्वती तमा भरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे॥

दोनों अश्विनीकुमारों ने महौषधियों के रस के साथ अभिषुत हुए दीप्तिमान् सोम को मिलाया। देवी सरस्वती ने नमुचि राक्षस से सोम का हरण करके उसे इन्द्रदेव के पीने के लिए कुशाओं पर स्थापित किया ॥५९ ॥

११८१. कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः। इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥६० ॥

दोनों अश्विनीकुमारों सहित देवी सरस्वती ने और इन्द्रदेव ने छिद्र वाले अत्यन्त विराट् यज्ञ द्वारा द्यावा-पृथिवी दोनों का तथा सम्पूर्ण दिशाओं से अपनी कामनाओं का दोहन किया ॥६० ॥

११८२.उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः। सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥६१ ॥

देवी सरस्वती के साथ दोनों अश्विनीकुमार समान गुण-धर्म वाले होकर उषा, रात्रि, दिन और सायंकाल में इन्द्रदेव को सम्पूर्ण बल के साथ भली प्रकार से संयुक्त करते हैं ॥६१ ॥

११८३. पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति। दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥६२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दिन में हमारी रक्षा करें। हे सरस्वती देवि ! आप रात्रि में हमारी रक्षा करें। विराट् प्रकृति यज्ञ के दिव्य होता हे अश्विनीकुमारो ! आप ओषधिरूप दिव्य सोम के द्वारा इन्द्रदेव की रक्षा करें ॥६२ ॥

११८४.तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा। तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥६३ ॥

तीन प्रकार से स्थित अन्तरिक्षलोक में सरस्वती, द्युलोक में भारती और पृथ्वी में इला, इन तीनों देवियों ने अश्विनीकुमारों द्वारा महौषधियों के दिव्य आरोग्यवर्धक गुणों से युक्त सोम को इन्द्रदेव के लिए अभिषुत किया ॥६३ ॥

११८५. अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती। इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳ रूपमधुः सुते ॥६४ ॥

सोम के अभिषुत होने पर दोनों अश्विनीकुमारों ने ओषधि, सरस्वती ने मधुरूप ओषधि, त्वष्टा देव ने कीर्तिरूप और धन-सम्पदा के अनेक रूपों को इन्द्रदेव की पुष्टि के लिए धारण किया ॥६४ ॥

११८६. ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता। कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥६५ ॥

वनों के अधिपति इन्द्रदेव ऋतुओं के अनुसार समय-समय पर अभिषुत हुए महौषधियों के मधुररसों और अन्नरसों को प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त हुए हैं। अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने गौ के दोहन के समान इन मधुर रसों का दोहन किया ॥६५ ॥

११८७. गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता। समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु।

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों देवी सरस्वती के साथ, गौ के दुग्ध-घृत आदि के साथ महौषधियों के मधुर रस से निष्पन्न सोम को मिलाकर इन्द्रदेव के लिए अर्पित करें। यह आहुति भली प्रकार वे ग्रहण करें ॥६६ ॥

११८८.अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती। आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे॥

अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने विचारपूर्वक नमुचि नामक दैत्य से श्रेष्ठ-संस्कारित हवि एवं श्रेष्ठ धन को प्राप्त कर इन्द्रदेव के लिए अर्पित किया ॥६७ ॥

११८९. यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन्। स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥

दोनों अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने मिलकर इन्द्रदेव के लिए हवि समर्पित कर, उन्हें पुष्ट किया और इन्द्रदेव ने नमुचि नामक असुर के महान् बल को विदीर्ण किया ॥६८ ॥

११९०.तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती। दधानाऽअभ्यनूषत हविषा यज्ञ ऽ इन्द्रियैः॥

अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने साथ मिलकर यज्ञ में उन इन्द्रदेव को पशुओं के दुग्ध-घृतयुक्त हविष्यात्र समर्पित कर, उनके बल-सामर्थ्य को बढ़ाया और उनकी सब प्रकार से प्रशंसा की ॥६९ ॥

११९१.यऽ इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः। स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत॥

जो सविता, वरुण और भगदेव हैं, उन्होंने इन्द्रदेव में बलों को धारण कराया। वह उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाले हविष्पति इन्द्रदेव याजकों की इच्छाओं को पूरा करके सबको सुखी करें ॥७० ॥

११९२. सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे। आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥

उत्तम रक्षक इन्द्रदेव ने नमुचि नामक राक्षस से उसका धन और इन्द्रियों की सामर्थ्य को ले लिया। सविता और वरुणदेव ने याजकों की प्रसन्नता के निमित्त धन व बल को धारण किया ॥७१ ॥

११९३.वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम्। सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥७२ ॥

याजकों को क्षात्रबल व इन्द्रिय-सामर्थ्य प्रदान करने वाले वरुणदेव, ऐश्वर्यप्रदाता सवितादेव एवं यश तथा पराक्रम की वृद्धि करने वाले इन्द्रदेव हमारे इस (सौत्रामणी) यज्ञ में पधारें ॥७२ ॥

११९४. अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम्। हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्धयन्॥

अश्विनीकुमार एवं देवी सरस्वती ने गौओं, अश्वों और हवियों से इन्द्र तथा यजमान के बल, पराक्रम और ऐश्वर्य की वृद्धि की ॥७३ ॥

११९५.ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा। सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोवत॥

स्वर्णिम पथ पर विहार करने वाले, अनुपम, श्रेष्ठतम, मनुष्याकृति वाले दोनों अश्विनीकुमार, देवीसरस्वती और इन्द्रदेव हमारे यज्ञ कर्मों में पधारकर सब प्रकार से हमारी रक्षा करें ॥७४ ॥

११९६. ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ।

श्रेष्ठ कर्म के प्रणेता दोनों वैद्य अश्विनीकुमार, उत्तम कामनाओं का दोहन करने वाली देवी सरस्वती और उस वृत्र-हन्ता शतकर्मा इन्द्रदेव ने याजकों के लिए इन्द्रिय-सामर्थ्य को धारण कर उन्हें पुष्ट किया ॥७५ ॥

११९७. युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हे सरस्वती देवि ! आप सब एक साथ मिलकर नमुचि नामक असुर से महौषधियों के रस को लेकर, इन्द्रदेव को विविध प्रकार से पान कराते हुए, सब प्रकार से रक्षा करें ॥७६ ॥

११९८. पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७ ॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्रद्रष्टा ऋषियों की स्तुतियों को सुन, असुरों से संग्राम कर, जब आप विपत्तिग्रस्त होते हैं, तो दोनों अश्विनीकुमार आपकी उसी प्रकार रक्षा करते हैं , जिस प्रकार माता-पिता अपने पुत्र की । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! जब आप अपनी सामर्थ्य से महौषधियों के रस का पान करते हैं, तो देवी सरस्वती स्तुतिरूप में आपकी सेवा करती हैं ॥७७ ॥

११९९. यस्मिन्नश्वासऽ ऋषभासऽ उक्षणो वशा मेषाऽ अवसृष्टासऽ आहुताः । कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥७८ ॥

हे याजको ! अन्नरस का पान करने वाले, सोम की आहुति ग्रहण करने वाले, श्रेष्ठ मति वाले अग्निदेव के लिए, मन और बुद्धि को शुद्ध करो । इससे अश्व, सेंचन में समर्थ वृषभ, गौ और मेष सुसज्जित होकर भेंटरूप में प्राप्त होते हैं ॥७८ ॥

१२००. अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः । वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥७९ ॥

हे अग्ने ! हम आपके मुख (यज्ञाग्नि) में हवि आदि अर्पित करते हैं, जैसे स्रुवा में घृत और पात्र में सोम रहता है, वैसे ही आप हमें अन्न, वीर पुत्रादि, प्रशंसनीय श्रेष्ठ धन और सब लोकों में यश देने वाला अपार वैभव प्रदान कर सुखी करें ॥७९ ॥

१२०१. अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥८० ॥

याजकों का कल्याण करने के लिए दोनों अश्विनीकुमारों ने स्वतेज से नेत्रज्योति, देवी सरस्वती ने प्राण के साथ पराक्रम और इन्द्रदेव ने वाणी की सामर्थ्य के साथ इन्द्रिय-बल प्रदान किया ॥८० ॥

१२०२. गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥८१ ॥

सदा सत्य कर्म में रत रहने वाले, अपने रौद्ररूप से दुष्ट-दुराचारियों को पीड़ित करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप गौओं से युक्त, अश्वों से युक्त, श्रेष्ठ मार्ग से सोमरस पान करने वाले हमारे इस सोमयाग में अवश्य पधारें ॥८१ ॥

१२०३. न यत्परो नान्तरऽ आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःश ꣳसो मर्त्यो रिपुः ॥८२ ॥

ओषधीय रसों की वर्षा करने वाले हे अश्विनीदेवो ! जो व्यक्ति हमारी निंदा करने वाले, शत्रु की भाँति दुष्टता का व्यवहार करने वाले हों, वे हमें पीड़ित न कर सकें (आप उन्हें नष्ट करें) ॥८२ ॥

१२०४. ता नऽ आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्। धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥८३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हम सबको धारण करने वाले हैं। आप दोनों हमारे निमित्त पीतवर्ण, स्वर्णमय, वृद्धिकारक ऐश्वर्य-सम्पदा प्राप्त कराएँ ॥८३ ॥

१२०५.पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥८४ ॥

सबको पवित्रता प्रदान करने वाली, अन्न के द्वारा यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को सम्पादित करने वाली देवी सरस्वती हमारे यज्ञ को धारण करें तथा हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करें ॥८४ ॥

१२०६. चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ॥८५ ॥

उत्तम और सत्य वाणियों द्वारा सन्मार्ग की प्रेरणा देने वाली, कुमति को दूर कर सुमति जगाने वाली सरस्वती देवी हमारे यज्ञ को धारण करती हैं ॥८५ ॥

१२०७. महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति ॥८६ ॥

अनन्त अन्तरिक्ष से दिव्यरसों की वर्षा द्वारा सत्कर्म की प्रेरणा देने वाली देवी सरस्वती सभी की बुद्धियों को प्रकाशित करती हैं ॥८६ ॥

१२०८.इन्द्रा याहि चित्रभानो सुताऽ इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥८७ ॥

हे विलक्षण कान्तिमान् इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ-स्थान में पधारें। आपकी कामना करते हुए, हमने अपनी अँगुलियों से निचोड़कर पवित्र सोमरस आपके लिए तैयार किया है ॥८७ ॥

१२०९. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥८८ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर हमारे इस यज्ञ-स्थल में आएँ। आपकी स्तुति करने वाले ऋत्विग्गण, सोम का शोधन-संस्कार करने वाले हैं, सो आप समीप आकर इन हवियों को ग्रहण करें ॥८८ ॥

१२१०. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥८९ ॥

हरिसंज्ञक घोड़ों से यात्रा करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप इस यज्ञ में प्रतीक्षारत ऋत्विग्गणों के समीप शीघ्र ही आगमन करें। सोम के निष्पादित होने पर हमारे द्वारा समर्पित हवियों को ग्रहण कर तृप्त हों ॥८९ ॥

१२११. अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा। इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु ॥९० ॥

देवी सरस्वती के साथ समान मन वाले होकर दोनों अश्विनीकुमार मधुर सोमरस का पान करें और उत्तम रक्षा करने वाले, वृत्रासुर का हनन करने वाले इन्द्रदेव भी इस मधुर सोमरस का सेवन करें ॥९० ॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— अश्विनीकुमार, सरस्वती, इन्द्र १,३-२० । शुनः शेप २ । प्रस्कण्व २१-२३ । आश्वतराश्वि २४-२८ । विश्वामित्र २९, ५३ । नृमेध-पुरुषमेध ३०, ३१ । नारायण कौण्डिन्य ३२, ३४, ३५ । काक्षीवत सुकीर्ति ३३ । आंगिरस ३६-४६ । वामदेव ४७-४९ । गर्ग ५०-५२ । वसिष्ठ ५४ । विदर्भि ५५-८० । गृत्समद ८१-८३ । मधुच्छन्दा ८४-९० ।

देवता— आसन्दी, कृष्णाजिन १ । वरुण, रुक्म २ । सविता, लिंगोक्त ३ । प्रजापति ४ । इन्द्र, शरीर-अवयव ५-९ । विश्वेदेवा १०, १२ । देवगण ११ । लिंगोक्त १३, १७ । अग्नि १४, २२, २४-२६, ७८, ७९ । वायु १५ । सूर्य १६, २१, २७ । आपः (जल) १८-२० । समित्, अग्नि, वैश्वानर २३ । सूर्य-इन्द्र २८ । इन्द्र २९-३१, ४७-५४, ८७-८९ । आत्मा ३२ । सोम, प्रजापति ३३ । लिंगोक्त ग्रह ३४, ३५ । इध्म ३६ । तनूनपात्, नराशंस ३७ । इड ३८ । बर्हि ३९ । द्वार ४० । उषासानक्ता ४१ । दिव्य होतागण ४२ । तीन देवियाँ ४३ । त्वष्टा ४४ । वनस्पति ४५ । स्वाहाकृति ४६ । अश्विनीकुमार-सरस्वती-इन्द्र ५५-६९, ७३-७७, ८०, ९० । इन्द्र, सविता, वरुण ७०-७२ । अश्विनीकुमार ८१-८३ । सरस्वती ८४-८६ ।

छन्द— द्विपदा विराट् गायत्री १ । भुरिक् उष्णिक् २, २८ । निचृत् अतिधृति ३ । निचृत् आर्षी गायत्री ४ । अनुष्टुप् ५, ६, १३, २५, ३४, ५५, ५७,५९-५६, ६८, ७०-७२, ७५ । निचृत् गायत्री ७, ८३, ८५, ८७ । निचृत् अनुष्टुप् ८, १४-१६, २४, २६, ५८, ६६, ६९, ७३, ७४, ९० । निचृत् जगती ९ । स्वराट् शक्वरी १० । पंक्ति ११, २२, ३२, ४९ । निचृत् प्रकृति १२ । भुरिक् त्रिष्टुप् १७, ४० । भुरिक् अत्यष्टि १८ । निचृत् अतिजगती १९ । भुरिक् अनुष्टुप् २०, ६७ । विराट् अनुष्टुप् २१, २७, ५६, ७६, ८० । स्वराट् अतिशक्वरी २३ । गायत्री २९, ३१,८४, ८६, ८८, ८९ । बृहती ३० । विराट् त्रिष्टुप् ३३, ५० । निचृत् उपरिष्टात् बृहती ३५ । त्रिष्टुप् ३६-३८, ४१-४३, ४५, ४६ । निचृत् त्रिष्टुप् ३९, ४४, ४८ । भुरिक् पंक्ति ४७, ५१, ५२, ५४, ७७, ७९ । निचृत् बृहती ५३ । जगती ७८ । आर्ची उष्णिक् ८१ । विराट् गायत्री ८२ ।

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकविंशोऽध्यायः ॥

१२१२. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके ॥१॥

हे वरुणदेव! आप हमारी स्तुति को सुनकर प्रसन्न हों, हमको सब प्रकार के सुख प्रदान करें। हम अपनी रक्षा के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१॥

१२१३. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ᳪ स मा न ऽ आयुः प्र मोषीः ॥२॥

हे वरुणदेव! वेद मंत्रों से आपकी स्तुति करते हुए तथा आहुतियाँ समर्पित करते हुए यजमान पर आप प्रसन्न हों। हे बहुतों से प्रशंसित एवं पूजित वरुणदेव! आप प्रसन्नचित्त हों, हम सबकी आयु क्षीण न हो। (अर्थात् हम सबको दीर्घायुष्य प्रदान करें) ॥२॥

१२१४. त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा ᳪ सि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥

हे अग्निदेव! आप सर्वज्ञ, कान्तिमान्, पूजनीय और भली प्रकार आहुतियों को देवों तक पहुँचाने वाले हैं। आप हमारे लिए वरुणदेवता को प्रसन्न करें और हमारे सब प्रकार के अनिष्टों को नष्ट करें ॥३॥

१२१५. स त्वं नो अग्नेवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या ऽ उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुण ᳪ रराणो वीहि मृडीक ᳪ सुहवो नऽ एधि ॥४॥

हे अग्निदेव! इस उषाकाल में, अपनी रक्षण-शक्ति सहित हमारे अत्यधिक निकट आकर हमारी रक्षा करें। हमारी आहुतियों को वरुण देवता तक पहुँचाकर उन्हें तृप्त करें। सर्वदा आवाहन करने योग्य आप स्वयं हमारी सुखदायी हवि को ग्रहण करें ॥४॥

१२१६. महीमू षु मातर ᳪ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम। तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूची ᳪ सुशर्माणमदिति ᳪ सुप्रणीतिम् ॥५॥

महान् महिमावाली, श्रेष्ठकर्मों की माता, सत्य का पालन करने वाली, विभिन्न प्रकार के आक्रमणों से रक्षा करने वाली, चिरयुवा, सतत सन्मार्ग-गामिनी और नीतिमती अदिति का, हम अपनी रक्षा हेतु आवाहन करते हैं ॥

१२१७. सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहस ᳪ सुशर्माणमदिति ᳪ सुप्रणीतिम्। दैवीं नाव ᳪ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥६॥

भली प्रकार से रक्षा करने वाली, पर्याप्त विस्तार वाली, अत्यधिक विशाल, सुखदायक, श्रेष्ठ आश्रय देने वाली, निर्दोष, उत्तम पतवार वाली, बिना छिद्र वाली, मृत्यु-भय से बचाने वाली, दिव्य और अखण्डित (यज्ञरूपी) नौका को प्राप्त कर हम उस पर चढ़ें, जिससे हमारा कल्याण हो ॥६॥

१२१८. सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्रा ᳪ स्वस्तये ॥७॥

छिद्ररहित, निर्दोष, अनेकों पतवार (ऋक्, यजु, सामरूप) वाली, जिसकी बनावट में (अभीष्ट प्रदायक गुण में) कोई दोष न हो, ऐसी सुन्दर (यज्ञरूपी) नाव को (संसार सागर से पार करने के उद्देश्य से) प्राप्त कर, हम अपने कल्याण हेतु उस पर चढ़ें। (यज्ञीय सिद्धांतों पर आरूढ़ हों) ॥७॥

१२१९. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजा\u{0951}ꣳसि सुक्रतू ॥८ ॥

हे श्रेष्ठकर्मा मित्रावरुण ! आप यज्ञ कार्य हेतु हमें पर्याप्त घृत प्रदान करें एवं खेतों को अमृतरूपी मधु (मधुर जल) से सिंचित करें। (जिससे हमें यज्ञ हेतु श्रेष्ठ ओषधियाँ, अन्न, समिधादि प्राप्त हों) ॥८ ॥

१२२०. प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नऽ आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन। आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९ ॥

हे चिरयुवा मित्रावरुण देवताओ ! आप हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर भुजाएँ फैलाकर (आशीर्वाद देकर) हमें दीर्घ जीवन प्रदान करें। हम जहाँ भी जाएँ, वहाँ हमें पर्याप्त गो- घृत से सिंचित करें और हमें इस लोक में ख्याति भी प्रदान करें ॥९ ॥

१२२१. शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः। जम्भयन्तोऽहिं वृक\u{0951}ꣳ रक्षा\u{0951}ꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१० ॥

श्रेष्ठ अन्न एवं यज्ञ से युक्त, प्रामाणिक, उत्तम विज्ञान से युक्त, हे (मित्रावरुण) देवो ! आप सर्प, भेड़िये और राक्षसी जीवों का विनाश करते हुए, हमारे रोगों (विकारों) को नष्ट कर, हमें सनातन सुख (शान्ति) प्रदान करें ॥१० ॥

१२२२. वाजे वाजेवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽ अमृताऽ ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥११ ॥

अविनाशी, सत्य के ज्ञाता, बुद्धि-बल से सम्पन्न हे (मित्रावरुण) देव ! आप प्रत्येक युद्ध एवं धन प्राप्त करने के कार्यों में हमारी रक्षा करें। इस मधु रस का पान करके प्रसन्न तथा तृप्त होकर देवमार्ग से गमन करें ॥११ ॥

१२२३.समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः। गायत्री छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः॥

इस मंत्र से लेकर ग्यारह मंत्रों तक विभिन्न देवताओं, छन्दों एवं अनेक गुणों वाली किसी गौ से बल एवं आयुष्य की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की गई है। यह 'दिव्य गौ' अन्तरिक्ष में संव्याप्त पोषण प्रदान करने वाली सूक्ष्म प्रकृति सिद्ध होती है—

समिधाओं द्वारा उत्तम रीति से प्रज्वलित, दिव्य प्रकाशयुक्त और वरण करने योग्य अग्नि, गायत्री छन्द और तीनों लोकों, तीनों वयों (बाल, युवा और वृद्ध) की प्रेरक वह गौ (पोषक प्रकृति) हमारे शरीरों को बल तथा आयुष्य प्रदान करे ॥१२ ॥

१२२४.तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती। उष्णिहा छन्दऽइन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥

पवित्र आचरण वाले, शरीरों को पतन से बचाने वाले, अग्निदेव, रक्षा करने वाली वाणी (सरस्वती), उष्णिक् छन्द और दिव्य हवि को धारण करने वाली गौ (प्रकृति) प्रसन्न होकर हमारे शरीरों को बल और आयुष्य प्रदान करे ॥१३ ॥

१२२५.इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः। अनुष्टुप्छन्दऽइन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥

स्तुतियों द्वारा प्रशंसा करने योग्य अग्निदेव, अमरता के दिव्य गुणों से युक्त सोम, अनुष्टुप् छन्द तथा पाँचों (पञ्च भूतों) में संव्याप्त गौ (पोषकक्षमता) पूजित (प्रसन्न) होकर हमारे शरीरों को बल और आयुष्य प्रदान करे ॥१४

१२२६.सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः। बृहती छन्दऽइन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः।

आकाश में संव्याप्त, पुष्टिकारक, आकाश को शुद्ध करने वाले और अमर अग्निदेव, बृहती छन्द तथा तीन बछड़ों (जलचर, भूचर, नभचर) वाली गौ (प्रकृति) पूजित (प्रसन्न) होकर हमें बल और आयुष्य प्रदान करे ॥१५ ॥

१२२७. दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः। पङ्क्तिश्छन्दऽइहेन्द्रियं तुर्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥१६ ॥

देदीप्यमान बड़े द्वार, दिशाएँ, बृहस्पति, ब्रह्मा देवता, पंक्ति छन्द तथा चार (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज एवं जरायुज) प्राणियों को पोषण देने वाली गौ (प्रकृति) पूजित (प्रसन्न) होकर यजमान को बल, ऐश्वर्य एवं आयुष्य प्रदान करे ॥१६ ॥

१२२८.उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवाऽअमर्त्याः। त्रिष्टुप्छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाड्गौर्वयो दधुः।

महान्, श्रेष्ठस्वरूप वाली, उषा, प्रभात और सायं वेला, अमर सर्वदेव, त्रिष्टुप् छन्द तथा (प्राणिमात्र के पोषण का) भार वहन करने में समर्थ गौ (प्रकृति) यहाँ हम लोगों को बल और आयुष्य प्रदान करे ॥१७ ॥

१२२९.दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा। जगती छन्दऽइन्द्रियमनड्वान्गौर्वयो दधुः।

दिव्य आहुतियों को ग्रहण करने वाले, इन्द्रदेव के संसर्ग में रहने वाले, रोग निवारण की क्षमता से युक्त, अग्निदेव और वायुदेव, जगती छन्द तथा शकट खींचने वाली (पोषण चक्र को गति देने वाली) गौ, हम सबको बल और दीर्घायुष्य प्रदान करे ॥१८ ॥

१२३०. तिस्रऽ इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः। विराट् छन्दऽइहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥१९ ॥

भूमि, सरस्वती और धारण करने वाली बुद्धि— ये तीन देवियाँ, मरुद्गण, विराट् छन्द और दूध (पोषण) देने वाली गौ (प्रकृति) हम सबको बल और दीर्घायु प्रदान करे ॥१९ ॥

१२३१. त्वष्टा तुरीपो अद्भुतऽ इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना। द्विपदा छन्दऽ इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥२० ॥

तीव्रगामी, दिव्यगुण-कर्म-स्वभाव वाले त्वष्टादेवता, पुष्टिदाता इन्द्रदेव और अग्निदेव, द्विपदा छन्द और (जीव मात्र के) सेचन में समर्थ गौ (प्रकृति) हम सबको बल एवं दीर्घ-जीवन प्रदान करे ॥२० ॥

१२३२. शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम्। ककुप्छन्दऽ इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥२१ ॥

हमको शान्ति देने वाली वनस्पति और ऐश्वर्यप्रेरक सवितादेवता, ककुप् छन्द और स्वानुशासन (संतुलन) में रहने वाली गौ (किरण) यहाँ हम सबको बल तथा आयु प्रदान करे ॥२१ ॥

१२३३. स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत्। अतिच्छन्दा ऽ इन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः ॥२२ ॥

उत्तम प्रकार दुःखों से रक्षा करने वाले वरुणदेवता, श्रेष्ठ पदार्थों तथा ओषधियों द्वारा किये गये यज्ञ से प्रसन्न हुए इन्द्रदेव, अति छन्द तथा महान् ऋषभ (प्राण-पर्जन्य की वर्षा में समर्थ) गौ (प्रकृति) हम सबको बल और आयु प्रदान करे ॥२२ ॥

[उक्त सभी मंत्रों में प्रकृति के स्थान पर जीव - चेतना को गौ मानने पर भी संगति बैठ जाती है ।]

१२३४. वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः। रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥

रथन्तर और त्रिवृत् स्तोत्रों द्वारा जिनकी स्तुति की गई है, वे वसु (सबके संरक्षक) देवता और सभी देव वसन्त ऋतु के माध्यम से, तेजयुक्त हवि एवं आयुष्य को इन्द्रदेव (इन्द्रियों-जीवात्मा) में स्थापित करते हैं ॥२३ ॥

१२३५. ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः । बृहता यशसा बलꣳहविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२४ ॥

रुद्रदेवता, जिनकी पंचदश स्तोत्रों (पन्द्रह मन्त्रों) और बृहत् (छन्द) द्वारा स्तुति की गई है, (वे) ग्रीष्म ऋतु के माध्यम से यश-युक्त, बल-युक्त हवि एवं आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करते हैं ॥२४ ॥

१२३६. वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुताः । वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२५ ॥

आदित्यदेवता, जिनकी सप्तदश (सत्रह) स्तोत्रों और वैरूप (छन्द) द्वारा स्तुति की गई है, (वे) वर्षा ऋतु के माध्यम से इन्द्रदेव में ओजयुक्त हवि और आयु को स्थापित करते हैं ॥२५ ॥

१२३७. शारदेन ऋतुना देवाऽ एकविꣳश ऋभव स्तुताः । वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२६ ॥

लक्ष्मी (ऐश्वर्य) सहित ऋभु नामक देव, जिनकी एकविंश (इक्कीस) स्तोम और वैराज (छन्द) द्वारा स्तुति की गई है, (वे ऋभु नामक देव) इन्द्रदेव में, शरद् ऋतु के माध्यम से कान्तियुक्त हवि और आयुष्य को स्थापित करते हैं ॥२६ ॥

१२३८. हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः । बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२७ ॥

त्रि-नव (उनतालीस) स्तोम एवं शक्वरी छन्द के द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए मरुत् देवता, हेमन्त ऋतु द्वारा इन्द्रदेव में बलयुक्त हवि और आयुष्य को स्थापित करते हैं ॥२७ ॥

१२३९. शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेमृताः स्तुताः । सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२८ ॥

त्रयस्त्रिंश (तैंतीस) स्तोम एवं रेवती छन्द द्वारा स्तुत हुए अमृत नामक देवगण शिशिर ऋतु के द्वारा इन्द्रदेव में सत्य के पक्षधर, क्षात्र बलयुक्त हवि और आयुष्य को स्थापित करते हैं ॥२८ ॥

मंत्र क्र. २९ से ५८ तक पहले प्रकृति में चलने वाले विराट् यज्ञ का स्वरूप समझाया गया है तथा बाद में वैसा ही यज्ञ करने के लिए याजकों को प्रेरित किया गया है । प्रकृतिगत यह यज्ञ जिस होता ने किया , वह प्रजापति जैसा कोई दिव्य होता ही हो सकता है, उसी का अनुसरण करने के लिए लौकिक याजकों-होताओं को प्रेरित किया गया है—

१२४०. होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधुशष्पैर्न तेज ऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२९ ॥

दिव्य याजक द्वारा, समिधाओं से प्रदीप्त आहवनीय अग्नि में, अश्विनीकुमारों, इन्द्रदेव एवं देवी सरस्वती (आदि देवशक्तियों) के निमित्त किये जाने वाले यज्ञ से पोषक अन्न, मधुर ओषधि, तेज और बलप्रदायक दुग्ध, सोम, घृत आदि सभी को प्राप्त हों । हे होता ! ऐसे पवित्र उद्देश्य के लिए आप भी यज्ञ सम्पन्न करें (जिससे सब का कल्याण हो) ॥२९ ॥

१२४१.होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३० ॥

दिव्य याजक द्वारा शरीर के रक्षक देव, दोनों अश्विनीकुमारों एवं देवी सरस्वती तथा इन्द्रदेव के निमित्त, बेर, इन्द्रजौ (कुटज), अंकुरित व्रीहि, अजवाइन और मेष (ओषधि) आदि हव्य से किये जाने वाले यज्ञ से शरीर को पुष्ट (आरोग्ययुक्त) करने वाली ओषधि, निचोड़े सोम एवं दूध, शहद और घी को सब ग्रहण करें । हे होता ! आप भी श्रेष्ठ आहुतियों द्वारा ऐसा ही यज्ञ करें ॥३० ॥

१२४२. होता यक्षन्नराश ꣳ सन्न नग्नहुं पति ꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा ऽ इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१ ॥

याजकों ने मनुष्यों द्वारा पुष्टिकारक ओषधियों आदि से यज्ञ किया । यज्ञ से पोषित ओषधियों का रस, बेर, इन्द्रजौ, अंकुरित व्रीहि, और मेष (ओषधि) ऐसे गुणकारक हो गये, जैसे सुवर्णमय रथ वाले अश्विनीकुमारों ने और देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए पुष्टिकारक ओषधि (योग) कल्पित किया हो । वे देवतागण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु, ओषधि तथा घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ सम्पन्न करें ॥३१ ॥

१२४३. होता यक्षदिडेडितऽ आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२ ॥

याजक ने, प्रसन्नचित्त होकर स्तुति द्वारा इडादि का आवाहन किया । बलिष्ठ दुधारू गौ के (बल-वर्धक दुग्ध के) द्वारा बल बढ़ाते हुए देवी सरस्वती, इन्द्रदेव और दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त, जौ, बेर, लाजा और इन्द्रदेव को बल प्रदान करने वाली ओषधि आदि हविष्यान्न से यज्ञ किया । वे सब देवता परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें । (जिससे समस्त प्राणियों का कल्याण हो) ॥३२ ॥

१२४४. होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुहऽ इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३ ॥

याजक ने ऊन के जैसी कोमल बर्हि (कुश-आहूत देवों के लिए बैठने के आसन) को देव वैद्य अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती के निमित्त अर्पित किया । शिशुमती घोड़ी और बछड़े वाली गौ के चिकित्सक ने इन्द्रदेव के लिए ओषधि का दोहन किया । उस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३३ ॥

१२४५. होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशऽ इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषज ꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४ ॥

याजक ने दिशाओं के समान द्वाररूप इन्द्रदेव, देवी सरस्वती और अश्विनीकुमारों के निमित्त यजन किया । यज्ञ के द्वार (दिशाओं के समान द्वाररूप देव) दोनों अश्विनीकुमारों सहित विस्तार वाली द्यावा-पृथिवी ने ओषधि और सरस्वती ने दुधारू गौ होकर इन्द्रदेव के लिए दिव्य तेज और बल प्रदान किया । इस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३४ ॥

१२४६. होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषज ꣳ श्येनो न रंहसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

देवताओं के याजक ने दिव्य अहो-रात्र, अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया । उस यज्ञ से अहो-रात्र में स्थित ज्योति ने मन को तथा श्री के साथ मासर (माँड़) ओषधि और श्येन पत्र ने कांति को इन्द्रदेव में स्थापित किया । परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का वे सब देवरूप पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३५ ॥

१२४७.होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूष ꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

देवताओं के याजक ने दिव्य होताओं (अग्नि और मध्यम प्रयाज), देववैद्य दोनों अश्विनीकुमारों और इन्द्र देव को प्रसन्न करने के निमित्त यज्ञ किया । उस यज्ञ में निशि-वासर स्वकर्म में रत सुयोग्य चिकित्सक देवी सरस्वती ने ओषधियों और सीसा (धातु विशेष) से बल और वीर्य का दोहन किया (अर्थात् बल-वीर्य वर्धक ओषधि योग का निर्माण किया) । उस यज्ञ में सभी रसों से युक्त दुग्ध, सोम, मधु और घृत का सब देवगण पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३६ ॥

१२४८. होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती महऽ इन्द्राय दुहऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७ ॥

देवताओं के याजक ने इडा, भारती, सरस्वती — तीन देवियों, इन्द्रदेव और अश्विनीकुमारों के निमित्त, कर्मवान् तीन गुणों (सत्, रज, तम) को धारण करने वाली वाणी (मन्त्रों) से यजन किया । ज्योतिर्मय रूप वाली महत्वपूर्ण ओषधियों से देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए बल का दोहन किया, उस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी इसी प्रकार का यज्ञ करें ॥३७ ॥

१२४९. होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषज ꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३८ ॥

देवताओं के याजक ने उत्तम वीर्यवान्, पराक्रमी, लोकोपकारी त्वष्टारूप प्रयाज देवता, इन्द्रदेव, अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती को (तीनों शरीरों की) चिकित्सा के निमित्त प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया । उद्यमी चिकित्सक ने वृक, सुरा तथा मासर (माँड़) ओषधि के रस से ऐश्वर्यपूर्ण यज्ञ किया, जिससे ओज, वेग, बल और यश इन्द्रदेव को प्राप्त हुआ । इस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी इसी प्रकार का यज्ञ करें ॥३८ ॥

१२५०. होता यक्षद्वनस्पति ꣳ शमितार ꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्यु ꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भाम ꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९ ॥

देवताओं के याजक ने वनस्पति को शुद्ध करने वाले, बहुत कर्म करने वाले, (व्यवस्था हेतु) भयभीत करने वाले, स्वस्थ क्रोधयुक्त, (पशुओं में) सिंह के समान राजा इन्द्र, अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती की प्रसन्नता के लिए संस्कारित अन्न से यजन किया । वैद्य (सरस्वती) ने, इन्द्रदेव के लिए मन्यु (क्रोध) और बल का दोहन किया । उस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें (जिससे सभी का कल्याण हो) ॥३९ ॥

१२५१. होता यक्षदग्नि ँ स्वाहाज्यस्य स्तोकाना ँ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्या ँ स्वाहा मेष ँ सरस्वत्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सि ँ हाय सहसऽ इन्द्रिय ँ स्वाहाग्निं न भेषज ँ स्वाहा सोममिन्द्रिय ँ स्वाहेन्द्र ँ सुत्रामाण ँ सवितारं वरुणं भिषजां पति ँ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषज ँ स्वाहा देवा ऽ आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४० ॥

देवताओं के याजक के द्वारा अग्निदेव का पूजन किया गया, उसके लिए घृत बिन्दुओं को श्रेष्ठ कहा गया। दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त छाग और देवी सरस्वती के लिए मेष को श्रेष्ठ कहा गया है। सिंह के सदृश पराक्रमी इन्द्रदेव के लिए ऋषभ को उत्तम कहा गया है। उत्तम प्रकार से रक्षा करने में समर्थ सविता देवता और वैद्यपति वरुण के लिए बलप्रदायक पुरोडाशरूप सोम की आहुति प्रदान की । वनस्पति के लिए अन्न के समान प्रिय ओषधि के द्वारा आहुति प्रदान की । घृत पान करने वाले अग्निदेव ओषधि सेवन करते हुए सब देवगण सहित, परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥४० ॥

१२५२. होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेता ँ हविर्होतर्यज। होता यक्षत्सरस्वती मेषस्य वपाया मेदसो जुषता ँ हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषता ँ हविर्होतर्यज ॥४१ ॥

देवताओं के याजक ने दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त बीज बढ़ाने वाली क्रिया से प्राप्त छाग (नामक ओषधि) के वसा भाग से पवित्र यज्ञ किया। हे होता ! आप भी ऐसा ही पवित्र यज्ञ करें । देवताओं के याजक ने देवी सरस्वती को प्रसन्न करने के लिए, बीज बढ़ाने वाली क्रिया द्वारा प्राप्त मेष (ओषधि) के वसायुक्त भाग से यज्ञ किया। हे होता ! आप भी ऐसा ही पवित्र यज्ञ करें। देवताओं के याजक ने इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए, बीज बढ़ाने वाली क्रिया से प्राप्त ऋषभ (नामक ओषधि) के वसा वाले भाग से पवित्र यज्ञ किया । हे होता ! आप भी ऐसा ही पवित्र यज्ञ करें ॥४१ ॥

१२५३. होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्र ँ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ता ँ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥४२ ॥

देवताओं के याजक ने दोनों अश्विनीकुमारों, देवी सरस्वती और श्रेष्ठ रक्षक ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव के निमित्त इन मनोहर छाग, मेष और ऋषभ (नामक ओषधियों) द्वारा यजन किया । हे अध्वर्युगण ! तृण, अन्न, यवांकुर, खीलों, तेजयुक्त, प्रसन्न करने वाले, पकाये हुए चावलों आदि से सुशोभित, दुग्ध, कान्तियुक्त-अमृतरूप मधु से प्राप्त सोम आप सबके लिए प्रस्तुत है। दोनों अश्विनीकुमार, देवी सरस्वती और उत्तम रक्षक वृत्रासुर-घाती इन्द्रदेव आदि देवगण इस सोमरस का तृप्त होने तक पान करें। हे होता ! ऐसा ही पवित्र यज्ञ आप भी करें ॥४२ ॥

१२५४. होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविषऽ आत्तामद्य मध्यतो मेदऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमाना ँ सुमत्क्षराणा ँ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽ उत्सादतोङ्गादङ्गादवत्तानां करतऽ एवाश्विना जुषेता ँ हविर्होतर्यज ॥४३ ॥

याजक ने दोनों अश्विनीकुमारों के लिए आज छाग (ओषधि) के बीच से लिये गये चिकने भाग की आहुतियों से यजन किया । द्वेष रखने वाले दुष्टों के पहले ही जिन्हें अन्न ग्रहण करने का अधिकार है, ऐसे (देवता) पुरुषार्थ

से निश्चय ही पहले ग्रहण करें, जो अग्निदेव द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित (वायुभूत) होकर सैकड़ों गुना प्राणों के स्वरूप में प्रकट हों, पार्श्व (काँखों), कटि, गुह्यांग और जिनको हानि हो सके, ऐसे प्रत्येक मर्म अंग के प्राण अंशों को पुष्ट कर सुरक्षित करें । यह सब दोनों अश्विनीकुमार ही संचालित करें । हे होता ! आप भी हवि से ऐसा ही यजन करें ॥४३ ॥

१२५५. होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविषऽ आवयदद्य मध्यतो मेदऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमाना ँ सुमत्क्षराणा ँ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽ उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेव ँ सरस्वती जुषता ँ हविर्होतर्यज ॥४४ ॥

याजक ने सरस्वती देवी को प्रसन्न करने के निमित्त मेषरूप ओषधि के मध्य से लिये गये चिकने भाग की आहुतियों से यजन किया । द्वेष करने वालों (राक्षसों) के पहले ही जिन्हें अन्न ग्रहण करने का अधिकार है, (ऐसे देवता) पुरुषार्थ के द्वारा निश्चय ही पहले अन्न ग्रहण करें, जो अग्निदेव द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित (वायुभूत) होकर, सैकड़ों गुना प्राणों के स्वरूप में प्रकट हों । पार्श्व, कटि, गुह्यांग और जिनको हानि हो सके, ऐसे प्रत्येक मर्म अंग के प्राण-अंशों को पुष्ट कर सुरक्षित करें । यह सब सरस्वती देवी ही संचालित करें । हे होता ! आप भी हवि से ऐसा ही यजन करें ॥४४ ॥

१२५६. होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविषऽ आवयदद्य मध्यतो मेदऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमाना ँ सुमत्क्षराणा ँ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत ऽ उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषता ँ हविर्होतर्यज ॥४५ ॥

याजक ने इन्द्रदेव के निमित्त ऋषभ (नामक ओषधि) के मध्य से लिये गये चिकने भाग की आहुतियाँ अर्पित कीं । द्वेष करने वालों (राक्षसों) के पहले ही जिन्हें अन्न ग्रहण करने का अधिकार है, (ऐसे देवता) पुरुषार्थ के बल पर निश्चय ही पहले ग्रहण करें, जो अग्निदेव द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित होकर (वायुभूत होकर), सैकड़ोंगुना प्राणों के स्वरूप में प्रकट हों । पार्श्व, कटि, गुह्यांग और जिनको हानि हो सके, ऐसे मर्म अंगों के प्राण-अंशों को पुष्ट कर सुरक्षित करें । यह सब इन्द्रदेव ही संचालित करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यजन करें ॥४५ ॥

१२५७. होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथा ँ सि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान्प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्त्रक्षद्रभीयसऽ इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषता ँ हविर्होतर्यज ॥४६ ॥

याजक ने वनस्पतिदेव के निमित्त यज्ञ किया, जिससे वनस्पतियाँ भी अपने स्थानों में उसी तरह स्थिर हो जाएँ, जैसे रस्सी से बँधा पशु स्वस्थान में स्थिर रहता है । जहाँ दोनों अश्विनीकुमारों की प्रिय हवि मेष (ओषधि) का, तथा इन्द्रदेव की प्रिय हवि ऋषभ (ओषधि) का सुस्थिर स्थान है । जहाँ अग्निदेव का, सोम का, उत्तम रक्षक इन्द्रदेव का, सवितादेव का, वरुणदेव का, घृत पान करने वाले देवताओं का प्रिय धाम है, जहाँ वनस्पतिदेव (वृक्षादि) की रक्षा की जाती है, वहाँ उस धाम में देवगण उत्तम हवि का सेवन करते हैं । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥

१२५८. होता यक्षदग्निᳬ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाद् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाद् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाद् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथा ᳬ स्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्या ऽ इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषता ᳬ हविर्होतर्यज ॥४७ ॥

याजक ने अपने इष्ट अग्निदेव के निमित्त यजन किया । अग्निदेव ने (कृपाकर) अश्विनीद्वय की प्रिय हवि छाग के धामों (अवदानों) को, सरस्वती देवी की प्रिय हवि मेष (ओषधि) के धामों (उपहारों) को, इन्द्रदेव की हवि ऋषभ (ओषधि) के धामो (उपहारों) को, सवितादेव के, वरुणदेव के, वनस्पतिदेव के, घृतपान करने वाले देवताओं के, होता अग्निदेव के प्रिय धामों (उपहारों) को समर्पित (यजन) किया । वे जातवेदा अग्निदेव, अपनी प्रिय हवि को ग्रहण कर उत्तम कामना करने वाली प्रजा का सब प्रकार कल्याण करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥

१२५९. देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना । तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४८ ॥

सरस्वती ने इन्द्र के लिए कुश-आसन प्रदान किया ।अश्विनीकुमारों ने इन्द्र में तेज तथा उनकी नेत्र इन्द्रियों में दृष्टि की स्थापना की । ऐश्वर्याधिपति ये इन्द्रादि देव हव्यपान करें ।ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ।

१२६०. देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९ ॥

दिव्यद्वार स्वरूपा सरस्वती और वैद्य अश्विनीकुमारों ने इन्द्र में पराक्रम तथा उनकी नासिका इन्द्रिय में प्राण की स्थापना की ।ऐश्वर्याधिपति ये इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें ।ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥

१२६१. देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । बलं न वाचमास्य ऽ उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५० ॥

दिव्यगुण सम्पन्न रात्रि और उषाकाल की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव में बल और उनकी मुख इन्द्रिय में वाक् की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ये इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५० ॥

१२६२. देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् । श्रोत्रन्न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५१ ॥

सेवन करने योग्य, दिव्यगुण धारण करने वाली सरस्वती देवी और अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव में यश को बढ़ाया और उनकी कर्णेन्द्रिय में श्रवण शक्ति की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ये इन्द्रादि देवगण हव्य पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५१ ॥

१२६३. देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः । शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्त ऽ इन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२ ॥

उत्तम प्रकार दोहन करने वाली, मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली, रसवती सरस्वती देवी और वैद्य अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव में शुक्र (बल) और उनके हृदय में ज्योति की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ये इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५२ ॥

१२६४. देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना । वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मति ँ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५३ ॥

देवताओं के होतागण, श्रेष्ठ देव, अश्विनीकुमारों और सरस्वती देवी ने इन्द्रदेव में वषट्कारपूर्वक स्वतेज और हृदय में मति की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ये इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५३ ॥

१२६५. देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती । शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५४ ॥

इडा, भारती, सरस्वती तीन देवियों सहित अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव की नाभि के मध्य भाग में बल को स्थापित किया । ऐश्वर्य के अधिपति ये देवतागण हव्य पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ।

१२६६. देव ऽ इन्द्रो नराश ँ सस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः । रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५५ ॥

ऐश्वर्यवान्, त्वष्टादेव, देवी सरस्वती और अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव के लिए समस्त जनों से प्रशंसित तीन घर वाला रथ (यज्ञ) प्रस्तुत किया । उस माध्यम से उनको जन्म देने में समर्थ इन्द्रिय में अमृतरूप रेतस् स्थापित किया । ऐश्वर्य के अधिपति ये देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५५ ॥

१२६७.देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्या ँ सरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥

सुनहरे (हरे-भरे) पत्तों और उत्तम फलों के अधिष्ठाता वनस्पतिदेव, अश्विनीकुमारों एवं देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव को मधुर फल (यज्ञ द्वारा प्राप्त दिव्य लाभ), ओज, उचित विकरालता प्रदान कर उनकी इन्द्रियों में गति और सामर्थ्य की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ये देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले हे याजकगण ! आप भी यजन करें ॥५६ ॥

१२६८. देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः । ईशायै मन्यु ँ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५७ ॥

सुन्दर सभा (यज्ञशाला) में सरस्वती देवी और अश्विनीकुमारों ने जल में उत्पन्न होने वाली कुशा से निर्मित आसन (देवराज) इन्द्रदेव के निमित्त प्रदान किया और उनको ऐश्वर्य और मन्यु से सुशोभित किया । ऐश्वर्य की आकांक्षा रखने वाले याजक यजन करें ॥५७ ॥

१२६९. देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथ ँ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाच ँ सरस्वतीमग्नि ँ सोम ँ स्विष्टकृत् स्विष्टऽ इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा ऽ आज्यपाः स्विष्टो अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचिति ँ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५८ ॥

अग्निदेव, मित्रावरुणदेव, अश्विनीकुमारों, देवी सरस्वती , इन्द्रदेव, सवितादेव, वरुणदेव, वनस्पतिदेव और घृत पान करने वाले अन्य देवगणों ने स्विष्टकृत से (भली प्रकार अथवा उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु) अग्निदेव द्वारा हवि को ग्रहण किया । यजन से प्रसन्न हुए देवगणों ने याजकों को यश, इन्द्रिय-सामर्थ्य, बल-पराक्रम एवं ऐश्वर्य प्रदान किया । ऐश्वर्य के अधिपति ये देवगण, हव्य पान करें । ऐश्वर्य के आकांक्षी याजक यजन करें ॥५८ ॥

१२७०. अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्यां छागꣳ सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋषभꣳ सुन्वन्नश्विभ्याꣳ सरस्वत्या ऽ इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ॥५९ ॥

आज पुरोडाश पकाने के लिए यजमान ने अग्निदेव का वरण किया और अश्विनीकुमारों के लिए छाग (ओषधि) द्वारा, सरस्वती के लिए मेष (ओषधि) द्वारा तथा इन्द्र के लिए ऋषभ (ओषधि) द्वारा पुरोडाशों को पकाया । अश्विनीकुमारों और सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए महौषधियों का तीक्ष्ण रस एवं सोमरस प्रदान किया ॥

१२७१. सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥६० ॥

यज्ञस्थल में वनस्पतिदेव ने उपस्थित होकर छाग (ओषधि) द्वारा अश्विनीकुमारों को, मेष (ओषधि) द्वारा सरस्वतीदेवी को तथा ऋषभ (ओषधि) द्वारा इन्द्रदेव को प्रसन्न किया । सन्तुष्ट हुए इन्द्रदेव ने अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती के साथ महौषधियों का तीक्ष्णरस तथा सोम पान किया ॥६० ॥

१२७२. त्वामद्य ऋषऽ आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽ आ सङ्गतेभ्य ऽएष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यतऽ इति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्मा ऽ आ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥६१ ॥

ऋषि प्रणीत मार्ग पर अविचल, याजक ने यज्ञशाला में उपस्थित विभिन्न देवगणों में से ऐश्वर्य प्रदाता देवताओं का वरण किया और ऐश्वर्य के निमित्त उनका यजन किया । इन देवगणों ने याजक को दिव्य दान दिये । हे होता ! आप भी इन कल्याणकारी सूत्रों का, सबके कल्याण के लिए गान करें ॥६१ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि-शुन:शेप १,२ ।वामदेव ३-५ ।गयप्लात ६,७ ।विश्वामित्र ८ ।वसिष्ठ ९-११ ।स्वस्त्यआत्रेय १२-६१

देवता— वरुण १, २ । अग्नि, वरुण ३, ४ । अदिति ५, ६ । स्वर्ग्या नौ ७ । मित्रावरुण ८, ९ । अश्व १०, ११ । इध्म, इन्द्र वयोधा १२ । तनूनपात् अथवा नराशंस १३ । इड १४ । बर्हि १५ । द्वार १६ । उषासानक्ता १७ । दिव्य होतागण १८ । तीन देवियाँ १९ । त्वष्टा २० । वनस्पति २१ । स्वाहाकृति २२ । लिंगोक्त २३-२८, ४१-४५, ५९-६१ । अश्विनीकुमार-सरस्वती-इन्द्र २९-४०, ४८-५८ । यूप ४६ । स्विष्टकृत् अग्नि ४७ ।

छन्द— निचृत् गायत्री १, ८ । निचृत् त्रिष्टुप् २, ११ । स्वराट् पंक्ति ३,४ । त्रिष्टुप् ५ । भुरिक् त्रिष्टुप् ६ । विराट् यवमध्या गायत्री ७ । त्रिष्टुप् ९, ४८, ५०-५१, ५४ । भुरिक् पंक्ति १० । विराट् अनुष्टुप् १२, १४ । अनुष्टुप् १३, १६, १९-२२, २४, २५ । निचृत् अनुष्टुप् १५,१७, १८ । भुरिक् अनुष्टुप् २३, २७, २८ । विराट् बृहती २६ । निचृत् अष्टि २९, ३३, ३६ । भुरिक् अत्यष्टि ३० । अतिधृति ३१, ३२, ४१ । निचृत् अतिधृति ३४ । भुरिक् अष्टि ३५ । धृति ३७, ६० । भुरिक् कृति ३८ । निचृत् अत्यष्टि ३९, ५६ । (दो) निचृत् अत्यष्टि ४० । त्रिपाद् गायत्री, विराट् आकृति ४२ । याजुषी पंक्ति, उत्कृति ४३ । याजुषी त्रिष्टुप्, स्वराट् उत्कृति ४४ । भुरिक् प्राजापत्या उष्णिक् , भुरिक् अभिकृति ४५ । (दो) भुरिक् अभिकृति ४६ । भुरिक् आकृति, आकृति ४७ । ब्राह्मी उष्णिक् ४९ । अतिजगती ५२ । भुरिक् अतिजगती ५३ । स्वराट् शक्वरी ५५ । अतिशक्वरी ५७ । अत्यष्टि, निचृत् त्रिष्टुप् ५८ । अष्टि ५९ । भुरिक् विकृति ६१ ।

॥ इति एकविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय में अश्वमेध की विशेष आहुतियों का उल्लेख है। आहुतियों के पूर्व कुछ मंत्रों में अश्वमेध के अश्व की स्तुतियाँ की गयी हैं। अश्व नाम के किसी पशु की अपेक्षा सर्वत्र संचरित होने मे सक्षम यज्ञीय ऊर्जा—यज्ञाग्नि के साथ इन स्तुतियों की संगति सटीक बैठती है। सर्वत्र संचरित होने में सक्षम होने के कारण यज्ञीयऊर्जा को अश्व तथा स्वभावतः चंचल अग्नि की ज्वालाओं को अर्वन् कहकर संबोधित किया गया है—

१२७३. तेजोसि शुक्रममृतमायुष्पा ऽ आयुर्मे पाहि। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥१॥

हे तेजस्वरूप सुवर्ण (निष्क) ! आप आयु, पराक्रम, बल और अमरता की रक्षा करने वाले हैं। आप हमारी आयु की रक्षा करें। सविता देव के अनुशासन में अश्विनीकुमारों की भुजाओं (अर्थात् स्वस्थ भुजाओं) और पूषा देव के हाथों (प्राणवान् हाथों) के द्वारा हम आपको ग्रहण करते हैं ॥१॥

१२७४. इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽ आयुषि विदथेषु कव्या। सा नो अस्मिन्त्सुतऽ आ बभूव ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥२॥

यज्ञ से प्राप्त, जिस ज्ञान-शक्ति द्वारा ऋषियों ने, जगत् के आदिकारण ऋत के व्यापार (ब्रह्म और प्रकृति के क्रिया-कलाप) को जाना। हम भी यजन करके ज्ञान शृंखला के द्वारा ब्रह्म- प्रकृति के रहस्यों को स्पष्ट रूप से जानें॥

१२७५. अभिधा असि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता। स त्वमग्निं वैश्वानरथ्ं सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥

हे अश्व (यज्ञाग्नि) ! आप समस्तलोकों के धारणकर्त्ता, नियंता और पदार्थों का ज्ञान कराने वाले हैं। वैश्वानर अग्नि में हवि की आहुति से अधिक शक्तिशाली होकर आप लक्ष्य तक गमन करें ॥३॥

१२७६. स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम्। तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥४॥

हे अश्व ! सर्वत्र संव्याप्त होने वाले आप प्रजापति आदि देवताओं तक स्वयं जाने में समर्थ हैं। हे ब्रह्मन् अश्व ! (यज्ञाग्नि) हम आपसे प्रजापति आदि देवगणों के निमित्त पहुँचने की प्रार्थना करते हैं, जिससे सब प्रकार से यह यज्ञ सफल-सिद्ध हो ॥४॥

१२७७. प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। यो अर्वन्तं जिघा थ्ंसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्त्तः परः श्वा ॥५॥

आहुतियों के पूर्व यज्ञाग्नि का अभिषिंचन-अभिषेक करते हुए कहा जाता है—

हे सबके प्रिय ! प्रजापति की संतुष्टि के लिए आपका अभिषेक करते हैं। इन्द्रदेव एवं अग्निदेव के निमित्त आपका अभिषिंचन है। वायुदेव एवं विश्वेदेवों की प्रीति के लिए आपका सम्मान करते हैं। सभी देवताओं के प्रिय आपका अभिषेक है। इन चञ्चल यज्ञीय ज्वालाओं (अर्वन्) को हानि पहुँचाने वालों को वरुणदेव नष्ट करें। निष्प्राणों (यज्ञ कुण्ड के बुझते अवशेष अथवा उत्साहहीन व्यक्तियों) को दूर हटाएँ, श्वान वृत्ति (हीन वृत्ति) वालों को दूर हटाएँ ॥५॥

१२७८. अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥६

अग्निदेव के निमित्त आहुति समर्पित है । सोम एवं जल के आनन्ददायक देवों के लिए आहुतियाँ अर्पित हैं । सवितादेवता के लिए, वायुदेवता के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं । विष्णु एवं इन्द्रदेव के निमित्त आहुतियाँ दी जाती हैं । बृहस्पति, मित्र एवं वरुणदेव के लिए आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं-वे स्वीकृत हों ॥६ ॥

आगे के मंत्रों में अश्व द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के साथ स्वाहाकार किया जाता है । "वीर्यं वा अश्वः" एवं " "श्रीर्वै राष्ट्रम्" के अनुसार राष्ट्र के पराक्रम तथा सम्पत्ति-विभूतियों से सम्पन्न होने वाली चेष्टाओं-क्रियाओं के साथ यज्ञीय ऊर्जा को समाविष्ट करने के लिए ये आहुतियाँ दी जाती हैं —

१२७९. हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहावक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा स ँ हानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥७ ॥

हिंकार (उत्साहित होने पर स्वतः प्रकट होने वाले स्वर) के लिए आहुति अर्पित है । हिंकृत (उत्साह व्यक्त किया जा चुका) के लिए आहुति है । क्रन्दन (उच्च स्वर से उद्घोष) एवं अवक्रन्दन (नीचे स्वर से अभिव्यक्ति) के लिए आहुतियाँ हैं । कर्मों की पूर्णता की प्रेरणा के निमित्त आहुतियाँ हैं । गंध लेने की प्रवृत्तियों एवं सूँघने की सम्पन्न हो चुकी क्रियाओं के लिए आहुतियाँ हैं । पहुँचने एवं बैठने की चेष्टाओं के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं । दिये जाने की प्रवृत्ति तथा गतिशीलता के लिए आहुतियाँ हैं । आसन ग्रहण करने तथा लेटने की चेष्टाओं के निमित्त आहुतियाँ हैं । सोने तथा जागने के लिए आहुतियाँ हैं । कूजन (गुनगुनाने तथा प्रबुद्ध होने की क्रियाओं) के निमित्त आहुतियाँ हैं । जँभाई लेने (चैतन्य होने), प्रदीप्त होने के निमित्त आहुतियाँ हैं । शारीरिक सुडौलता के लिए, उपस्थिति के लिए, गमन एवं प्रयाण के निमित्त ये आहुतियाँ दी जाती हैं, (स्वीकार हों) ॥७ ॥

१२८०. यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥८ ॥

जाते हुए, दौड़ते हुए तथा तीव्र गति वाले के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं । उत्कर्ष के लिए प्रयत्नशील, जो शीघ्रता करने वाले हैं तथा जो शीघ्रता कर चुके हैं, उनके निमित्त आहुतियाँ दी जाती हैं । बैठे हुए, उठते हुए एवं वेगवान् के लिए आहुतियाँ अर्पित हैं । विशेष क्रम में उपस्थित तथा विवृत्त गति (पुनः-पुनः किए जाने) के निमित्त आहुतियाँ हैं । काँपने वाले, अधिक काँपने वाले एवं शुश्रूषा चाहने वाले के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं । श्रवणशील के लिए, देखे हुए, परखे हुए के निमित्त आहुतियाँ हैं । पलक झपकने एवं खाने की चेष्टाओं के लिए आहुतियाँ अर्पित हैं । जल सेवन तथा विसर्जन की क्रियाओं के लिए आहुतियाँ हैं । क्रियाएँ , जो की जा रही हैं और जो की जा चुकी हैं, उन सबके लिए आहुतियाँ अर्पित हैं ॥८ ॥

१२८१. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥९ ॥

सर्वप्रेरक, पापनाशक , वरण करने योग्य, देव (सत्-चित्-आनन्द) स्वरूप, सविता देव को हम धारण करते हैं, वे (उत्पादक-प्रेरक देव) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने (श्रेष्ठ कर्म करने) की प्रेरणा प्रदान करें ॥९ ॥

१२८२. हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥१० ॥

हे हिरण्यपाणि (सुनहरी किरणें जिनके हाथ हैं) सवितादेव ! आप सर्वज्ञाता और सेवन करने योग्य हैं । हे देव ! रक्षा के लिए हम आपका आवाहन करते हैं ॥१० ॥

१२८३. देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिं सत्यराधसम् ॥११ ॥

हे सवितादेव ! आप सर्वज्ञ व चैतन्यरूप सत्य तक पहुँचाने वाले हैं । हम सब सद्बुद्धि की प्राप्ति के निमित्त आपकी स्तुति करते हैं ॥११ ॥

१२८४. सुष्टुतिं सुमतीवृधो रातिं सवितुरीमहे । प्र देवाय मतीविदे ॥१२ ॥

हे सवितादेव ! उत्तममति की वृद्धि करने वाले आप हम सबको भी सद्बुद्धि प्रदान करें ; जिससे हम आपकी श्रेष्ठ रीति से स्तुति कर सकें ॥१२ ॥

१२८५. रातिं सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये । आसवं देववीतये ॥१३ ॥

देवताओं को तृप्त करने के लिए, सज्जनों के स्वामी, दानशील, परम ऐश्वर्य-सम्पन्न, सवितादेव की हम स्तुति करते हैं-पूजन करते हैं ॥१३ ॥

१२८६. देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं मनामहे ॥१४ ॥

समस्त देवताओं के हितकारी, परम ऐश्वर्यसम्पन्न सवितादेव की भग (ऐश्वर्य) बढ़ाने वाली मति (श्रेष्ठ बुद्धि) को धारण करने के लिए हम स्तुति करते हैं ॥१४ ॥

१२८७. अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥१५ ॥

हे अध्वर्यु ! आप अग्निदेव को समिधाएँ अर्पित करके अमर (अखण्ड) बनाएँ । स्तुति से उन्हें बोध कराएँ (प्रसन्न करें), जिससे वे हमारी आहुतियों को देवगणों तक पहुँचाएँ ॥१५ ॥

१२८८. स हव्यवाडमर्त्यऽ उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥१६ ॥

हवि वहनकर्ता, अमर (प्रज्वलित), स्वप्रकाशित, देवदूत और हम सबके हितैषी हे अग्निदेव ! धारण क्षमता के द्वारा ही हविधारण करके आप देवताओं तक पहुँचाने का सम्पूर्ण कार्य करते हैं ॥१६ ॥

१२८९. अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ२ आ सादयादिह ॥१७ ॥

हवि वाहक, देवदूत, अग्निदेव को हम सामने स्थापित करते हैं । उनसे प्रार्थना करते हैं कि हे अग्निदेव ! आप यहाँ रहते हुए अन्य देवताओं तक पहुँचें ॥१७ ॥

१२९०.अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥

हे पवित्र करने वाले अग्निदेव ! आप सूर्य को प्रकट करने वाले, गति देने वाले और देह (ब्रह्माण्ड) के पोषणकर्त्ता हैं । गौ आदि पशुओं के जीवनदाता जल को, आप अपनी गतिमान् शक्ति द्वारा धारण करते हैं । गौएँ आपकी शक्ति से ही दुग्ध धारण करती हैं ॥१८ ॥

[शरीरस्थ अग्नि (जठराग्नि) द्वारा संचालित विशिष्ट पाचन-क्रिया ही घास आदि को दूध में परिवर्तित करती है । इसलिए अग्नि की शक्ति से ही दूध धारण करने की बात कही गयी है ।]

१२९१. विभूमात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा ऽ असि। ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवाऽ आशापालाऽ एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षित ᳪ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१९ ॥

हे अश्व (यज्ञाग्नि) ! आप मातृवत् गुणों से विभूषित तथा पितृवत् गुणों से प्रभुता-सम्पन्न हैं। आप 'ययु' (गमनशील) और 'शिशु' (प्रशंसनीय) नाम से ख्याति प्राप्त, निरन्तर वेग से गमन करने वाले, शत्रुओं का पीछा करने में समर्थ, शत्रु के नाशक, प्रजा के सुखदाता और पराक्रमी हैं। इसी से मनुष्यों में आपका सम्मान है। जिस तरह आदित्यगण अपने मार्ग में गमन करते हैं, वैसे ही आप भी तेजस्विता सहित गमन करें। दिव्यगुण वाले, सभी दिशाओं के रक्षक (देवगण, देवकार्य में निरत विद्वान् एवं शौर्यवान् व्यक्ति) देवताओं के निमित्त प्रोक्षित (संस्कारित) इस अश्व (यज्ञाग्नि) की रक्षा करें । यह यहाँ प्रसन्नता से रहे (रमण करे)। यज्ञ की धारण शक्ति बढ़ाने के लिए यह आहुति है, साधकों के स्व (अन्तःकरण) में धारण शक्ति बढ़ाने के भाव से यह आहुति है ॥१९ ॥

१२९२. काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२० ॥

(काय) प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है। (कस्मै) सुख स्वरूप प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है।(कतमस्मै) सर्वश्रेष्ठ प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है। विद्या-बुद्धि धारणकर्त्ता के निमित्त आहुति समर्पित है। 'मन' रूप प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है। चित्त के साक्षी आदित्य के निमित्त आहुति समर्पित है। सुख-प्रदाता आदित्य के निमित्त आहुति समर्पित है। देवी सरस्वती के निमित्त आहुति समर्पित है। महिमावती सरस्वती के निमित्त आहुति समर्पित है। पदार्थ प्रदायक पूषादेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है। मानवों के धारक-पोषक पूषादेव के लिए यह आहुति समर्पित है। त्वष्टादेव के लिए आहुति समर्पित है। तीव्रगति के पोषक त्वष्टादेव के लिए आहुति समर्पित है। अनेक रूप वाले त्वष्टादेव के निमित्त आहुति समर्पित है। विष्णुदेव के लिए आहुति समर्पित है। पालक विष्णुदेव के लिए आहुति समर्पित है। सभी प्राणियों के अन्तर में स्थित विष्णुदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२० ॥

१२९३. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय ऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥२१ ॥

विश्व के सभी मनुष्यादि मरणधर्मा प्राणी देवताओं के नायक (सवितादेव) से मित्रता (कृपा प्राप्त) करना चाहते हैं और पुष्टि के लिए अन्न-धनैश्वर्यादि को प्राप्त करना चाहते हैं। इस निमित्त (सवितादेव के लिए) हम यह आहुति प्रदान करते हैं ॥२१ ॥

१२९४. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर ऽ इषव्योतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥२२ ॥

हे ब्रह्मन् ! इस राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न ब्राह्मण तथा पराक्रमी, धनुर्विद्या में निपुण, शत्रुओं को जीतने वाले महारथी (महायोद्धा) क्षत्रिय उत्पन्न हों । शीघ्रगामी घोड़े, भारवाही बैल, दुग्ध देने वाली गौएँ नागरिकों को प्राप्त हों । यहाँ की स्त्रियाँ सर्वगुण-सम्पन्न और शीलवती हों । रथी वीरपुरुष विजयशील हों । सभा में साधु स्वभाव वाले श्रेष्ठ वक्ता एवं वीर युवा हों । हम जब चाहें, तब (आवश्यकता के अनुरूप) जलवृष्टि हो । हमारा राष्ट्रफल, ओषधि एवं अन्न से समृद्ध हो और सदैव सकुशल-सुरक्षित रहे ॥२२॥

१२९५. प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥

प्राण, अपान, व्यान आदि प्राणों की पुष्टि के लिए ये आहुतियाँ हैं । देखने की, सुनने की तथा वाणी की शक्ति के परिष्कार के लिए ये आहुतियाँ हैं, मन के संस्कार के लिए यह आहुति समर्पित है ॥२३॥

१२९६. प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२४॥

पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊर्ध्व एवं बीच की दिशा, अधो तथा बीच की दिशा की तुष्टि के निमित्त हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२४॥

१२९७. अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥२५॥

पेय जल, रोग निवारक जल, ऊर्ध्वगामी जल, स्थिर जल, झरने वाले जल, प्रवाहित जल, कुएँ के जल, वर्षा के जल, धारण करने योग्य जल, समुद्र के जल एवं वायु में स्थित जलों के निमित्त आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२५॥

१२९८. वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥२६॥

वायु के लिए, धूम्र (वाष्प) के लिए, अभ्र (घनीभूत होती भाप) के लिए, मेघ के लिए, विद्युत् पैदा करने वाले, गर्जन करने वाले, विद्युत् को नीचे फेंकने वाले, बरसने वाले, कम वर्षा करने वाले, अतिवृष्टि करने वाले, शीघ्र बरसने वाले, ऊपर उठने वाले, ऊपर से जल ग्रहण करने वाले, बड़ी बूँदों वाले, छोटी बूँदों वाले, घनघोर वर्षा वाले, गड़-गड़ शब्द करने वाले, कुहरे वाले—इन सभी मेघों के निमित्त हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२६॥

१२९९. अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवेस्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२७॥

अग्नि, सोम, इन्द्र देवता के लिए, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिशाओं, उप दिशाओं, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२७॥

१३००. नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहा र्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्या ᳪ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा- दित्येभ्यः स्वाहा

मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥२८ ॥

नक्षत्रों के लिए, नक्षत्रों के देवताओं के लिए, दिन-रात्रि के लिए, अर्द्धमास (पक्षों) के लिए, मास, ऋतु, ऋतु से उत्पन्न पदार्थ, संवत्सर, द्यावा-पृथिवी, चन्द्रमा, सूर्य, सूर्य की किरणों, वसुओं, रुद्रों, आदित्यों, मरुद्गणों, मूलों (जड़ों), शाखाओं, वनस्पतियों, पुष्पों, फलों एवं ओषधियों के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२८ ॥

१३०१. पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥२९ ॥

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, जल, ओषधियों, वनस्पतियों, भ्रमणशील ग्रहों, रेंगने वाले प्राणियों एवं चराचर के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२९ ॥

१३०२. असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सᳬ सर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥३० ॥

प्राण, वसुदेव, विभु, विवस्वान् (सूर्यदेव), गणपति, अभिभुव, अधिपति, सामर्थ्यवान्, गमनशील, गणश्री, ज्योतिर्मान्, चन्द्रदेव, मलिम्लुच (अधिकमास के देवता) आदि को यज्ञीय ऊर्जा से अनुप्राणित करने के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥३० ॥

१३०३. मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा ᳬहसस्पतये स्वाहा ॥३१ ॥

चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अगहन (मार्गशीर्ष) , पौष, माघ, फाल्गुन और अधिक मास के संतुलन के लिए ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥३१ ॥

१३०४. वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा- धिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२ ॥

अन्न देवता, उत्पादक देव, जलोत्पन्न अन्नों, यज्ञ के उपयुक्त अन्नों, स्व (अन्तःकरण), मूर्धा (मस्तिष्क के संतुलन), व्यापक अन्न (शरीर, मन, विचार आदि के लिए पोषक तत्त्वों) अन्तिम व्यवहार के निमित्त, संसार में होने वाले कर्मों के लिए, भुवनपति और प्रजापति आदि देवों के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥३२ ॥

१३०५. आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहापानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ॥३३ ॥

यज्ञ से आयु, प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान आदि पंच प्राणों की वृद्धि हो, इसलिए ये आहुतियाँ समर्पित करते हैं। यज्ञ से चक्षु, श्रोत्र, वाक्, इन्द्रियाँ बलवान् हों, इस निमित्त आहुतियाँ समर्पित करते हैं। यज्ञ से मन, आत्मा, आत्मज्योति, स्वःलोक, ब्रह्मलोक और यज्ञीय भाव को समर्थ बनाने के निमित्त हम ये आहुतियाँ अर्पित करते हैं॥३३॥

१३०६. एकस्मै स्वाहा द्वाभ्या ᳪ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥

अद्वितीय परमेश्वर के लिए, प्रकृति-पुरुष के लिए, शत (सौ वर्ष तक की आयु वालों), एक शत (सौ वर्ष से अधिक आयु वालों) के लिए, पापों के शमनकर्त्ता के लिए एवं स्वर्ग के लिए हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं॥३४॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— प्रजापति १ । संवत्सर यज्ञपुरुष २-८ । विश्वामित्र ९, १६ । मेधातिथि १०-१४ । सुतंभर १५ । विरूप १७ । त्र्यरुण-त्रसदस्यु १८-२०, २२-३४ । स्वस्त्य आत्रेय २१ ।

देवता— स्वर्ण-निष्क १ । रशना २ । लिंगोक्त ३, ४, २०, २२-३४ । लिंगोक्त, अश्व ५ । लिंगोक्त (अग्नि आदि) ६ । अश्व ७, ८ । सविता ९-१४, २१ । अग्नि १५-१७ । पवमान १८ । अश्व, देवगण, अग्नि १९ ।

छन्द— निचृत् पंक्ति १ । निचृत् त्रिष्टुप् २ । भुरिक् अनुष्टुप् ३ । जगती ४,२७ । अतिधृति ५ । भुरिक् अतिजगती ६ । (दो) अत्यष्टि ७ । (दो) निचृत् अतिधृति ८ । निचृत् गायत्री ९, १३, १५-१६ । गायत्री १०-१२,१७ । पिपीलिकामध्या निचृत् गायत्री १४ । पिपीलिकामध्या विराट् अनुष्टुप् १८ । विकृति १९ । विराट् अतिधृति, निचृत् अतिधृति २० । आर्षी अनुष्टुप् २१ । स्वराट् उत्कृति २२ । स्वराट् अनुष्टुप् २३ । निचृत् अतिधृति २४ । अष्टि २५ । विराट् अभिकृति २६ । भुरिक् अष्टि २८ । निचृत् अत्यष्टि २९ । कृति ३० । भुरिक् अत्यष्टि ३१ । अत्यष्टि ३२ । निचृत् कृति (दो) ३३ । भुरिक् उष्णिक् ३४ ।

॥ इति द्वाविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

१३०७. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽ आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१ ॥

सृष्टि के प्रारंभ में हिरण्यगर्भ परमपुरुष (प्रजापति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के एक मात्र उत्पादक और पालक रहे। वे सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति से पहले भी विद्यमान थे, वही स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी को धारण करने वाले हैं, हम उसी आनन्दस्वरूप प्रजापति की तृप्ति के लिए आहुति समर्पित करते हैं (उनके अतिरिक्त और किसे आहुति समर्पित करें ?) ॥१ ॥

१३०८. उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा। यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥२ ॥

हे हवि ! प्रजापति के प्रिय आपको हम ग्रहण करते हैं। आप उपयाम पात्र में स्थित हों, यह आपका धारक स्थान है। हे प्रजापति ! सूर्य, वायु, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिन और संवत्सर में आपकी महिमा प्रकट है (अर्थात् यह सब आपकी महिमा के परिचायक हैं)। आप (महिमावान् प्रजापति) और देवगणों के निमित्त हम यह आहुति प्रदान करते हैं ॥२ ॥

१३०९. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव। यऽईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३ ॥

जो परमात्मा अपनी महिमा द्वारा निमिष मात्र में, मनुष्य, पशु सहित सम्पूर्ण जगत् के अधिष्ठाता होते हैं (अर्थात् उत्पन्न करते हैं)। जो इस जगत् के स्वामी हैं, उन आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिए यह आहुति समर्पित करते हैं (उनके अतिरिक्त और किसे आहुति समर्पित करें ?) ॥३ ॥

१३१०. उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥४ ॥

हे हवि ! प्रजापति के प्रिय आपको हम ग्रहण करते हैं। आप उपयाम पात्र में स्थित हों। यह आपका धारक स्थान है। हे प्रजापते ! चन्द्र, अग्नि, नक्षत्र, भूलोक, रात्रि और प्रति संवत्सर के रूप में आपकी महिमा प्रकट है। आप (महिमावान् प्रजापति) और देवगणों के निमित्त हम यह आहुति प्रदान करते हैं ॥४ ॥

१३११. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥५ ॥

जिस प्रकार आकाश में स्वप्रकाशित सूर्यदेव संबंधित ग्रहों को अपने साथ जोड़े रहते हैं, उसी प्रकार संतुलित मानस वाले ऋत्विग्गण इस स्वप्रकाशित यज्ञाश्व (यज्ञाग्नि) के साथ सभी यज्ञीय उपचारों को नियोजित रखते हैं ॥५

१३१२. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥६ ॥

जिस प्रकार (कुशल व्यक्ति) मनुष्यों को ले जाने वाले रथ में, दो घोड़ों को अपने वश में रखकर जोड़ते हैं, उसी प्रकार इस (देवताओं के लिए हवि ले जाने वाले) रथ में 'शोणा' (लाल रंग के वेगवान् अग्नि) तथा 'धृष्णू' नामक अश्वों (सामर्थ्यवान् मंत्रों) को नियोजित करें ॥६ ॥

१३१३. यद्वातो अपो अगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम्। एतॅं स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः ॥७॥

जब वायु के समान वेगवान् यह अश्व (हवियुक्त प्राणवान् यज्ञीय ऊर्जा) इन्द्रदेव के प्रिय जलरूप (बरसने वाले जल) को प्राप्त हो जाए, तब हे स्तोताओ ! (अपनी मंत्र शक्ति से) इस प्राण-पर्जन्य रूपी अश्व को इसी मार्ग से फिर लौटाओ ॥७॥

[यहाँ यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा से प्रकृति चक्र को पोषण देने तथा उसके प्रभाव से प्राणवान् पर्जन्ययुक्त वर्षा प्राप्त होने का संकेत किया गया है।]

१३१४. वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा दित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा। भूर्भुवःस्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्यऽ एतदन्नमत्त देवाऽ एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥

हे अश्व ! (संचरित होने वाले प्राणपर्जन्य) ! गायत्री छन्द द्वारा वसुगण आपको अभिषिक्त करें। आदित्य आपको जगती छन्द द्वारा अभिषिक्त करें। रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द से युक्त करें। भूलोक, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग लोक में स्थित प्रकाशमान एवं सामर्थ्यवान् हे देवगणो ! आप इस हव्य को ग्रहण करें। हे सत्पुरुषो ! इस यज्ञीय प्रक्रिया से पुष्ट हुए यवादि अन्नों एवं गौओं से उत्पन्न दूध आदि का सेवन करें ॥८॥

१३१५. कः स्विदेकाकी चरति कऽ उ स्विज्जायते पुनः। किॅं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥९॥

(ब्रह्मा होता से पूछते हैं, यह बताएँ कि) एकाकी कौन विचरण करता है ? वह कौन है जो बार-बार पैदा (प्रकाशित) होता है ? हिम (शीत) की औषधि क्या है ? एवं बीज-वपन के निमित्त बड़ा क्षेत्र कौन-सा है ? ॥९॥

१३१६. सूर्यऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥

(होता कहते हैं कि) सूर्य एकाकी विचरण करता है। चन्द्रमा पुनः-पुनः पैदा प्रकाशमान होता है। अग्नि (हिम) (शीत) की औषधि है। बीज-वपन का बड़ा क्षेत्र यह पृथ्वी है ॥१०॥

१३१७. का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किॅं स्विदासीद् बृहद्वयः। का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥११॥

(होता ब्रह्मा से पूछते हैं कि) सबसे पहले चित्त में धारण करने योग्य कौन सी स्थिति है ? सर्वाधिक बलवान् पक्षी कौन है ? शोभावान् कौन है ? सब रूपों को निगलने वाला कौन है ? ॥११॥

१३१८. द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः। अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥१२॥

(ब्रह्मा उत्तर देते हुए कहते हैं कि) सबसे पहले चिन्तनीय (स्मरणीय) द्यौ है। अश्व (सब को गति देने वाले अग्नि) ही सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न पक्षी है। अवनि (रक्षिका पृथ्वी) सबसे बड़ी शोभावाली है। रात्रि समस्त पदार्थों के रूप को निगलने वाली अर्थात् अपने अंधकार में छिपाकर रखने वाली है ॥१२॥

१३१९. वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या। एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्माऽकृष्णश्च नोवतु नमोऽग्नये ॥१३॥

हे अश्व ! (यज्ञाग्नि), वायु आपको परिपक्वता प्रदान करके, कृष्णग्रीवा अग्नि छाग (कृष्णवर्णी धूम्र) प्रदान करके, वट वृक्ष चमस प्रदान करके तथा सेमल वृक्ष वृद्धि प्रदान करके आपकी रक्षा करें। यह बलवान् (अश्व)

सर्वत्र संव्याप्त होने वाली आनन्द प्रदायक यज्ञीय ऊर्जा, चारों चरणों में (स्वेदज, अंडज, उद्भिज एवं जरायुज चार प्रकार के जीवों का पोषण करते हुए) आगमन करे । धवलवर्णी अश्व (अग्निज्योति) हमारी रक्षा करे । इस हेतु अग्निदेव को नमस्कार है ॥१३॥

१३२०. स ꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः । स ꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥१४॥

रश्मियों- ऊर्जा प्रवाह से यज्ञ रथ प्रशंसित है, प्रकाश किरणों के कारण (हय) गतिमान् अग्निदेव प्रशंसित हैं । जो जल से उत्पन्न है, वह जल से शोभित होता है । सोम को (पोषण के निमित्त) आगे रखने (गति देने) के कारण ब्रह्मा (प्रजापति) प्रशंसित होते हैं ॥१४॥

१३२१. स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व । महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥

हे (वाजिन्) बलशाली यज्ञीय ऊर्जा ! आप स्वयं समर्थ बनें, स्वयं यजन द्वारा विस्तार पाएँ, स्वयं ही पदार्थों से जुड़कर उन्हें प्राणवान् बनाएँ । अन्य पदार्थों से मिलकर आपकी महिमा (आपका प्रभाव) नष्ट न हो ॥१५॥

१३२२. न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः । यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥१६॥

यह (यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा अथवा आत्मा) निश्चितरूप से न तो नष्ट होती है और न क्षीण होती है । यह देवयान मार्ग से देवों के उस स्थान तक पहुँचती है, जहाँ श्रेष्ठ कर्म करने वाले व्यक्ति रहते हैं । जहाँ वे पुण्यात्मा लोग गये हैं, वहाँ सविता देवता तुझे (यज्ञीय ऊर्जा अथवा जीवात्मा को) स्थापित करें ॥१६॥

१३२३. अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता ऽ अपः । वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता ऽ अपः । सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अपः ॥१७॥

सर्वद्रष्टा अग्निरूप पशु (हवि) के द्वारा देवताओं ने यजन किया । जिसमें अग्नि तत्त्व, प्रधान बल होता है, वह इस लोक को जीतता है । याजकगण भी इस लोक को जीतने एवं उसमें आश्रय पाने के निमित्त इस शाश्वत ज्ञान को आत्मसात् करें । सर्वद्रष्टा वायुरूप पशु (हवि) द्वारा देवताओं ने यजन किया । जिसमें वायु बल प्रधान होता है, वह इस लोक को जीतता है । इस लोक को जीतने एवं आश्रय पाने के निमित्त, हे याजकगण ! आप भी इस शाश्वत ज्ञान को आत्मसात् करें । सर्वद्रष्टा सूर्यरूप पशु (हवि) के द्वारा देवताओं ने यजन किया । जिसमें सूर्य तत्त्व प्रधान बल होता है, वह इस लोक को जीत लेता है । हे याजकगण ! आप भी इस लोक को जीतने एवं आश्रय पाने के निमित्त इस शाश्वत रस (ज्ञान) का पान करें ॥१७॥

[उक्त मंत्र में ऋषि ने योगारूढ़ होकर अग्नि प्रधान भूलोक, वायु प्रधान भुवःलोक और प्रकाश प्रधान सूर्य के स्वःलोक को प्राप्त करने की मन्त्रणा दी है ।]

१३२४. प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१८॥

शिथिल अग्नि काम्पील वासिनी (काम्पील के वृक्ष की समिधाओं पर पड़ी हुई) सुभद्रिकाओं (श्रेष्ठ हवियों) के साथ सोती (अप्रज्वलित स्थिति में पड़ी) है । हवियाँ (यज्ञ पत्नियाँ) तीन देवियों अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका से प्रार्थना करती हैं कि हे अम्बे ! हे अम्बिके ! और हे अम्बालिके ! हमें कोई ऐसी (शिथिल-अप्रखर) स्थिति में न ले जाएँ । यह आहुतियाँ प्राण, अपान एवं व्यान की पुष्टि के लिए हैं ॥१८॥

[इस मंत्र में अप्रज्वलित यज्ञाग्नि अथवा जठराग्नि में आहुतियाँ न डालने का संकेत है ।]

१३२५.गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥१९ ॥

हे गणों के बीच रहने वाले सर्वश्रेष्ठ गणपते ! हम आपका आवाहन करते हैं । हे प्रियों के बीच रहने वाले प्रियपते ! हम आपका आवाहन करते हैं । हे निधियों के बीच सर्वश्रेष्ठ निधिपते ! हम आपका आवाहन करते हैं । हे जगत् को बसाने वाले ! आप हमारे हों । आप समस्त जगत् को गर्भ में धारण करते हैं, पैदा (प्रकट) करते हैं । आपकी इस क्षमता को हम भली प्रकार जानें ॥१९ ॥

१३२६.ताऽउभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥२० ॥

आप दोनों (यज्ञीय ऊर्जा एवं देवशक्तियाँ) स्वर्गलोक में एक दूसरे का संरक्षण करें । दोनों मिलकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चारों चरणों का संसार में विस्तार करें । हे बलवान् ! वीर्य-पराक्रम को धारण करने वाले आप हमें (रेतस्) पराक्रम प्रदान करें (वीर्यवान् बनाएँ) ॥२० ॥

१३२७. उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् । य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥२१ ॥

आदि शंकराचार्य ने भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कहा है-'आत्मा त्वम् गिरिजा मतिः ... आप आत्मास्वरूप हैं -आपकी अर्धाङ्गिनी पार्वती बुद्धि हैं' । इस मंत्र में 'स्त्रीणां' यह प्रयोग साधकों की बुद्धियों के लिए ही उपयुक्त बैठता है—

हे बलशाली- दुष्टों के दमनकर्त्ता ! जो लोग अपनी स्त्रियों (बुद्धियों) को क्रीड़ा एवं व्यसन में नियोजित करके अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं, आप उनको प्रताड़ित करें और विद्या एवं न्याय में बुद्धियों के (नियोजन) द्वारा उत्तम सुख की स्थापना करें ॥२१ ॥

१३२८.यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ।

(अध्वर्यु का कथन) यह जो शक्ति धारण किए प्रवहमान जल है, शकुन्तिका (पक्षी) के समान आह्लादजनित शब्द करता है । इस उत्पादक जल में यज्ञ-तेज आता है । तेजधारण किया हुआ जल, गल-गल शब्द करता है ॥२२

१३२९. यकोसकौ शकुन्तक ऽ आहलगिति वञ्चति । विवक्षत ऽ इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥२३ ॥

(कुमारी का कथन) हे अध्वर्यु ! (पूर्वोक्त तेज के प्रभाव से) आपका बोलने को आतुर मुख शकुन्तक पक्षी की तरह सतत शब्द कर रहा है । आप निरर्थक बातचीत मत करें (केवल यज्ञीय संदर्भ में अपनी वाणी का प्रयोग करें) ॥२३ ॥

१३३०.माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः । प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतँसयत् ॥

(ब्रह्मा का कथन—) हे महिषि ! आपके माता और पिता (अग्नि और हवि) वृक्ष के अग्र भाग पर (समिधाओं के ऊपर) यज्ञीय प्रक्रिया के सहारे ऊर्ध्व गति प्राप्त करते हैं । वहाँ से आपके पिता सुसंगठित होकर (यज्ञ धूम्र से पर्जन्य गठित कर) पर्जन्य की वर्षा कर सुशोभित होते हैं (यज्ञ के प्रभावित क्षेत्र में पर्जन्य की वर्षा करते हैं), तब प्रतीत होता है, मानो वे कहते हैं— "मैं प्रसन्न हूँ" ॥२४ ॥

१३३१. माता च ते पिता च तेग्रे वृक्षस्य क्रीडतः । विवक्षत ऽइव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥२५ ॥

(महिषी का कथन— हे ब्रह्मा) ! आपके माता-पिता (देवगण एवं हवि) विश्व वृक्ष के उच्च भाग पर क्रीड़ारत (शक्ति प्रयोगरत) हैं । आपका मुख बोलने को आतुर (की तरह) है । (इस समय) अधिक न बोलें अर्थात् केवल आवश्यक यज्ञीय उच्चारण ही करें । (यज्ञीयशक्ति प्रयोग को निरर्थक उच्चारण से अस्त-व्यस्त न करें) ॥२५ ॥

१३३२. ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥२६ ॥

(उद्गाता का कथन—) जिस प्रकार किसी भार को, पर्वत पर पहुँचाकर समुन्नत करते हैं और किसान धान्य पात्र को ऊँचा उठाकर धान्य को वायु के प्रवाह द्वारा शुद्ध करता है (धान्य के कचरे को हवा में उड़ाकर साफ करता है), उसी प्रकार हे प्रजापते ! आप हम सब को समुन्नत एवं पवित्र करें ॥२६ ॥

१३३३.ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥

(वावाता का कथन—) जिस प्रकार किसी भार को पर्वत पर पहुँचाकर समुन्नत करते हैं और किसान धान्य पात्र को वायु के प्रवाह में छोड़कर शुद्ध करता है । उसी प्रकार हे प्रजापते ! आप भी उसे (उस राष्ट्र को जिसके निमित्त यह अश्वमेध किया जा रहा है) समुन्नत व पवित्र करें ॥२७ ॥

१३३४. यदस्याऽ अꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् । मुष्काविदस्याऽएजतो गोशफे शकुलाविव ॥२८ ॥

जब इस पाप-नाशक, दुष्टसंहारक यज्ञीय प्रकृति का पृथ्वी पर प्रत्यक्ष स्थापन हो जाता है, तब क्षत्रिय और ब्राह्मण धर्मरूपी गौ के चरणों में, दो खुरों के समान सुशोभित होते हैं ॥२८ ॥

१३३५. यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः । सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥२९ ॥

(परिवृक्ता का कथन—) जब दिव्य कर्मों (यज्ञादि) में श्रेष्ठ पुरुष, (यज्ञ की) आनन्दवर्धक क्रिया सम्पन्न करते हैं, तो जिस प्रकार नारी के अंग देखकर नारी की पहचान हो जाती है, उसी प्रकार आँखों से देखे जाने की तरह उन्हें सत्य की अनुभूति हो जाती है ॥२९ ॥

१३३६.यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥३० ॥

(क्षत्ता का कथन—) हिरण खेत में घुसकर जौ खा ले, तो किसान हिरण के पेट भरने से प्रसन्न नहीं, खेत की हानि से दुःखी होता है, उसी प्रकार किसी ज्ञानी से शिक्षा पाने वाली शूद्रा का अज्ञानी पति, पत्नी के ज्ञानवर्धन से सुखी नहीं होता, प्रत्युत किसी अन्य की बात मानने के कारण पत्नी से रुष्ट (ही) होता है ॥३० ॥

१३३७. यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥३१ ॥

(पालागली का कथन—) जैसे हिरण को खेत में घुसकर जौ खाकर, बहुत पुष्ट हुआ देखकर कृषक प्रसन्न नहीं होता, उसी प्रकार शूद्र (क्षुद्र पुरुष) से प्राप्त कुशिक्षा को पाकर पुष्ट हुई अपनी नारी को देखकर, आर्य (ज्ञानी) प्रसन्न नहीं होते ॥३१ ॥

१३३८. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽ आयूꣳषि तारिषत् ॥३२ ॥

मनुष्य को धारण करने वाले, तीव्र गतिवाले, सबको जीतने में समर्थ अश्व (यज्ञाग्नि) को हम संस्कारित करते हैं । यह अश्व इस यज्ञ के प्रभाव से हमारे मुखों को सुरभित करने वाला और आयु को बढ़ाने वाला हो ॥३२ ॥

[यज्ञ की हवि के सूक्ष्मीकरण से सुगन्ध तथा आयुवर्द्धक पोषक तत्वों की प्राप्ति होती है ।]

१३३९. गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह। बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥

इस मंत्र से यज्ञीय कर्मकाण्ड के क्रम में सूची-वेधन प्रक्रिया करने का विधान है। यज्ञ कुण्ड में आस-पास समिधाएँ डाली जाती हैं तथा बीच में हव्य की आहुतियाँ डाली जाती हैं। जहाँ (हव्य का) एक पिण्ड सा बन जाता है, जिसे पूरा पच जाना चाहिए, किन्तु उसे तोड़ा नहीं जाना चाहिए। इसलिए सूचिकाओं (सलाइयों) से उसमें छेद करके उसके पाचन की प्रक्रिया तीव्र की जाती है। इस पिण्ड को अश्व कहकर उसकी त्वचा का छेदन करके उसका संस्कार करने का विधान है—

हे अश्व (यज्ञाग्नि)! गायत्री छन्द, त्रिष्टुप् छन्द, जगती छन्द, अनुष्टुप् छन्द पंक्ति छन्द सहित बृहती छन्द, उष्णिक् छन्द एवं ककुप् छन्द आदि सूचियों के माध्यम से आपको शान्त करें ॥३३॥

१३४०. द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः। विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३४॥

हे यज्ञाग्ने! जो दो पदों वाले, तीन पदों वाले, चार पदों वाले और छः पदों वाले छन्द हैं, जो छन्द लक्षणों से हीन अथवा लक्षणों से युक्त हैं, ये सभी सूचियों द्वारा आपको शान्ति प्रदान करें ॥३४॥

१३४१. महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः। मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥

हे यज्ञाग्ने! सब प्राणियों को धारण करने वाली ऋचाएँ, सम्पूर्ण दिशाएँ, "महानाम्नी" नामक देववाणियाँ, रेवती नामक ऋचाएँ, मेघ से उत्पन्न होने वाली विद्युत् और सब प्रकार की श्रेष्ठ वाणियाँ सूचियों द्वारा आपको शांति प्रदान करें ॥३५॥

१३४२. नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया। देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

हे यज्ञाग्ने! नेतृत्व में समर्थ (यजमान पत्नियाँ), आपके लोमों (अनुपयुक्त तत्त्वों) को बुद्धि के सहारे अलग करें। देवगणों की पत्नियाँ एवं दिशाएँ सूची द्वारा आपका कल्याण करें ॥३६॥

१३४३. रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥३७॥

रजत, सीसा और स्वर्ण की सूचियाँ मिलकर बलवान् अश्व (यज्ञ पिण्ड) की त्वचा (ऊपरी सतह) में नियोजित की जाती हैं, वे अच्छी प्रकार से अश्व (यज्ञाग्नि) की रक्षा करें। शांति से रहते हुए (उन्हें छेड़ा न जाए) अग्नि को शांति प्रदान करें ॥३७॥

१३४४. कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥३८॥

हे सोम! जिस प्रकार अधिक यवों से पूरित फसल को विचार करते हुए क्रमशः काटते हैं। उसी प्रकार जो कुशआसन पर बैठकर 'नमः' आदि का उच्चारण करते हुए यजन करते हैं, उन याजकों के निमित्त विभिन्न प्रकार के भोजन को यथायोग्य पृथक्-पृथक् स्थापित करें ॥३८॥

१३४५. कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति। कऽउ ते शमिता कविः ॥

(प्रश्न) आपको कौन मुक्त करता है? कौन आपको शास्त्रों का उपदेश करता है? कौन आपके अंगों को सुख पहुंचाता है? और कौन विद्वान् पुरुष आपको शांति पहुंचाता है? मोक्षदाता, उपदेशक, सुखदाता और शांति प्रदाता कौन है? (उत्तर) मेधावी प्रजापति ही सब करते हैं ॥३९॥

१३४६. ऋतवस्त ऽ ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु। संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥४० ॥

यज्ञ के प्रभाव से प्रकृति के अनुकूलन का संकेत इन मंत्रों में है—

हे यज्ञाग्ने ! ऋतुएँ, ऋतु के अनुसार शांतिदायक हों। इस पर्वकाल में ठीक प्रकार से अनुशासित रहें। संवत्सर के तेज के प्रभाव से, शांतिदायी कर्मों से आपको शांति प्रदान करें ॥४० ॥

१३४७. अर्धमासाः परूꣳषि ते मासा ऽ आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः। अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳसूदयन्तु ते ॥४१ ॥

हे अश्व (यज्ञाग्नि) ! जैसे रात, दिन, दोनों पक्ष एवं मास द्वारा आयु सहज ही क्षीण होती है। (वैसे ही) मरुद्‌गण आपके त्रुटिपूर्ण भाव को दूर कर आपका कल्याण करें ॥४१ ॥

१३४८. दैव्या अध्वर्यवस्त्वा च्छ्यन्तु वि च शासतु। गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२ ॥

दिव्यगुणों से युक्त अध्वर्युगण आपके दोषों को विनष्ट करते हुए उत्तम मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए उपदेश करें। शरीर के अंगों, संधि आदि को शक्ति सम्पन्न बनाएँ ॥४२ ॥

१३४९. द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते।सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥४३ ॥

हे अश्व ! पृथ्वी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष आपके दोषों को दूर करें। सूर्य-नक्षत्र आपके निमित्त लोकों को सच्चरित्र बनाएँ ॥४३ ॥

१३५०.शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः। शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥

हे अश्व ! आपके शरीर के अंग-प्रत्यंग, अस्थि एवं मज्जा आदि निर्विकार हों। आपका सब प्रकार से कल्याण हो। आप दूसरों को सुख-शांति प्रदान करें ॥४४ ॥

१३५१. कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः। किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥४५ ॥

इन मन्त्रों में उद्‌गाता-ब्रह्मा के प्रश्न-प्रतिप्रश्न प्रस्तुत हुए हैं—

एकाकी विचरण करने वाला कौन है ? कौन बार-बार प्रकट होता है ? (अर्थात् प्रकाशित होता है) हिम (शीत) की औषधि क्या है ? और उत्तम प्रकार से बीज बोने का बड़ा स्थान कौन सा है ? ॥४५ ॥

१३५२. सूर्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६ ॥

सूर्य अकेला विचरण करता है। चन्द्रमा बार-बार जन्म लेता है। शीत की औषधि अग्नि है। बीज बोने का बड़ा आधार पृथ्वी है ॥४६ ॥

१३५३. किꣳ स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः। किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७ ॥

सूर्य के प्रकाश के समान ज्योति कौन सी है ? समुद्र के जैसा सरोवर कौन सा है ? पृथ्वी से भी अधिक वर्षों का पुरातन कौन है ? किसका परिमाण मापना संभव नहीं ? ॥४७ ॥

१३५४. ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः। इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥

सूर्य जैसी प्रकाशस्वरूप ब्रह्मज्योति है। द्युलोक समुद्र के समान सरोवर है। पृथ्वी से भी अधिक प्राचीन इन्द्र है। गौ की तो तुलना किसी अन्य से नहीं हो सकती ॥४८॥

१३५५. पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ। येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमा विवेशाँ३ ॥४९॥

हे देवताओं के मित्र! यदि आप मन के द्वारा जानते हों, तो समाधान करें कि विष्णु जिन तीन स्थानों में पूज्य बने, तो क्या उनमें सम्पूर्ण भुवन समा गये? यह जिज्ञासु भाव से हम आपसे पूछते हैं ॥४९॥

१३५६. अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश। सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥५०॥

उन तीन स्थानों में भी मैं ही हूँ, जिनमें सम्पूर्ण भुवन समाये हैं। स्वर्ग-पृथ्वी और ऊपर के लोकों को भी क्षण मात्र में ही मैं इस एक अंग (मन) से जान लेता हूँ ॥५०॥

१३५७. केष्वन्तः पुरुषऽ आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि। एतद्ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳ स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

हे ब्रह्मन्! सबके अन्तः में निवास करने वाला परम पुरुष किन पदार्थों में रमता है? इस पुरुष में कौन-कौन सी वस्तुओं को अर्पित किया गया है? जिज्ञासावश यह आपसे पूछते हैं, इस प्रश्न का उत्तर दें ॥५१॥

१३५८. पञ्चस्वन्तः पुरुषऽ आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि। एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

चूँकि तुम (प्रश्नकर्त्ता) मुझ से कम ज्ञान रखते हो, अतएव मैं प्रत्यक्षरूप से जानने वाला उत्तर देता हूँ। सुनो, पंच महाभूत और पाँचों तन्मात्राओं में परमपुरुष रमता है और ये पाँचों महाभूत, तन्मात्राओं सहित परमपुरुष में अर्पित हैं ॥५२॥

१३५९. का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः। का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥५३॥

(हे अध्वर्यु!) सर्वप्रथम जानने का विषय क्या है? सबसे बड़ा पक्षी (उड़ने वाला अर्थात् तीव्रगामी) कौन है? शोभामयी कौन है? और सभी रूपों को निगलने वाला कौन है? ॥५३॥

१३६०. द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः। अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥५४॥

सर्वप्रथम जानने योग्य द्यौ ही है। सबसे बड़ा पक्षी (तीव्र उड़ने वाला) अश्व (अग्नि) ही है, सर्वाधिक शोभामयी अवि (रक्षा करने में समर्थ-पृथ्वी) है और रात्रि सभी रूपों को निगलने वाली है ॥५४॥

१३६१. का ईमरे पिशङ्गिला का ईं कुरुपिशङ्गिला। कऽईमास्कन्दमर्षति कऽ ईं पन्थां वि सर्पति ॥५५॥

रूपों को कौन निगलती है? शब्दपूर्वक सभी रूपों को कौन निगलती है? कूद-कूद कर चलने वाला कौन है? मार्ग पर सरककर चलने वाला कौन है? ॥५५॥

१३६२.अजार ।पशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला । शशऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ।

हे अध्वर्युगण ! सभी रूपों को निगलने वाली अजा (माया) ही है । वह ही रूपों को शब्द करती हुई निगल लेती है । खरगोश उछल-उछल कर चलता है । मार्ग पर 'अहि' ही विशेष प्रकार से सरकता है ॥५६ ॥

१३६३. कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः । यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतारऽ ऋतुशो यजन्ति ॥५७ ॥

इस यज्ञ के अन्न कितने प्रकार के हैं ? कितने अक्षर हैं ? होम कितने प्रकार के होते हैं ? समिधाएँ कितने प्रकार की हैं ? प्रत्येक ऋतु में कितने होता यजन करते हैं ? यह सब जानने के लिए ही हम यज्ञ के विशिष्ट ज्ञाता आपसे प्रार्थना करते हैं ॥५७ ॥

१३६४. षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः । यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५८ ॥

छः प्रकार के यज्ञान्न (क्योंकि अन्न में छहों रस विद्यमान रहते हैं) हैं । अक्षर सौ होते हैं (दो-दो छन्दों का युग्म सौ वर्णों वाला होता है- यथा-गायत्री (२४) + अतिधृति (७६) = १००, उष्णिक् (२८) + धृति (७२) = १००, अनुष्टुप् (३२) + अत्यष्टि (६८) = १०० इत्यादि । होम अस्सी (४ x २०) होते हैं । समिधाएँ (अश्व, गो, मृग) तीन प्रकार की हैं । प्रत्येक ऋतु में यज्ञकर्ता सात (छः ऋतुओं का + १ वषट्कार का) होते हैं । इस यज्ञीय-ज्ञान को मैं आपसे कहता हूँ ॥५८ ॥

१३६५. को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥५९ ॥

(उद्गाता का कथन) इस जगत् की नाभि को जानने वाला कौन है ? द्यावा-पृथिवी को जानने वाला कौन है ? महान् सूर्य की उत्पत्ति कौन जानता है ? चन्द्रमा के उत्पन्न करने वाले को कौन जानता है ? ॥५९ ॥

१३६६. वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥६० ॥

(ब्रह्मा का कथन) मैं इस जगत् की नाभि जानता हूँ । मैं द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षलोक को जानता हूँ । महान् सूर्य की उत्पत्ति स्थल को भी मैं जानता हूँ । चन्द्रमा और जहाँ उसकी उत्पत्ति हुई है, उसे भी मैं जानता हूँ ॥

१३६७. पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः । पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥६१ ॥

(यजमान का कथन) हम पृथ्वी के परम अन्त को पूछते हैं । पृथ्वी के नाभि स्थल को भी पूछते हैं । सब प्रकार के सुखों की वर्षा करने में समर्थ, सर्वव्यापी परमेश्वर का उत्पादक बल कौन है ? यह हम आपसे पूछते हैं । वाणी का श्रेष्ठ स्थान क्या है ? यह भी आपसे पूछते हैं ॥६१ ॥

१३६८. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या ऽ अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयꣳ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥६२ ॥

पृथ्वी का परम अन्त यह वेदिका (वेदी पृथ्वीरूप) है । यह यज्ञ ही समस्त भुवनों की नाभि (यज्ञ से ही सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ) है । सब सुखों की वर्षा करने में समर्थ सर्वव्यापक परमेश्वर का उत्पादक बल यह सोम ही है । यह ब्रह्मा ही वाणी (वेदरूप) का सर्वश्रेष्ठ स्थान है ॥६२ ॥

१३६९. सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोन्तर्महत्यर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥६३ ॥

समस्त संसार के उत्पादक स्वयंभू परमात्मा ने महान् सरोवर के बीच समयानुसार प्राप्त गर्भ को धारण किया, जिससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥६३ ॥

१३७०. होता यक्षत्प्रजापति ꣳसोमस्य महिम्नः । जुषतां पिबतु सोम ꣳ होतर्यज ॥६४ ॥

होता ने महिमायुक्त सोम के द्वारा प्रजापति का यजन किया । प्रजापति सोमरस को प्रेमपूर्वक स्वीकार करें और पान करें । हे होता ! आप भी इसी प्रकार यजन करें ॥६४ ॥

१३७१. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६५ ॥

समस्त प्रजाओं का पालन करने में समर्थ हे प्रजापते ! हम जिस निमित्त यह यज्ञ करते हैं, हमारा अभिप्राय सफल हो (अर्थात् जिन इच्छाओं की पूर्ति हेतु हम यज्ञ करते हैं, वे मनोकामनाएँ पूरी हों) । हम आप की कृपा-अनुग्रह से पराक्रमयुक्त-ऐश्वर्य प्राप्त करें (सदैव सुखपूर्वक रहें) ॥६५ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— हिरण्यगर्भ १-४, ६५ । मधुच्छन्दा ५-३१ । दधिक्रावा वामदेव्य ३२-६४ ।

देवता— कः १,३ । प्रजापति, देवगण २, ४ । आदित्यगण ५ । अश्व ६,७ । लिंगोक्त, अश्व ८ । प्रश्न ९, ११, ४५, ४७, ४९, ५३, ५५, ५७, ५९, ६१ । प्रतिप्रश्न १०, १२, ४६, ४८, ५०-५२, ५४, ५६, ५८, ६०, ६२ । लिंगोक्त (अश्व) १३ । अश्व १४-१७, २१, ३२-४४ । लिंगोक्त १८-२०, ६३ । कुमारी २२ । अध्वर्यु २३ । महिषी २४ । ब्रह्मा २५ । वावाता २६ । उद्गाता २७ । परिवृक्ता २८ । होता २९ । पालागली ३० । क्षत्ता ३१ । प्रजापति ६४-६५ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १,३,६० । निचृत् आकृति २ । विकृति ४ । गायत्री ५ । विराट् गायत्री ६ । निचृत् बृहती ७ । निचृत् अत्यष्टि ८ । निचृत् अनुष्टुप् ९ । अनुष्टुप् १०, ११, २५, २६, २७, २९, ३१, ३२, ३७, ४०, ४१, ४३, ४६-४८, ५३, ५५ । निचृत् अनुष्टुप् १२, १४, २४, २८, ३०, ३४, ४५, ५४ । भुरिक् अतिजगती १३ । विराट् अनुष्टुप् १५, २२, ६३ । विराट् जगती १६, १८ । (दो) अतिशक्वरी १७ । शक्वरी १९ । स्वराट् अनुष्टुप् २० । भुरिक् गायत्री २१, ३९ । बृहती २३ । उष्णिक् ३३, ४४ । भुरिक् उष्णिक् ३५, ३६, ४२ । निचृत् त्रिष्टुप् ३८, ४९, ५०, ५७-५९, ६१ । पंक्ति ५१ । विराट् त्रिष्टुप् ५२, ६२, ६५ । स्वराट् उष्णिक् ५६ । विराट् उष्णिक् ६४ ।

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

।। अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।।

इस अध्याय में अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत विभिन्न देवताओं के निमित्त विभिन्न पशु-पक्षियों को यज्ञशाला में स्थापित यूप में आबद्ध करने का विधान है। राष्ट्र के समग्र विकास के लिए किये जाने वाले अश्वमेध प्रयोग में सभी प्रजातियों के पशु--पक्षियों को भी यज्ञीय ऊर्जा से अनुप्राणित करके उन्हें पुनः वन में छोड़ दिया जाता था। आचार्य उवट ने भी इस अध्याय के अन्त में अपने भाष्य में स्पष्ट लिखा है:—"सर्वे पशवः उत्स्रष्टव्याः न तु हिंस्याः" । यहाँ जिन-जिन पशु-पक्षियों को जिन-जिन देवताओं के निमित्त नियोजित करने का विधान विहित है, उनका चेतना स्तर पर परस्पर क्या संबंध है, सृष्टि व्यवस्था के लिए या समाज के लिए उनका क्या विशेष उपयोग है—यह सब शोध का विषय है–

१३७२. अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीवऽआग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्या᳡ सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छऽ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ।।१ ।।

घोड़ा, सींगरहित वृषभ और नील गाय ये तीनों प्रजापति के निमित्त, काली गर्दन वाला अज अग्निदेव के निमित्त, सरस्वती की प्रीति के लिए मेषी को, श्वेत अज को अश्विनीकुमारों के निमित्त, ऐसा अश्व जिसका नाभिस्थल काला है, सोम और पूषादेव के निमित्त, श्वेत एवं कृष्ण वर्ण के जिनके पार्श्व हैं, ऐसे सूर्य और यम के निमित्त, त्वष्टा के निमित्त अधिक रोम वाले, श्वेत पूँछ वाले वायु के निमित्त, इन्द्र के निमित गर्भघातिनी, विष्णु की प्रीति के निमित्त वामन (कम ऊँचाई वाले अर्थात् नाटे) पशु बाँधें ।।१ ।।

१३७३. रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोन्यतः शितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ।।२ ।।

लाल, धूम्र के समान लाल, पके बदरी फल (बेर) के समान वर्ण सोम के हैं। भूरा, लाल भूरा, हरा भूरा वरुण के हैं। श्वेत बिन्दियों वाले, एक ओर श्वेत बिन्दियों वाले, सब ओर श्वेत बिन्दियों वाले सवितादेव के लिए हैं। श्वेत पैर वाले बृहस्पति से संबंधित हैं। चितकबरे (काले सफेद चकत्ते वाले) छोटे या बड़े चकत्ते वाले पशु मित्रावरुण देव के निमित्त हैं ।।२ ।।

१३७४. शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽ आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाऽ अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ।।३ ।।

शुद्ध श्वेत बालों वाले, पूर्ण श्वेत बालों वाले और मणि की आभा के समान बालों वाले पशु दोनों अश्विनी-कुमारों के निमित्त हैं। श्वेत वर्ण, श्वेत नेत्र तथा लाल वर्ण वाले पशु, पशुपति रुद्र के निमित्त हैं। चन्द्रमा के समान धवल कर्ण वाले यम से संबंधित हैं। रौद्र स्वभाव वाले रुद्र से संबंधित हैं। आकाश जैसे नील वर्णवाले पर्जन्य से संबंधित हैं ।।३ ।।

१३७५. पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोञ्जिसक्थस्त ऽ ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त ऽ उषस्याः ।।४ ।।

विचित्र वर्ण, तिरछी रेखा वाले, विचित्र बिन्दुओं वाले मरुद्‌गण से संबंधित हैं । स्वल्पबल वाली, लाल तथा श्वेत ऊन वाली (भेड़ें) सरस्वती देवी से सम्बन्धित हैं । प्लीहा रोगयुक्त कर्ण वाले, छोटे कान वाले तथा लाल वर्ण के कान वाले त्वष्टादेव से सम्बंधित हैं । काली गर्दन वाले, श्वेतपार्श्व भाग वाले तथा लाल चिह्न युक्त जंघा वाले पशु इन्द्र-अग्निदेव से सम्बन्धित हैं ।काले धब्बे, छोटे धब्बे तथा बड़े धब्बे वाले उषा देवी से सम्बन्धित हैं ।

१३७६. शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥५ ॥

विचित्र रंगों वाले पशु विश्वदेवी के निमित्त हैं । डेढ़ वर्ष की आयु वाले, लाल रंग के वाणी के निमित्त हैं और बिना जाने हुए (विशेष पहचान से रहित) अदिति के निमित्त हैं । सुन्दर आकृति वाले धातादेव के निमित्त हैं । बछियाँ देव पत्नियों के निमित्त हैं ॥५ ॥

१३७७. कृष्णग्रीवाऽ आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳬं रोहिता रुद्राणाᳬं श्वेता ऽअवरोकिण ऽआदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥६ ॥

कृष्ण ग्रीवा अग्नि के निमित्त, श्वेत भ्रू वाले वसु के निमित्त, लालवर्ण रुद्र के निमित्त, श्वेतवर्ण आदित्यों के निमित्त हैं और आकाश जैसे नीलवर्ण वाले पशु पर्जन्य के निमित्त हैं ॥६ ॥

१३७८. उन्नत ऽ ऋषभो वामनस्त ऽ ऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुःशितिपृष्ठस्त ऽ ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽ आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥७ ॥

ऊँचे, ठिगने, ऋषभ (पुष्ट) ये इन्द्र-विष्णु के लिए, पृष्ठ भाग और अगले पैरों से सफेद तथा ऊँचे कद वाले इन्द्र-बृहस्पति के लिए, शुक जैसे (हरे) वर्ण वाले वाजी देवता के निमित्त हैं । चितकबरे अग्निदेव और मरुद्‌गण के निमित्त तथा श्याम वर्ण वाले पशु पूषादेव के निमित्त हैं ॥७ ॥

१३७९. एताऽ ऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽ अग्नीषोमीया वामनाऽ अनड्वाहऽ आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योन्यतऽ एन्यो मैत्र्यः ॥८ ॥

ये जो पहले कहे गये चितकबरे हैं, वे इन्द्राग्नी के निमित्त हैं । दो वर्ण वाले अग्नि और सोम से संबंधित हैं । नाटे पशु अग्नि-विष्णु के निमित्त हैं । बाँझ (वन्ध्या) मित्रावरुण के निमित्त हैं । एक पार्श्व से चित्र-विचित्र पशु मित्र देवता के निमित्त हैं ॥८ ॥

१३८०. कृष्णग्रीवाऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्याऽ अविज्ञाताऽ अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥९ ॥

ग्रीवा पर कृष्ण चिह्न वाले अग्नि के निमित्त, भूरे वर्णवाले सोम देवता के निमित्त, श्वेत वर्णवाले वायु देवता के निमित्त और अविज्ञात (बिना किसी विशेष चिह्न वाले) अदिति के निमित्त हैं, सुन्दररूप वाले धाता के निमित्त तथा बछियाँ देवपत्नियों के निमित्त हैं ॥९ ॥

१३८१.कृष्णा भौमा धूम्राऽ आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥

कृष्ण पृथ्वी के निमित्त, धूम्रवर्ण के अन्तरिक्ष के निमित्त, बड़े पशु स्वर्ग (द्यौ) के निमित्त, चितकबरे विद्युत् के निमित्त और सिध्म (कुष्ठ) रोग वाले पशु नक्षत्रों के लिए हैं ॥१० ॥

१३८२. धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान्ग्रीष्माय कृष्णान्वर्षाभ्योरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥११ ॥

धूम्र वर्णवाले वसन्त ऋतु, श्वेतवर्ण के ग्रीष्म ऋतु, कृष्णवर्ण के वर्षा ऋतु, अरुणवर्ण के शरद् ऋतु, बिन्दियों वाले हेमन्त ऋतु तथा अरुण-कपिल वर्ण के पशु शिशिर ऋतु के निमित्त निर्धारित हैं ॥११ ॥

१३८३. त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्साऽ अनुष्टुभे तुर्यवाहऽ उष्णिहे ॥१२ ॥

डेढ़ वर्ष के गायत्री छन्द के निमित्त, ढाई वर्ष के त्रिष्टुप् के लिए, तीन वर्ष के अनुष्टुप् के लिए और साढ़े तीन वर्ष की आयु वाले पशु उष्णिक् छन्द के निमित्त हैं ॥१२ ॥

१३८४. पष्ठवाहो विराजऽ उक्षाणो बृहत्याऽ ऋषभाः ककुभेनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोतिच्छन्दसे ॥१३ ॥

पृष्ठ के द्वारा भार वहन करने वाले विराट् छन्द के निमित्त, वीर्य सेचन में समर्थ बृहती छन्द के निमित्त, बलिष्ठ (ऋषभ) ककुप् छन्द के निमित्त, वृषभ (गाड़ी को खींचने में समर्थ) पंक्ति छन्द के निमित्त और दुग्ध देने वाली गौ (पशु) अतिछन्द के निमित्त हैं ॥१३ ॥

१३८५. कृष्णग्रीवाऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽ उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥१४ ॥

कृष्ण ग्रीवा वाले अग्निदेव के निमित्त, भूरे रंग वाले सोमदेवता के निमित्त, मिश्रितवर्ण वाले सवितादेव के निमित्त, वत्सछागी (कम उम्रवाली बछिया) सरस्वती के लिए, श्याम वर्ण के पूषा देव के लिए, चितकबरे पशु मरुद्गण के निमित्त हैं। विभिन्न रूप वाले पशु वैश्वदेव के निमित्त, वन्ध्या गौएँ अन्तरिक्ष और पृथ्वी के निमित्त हैं।

१३८६. उक्ताः सञ्चराऽ एताऽ ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥

ये कहे गये, अच्छे प्रकार से चलने वाले पशु आदि इन्द्र और अग्निदेव गणों के हैं। कृष्णवर्ण वाले वरुण के हैं। चितकबरे पशु मरुद्गणों के हैं और सींगरहित पशु प्रजापति के निमित्त हैं ॥१५ ॥

१३८७. अग्नयेनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान्मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सᳬसृष्टान्मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योनुसृष्टान् ॥१६ ॥

सेनानायक के तुल्य अग्निदेव के निमित्त अग्रणी-प्रथम श्रेणी वाले पशु हैं। उत्तम तप करने वाले मरुद्गणों के लिए वायु के समान तीव्रगामी पशु हैं। चिर प्रसूत पशु गृहमेध नामक मरुद्गणों के निमित्त हैं। क्रीड़ा करने वाले मरुद्गणों के लिए उत्तम गुणयुक्त पशु हैं। स्वप्रेरित मरुद्गणों के निमित्त अनुषङ्गी (साथ रहने वाले) पशु हैं।

१३८८. उक्ताः सञ्चराऽ एताऽ ऐन्द्राग्नाः प्राशृंगा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥१७ ॥

ये जो ऊपर कहे गये, अर्थात् जिनके निर्धारण पहले कर दिये गये हैं, वे तीव्र गमनशील पशु इन्द्र, अग्नि आदि के निमित्त हैं, उत्तम शृंग (सींगों) वाले महेन्द्रदेव आदि के निमित्त हैं और बहुत से रंगों वाले पशु विश्वकर्मा आदि देवगणों के निमित्त हैं ॥१७ ॥

१३८९. धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाᳬ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥१८ ॥

नेवले के समान भूरे रंग वाले पशु सोमगुण से युक्त पितृगणों के निमित्त, कुश-आसन पर विराजमान पितृगणों के निमित्त धूम्रवर्ण वाले पशु हैं। कृष्णवर्ण के पशु अग्नि विद्या में निपुण पालक पितरों के निमित्त हैं। त्र्यम्बक पितरों के निमित्त काले रंग के बिन्दुयुक्त पशु हैं ॥१८ ॥

१३९०. उक्ताः सञ्चराऽ एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥१९ ॥

पहले बतलाये गये पशुओं के अतिरिक्त शुनासीर के निमित्त गमनशील पशु, श्वेतवर्ण के वायु के निमित्त और धवल आभायुक्त पशु सविता देव के निमित्त बाँधें ॥१९ ॥

१३९१. वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥२० ॥

बसन्त ऋतु के लिए कपिञ्जल (चातक), ग्रीष्म ऋतु को 'चटक', वर्षा ऋतु के निमित्त 'तीतर', 'लवा' शरद् ऋतु को, 'ककर', हेमन्त ऋतु के लिए तथा शिशिर ऋतु के लिए विककर पक्षियों को प्राप्त किया जाए ॥२० ॥

१३९२. समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥२१ ॥

समुद्र के लिए शिशुमार (स्वयं के बच्चों को मारने वाले) जलचर, पर्जन्य (मेघ जल) के लिए मण्डूक, जल के लिए मत्स्य, मित्रदेव के लिए तथा कुलीपय वरुण के लिए 'नाक्र' नाम के जल जन्तु नियुक्त करें ॥२१ ॥

१३९३. सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाकाऽ इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्मित्राय मद्गून्वरुणाय चक्रवाकान् ॥२२ ॥

सोम के लिए हंस, वायु के लिए बगुली इन्द्राग्नी के लिए सारस, मित्र के लिए जल-काक और वरुण के निमित्त चकवों को नियुक्त करें ॥२२ ॥

१३९४. अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्यऽ उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥२३ ॥

अग्नि के लिए मुर्गे, उलूक पक्षी वनस्पति के लिए, अग्नि-सोम के लिए नीलकंठ पक्षी, मयूर (पक्षी) दोनों अश्विनीकुमारों के लिए तथा मित्रावरुण के लिए कपोत नियुक्त करें ॥२३ ॥

१३९५. सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥२४ ॥

सोमदेव के निमित्त लवा, त्वष्टा को बया, देवपत्नियों के लिए गोषादि गुह्यतल पक्षी, देवताओं की भगिनियों के लिए कुलीक और गृहपति अग्नि के निमित्त पारुष्ण पक्षी को नियुक्त करें ॥२४ ॥

१३९६. अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥२५ ॥

दिन के लिए 'कबूतरों' को, रात्रि के निमित्त 'सीचापू' पक्षी, दिन-रात्रि के संधिकाल के लिए 'जतू' (चमगादड़) पक्षी, मास (महीनों) के लिए काले कौवों को तथा संवत्सर के निमित्त सुन्दर पंखों वाले "सुपर्ण" (गरुड़) पक्षी को नियुक्त करें ॥२५ ॥

१३९७. भूम्याऽ आखूनालभतेन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्दिवे कशान्दिग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६ ॥

पृथ्वी के लिए चूहे, अन्तरिक्ष के लिए पंक्ति में उड़ने वाले पक्षी विशेष, 'द्युलोक' के लिए 'कश', दिशाओं के लिए नेवलों को तथा उपदिशाओं के लिए 'बभ्रुक' वर्ण के जन्तुओं को नियुक्त करें ॥२६ ॥

१३९८. वसुभ्यऽ ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून्विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२७ ॥

वसुगणों के लिए ऋश्य (मृग विशेष), रुरु जाति के मृग रुद्रदेव के लिए, न्यङ्कु जाति के मृग आदित्यों के लिए, पृषत (चित्तीदार) मृग विश्वेदेवों के लिए तथा कुलुङ्ग जाति के मृग साध्यदेवगणों के निमित्त नियुक्त करें ॥२७

१३९९. ईशानाय परस्वतऽ आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय महिषान्बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र ऽ उष्ट्रान् ॥२८ ॥

परस्वत जाति के मृग ईशानदेव के लिए, मित्रदेव हेतु गौर मृग, वरुण को भैंसें, बृहस्पति के निमित्त नील गौएँ और त्वष्टादेव के लिए ऊँटों को बाँधें ॥२८ ॥

१४००.प्रजापतये पुरुषान्हस्तिन ऽ आलभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥२९॥

प्रजापति के निमित्त हाथियों को, वाक् के लिए 'प्लुषी' (टेढ़ी सूँड़ वाली), चक्षु के निमित्त मशक (मच्छर) को और श्रोत्र के लिए भ्रमरों को नियोजित करें ॥२९ ॥

१४०१. प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥३० ॥

प्रजापति और वायु देव के निमित्त 'नर-नील-गाय', वरुणदेव के लिए 'जंगली मेष', यम के निमित्त 'कृष्ण-मेष', नरेश के लिए बन्दर, शार्दूल (पुरुष-सिंह) के लिए लाल मृग, ऋषभ देव के लिए 'मादा-नील गाय', क्षिप्रश्येन देव के लिए 'बटेर', नीलाङ्ग के निमित्त 'कृमि', समुद्र के लिए 'सूँस' नामक जलजन्तु और हिमवान् देवता के लिए हाथी नियोजित करें ॥३० ॥

१४०२. मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषद ꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥३१ ॥

प्रजापति के लिए किन्नर (गानविद्या में निपुण), उल, 'हलिक्ष्ण (सिंह विशेष) और बिलाव' धाता देव के लिए, दिशाओं के लिए 'कङ्क', आग्नेय दिशा के लिए 'धुङ्क्षा', 'चिड़ा', लाल साँप और कमल को खाने वाला 'पक्षी विशेष' ये तीन त्वष्टादेव के लिए और वाक् के लिए 'क्रौंच' पक्षी को नियोजित करें ॥३१ ॥

१४०३. सोमाय कुलुङ्गऽ आरण्योजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥३२ ॥

'कुलुंग' (कुरंग) नामक पशु विशेष सोम के लिए, 'जंगलीमेष','नेवला' और 'मधुमक्खी' पूषादेव के लिए, 'शृगाल' मायुदेव के लिए, 'गौर मृग' इन्द्र के लिए, 'न्यङ्कु-मृग', 'पिद्व मृग' और कक्कट मृग ये तीनों अनुमति देव के निमित्त और चकवा पक्षी 'प्रतिश्रुत्कदेव' के लिए नियोजित करें ॥३२ ॥

१४०४. सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥३३ ॥

'बगुले' सूर्यदेव के लिए, 'चातक', 'सृजय' तथा 'शयाण्डक' ये पक्षी मित्र-देवता के लिए, 'मैना' सरस्वती देवी के लिए, 'सेही' पृथ्वी के लिए, शेर, भेड़िया और सर्प ये मन्युदेव के निमित्त तथा समुद्र के लिए 'तोता' (मनुष्य जैसा बोलने वाला) पक्षी नियोजित करें ॥३३ ॥

१४०५. सुपर्णः पार्जन्यऽ आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोलजऽ आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥३४॥

पर्जन्य के निमित्त 'सुपर्ण' पक्षी, 'आड़ी,' 'वाहस' और 'काष्ठ कुट्ट' ये तीनों पक्षी वायुदेव के निमित्त, 'पैङ्गराज' पक्षी वाणी के स्वामी बृहस्पति के लिए, अन्तरिक्ष के लिए 'अलज' पक्षी, 'जल-कुक्कुट', 'कारंडव' और 'मत्स्य' ये 'नदी पति' के लिए तथा कछुआ द्यावा-पृथिवी के लिए नियोजित करें ॥३४॥

१४०६. पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥३५॥

चन्द्रमा को 'नर-हिरन', वनस्पति देव को 'गोह', 'कालका पक्षी' और कठफोड़ पक्षी, सविता देव को 'ताम्रचूर', वायुदेव को 'हंस', समुद्र को 'नाक्र', 'मगरमच्छ' और 'कुलीपय' नामक जन्तु और ह्री देव को 'सेही' अर्पित करें।

१४०७. एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाशऽ आश्विनः कृष्णो रात्र्याऽ ऋक्षो जतूः सुषिलीका तऽइतरजनानां जहका वैष्णवी ॥३६॥

'हरिणी' अह्नदेवता, मेढक, चूही और तीतर ये सब सर्पों, लोपाश दोनों अश्विनीकुमारों, कृष्णमृग रात्रि, रीछ, जतू और सुषिलीका पक्षी-ये तीनों 'इतर देव-गणों तथा 'जहका' नामवाली विष्णु देवता के लिए है ॥३६॥

१४०८. अन्यवापोर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासां कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेप्सरसां मृत्यवेसितः ॥३७॥

'कोकिल' अर्धमास के निमित्त, ऋष्य जाति का मृग, मोर और सुपर्ण गन्धर्वों के लिए, कर्कट (केकड़ा) आदि जल के लिए, कछुआ मासों के लिए, रोहित मृग, कुण्डृणाची नामक वनचरी और 'गोलत्तिका-पक्षी' ये तीनों अप्सराओं के लिए हैं। 'मृत्यु-देवता' के लिए कृष्ण मृग नियोजित करें ॥३७॥

१४०९. वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोतऽ उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥३८॥

वर्षाहू (वर्षा को आहूत करने वाली अर्थात् मेढकी) ऋतुओं के लिए, मूषक, छछून्दर और मान्थाल (छिपकली) ये तीनों पितरों के निमित्त, कपिञ्जल वसुओं के लिए, अजगर बल-देवता के लिए, निर्ऋतिदेव के लिए कबूतर, उलूक और खरगोश एवं वरुणदेव के लिए जंगली मेष नियोजित करें ॥३८॥

१४१०. श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽ अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥३९॥

विचित्र पशु विशेष आदित्यों के निमित्त उष्ट्र (ऊँट), चील और कण्ठ में स्तन जैसी आकृति वाला बकरा—ये तीनों मति देवी के लिए, नीलगाय अरण्यदेवता के लिए, रुरु मृग रुद्रदेव के लिए, क्वयि नामक पक्षी, कौवा और मुर्गा— ये वाजि देवताओं के निमित्त और कोकिल कामदेव के लिए नियोजित करें ॥३९॥

१४११. खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥४०॥

पैने सींग वाला गेंडा वैश्वेदेवों के लिए, काले रंग का कुत्ता, गधा और व्याघ्र ये तीनों राक्षसों के लिए, सुअर इन्द्र के निमित्त, सिंह मरुद्गण के निमित्त, गिरगिट, पपीहा और शकुनि नाम की पक्षिणी ये सब शरव्य देवी के लिए और पृषत-मृग सभी देवताओं के लिए नियोजित हैं ॥४०॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि—प्रजापति १-४० ।

देवता— प्रजापति आदि १ - ४० ।

छन्द— भुरिक् संकृति १ । निचृत् संकृति २ । निचृत् अतिजगती ३ । विराट् अतिधृति ४ । निचृत् बृहती ५,२७ । स्वराट् ब्राह्मी गायत्री ६ । अतिजगती ७ । स्वराट् बृहती ८, ११ । निचृत् पंक्ति ९ । स्वराट् गायत्री १० । स्वराट् अनुष्टुप् १२ । निचृत् अनुष्टुप् १३ । भुरिक् अति जगती १४, १८,३३ । विराट् उष्णिक् १५ । शक्वरी १६, ४० । भुरिक् गायत्री १७ । त्रिपाद् गायत्री १९ । विराट् जगती २० । बृहती २१, २८ । विराट् बृहती २२ । पंक्ति २३ । भुरिक् पंक्ति २४ । स्वराट् पंक्ति २५ । भुरिक् अनुष्टुप् २६ । विराट् अनुष्टुप् २९ । निचृत् अति धृति ३० । स्वराट् त्रिष्टुप् ३१, ३९ । भुरिक् जगती ३२, ३७ । स्वराट् शक्वरी ३४ । निचृत् शक्वरी ३५ । निचृत् जगती ३६ । स्वराट् जगती ३८ ।

॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत वनस्पति याग एवं स्विष्टकृत् आहुतियों के क्रम में विशेष आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। इन आहुतियों में प्राणियों के विभिन्न अंगों में स्थित शक्तियों को देवगणों की प्रसन्नता के लिए समर्पित किया जाता है। अश्वमेध - राष्ट्र संगठन के अर्थ में प्रयुक्त है। सभी की शक्तियाँ देव-प्रयोजनों के लिए समर्पित हों, यह आदर्श संगठनात्मक विधा है। आचार्य महीधर के अनुसार आज्य (घृत) में विभिन्न अंगों की शक्तियों की धारणा करते हुए यज्ञाहुतियाँ देने का विधान है —

१४१२. शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्द ध्वंष्ट्राभ्या ध्वं सरस्वत्या ऽअग्रजिह्वं जिह्वायाऽ उत्सादमवक्रन्देन तालु वाज ध्वं हनुभ्यामपऽ आस्येन वृषणमाण्डाभ्यामादित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्या ध्वं शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्याऽ इक्षवोवार्याणि पक्ष्माणि पार्याऽ इक्षवः ॥१॥

दाँतों की शक्ति से शाद देवता (कोमलघास) को, दाँतों की जड़ों (की शक्ति) से अवका अर्थात् जल में उत्पन्न होने वाली घासरूप शैवाल देवता को, दाँतों के पीछे वाले भाग से मिट्टी को, दाढ़ों से तेगदेवता को प्रसन्न करते हैं। जिह्वा की नोक से सरस्वती देवी को एवं जिह्वा से उत्सादेवता को प्रसन्न करते हैं। तालु की शक्ति से अवक्रन्ददेव को, ठोढ़ी से अन्नदेव को, मुख से जलदेवता को प्रसन्न करते हैं। दोनों अण्डकोशों की शक्ति से वृषणदेवता को तुष्ट करते हैं। दाढ़ी-मूँछ की शक्ति से आदित्यों को, दोनों भौंहों से पन्थ देवता को, बरौनियों (दोनों पलकों के बालों) से पृथ्वी एवं द्युलोक को तथा आँख की दोनों पुतलियों से विद्युत् देवता को प्रसन्न करते हैं। शुक्ल एवं कृष्ण देव- शक्तियों की संतुष्टि के निमित्त यह आहुति समर्पित है। नेत्रों के ऊपरी एवं नीचे के लोमों (बालों) से 'पार' एवं 'अवार' देवशक्तियों को प्रसन्न करते हैं ॥१॥

१४१३. वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्या ध्वं श्रोत्र ध्वं श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदिति ध्वं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माण ध्वं स्तुपेन ॥२॥

प्राणवायु की शक्ति से वातदेव तथा अपान वायु की शक्ति से नासिका (स्थित देवशक्ति) को प्रसन्न करते हैं। ऊपर के ओष्ठ से सत् देवता तथा नीचे के ओष्ठ से उपयाम देवता को प्रसन्न करते हैं। शरीर की बाह्य कान्ति से अन्तरदेवता तथा आन्तरिक देह कान्ति से बाह्यदेवता को प्रसन्न करते हैं। मस्तक से प्रवेश शक्ति को, सिर की अस्थि से स्तनयित्नु देवशक्ति को, मस्तिष्क की शक्ति से अशनि देवता को, आँख की पुतलियों से विद्युत्‌देव शक्ति को, दोनों कानों से श्रोत्र देवशक्ति को तथा सुनने की शक्ति से दोनों कानों की देवशक्ति को प्रसन्न करते हैं नीचे के गले (कण्ठ) से तेदनीदेव को, सूखे गले से जलदेवता को, गले की नाड़ियों से चित्त देवशक्ति को, शि अदिति को, जर्जरित शिरोभाग से 'निर्ऋतिदेव' को, शब्दायमान अंगों से प्राणों को तथा शिखा की शक्ति से रे शक्ति को प्रसन्न करते हैं ॥२॥

१४१४. मशकान् केशैरिन्द्र ध्वं स्वपसा वहेन बृहस्पति ध्वं शकुनिसादेन कूर्मान् शफैराक्रमण ध्वं स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां लेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनाव ध्वं साभ्या ध्वं रुद्र ध्वं रोराभ्याम्

केशों से मशक देवशक्तियों तथा पुष्ट कन्धों से इन्द्रदेव को प्रसन्न करते हैं। पक्षी सदृश गति से बृहस्पति, खुरों की शक्ति से कूर्मदेव, (एड़ी के ऊपर की गाँठ) गुल्फों से आक्रमण, गुल्फों के नीचे वाली नाड़ियों से कपिञ्जलदेव, जंघाओं से वेग की देवी, बाहुओं से मार्गदेव, जानु से अरण्यदेव, जानुदेश से अग्निदेव, जानु (घुटना) के नीचे भाग की शक्ति से पूषा, दोनों कंधों से अश्विनीकुमारों तथा अंस- ग्रन्थियों से रुद्रदेवों को प्रसन्न करते हैं ॥३॥

१४१५. अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताᳬं सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥४ ॥

दायीं ओर की पहली अस्थि अग्निदेव के लिए, दूसरी वायुदेव के लिए, तीसरी इन्द्र को, चौथी सोम को, पाँचवी अदिति को, छठवीं इन्द्रपत्नी को, सातवीं मरुतों के लिए, आठवीं बृहस्पति के लिए, नौवीं अस्थि अर्यमादेव के लिए, दसवी धातादेवता के लिए, ग्यारहवीं इन्द्रदेव के निमित्त, बारहवीं वरुण के निमित्त तथा यमदेवता की प्रसन्नता के लिए तेरहवीं अस्थि (की शक्ति) समर्पित है ॥४ ॥

१४१६. इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬं सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५ ॥

बायीं ओर की पहली अस्थि इन्द्र एवं अग्निदेवों की प्रसन्नता के लिए, दूसरी अस्थि सरस्वती के लिए, तीसरी अस्थि मित्र देवता की प्रसन्नता के लिए, चौथी जल के निमित, पाँचवी निर्ऋतिदेव के निमित्त, छठवीं अग्नि एवं सोमदेवता की प्रसन्नता के लिए, सातवीं सर्पों (नागदेवों) के लिए, आठवीं देव विष्णु के लिए, नवमी पूषा के लिए, दसवीं त्वष्टादेव के लिए, ग्यारहवीं इन्द्रदेव के लिए, बारहवीं वरुणदेव के लिए तथा यमदेवता की प्रसन्नता के लिए तेरहवीं अस्थि समर्पित है। दाहिना हिस्सा पृथ्वी और द्युलोक के लिए तथा बायाँ भाग सभी देवों की प्रसन्नता व संतुष्टि के लिए समर्पित है ॥५ ॥

१४१७. मरुताᳬं स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳬं स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥६ ॥

स्कन्ध प्रदेश की अस्थि मरुद्गणों के लिए नियोजित करते हैं। प्रथम अस्थि पंक्ति विश्वेदेवों के लिए, दूसरी पंक्ति रुद्रों के लिए, तीसरी अस्थि पंक्ति आदित्यों के लिए समर्पित है। पूँछ भाग वायुदेव के लिए, नितम्ब अग्नि एवं सोमदेवता के लिए, श्रोणि क्रौञ्च देवता के लिए, ऊरु इन्द्र और बृहस्पतिदेव के लिए, मित्र और वरुणदेव के लिए जंघाएँ, आक्रमणदेव के लिए अधोभाग तथा ऊपर का भाग बलदेवता की प्रसन्नता के लिए समर्पित है ॥६ ॥

१४१८. पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विह्रुतऽ आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनᳬं शेपेन प्रजाᳬं रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥७ ॥

स्थूल आँत का भाग पूषादेवता के लिए, स्थूल गुदा नेत्रहीन सर्पों के लिए तथा अन्य सर्पों के लिए सामान्य गुदा का भाग, आँतों का शेष भाग विह्रुतदेवता के लिए, वस्ति भाग को जल के लिए, अण्डकोषों की शक्ति वृषणदेव के लिए, उपस्थ की शक्ति वाजी देव के लिए, वीर्य प्रजा के लिए, पित्त 'चाष' देवता के लिए, गुदा का तृतीय भाग प्रदरदेवों के लिएतथा शकपिण्डों को कूश्म देवता की प्रसन्नता के लिए समर्पित करते हैं ॥७ ॥

१४१९. इन्द्रस्य क्रोडोदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोदित्यै भसज्जीमूतान् हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभऽ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳬं समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥८ ॥

क्रोड (छाती के मध्य का भाग) इन्द्रदेव का है अर्थात् इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए नियोजित है । पैर अदिति देवता का, जत्रु (हंसुली की अस्थि का भाग) दिशाओं का, मेढ्राग्र अदिति का, हृदय भाग मेघों का है तथा हृदय नाड़ी अन्तरिक्ष की प्रसन्नता के लिए, पेट का भाग आकाशदेव के लिए, फेफड़ों का भाग चक्रवाक् के लिए, दोनों गुर्दे द्युलोक के लिए, प्लाशि भाग (गुर्दे के नीचे की नाड़ी) पर्वतों की प्रसन्नता के लिए, क्लोम भाग वल्मीक के लिए, ग्लौनाड़ी गुल्मदेवों की प्रसन्नता के लिए, रक्तवाहिनियाँ नदियों की प्रसन्नता के लिए, कुक्षि (कोख) का भाग ह्रद के लिए, उदर समुद्र की प्रसन्नता के लिए तथा भस्म को वैश्वानरदेव की प्रसन्नता के लिए समर्पित करते हैं ॥८

१४२०. विधृतिं नाभ्या घृतᳬं रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाᳬंसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥९ ॥

नाभि से विधृतिदेवता को प्रसन्न करते हैं । वीर्य रस से घृत शक्ति को, पक्वान्नरस से जल देवता को, वसा बिंदुओं से मरीचि देवता को, शरीर की उष्णता से नीहार (ओस) देवता को, वसा से शीन देव को, अश्रुओं से प्रुष्वा (पौधों को सींचने वाले फुहार) देवता को, नेत्रों के मल से ह्रादुनी (आकाशीय विद्युत्) देवता को, रुधिरकणों से रक्षादेव को, विभिन्न अंगों से विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करते हैं । शारीरिक सौन्दर्य से नक्षत्रदेवों को, त्वचा से पृथ्वीदेवी को तथा जुम्बक (वरुण) देव को प्रसन्न करने के लिए आहुति प्रदान करते हैं ॥९ ॥

१४२१. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽ आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१० ॥

प्राणिजगत् की उत्पत्ति से पूर्व ही जो हिरण्यगर्भ (सृष्टि रचना से पूर्व जो स्वर्ण की आभायुक्त ज्योति पिण्ड के रूप में प्रकट हुए या जो अपने गर्भ में स्वर्ण जैसा तेज समाहित किये हुए) परमात्मा विद्यमान था, जो इस जगत् का एक मात्र स्वामी है, इस पृथ्वी और द्युलोक को धारण करने वाले उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के लिए हम आहुति समर्पित करते हैं (उसके अतिरिक्त और किसे आहुति प्रदान की जाए ?) ॥१० ॥

१४२२. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽ इद्राजा जगतो बभूव । यऽ ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११ ॥

जो अपनी महती-महिमा से इस सजीव, दृश्य जगत् का एक मात्र शासक हुआ है तथा जो प्राणिमात्र (दो व चार पैर वाले जीवों) का स्वामी है, उस सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा के लिए आहुति समर्पित करते हैं ।

१४२३. यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रᳬं रसया सहाहुः । यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२ ॥

सच्चिदानन्द स्वरूप जिस परमात्मा की महती-महिमा से विशाल बर्फीली पर्वत-चोटियों का निर्माण हुआ, दिव्य जीवन-रस रूपी जल से परिपूर्ण सागर जिसके द्वारा बनाये गये कहे जाते हैं तथा दसों दिशाओं के रूप में जिसकी भुजाएं फैली हुई हैं, उस (प्रजापति) की प्रसन्नता के लिए हम आहुति समर्पित करते हैं ॥१२ ॥

१४२४. यऽ आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽ उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३ ॥

जो भौतिक एवं आध्यात्मिक सामर्थ्य को प्रदान करने वाला है, जिसकी छत्र-छाया (आश्रय) में रहकर अमरत्व का सुख तथा जिससे विमुख होकर मृत्युजन्य दुःख प्राप्त होता है, सन्मार्गगामी सभी देवगण जिसकी उत्तम शिक्षाओं का पालन करते हैं, उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के लिए हम आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥१३॥

१४२५. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोदब्धासो अपरीतास ऽ उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे ॥१४ ॥

कल्याणकारी, दुर्लभ व फलदायी यज्ञों (अथवा संकल्पों) को हम सभी ओर से प्राप्त करें (अर्थात् सभी ओर श्रेष्ठ संकल्पों एवं यज्ञीय कर्मों का वातावरण बने), ताकि सभी देवता प्रमादरहित होकर नित्यप्रति हमारी वृद्धि (सर्वतोमुखी प्रगति) के लिए प्रवृत्त रहें ॥१४ ॥

१४२६. देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना ँ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवाना ँ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽ आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५ ॥

लोककल्याण में निरत, सरल हृदय वाले देवों की जन हितकारिणी उत्तम मति एवं उनके श्रेष्ठ अनुदान हमारे लिए हर प्रकार से अनुकूल हों ।देवों की मित्रता से हम सभी लाभान्वित हों ।सभी देव हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥

१४२७. तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् । अर्यमणं वरुण ँ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥१६ ॥

प्राचीन स्वयंभुवा, दिव्यवाणी से हम उन भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अर्यमा, वरुण, सोम एवं अश्विनीकुमारों आदि अविनाशी देवों के लिएआहुतियाँ अर्पित करते हैं । सौभाग्यदायिनी देवी सरस्वती हमारा का कल्याण करें ।

१४२८. तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥१७ ॥

सबको धारण करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आपके अनुग्रह से वायुदेव हमारे लिए ओषधीय गुणों से युक्त सुखद प्राणवायु प्रवाहित करें । धरतीमाता रोगनाशक वनस्पतियों से तथा आकाश पिता जीवन - तत्त्वों से युक्त जल से सम्पन्न बनाएँ । निचोड़ने वाले ग्रावा (पत्थर) हमारे लिए जीवनी शक्ति से युक्त सुखकारी सोम प्रदान करें । आप हमारी प्रार्थना सुनकर हमें सुखी बनाएँ ॥१७ ॥

१४२९. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१८ ॥

अखिल विश्व की रक्षा करने वाले, बुद्धियों को प्रेरित कर सबको वश मे करने वाले परमात्मा का हम आवाहन करते हैं । पिता की भाँति पोषण, संरक्षण एवं सहायता करने वाले वे हमारे बुद्धिबल को बढ़ाकर हमें सुखी बनाएँ ॥

१४३०. स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९ ॥

महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें, सम्पूर्ण जगत् के ज्ञाता पूषादेवता हमारा कल्याण करें, अनिष्ट का नाश करने वाले पक्षों (पंखों) से युक्त गरुड़देव हमारा कल्याण करें तथा देवगुरु बृहस्पति हम सबका कल्याण करते हुए हमें सुखी बनाएँ ॥१९ ॥

१४३१. पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाऽ अवसागमन्निह ॥२० ॥

शक्तिशाली अश्वों वाले अर्थात् तीव्र गति से चलने वाले, अदिति के पुत्र, सबका कल्याण करने वाले, अग्नि रूपी जिह्वा तथा सूर्यरूपी नेत्र वाले, सर्वज्ञ मरुत्‌देवता अपनी विभिन्न शक्तियों के साथ इस यज्ञशाला में पधारें और हमें सुखी बनाएँ ॥२० ॥

१४३२. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१ ॥

याजकों के पोषक हे देवताओ ! हम सदैव कल्याणकारी वचनों को ही अपने कानों से सुनें, नेत्रों से सदैव कल्याणकारी दृश्य ही देखें । हे देव ! परिपुष्ट अंगों से युक्त सुदृढ़ शरीर वाले हम आपकी वन्दना करते हुए पूर्ण आयु तक जीवित रहें ॥२१ ॥

१४३३. शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२ ॥

हे विश्व के स्वामी ! (हम याजकगण) पुत्र-पौत्रों से युक्त वृद्धावस्था होने तक, सौ वर्ष तक का पूर्ण जीवन सुखपूर्वक जिएँ । जीवन के मध्य में हम कभी मृत्यु को प्राप्त न हों ॥२२ ॥

१४३४. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवाऽ अदितिः पञ्च जनाऽ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥२३ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक अखण्डित व अविनाशी हैं । जगत् का उत्पादक परमात्मा एवं उसके द्वारा उत्पन्न यह जीव-जगत् भी कभी नष्ट न होने वाला है । विश्व की समस्त देव-शक्तियाँ, अविनाशी हैं । समाज के पाँचों वर्ग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं निषाद) तथा पञ्चतत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से विनिर्मित यह सृष्टि अविनाशी है । जो कुछ उत्पन्न हो चुका अथवा जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह भी अपने कारणरूप से कभी नष्ट नहीं होता है ॥२३ ॥

१४३५. मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्रऽ ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥२४ ॥

हम याजकगण यज्ञशाला में, दिव्यगुण सम्पन्न, गतिमान् , पराक्रमी, वाजी (बलशाली) देवताओं के ही ऐश्वर्य का गान करते हैं । अतः मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, ऋभुक्ष, मरुद्‌गण, इन्द्र आदि देवता हमारी उपेक्षा करते हुए हमसे विमुख न हों (वरन् अनुकूल रहें) ॥२४ ॥

[यहाँ वाजी का अर्थ घोड़ा न करके उसे बलशाली देवों का पर्याय माना गया है । आचार्य उव्वट एवं महीधर ने भी अपने भाष्य में अश्व के नाम से देवों की ही स्तुति का भाव स्पष्ट किया है ।]

१४३६. यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप ऽ इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२५ ॥

पिछले मंत्र में देवशक्तियों के लिए अश्व संज्ञक संबोधन दिया गया है । नीचे के तीन मंत्रों में भी जहाँ समर्थ देवशक्तियों के लिए अश्व संज्ञक सम्बोधन है, वहीं निरीह जीव आत्माओं को 'अज' (बकरा) कहा गया है । देवों की पुष्टि के लिए किये गए यज्ञ का लाभ प्रकृति में संव्याप्त समर्थ शक्तियों के साथ-साथ सामान्य जीवों से सम्बद्ध चेतना को भी प्राप्त होता है, यह भाव यहाँ अभीष्ट है—

जब सुसंस्कारित, ऐश्वर्ययुक्त, सबको आवृत करने वाले (देवों) के मुख के पास (देवों का मुख यज्ञाग्नि को कहा जाता है ।) हविष्यान्न (पुरोडाश आदि) लाया जाता है, तो भली प्रकार आगे लाया हुआ विश्वरूप अज (अनेक रूपों में जन्म लेने वाली जीव चेतना) भी मैं-मैं करता (मुझे भी चाहिए- इस भाव से) आता है, (तब वह भी) इन्द्र और पूषा आदि के प्रिय आहार (हव्य) को प्राप्त करता है ॥२५ ॥

१४३७. एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥२६ ॥

यह अज जब बलशाली अश्व के आगे लाया जाता है, तो श्रेष्ठ पुरुष (याजक अथवा प्रजापति) इस चंचल (अश्व) के साथ अज को भी, सबको प्रिय लगने वाले पुरोडाश आदि हव्य का भाग देकर यश प्राप्त करते हैं ॥२६ ॥

१४३८. यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा पूष्णः प्रथमो भागऽ एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥२७ ॥

जब मनुष्य (याजकगण) हविष्य को (यज्ञ के माध्यम से) तीनों देवयान मार्गों (पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं द्युलोक) में अश्व की तरह संचारित करते हैं, तब यहाँ (पृथ्वी पर) यह अज पोषण के प्रथम भाग को पाकर देवताओं के हित के लिए यज्ञ की विज्ञापित करता चलता है ॥२७ ॥

१४३९. होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभऽउत शꣳस्ता सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणाऽआ पृणध्वम् ॥२८ ॥

होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तोता, प्रशास्ता, प्रज्ञावान् ब्रह्मा आदि हे ऋत्विजो ! आप उस सब प्रकार सज्जित (अङ्ग-उपाङ्गों सहित सम्पन्न) यज्ञ द्वारा इष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए (प्रकृतिगत) प्रवाहों को समृद्ध बनाएँ ॥२८ ॥

१४४०. यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्नऽ इन्वतु ॥२९ ॥

हे ऋत्विजो ! यज्ञ की व्यवस्था में सहयोग देने वाले, लकड़ी काटकर यूप का निर्माण करने वाले, यूप को यज्ञशाला तक पहुँचाने वाले, चषाल (लोहे या लकड़ी की फिरकी) बनाने वाले, अश्व बाँधने के खूँटे को बनाने वाले-इन सबका किया गया प्रयास हमारे लिए हितकारी हो ॥२९ ॥

१४४१. उप प्रागात्सुमन्मेधायि मन्म देवानामाशाऽ उप वीतपृष्ठः । अन्वेनं विप्राऽ ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥३० ॥

अश्वमेध यज्ञ की फलश्रुति के रूप में श्रेष्ठ मानवीयफल हमें स्वयं ही प्राप्त हो । देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ इस अश्व (शक्ति) की कामना सभी करते हैं । इस अश्व को देवत्व की पुष्टि के लिए मित्र के रूप में मानते हैं । सभी बुद्धिमान् ऋषि इसका अनुमोदन करें ॥३० ॥

मंत्र क्र० ३१ से ४५ तक के मंत्रों का अर्थ कई आचार्यों ने अश्वमेध में की जाने वाली अश्व बलि (हिंसा) के क्रम में किया है । इस ग्रंथ की भूमिका में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वेदों में अश्व शब्द का प्रयोग घोड़े के सन्दर्भ में नहीं, प्रत्युत प्रकृति में संव्याप्त समर्थ शक्ति धाराओं (यज्ञीयऊर्जा-सूर्य की किरणों-देवशक्तियों) आदि के निमित्त किया गया है । इसलिए इन मंत्रों का अर्थ हिंसापरक सन्दर्भ में न करके उक्त विराट् यज्ञीय सन्दर्भ में ही किया जाना उचित है—

१४४२. यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य । यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३१ ॥

इस वाजिन् (बलशाली) को नियंत्रित रखने के लिए गर्दन का बन्धन, इस (अर्वन्) चंचल के लिए पैरों का बंधन, कमर एवं सिर के बन्धन तथा मुख के घास आदि तृण सभी देवों को अर्पित हों। (यज्ञीय ऊर्जा अथवा राष्ट्र की शक्तियों को सुनियंत्रित एवं समृद्ध रखने वाले सभी साधन देवों के ही नियंत्रण में रहें।) ॥३१॥

१४४३. यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति। यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३२॥

अश्व (संचरित होने वाले हव्य) का जो विकृत (होमा न जा सकने वाला) भाग मक्खियों द्वारा खाया जाता है, जो उपकरणों में लगा रहता है, जो याजक के हाथों में तथा जो नाखूनों में लगा रहता है, वह सब भी देवत्व के प्रति ही समर्पित हो ॥३२॥

१४४४. यदूवध्यमुदरस्यापवाति यऽ आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति। सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ शृतपाकं पचन्तु ॥३३॥

उदर में (यज्ञ कुण्ड के गर्भ में) जो उच्छेदन योग्य गन्ध अधपचे (हविष्यान्न) से निकल रही है, उसका शमन भली प्रकार किये गये मेध (यज्ञीय) उपचार द्वारा हो और उसका पाचन भी देवों के अनुकूल हो जाए ॥३३॥

१४४५. यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति। मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३४॥

यज्ञ कुण्ड के मध्य में हविष्यान्न का बड़ा पिण्ड बन जाता था। वह अग्नि में ठीक से पच जाए इसके लिए उसे शूल से छेद दिया जाता था। उस क्रम में रही त्रुटियों का निवारण करने का निर्देश इस मंत्र में है—

आप के जो अग्नि द्वारा पचाये जाते हुए अंग, शूल के आघात से इधर-उधर उछल कर गिर गये हैं; वे भूमि पर ही न पड़े रहें, तृणों में न मिल जाएँ। वे भी यज्ञ भाग चाहने वाले देवों का आहार बनें ॥३४॥

१४४६. ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं यऽ ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति। ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासतऽ उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न ऽ इन्वतु ॥३५॥

जो इस वाजिन् (अन्नयुक्त पुरोडाश) को पकता हुआ देखते हैं और जो उसकी सुगंध को आकर्षक कहते हैं; जो इस भोग्य अन्न से बने आहार की याचना करते हैं, उनका पुरुषार्थ भी हमारे लिए फलित हो ॥३५॥

१४४७. यन्नीक्षणं माँस्पचन्याऽ उखाया या पात्राणि यूष्णऽ आसेचनानि। ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥३६॥

जो उखा पात्र में पकाये जाते (अन्न एवं फलों के गूदे से बने) पुरोडाश का निरीक्षण करते हैं, जो पात्रों को जल से पवित्र करने वाले हैं, (पकाने के क्रम में) ऊष्मा को रोकने वाले ढक्कन, चरु आदि को अंक (गोद) में रखने वाले, तथा (पुरोडाश के) टुकड़े काटने वाले जो उपकरण हैं, वे सब इस अश्वमेध को विभूषित करने वाले (यज्ञ की गरिमा के अनुरूप) हों ॥३६॥

१४४८. मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः। इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥३७॥

(पकाये जाते हुए पुरोडाश के प्रति कहते हैं —) धुएँ की गंधवाली अग्नि तुम्हें पीड़ित न करे, (अग्नि के प्रभाव से) चमकता हुआ अग्नि पात्र (उखा) तुम्हें उद्विग्न न करे। ऐसे (धुएँ आदि से रहित, भली प्रकार सम्पन्न) अश्वमेध को देवगण स्वीकार करते हैं ॥३७॥

१४४९. निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः। यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३८ ॥

(हे यज्ञरूप अश्व !) आप का निकलना, बैठना, आन्दोलित होना, पलटना, पीना, खाना आदि सारी क्रियाएँ देवताओं में (उनके ही बीच, उन्हीं के संरक्षण में) हों ॥३८ ॥

१४५०. यदश्वाय वासऽ उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै। सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥३९ ॥

यज्ञ को समर्पित (पूजन योग्य) अश्व को सजाने वाला ऊपर का वस्त्र, आभूषण, सिर तथा पैर बाँधने की मेखलाएँ आदि सभी देवताओं को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों ॥३९ ॥

१४५१. यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद। स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥४० ॥

(हे यज्ञाग्निरूप अश्व !) अतिशीघ्रता (जल्दबाजी) में तुम्हें सताने वालों, निचले भाग को (हव्य को जल्दी पचाने के लिए अग्नि के निचले भाग को कुरेद कर) पीड़ित करने वालों द्वारा की गयी सभी त्रुटियों को (हम पुरोहित) स्रुवा की आहुतियों (घृताहुतियों) से ठीक करते हैं ॥४० ॥

१४५२. चतुस्त्रिꣳशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति। अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥४१ ॥

हे ऋत्विजो ! धारण करने की सामर्थ्य से युक्त, गतिमान्, देवताओं के बन्धु इस अश्व (यज्ञ) के चौंतीस अंगों को अच्छी प्रकार जानें। प्रत्येक अंग को अपने प्रयासों द्वारा सुदृढ़ बनाएँ और उसकी कमियों को दूर करें ॥४१ ॥

१४५३. एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः। या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता-ता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥४२ ॥

(काल विभाजन के क्रम में) त्वष्टा (सूर्य) रूपी अश्व का विभाजन संवत्सर (वर्ष) करता है। उत्तरायण तथा दक्षिणायन नाम से दो विभाग उसके नियन्ता होते हैं। वह वसन्तादि दो-दो माह की ऋतुओं में विभक्त होता है। यज्ञ में शरीर के अलग-अलग अंगों की पुष्टि के निमित्त ऋतु संबंधी अनुकूल पदार्थों की आहुतियाँ देते हैं ॥४२ ॥

१४५४. मा त्वा तपत्प्रिय ऽ आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व ऽ आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥४३ ॥

हे अश्व (राष्ट्र अथवा यज्ञ) ! आप का परम प्रिय आत्मतत्त्व अर्थात् अपना गौरव कभी भी पीड़ादायक स्थिति में छोड़कर न जाए (राष्ट्र का गौरव अक्षुण्ण रहे) । शस्त्र (विखण्डित करने वाली शक्तियाँ) आप के अंग-अवयवों पर अपना अधिकार न जमा सकें (राष्ट्र कभी खण्डित न हो)। अकुशल व्यक्ति भी आपके दोषों के अतिरिक्त किसी उपयोगी अंग पर असि (तलवार) का प्रयोग न करे ॥४३ ॥

१४५५. न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥४४ ॥

हे अश्व ! (यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा) न तो आपका नाश होता है और न आप किसी को नष्ट करते हैं, (वरन् आप) सुगम - सहज मार्ग से देवताओं तक पहुँचते हैं। शब्द करने वालों (मंत्रोच्चार करने वालों) के आधार पर वाजी (ऐश्वर्यवान्) और हरि (अंतरिक्षीय गतिशील प्रवाह) उपस्थित होकर, आपके साथ संयुक्त होकर पुष्ट होते हैं ॥४४ ॥

१४५६. सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुꣳसः पुत्राँ२ उत विश्वापुषꣳ रयिम्। अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥४५ ॥

देवत्व को प्राप्त करने वाला यह बलशाली (यज्ञीय प्रयोग) हमें पुत्र-पौत्र, धन-धान्य तथा उत्तम अश्वों के रूप में अपार वैभव प्रदान करे। हम दीनता, पापकृत्यों एवं अपराधों से सदैव दूर रहें। अश्व के समान शक्तिशाली हमारे नागरिक पराक्रमी हों ॥४५ ॥

१४५७. इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्। यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥४६ ॥

इन्द्र और विश्वब्रह्माण्ड में स्थित समस्त देवता इन समस्त लोकों को अपने अनुशासन-नियंत्रण में रखें। अपने गणों सहित आदित्य, इन्द्र, मरुत् आदि हमारे लिए उपचार (आरोग्य और पुष्टि के लिए प्रयास) करें। यह यज्ञ हमारे शरीर एवं प्रजाओं को इन्द्र एवं आदित्य के साथ (युक्त होकर) अपने नियंत्रण-संरक्षण में रखे ॥४६ ॥

१४५८. अग्ने त्वं नो अन्तमऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः। वसुरग्निर्वसुश्रवाऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः। तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४७ ॥

हमारे निकटस्थ हितैषी हे अग्निदेव ! आप हम याजकों को देदीप्यमान ऐश्वर्य प्रदान कर हमारा कल्याण करें। सत्कर्म में निरत हम याजकों की, दुराचारियों एवं हिंसा करने वालों से रक्षा करें। हे द्युतिमान् अग्ने ! हमारे सहयोगियों के लिए धन, ऐश्वर्य एवं सुख प्रदान करें, इस हेतु हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥४७ ॥

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि — प्रजापति १-८। प्रजापति, मुण्डिभ औदन्य ९। हिरण्यगर्भ १०, ११। प्राजापत्य हिरण्यगर्भ १२, १३। गोतम १४-२३। दीर्घतमा २४-४५। भौवनआप्त्य या भौवनसाधन ४६। बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु ४७।

देवता — शाद आदि १-८। शाद आदि, वरुण ९। कः १०-१३। विश्वेदेवा १४-२३, ४६। अश्व २४-४५। अग्नि ४७।

छन्द — भुरिक् शक्वरी, निचृत् अतिशक्वरी १। (दो) भुरिक् अतिशक्वरी २। भुरिक् कृति ३। स्वराट् धृति ४। स्वराट् विकृति ५। निचृत् अतिधृति ६। निचृत् अष्टि ७। निचृत् अभिकृति ८। भुरिक् अत्यष्टि ९। त्रिष्टुप् १०,११, २२-२३, २७, ३०, ३१, ४१। स्वराट् पंक्ति १२, ३७,४२, ४५। निचृत् त्रिष्टुप् १३, २१, २४,२५, ३२, ३३, ४०,४३। निचृत् जगती १४, २६। जगती १५, १६, २०। भुरिक् त्रिष्टुप् १७, १८, २९, ३४, ४४। स्वराट् बृहती १९। विराट् त्रिष्टुप् २८। स्वराट् त्रिष्टुप् ३५। भुरिक् पंक्ति ३६,३८। विराट् पंक्ति ३९। भुरिक् शक्वरी ४६। शक्वरी ४७।

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥

१४५९. अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सं नमतामदऽ आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामदऽ आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सं नमतामदः । सप्त स७ंसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ२ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेमुना ।

अग्नि और पृथ्वी आपस में सहयोगपूर्वक रहते हैं । वे दोनों इसे (मेरे स्नेह और कामना के पात्र को) हमारे अनुकूल बनाएँ । हवा और आकाश भी परस्पर समान गुण वाले हैं, वे दोनों अपना उदाहरण प्रस्तुत करके इसे अनुकूल बनाएँ । आदित्य और नभ भी परस्पर अनुकूलता से रहते हैं, वे दोनों इसे हमारे अनुकूल बनाएँ । जल और वरुण भी आपस में अनुकूलता से रहते हैं, वे भी इसे हमारे अनुकूल बनाएँ । हे देव ! सप्त संसद (अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, आकाश, जल, वरुण) और आठवीं पृथिवी के आश्रय स्वरूप आप सभी मार्गों, विविध शक्तियों तथा वस्तुओं को अपनी कामना के अनुकूल बनाएँ, ताकि हमें सभी के बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो ॥

१४६०. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्या७ं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥२ ॥

जिस प्रकार कल्याण करने वाली इस (दिव्य) वेदवाणी का हमने (मन्त्रद्रष्टा ऋषि) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, प्रिय, अप्रिय जनों एवं सम्पूर्ण लोगों के लिए उपदेश किया है, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! आप लोग भी उपदेश करें, जिससे इस संसार में यज्ञ हेतु देवताओं को दक्षिणा देने वाले लोग हमसे प्रेम करें । हमारा यह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो और हमें यश की प्राप्ति हो ॥२ ॥

१४६१. बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽ ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । उपयामगृहीतोसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥३ ।

हे बृहस्पते ! जिस आत्मशक्ति से आप सबके स्वामी, सबके पूज्य और सभी लोगों में आदित्य के समान तेजस्वी एवं सक्रिय होकर सर्वत्र सुशोभित होते हैं, जिस शक्ति से आप सबकी रक्षा करते हैं, उसी आत्मशक्ति से आप हम सब मनुष्यों को श्रेष्ठ धन प्रदान करें । आप राष्ट्र के निर्धारित नियमों द्वारा स्वीकार किये गये हैं, यह पद आपके योग्य है । अत: हम सब 'बृहस्पति' पद के लिए आप को चुनते हैं ॥३ ॥

१४६२. इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोम७ं शतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥४ ॥

हे शतक्रतु (सैकड़ों प्रकार के यज्ञों के कर्त्ता) गोमत् (गौओं अथवा इन्द्रियादि के पालनकर्त्ता) इन्द्रदेव ! आप इस यज्ञ में आएँ और भली प्रकार पत्थरों द्वारा अभिषुत सोमरस का पान करें । हे सोम ! आपको पवित्र कलश में गोपालक इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए एकत्रित करते हैं । आपको (इस स्थान पर) तेजस्वी इन्द्रदेव की प्रीति के लिए प्रतिष्ठित करते हैं ॥४ ॥

१४६३. इन्द्रा याहि वृत्रहन्पिबा सोम७ं शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥५ ॥

हे शतक्रतो वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप इस यज्ञ में पधारें और पत्थरों से निष्पन्न, गो-दुग्ध मिश्रित इस सोम का पान करें ।हे सोम !हम आपको 'उपयाम' पात्र में एकत्र करके तेजस्वी देव की प्रसन्नता के लिए प्रतिष्ठित करते हैं ॥

१४६४. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे । उपयामगृहीतोसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६ ॥

ईश्वरस्वरूप, कभी नष्ट न होने वाले, तेज राशिस्वरूप, प्रकाशवान्, प्राणिमात्र के हितैषी, विश्व के मार्ग दर्शक अग्निदेव की हम (स्तोतागण) स्तुति करते हैं । आप उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों, वैश्वानर की प्रसन्नता प्राप्ति हेतु हम आपको इसमें ग्रहण करते हैं । वैश्वानर की तुष्टि हेतु हम आपको इसमें स्थापित करते हैं ॥६ ॥

१४६५. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतासि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७ ॥

हम वैश्वानर (विश्व हितकारी प्राणाग्नि) की सुमति (श्रेष्ठ निर्देशन) में प्रतिष्ठित रहें । सभी भुवनों के आश्रयदाता यह वैश्वानर निश्चितरूप से यहीं (पृथ्वी पर) उत्पन्न हुए हैं । यह सारे संसार का निरीक्षण करते हैं । सूर्य के समान ही वे प्रकाश एवं तेज से युक्त हैं । उपयाम पात्र में ग्रहण करके वैश्वानर को जगत् हितकारी कार्यों के लिए यहाँ (यज्ञ में) स्थापित करते हैं ॥७ ॥

१४६६. वैश्वानरो नऽ ऊतय ऽ आ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८ ॥

सम्पूर्ण जगत् के हितैषी वैश्वानर अग्नि, स्तोत्ररूपी वाहन द्वारा दिव्यलोक से यहाँ आकर हमारी सुरक्षा करें । आप उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों । यही (पृथ्वी) आपका उत्पत्ति स्थल है । वैश्वानर (लोक कल्याणकारी) की प्रसन्नता प्राप्ति हेतु आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं ॥८ ॥

१४६७. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा वर्चस ऽ एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥९ ॥

जो अग्नि पाँचों वर्णों--सम्पूर्ण समाज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद) को मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के सदृश निर्मल करने वाला पुरोहित (लोकहित को सामने रखने वाला) है । उन महान्, स्तुत्य अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं । आप उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों । यही आपका आवास केन्द्र है । तेजस्वी अग्निदेव (परमात्मा) की प्रसन्नता के लिए आपको यहाँ प्रतिष्ठित करते हैं ॥९ ॥

१४६८.महाँ२ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योस्मान्द्वेष्टि । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥१० ॥

. जो वज्रपाणि, महान् इन्द्रदेव सोलह कलाओं से युक्त (पूर्ण) हैं, वे हमें सुखी बनाएँ । जो हम से द्वेष करते हैं, उन दुष्ट आत्माओं का नाश करें । इन्द्रदेव की प्रसन्नता के निमित्त आप (अग्निदेव) उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों, हम आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं ॥१० ॥

१४६९.तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः । अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनवऽ इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥११ ॥

हे यजमानो ! सब सम्पदाओं से युक्त, सबके दर्शनीय, सबको आवास प्रदान करने वाले, अन्न आदि पदार्थों से संतुष्ट करने वाले उन इन्द्रदेव की, दिव्य वाणियों से (भावविह्वल होकर) हम उसी प्रकार प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार गौएँ स्नेहपूर्वक रँभाती हुई अपने बछड़ों को बुलाती हैं ॥११ ॥

१४७०.यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो। महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाऽ उदीरते ॥१२ ॥

हे उद्गाताओ ! आप बृहत् साम (स्तुतिगान की एक पद्धति) से अभीष्ट प्रदान करने वाले, तेजस्वरूप उन अग्निदेव की स्तुति करें, जो महारानी की तरह सम्पत्ति और पोषक अन्नादि प्रदान करने में समर्थ हैं ॥१२ ॥

१४७१.एह्यू षु ब्रवाणि तेग्न ऽ इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धासऽ इन्दुभिः ॥१३ ॥

सोम (आदि पोषक रसों) से वृद्धि को प्राप्त होने वाले हे अग्निदेव ! आप स्वाभाविक रूप से इस यज्ञ-स्थल पर पधारें। हम भावप्रवण स्तोत्रों से आपकी प्रार्थना करते हैं ॥१३ ॥

१४७२.ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः। संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परिपातु नः ॥१४ ॥

हे देव ! सभी ऋतुएँ यज्ञ के विस्तार के अनुकूल हों (यज्ञीय प्रक्रिया के विस्तार में सहायक हों), सभी महीने हवि का रक्षण करें, संवत्सर यज्ञ को धारण करें, जिससे हमारे (सभी) परिजनों का परिपालन हो सके ॥१४ ॥

१४७३.उपह्वरे गिरीणाᳯं सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत ॥१५ ॥

पर्वतों की उपत्यिकाओं, गिरि - कन्दराओं और नदियों के किनारे, संगम स्थलों पर ध्यान करने से विप्र-विवेकवानों की प्रज्ञा जाग्रत् होती रही है ॥१५ ॥

१४७४.उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे। उग्रᳯं शर्म महि श्रवः ॥१६ ॥

हे सोम ! हम आपके श्रेष्ठ रस (अन्न) से निष्पन्न, द्युलोक में रहने वाले, प्रशंसनीय, श्रेष्ठ सुख प्रदान करने वाले आश्रय को स्वीकार करते हैं। वह पृथ्वी के समान स्थिरतायुक्त हो ॥१६ ॥

१४७५.स नऽ इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परि स्रव ॥१७ ॥

हे सोम ! आप यश और कीर्तियुक्त धन को जानने वाले हैं। आप इन्द्र, वरुण और मरुतों की तृप्ति के लिए हमें रसरूप में प्राप्त हों ॥१७ ॥

१४७६.एना विश्वान्यर्यऽ आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे ॥१८ ॥

हे विश्व के स्वामी ! मनुष्यों को श्रेष्ठ सम्पदा प्रदान करें, ताकि सेवाभावी व्यक्ति सुख प्राप्त कर सकें ॥१८ ॥

१४७७.अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः। अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९ ॥

हम वीर पुत्रों से युक्त हों । गौओं, अश्वों तथा सब प्रकार के सेवकों और पशुओं से समृद्ध बनाने के लिए दिव्य शक्तियाँ हमारे इस यज्ञ को ऋतुओं के अनुसार सम्पन्न करें ॥१९ ॥

१४७८.अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारᳯं सोमपीतये ॥२० ॥

हे अग्निदेव ! आहुतियों की इच्छा करने वाली देव पत्नियों (शक्तियों) को तथा त्वष्टा (देवों के शिल्पी) देवता को हमारे इस यज्ञ में सोमरस पीने के लिए अपने साथ लेकर आएँ ॥२० ॥

१४७९.अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना। त्वᳯं हि रत्नधाऽ असि ॥२१ ॥

हे, पत्नी (शक्ति) युक्त नेष्टा-अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न (पूर्ण) करें तथा ऋतु के अनुसार सोम रस का पान करें; क्योंकि आप हमारे लिए श्रेष्ठ सम्पदाएँ धारण करने वाले हैं ॥२१ ॥

१४८०. द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२२ ॥

हे ऋत्विजो ! जिस तरह धनप्रदाता नेष्टा (अग्नि) देवता समयानुसार सोमरस पीने की इच्छा करते हैं, वैसे ही आप लोग भी पीने की कामना से उसे प्राप्त करें । आप यज्ञ करें और सम्मान के अधिकारी बनें ॥२२ ॥

१४८१. तवायꣳ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमनाऽ अस्य पाहि । अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर ऽ इन्दुमिन्द्र ॥२३ ॥

हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमारे निकट आएँ । यह सोम आपके निमित्त अर्पित है । अतः प्रसन्नचित्त होकर दीर्घकाल तक इसकी रक्षा करें ।इस यज्ञ में कुश के आसन पर आसीन होकर इस सोम को स्वीकार करें ।

१४८२. अमेव नः सुहवाऽ आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन । अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥२४ ॥

हे आवाहन पर ध्यान देने वाली देवपत्नियो ! (शक्तियो !) आप अपने गृह सदृश हमारे इस यज्ञ मण्डप में पधारें और कुश-आसन पर प्रसन्नतापूर्वक आसीन हों । हे त्वष्टादेव ! आप देवपत्नियों के साथ हविष्यान्न को ग्रहण करते हुए आनन्दित हों ॥२४ ॥

१४८३. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२५ ॥

हे सोमदेव ! आप अपनी स्वादिष्ट और आनन्द प्रदान करने वाली धारा के साथ इन्द्रदेव के लिए कलश में प्रवाहित हों; क्योंकि आप उन्हीं के पीने के लिए निकाले गये हैं ॥२५ ॥

१४८४. रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२६ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप राक्षसों का विनाश करने वाले तथा समस्त विश्व को देखने वाले हैं । आप काष्ठपात्र तथा लौह निर्मित शस्त्र से संस्कारित होकर, द्रोणकलश में स्थिर होकर, यज्ञ के मध्य में विराजमान रहें ॥२६ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— विवस्वान् १ । विवस्वान्, लोगाक्षि २ । गृत्समद ३, २४ । रम्याक्षि ४,५ । प्रादुराक्षि ६ । कुत्स ७ । वसिष्ठ-भरद्वाज ८,९ । वसिष्ठ १० । नोधा गोतम ११ । वसूयव १२ । भरद्वाज १३, १४ । वत्स १५ । आमहीयव १६-१८ । मुद्गल यज्ञपुरुष १९ । मेधातिथि २०-२२ । विश्वामित्र २३ । मधुच्छन्दा २५, २६ ।

देवता— लिंगोक्त १,२ । ब्रह्म ३ । इन्द्र ४,५, ११, २३ । वैश्वानर ६-८ । अग्नि ९, १२-१४, २० । महेन्द्र १० । सोम १५-१८, २५, २६ । देवगण १९ । ऋतु २१, २२ । त्वष्टा २४ ।

छन्द— अभिकृति १ । विराट् अत्यष्टि २ । भुरिक् अत्यष्टि ३ । स्वराट् जगती ४,९ । भुरिक् जगती ५ । जगती ६, ८, २४ । स्वराट् अष्टि ७ । निचृत् जगती १० । बृहती ११ । विराट् अनुष्टुप् १२ । विराट् गायत्री १३, १५ । भुरिक् बृहती १४ । निचृत् गायत्री १६,१७ । विराट् गायत्री १८ । त्रिष्टुप् १९ । गायत्री २०-२२, २५, २६ । भुरिक् पंक्ति २३ ।

॥ इति षड्विंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

१४८५. समास्त्वाग्न ऽ ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सराऽ ऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा ऽ आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१ ॥

हे अग्ने ! आपको ऋषिगण प्रत्येक मास, ऋतु और संवत्सर में दिव्य मन्त्रों से बढ़ाते हैं । इस प्रकार आप अपने अलौकिक तेज से देदीप्यमान होकर सम्पूर्ण दिशाओं तथा चारों उपदिशाओं को आलोकित करें ॥१ ॥

१४८६. सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२ ॥

हे अग्निदेव !आप भलीप्रकार देदीप्यमान होकर इस यजमान को आत्मज्ञान प्रदान करें तथा महान् ऐश्वर्य दिलाने के निमित्त प्रयत्नशील हों । हे अग्ने ! आप की उपासना करने वाला उपासक अमृतत्व को प्राप्त करे । आपके ऋत्विज् तथा याजकगण कीर्तिमान् हों और विपरीत आचरण वाले वह सब न पाएँ ॥२ ॥

१४८७. त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणाऽ इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः । सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३ ॥

हे अग्ने ! ये विप्र लोग आपकी अर्चना करते हैं । इनके द्वारा सम्मानित किये जाने पर आप हमारे लिए मंगलकारी हों ।हे अग्ने !हमारे रिपुओं के विनाशक तथा विजेता, आप अपने गृह में प्रमादरहित होकर जाग्रत् रहें॥

१४८८. इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः । क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥४ ॥

हे अग्ने ! इन यजमानों के धन की वृद्धि करें । यज्ञाग्नि को प्रकट करने वाले याजक आपकी आज्ञा की अवहेलना न करें । क्षत्रिय (शौर्यसम्पन्न व्यक्ति) सरलता से आपके वशीभूत हों । आपके भक्त अविनाशी होकर सम्पूर्ण समृद्धि को प्राप्त हों ॥४ ॥

१४८९. क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳ रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व । सजातानां मध्यमस्था ऽ एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५ ॥

हे महान् अग्निदेव ! आप क्षत्रियों को क्षात्रधर्म की प्रेरणा देते हुए यज्ञ सम्पन्न करें । सूर्य के साथ रहकर यज्ञ आदि सृजनात्मक कार्य करने का प्रयत्न करें । सजातियों के मध्य रहने वाले हे अग्ने ! राजाओं के द्वारा बुलाये जाने पर इस यज्ञ में आकर आप प्रदीप्त हों ॥५ ॥

१४९०. अति निहो अति स्रिधोत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने । विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳ सहवीराꣳ रयिं दाः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप हत्या करने वालों, कुत्सित आचरण करने वालों, दुराचारियों, मनचलों और लोभियों को साहस के साथ सम्पूर्ण दुष्टताओं से दूर करें । इसके बाद हे अग्ने ! हमें वीर सन्तान के साथ उत्तम धन-धान्य प्रदान करें ॥६ ॥

१४९१. अनाधृष्यो जातवेदाऽ अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह । विश्वा ऽ आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥७ ॥

हे अग्ने ! आप अपराजेय, सर्वज्ञाता, अनश्वर, तेजवान् तथा सर्वशक्ति सम्पन्न क्षत्रिय-धर्म का पोषण करने वाले हैं । इन गुणों से सम्पन्न होकर सभी दिशाओं को प्रकाशित करें । मनुष्य के सभी भयानक रोग-शोक आदि को नष्ट करके, समृद्धि प्रदान करें तथा शान्तभाव से हमारा परिपालन करें ॥७ ॥

१४९२. बृहस्पते सवितर्बोधयैन ᳪ सᳪशितं चित्सन्तरा ᳪ स ᳪ शिशाधि । वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व ऽ एनमनु मदन्तु देवाः ॥८ ॥

हे बृहस्पते ! हे सवितादेव ! इन याजकों को तीव्र बुद्धि वाला बनाकर और अधिक चेतना सम्पन्न करें । महान् सम्पदाओं के निमित्त इनको आगे बढ़ाएँ । विश्वेदेवा भी अनुकूल होकर इन्हें हर्षित करें ॥८ ॥

१४९३. अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः । प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥९ ॥

हे बृहस्पते ! परलोक में जाने के भय से तथा यमराज के भय से हमें छुड़ाएँ । हे अग्ने ! इस (याजक वर्ग) के यज्ञादि कर्मों के द्वारा अश्विनीकुमार (देवों के वैद्य) मृत्यु भय को दूर करें, जन्म-जन्मान्तरों के पापों को दूर करें ॥

१४९४. उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

हम इस जगत् के अज्ञानान्धकार से मुक्त होकर उत्कृष्ट सुख प्रदान करने वाले, अविनाशी, महान् गुण सम्पन्न, सर्वोत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप सूर्यदेव (सविता) को देखते हुए परमपद को प्राप्त करें ॥१० ॥

१४९५. ऊर्ध्वाऽ अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीᳪष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥११ ॥

याज्ञिकों के द्वारा उत्पन्न किये जाने पर श्रेष्ठ दीखने वाले अग्निदेव की किरणें समिधाओं से ऊर्ध्वगमन करती हैं तथा शुभ प्रकाश फैलाते हुए ऊपर उठने की प्रेरणा देती हैं ॥११ ॥

१४९६. तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥१२ ॥

शरीर की रक्षा करने वाले प्राणवान् विश्ववेत्ता, देवताओं में महान् अग्निदेव मधुर घी की आहुतियों द्वारा यज्ञों को बढ़ाएँ तथा सन्मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करें ॥१२ ॥

१४९७. मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशᳪसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥१३ ॥

दिव्यगुणों से सम्पन्न आस्तिक ऋत्विजों द्वारा पूज्य हे अग्ने ! श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादनकर्ता तेजस्वी सविता रूप आप सम्पूर्ण जगत् के प्रिय पात्र हैं । आप मधुर पदार्थों से यज्ञ को सम्पन्न करते हैं ॥१३ ॥

१४९८. अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा । अग्निᳪ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥

यज्ञकर्त्ता यह अध्वर्यु विभिन्न स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करते हुए, घृत तथा हविष्यान्न के सहित यज्ञपात्रों (जुहू) को लेकर अग्नि के निकट जाते हैं ॥१४ ॥

१४९९. स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥१५ ॥

वह याज्ञिक यज्ञ कार्य में निमग्न होकर, अत्यन्त जाज्वल्यमान, उत्तम सम्पदाओं को प्रदान करने वाले और अन्न से सुसम्पन्न अग्निदेव की आराधना करता है । वह याज्ञिक ही हर्षप्रद हवियों से आहुति प्रदान करे ॥१५ ॥

१५००. द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥१६ ॥

विशाल आकाश से युक्त सामर्थ्यवान् दिव्यद्वार अग्निदेव के संकल्प को धारण करते हैं तथा समस्त देवगण अग्नि के कर्म (यज्ञ) को धारण करते हैं ॥१६ ॥

१५०१. ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥१७ ॥

इस यज्ञ मण्डप में अग्नि की दो दिव्य देवियाँ उषा (दिन) और नक्ता (रात्रि) विद्यमान हैं । वे दोनों हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञ की सरल रीति से सुरक्षा करें तथा कुण्डमध्य में अग्निदेव के साथ विराजें ॥१७ ॥

१५०२. दैव्या होतारा ऽ ऊर्ध्वमध्वरं नोग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् । ।१८ ॥

दिव्यगुणों से युक्त दोनों होता अग्नि और वायु हमारे इस यज्ञ को श्रेष्ठ ढंग से सम्पन्न करें । हमारे यज्ञाग्नि की लपटें ऊर्ध्वगामी होकर हर प्रकार से हमें ऊर्ध्वगमन की प्रेरणा प्रदान करें ॥१८ ॥

१५०३. तिस्रो देवीर्बर्हिरिद‌ꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती । मही गृणाना ॥१९ ॥

महती स्तुतियोग्य तीनों देवियाँ इडा, सरस्वती और भारती यज्ञशाला में इस कुश-आसन पर आरूढ़ हों ॥१९

१५०४. तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥२० ॥

त्वष्टादेव उस शीघ्रगति वाले, अद्‌भुत, विभिन्न रूपों में सुशोभित, ऐश्वर्य पोषक, श्रेष्ठ वैभव को हमें प्रदान करें ॥२० ॥

१५०५. वनस्पतेव सृजा रराणस्त्मना देवेषु । अग्निर्हव्य‌ꣳ शमिता सूदयाति ॥२१ ॥

हे वनस्पते ! आप देवस्वरूप होकर देवताओं को हवियों द्वारा आहुति प्रदान करें । कल्याणकारी अग्निदेव उन आहुतियों को संस्कारित करते हैं ॥२१ ॥

१५०६. अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद ऽ इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥२२ । ।

हे अग्निदेव ! आप सर्वविद् हैं । हमारी इन आहुतियों को इन्द्रदेव के लिए प्रदान कराएँ । समस्त देवगण इन आहुतियों का सेवन करें ॥२२ ॥

१५०७. पीवो अन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः । ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥२३ ॥

अन्नादि से पुष्ट हुए, ऐश्वर्य बढ़ाने वाले, सद्‌बुद्धि सम्पन्न, वायुदेव का आश्रय लेने वाले, उनके समान स्वभाव वाले अश्वों (यज्ञीयऊर्जा) का सेवन वायुदेव करते हैं । वे (यज्ञीय ऊर्जारूप) अश्व वायुदेव के लिए उपलब्ध रहते हैं । श्रेष्ठ मनुष्य (याजकगण) श्रेष्ठ सन्तान आदि की प्राप्ति के लिए ऐसा ही (यज्ञ) सम्पन्न करें ॥२३ ॥

१५०८. राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् । अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥२४ ॥

द्यावा-पृथिवी ने जिस वायु (प्राण तत्त्व) को ऐश्वर्य के लिए पैदा किया, उसी वायु को दिव्य वाक्‌देवी, धन के निमित्त धारण करती हैं । इसके पश्चात् शुद्ध सम्पत्ति को धारण करने वाले वायु (प्राणतत्त्व) का सभी प्राणी ब्रह्माण्ड में रहकर सेवन करते हैं ॥२४ ॥

[अनन्त अन्तरिक्ष से समस्त दिव्य सम्पदाओं के रूप में पृथ्वी प्राणतत्त्व को ग्रहण करती है । उसी प्राण तत्त्व का सभी प्राणी सेवन करते हैं]

१५०९. आपो ह यद्‌बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवाना‌ꣳ समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५ ॥

स्वर्णिम आभामय अग्नि के तेज को गर्भ में धारण किये हुए, महान् जल भण्डार सर्वप्रथम पृथ्वी पर प्रकट हुआ। उस हिरण्यगर्भ से देवताओं के प्राणरूप आत्मा (लिङ्ग शरीररूपी हिरण्यगर्भ) की उत्पत्ति हुई। हम हिरण्यगर्भरूपी प्रजापतिदेव के लिए हवि प्रदान करते हैं (उनके अतिरिक्त और किसे हवि प्रदान करें ?) ॥२५॥

१५१०. यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देवऽ एकऽ आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥

जिस (परमात्मशक्ति) ने (सर्वत्र विद्यमान) जल को देखा और दक्ष-प्रजापति के माध्यम से यज्ञ करने वाली प्रजा को जन्म दिया, उन सभी देवों में श्रेष्ठ प्रजापति देव को हम आहुति प्रदान करते हैं ॥२६॥

१५११. प्र याभिर्यासि दाश्वाᳬं समच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे। नि नो रयिᳬं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

हे वायो ! यज्ञमण्डप में आहुति प्रदान करने वाले याजक के पास आप अश्व की भाँति जिस तीव्र गति से जाते हैं, उसी प्रकार हमें वीर-संतान, गौ, अश्व आदि अपार वैभव प्रदान करें ॥२७॥

१५१२. आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरᳬं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥

हे वायो ! आप सैकड़ों-हजारों अश्वों द्वारा खींचे जाते हुए वाहनों पर आरूढ़ होकर अर्थात् तीव्र गति से हमारे इस यज्ञ में पधारें और इसके सेवन से स्वयं तृप्त हों तथा हम सबको भी हर्षित करें। आप अपने कल्याणकारी साधनों द्वारा हमारी सदा रक्षा करें ॥२८॥

१५१३. नियुत्वान्वायवा गह्ययᳬं शुक्रो अयामि ते। गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२९॥

सत्कर्मरत याजकों की ओर गमनशील हे वायो ! आप अपने तीव्रगामी वाहन द्वारा इस यज्ञस्थल पर शीघ्र पधारें। शुक्र आदि ग्रह आपको धारण करने के लिए तत्पर हैं ॥२९॥

१५१४. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु। आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥३०॥

विजयी वीरों द्वारा स्पृहणीय हे वायुदेव ! यज्ञ फलरूप रसों में प्रमुख शुक्र ग्रह आपके लिए प्रस्तुत है। तीव्रगामी अश्वों से युक्त वाहन द्वारा सोमरस पीने के लिए आप शीघ्र ही पधारें ॥३०॥

१५१५. वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम्। शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥३१॥

नेतृत्व करने वाले, यज्ञ से आनन्दित होने वाले, मंगलकारी वायुदेव अपने कल्याणकारी अश्वों पर आरूढ़ होकर पूर्ण मनोयोग से हमारे यज्ञ में पधारें ॥३१॥

१५१६. वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि। नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥३२॥

हे वायो ! आपके पास सहस्रों रथ (यान) हैं, उन रथों में अश्वशक्ति (हार्स पावर) जोड़कर सोमरस को पीने के निमित्त हमारे इस यज्ञ में पधारें ॥३२॥

१५१७. एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विᳬंशती च। तिसृभिश्च वहसे त्रिᳬंशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥३३॥

स्वयं के ऐश्वर्य से सुशोभित हे वायुदेव ! आप एक, दो, तीन एवं (गुणितदस) दस, बीस, तीस अश्व (अश्व शक्ति) युक्त वाहनों (यानों) को इस अभीष्ट प्रयोजन के लिए छोड़ें ॥३३॥

१५१८. तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत। अवा ꣳस्या वृणीमहे ॥३४॥

हे सत्यपालक वायुदेव ! आप त्वष्टादेव के जामाता और आश्चर्यजनकरूप वाले हैं। आपके द्वारा प्रयुक्त रक्षा-साधनों को हम हर तरह से अंगीकार करते हैं ॥३४॥

१५१९. अभि त्वा शूर नोनुमोदुग्धाऽ इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥३५॥

सूर्य की भाँति सब पर दृष्टि रखने वाले हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप इस सम्पूर्ण स्थावर जंगम-जगत् के स्वामी और नियन्ता हैं, हम आपके सम्मुख नमन करते हैं। बिना दुही गौ जैसे बछड़े को पाना चाहती है, वैसे ही हम आपसे अनुदान पाना चाहते हैं ॥३५॥

१५२०. न त्वावाँ२ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥३६॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके सदृश दिव्य देव कोई अन्य नहीं है, न कोई पैदा हुआ है, न ही भविष्य में पैदा होगा। अतः हम घोड़ों, गौओं और शक्ति की कामना से आपके लिए आहुति समर्पित करते हैं ॥३६॥

१५२१. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥३७॥

सत्य का पालन करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम यज्ञ करने वाले याजकगण धन-धान्य लाभ के लिए, शत्रुओं का नाश करने के लिए, अश्व लाभ तथा सभी दिशाओं में विजय प्राप्त करने के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥३७॥

१५२२. स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः। गामश्व ꣳ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥३८॥

हे अद्भुत कर्म वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अपने पराक्रम और आत्मतेज से सबके द्वारा स्तुत्य हैं। हमें गाय तथा अश्वसहित रथ प्रदान करें। जिस प्रकार युद्ध जीतने की कामना से घोड़ों को अन्नादि देकर मजबूत किया जाता है, उसी प्रकार हमें भी आप पुष्टि प्रदान करें ॥३८॥

१५२३. कया नश्चित्र ऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥३९॥

सर्वदा वृद्धि करने वाले, अद्भुत शक्ति सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! किस रक्षण तथा वर्तन क्रिया से प्रसन्न होकर आप सदैव हमारे मित्ररूप में प्रस्तुत होते हैं ? ॥३९॥

१५२४. कस्त्वा सत्यो मदानां म ꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥४०॥

हे धन-सम्पन्न इन्द्रदेव ! सोमरस का कौन सा अंश आपको आनन्दित करता है, जिस अंश को पीकर हर्षित होते हुए आप याजकों को स्वर्ण आदि धन प्रदान करते हैं ? ॥४०॥

१५२५. अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम्। शतं भवास्यूतये ॥४१॥

हे इन्द्रदेव ! आप मित्र सदृश हम याज्ञिकों के पालक हैं। आप भक्तों की रक्षा के लिए विविध प्रकार के उपायों का सहारा लेते हैं ॥४१॥

१५२६. यज्ञा-यज्ञा वो अग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे। प्र-प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न श ꣳसिषम् ॥४२॥

यज्ञों में अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न, अनश्वर, सर्वविद् और प्रिय मित्र के समान अग्निदेव की, विभिन्न स्तोत्रों से हम स्तुति करते हैं ॥४२ ॥

१५२७. पाहि नो अग्न ऽ एकया पाह्युत द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥४३ ॥

हे अग्ने ! आप बलों के स्वामी तथा उत्तम निवास प्रदान करने वाले हैं । हम आपकी ऋक्, यजु, साम तथा अथर्वरूपी दिव्य स्तोत्रों से वन्दना करते हैं; आप हमारी रक्षा करें ॥४३ ॥

१५२८. ऊर्जो नपातꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये । भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध ऽ उत त्राता तनूनाम् ॥४४ ॥

हे अध्वर्युगण ! आप शौर्य के रक्षक अग्निदेव को संतुष्ट करें । ये हमारे शरीर, पत्नी तथा बच्चों की रक्षा करते हैं तथा कामनाओं को पूर्ण करते हैं ।जीवन में उन्नति की कामना करते हुए हम उन्हें आहुति प्रदान करते हैं ॥

१५२९. संवत्सरोसि परिवत्सरोसीदावत्सरोसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम् । प्रेत्या ऽ एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥४५ ॥

हे अग्ने ! आप संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर तथा वत्सर (वर्ष) हैं । आपके लिए उषा, दिन-रात, कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष, मास, ऋतु तथा वर्ष सुसम्पन्न हों । आप हमारी प्रगति के निमित्त अपनी शक्तियों का संग्रह तथा विस्तार करते हैं । आप उन दिव्य शक्तियों के साथ मिलकर प्राणवायु के सदृश दृढ़ होकर स्थिर रहें ॥४५ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— अग्नि १-९, ११-२२ । प्रस्कण्व १० । वसिष्ठ २३, २४, २७, २८, ३५, ३६ हिरण्यगर्भ प्राजापत्य २५, २६ । गृत्समद २९, ३२ । पुरुमीढ-अजमीढ ३०, ३१ । प्रजापति ३३ । व्यश्व आंगिरस ३४ । शंयु बार्हस्पत्य ३७, ३८ । वामदेव ३९-४१ । शंयु ४२-४५ ।

देवता— अग्नि १-९, ४२-४५ । सूर्य १० । इध्म ११ । तनूनपात् १२ । नराशंस १३ । इड १४ । बर्हि १५ । द्वार १६ । उषासानक्ता १७ । दिव्य होतागण १८ । तीन देवियाँ १९ । त्वष्टा २० । वनस्पति २१ । स्वाहाकृति २२ । वायु २३, २४, २७-३४ । प्रजापति २५, २६ । इन्द्र ३५-४१ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १, २, ८, ९, २४, २६, २८ । विराट् त्रिष्टुप् ३,३३ । स्वराट् त्रिष्टुप् ४, २५ । स्वराट् पंक्ति ५, २७ । भुरिक् बृहती ६ । निचृत् जगती ७ । विराट् अनुष्टुप् १० । उष्णिक् ११, १२ । निचृत् उष्णिक् १३, १६, १७, २०, २२ । भुरिक् उष्णिक् १४ । स्वराट् उष्णिक् १५ । भुरिक् गायत्री १८ । गायत्री १९, ३१, ३२, ३९ ।विराट् उष्णिक् २१ । निचृत् त्रिष्टुप् २३ । निचृत् गायत्री २९, ३४, ४० । अनुष्टुप् ३० । स्वराट् अनुष्टुप् ३५, ४३ । निचृत् पंक्ति ३६ । निचृत् अनुष्टुप् ३७ । स्वराट् बृहती ३८, ४४ । पादनिचृत् गायत्री ४१ । बृहती ४२ । निचृत् अभिकृति ४५ ।

॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ अष्टाविंशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय में प्रकृति में चल रहे विराट् यज्ञ का वर्णन किया गया है। इसमें प्रारम्भ में जिस 'होता' का उल्लेख है, उसे सभी भाष्यकारों ने 'प्रकृति यज्ञ संचालक दिव्य होता' ही माना है। 'आज्य' का अर्थ विद्वानों ने 'घी, तेल, दूध' आदि किसी भी हवनीय पदार्थ के संदर्भ में लिया है। यही अर्थ अधिक युक्ति संगत भी है—

१५३०. होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या ऽ अधि। दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ऽ ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१ ॥

दिव्य याज्ञिक ने समिधाओं के द्वारा इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञ किया है। (प्रकृति चक्र के उस विराट् यज्ञ में) अग्निदेव धरती पर यज्ञाग्नि रूप में, मध्य स्थान अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप तथा ऊपर स्वर्ग में सूर्य के रूप में आलोकित होते हैं। श्रेष्ठ विजेता ओजस्वी इन्द्रदेव, हव्यपान करें। हे होता ! आप भी उनके निमित्त यज्ञ करें ॥१ ॥

१५३१. होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्। इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२ ॥

महान् तेजस्वी, मनुष्यों के द्वारा प्रशंसित, शरीर के रक्षक, शत्रुओं से पराजित न होने वाले, शत्रुओं के विजेता, अपने को जानने वाले, देवेन्द्र के लिए दिव्य होता ने अपनी हर्षप्रदायक तथा सुमधुर आहुतियों द्वारा यज्ञ किया। इस प्रकार वे हव्य का पान करें। हे याज्ञिक ! आप भी यज्ञ करें ॥२ ॥

१५३२. होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्। देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३ ॥

वेद मंत्रों की मधुर स्तुतियों के द्वारा स्तुत्य, देवताओं के उपासक, अविनाशी इन्द्रदेव के लिए महान् याज्ञिक ने यज्ञ किया। दिव्य गुणों से सम्पन्न, शत्रुओं की पुरियों को नष्ट करने वाले वज्रधारी देवराज इन्द्र, हव्य का पान कर तृप्त हों। हे होता ! आप भी यज्ञ करें ॥३ ॥

१५३३. होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम्। वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४ ॥

धन की वर्षा करने वाले, याज्ञिकों के हितैषी इन्द्रदेव को कुशाओं के आसन पर आरूढ़ करके होताओं ने यजन किया। समान कृत्य करने वाले वसुओं, रुद्रों तथा आदित्यों के साथ कुश-आसन पर बैठकर वे हव्य का पान करें। हे होता ! आप भी यज्ञ करें ॥४ ॥

१५३४. होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वार ऽ इन्द्रमवर्धयन्। सुप्रायणा ऽ अस्मिन्यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार ऽ इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५ ॥

महान् याज्ञिक ने इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञ किया और द्वार के देवता ने उनके अन्दर ओज, वीर्य और मनोबल को बढ़ाया। सरलता से जाने योग्य और यज्ञ संवर्धक द्वार, अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव के लिए खुल जाएँ; वे इस यज्ञ में पधारकर हव्य का पान करें। हे याज्ञिक ! आप भी (ऐसा ही) यज्ञ करें ॥५ ॥

१५३५. होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही। सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६ ॥

महान् होता ने इन्द्रदेव की माँ के सदृश, उत्तम दूध देने वाली दो गौओं के समान, पृथ्वी और उषा का यजन किया। इसके बाद उन्होंने तेज के द्वारा इन्द्रदेव को संवर्धित किया। जिस प्रकार दो गौएँ एक बछड़े को प्यार

करती हुई उसे मजबूत बनाती हैं, उसी प्रकार (उक्त दोनों यज्ञों के प्रभाव से) वे हव्य (पोषण) प्राप्त कर पुष्ट हों । हे याज्ञिक ! आप भी उसी निमित्त यज्ञ करें ॥६ ॥

१५३६. होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः । कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त ऽ इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७ ॥

महान् दिव्यहोता ने चिकित्सक, मित्ररूप, महान् गुणों से सम्पन्न, उत्कृष्ट ज्ञानवान्, देवगणों के वैद्य (दोनों अश्विनीकुमारों) के निमित्त यज्ञ किया । वे दोनों इन्द्रदेव की चिकित्सा कर उनको आरोग्य लाभ प्रदान करते हुए हव्य का पान करें । हे याज्ञिको ! आप भी इसी हेतु यज्ञ करें ॥७ ॥

१५३७. होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस ऽ इडा सरस्वती भारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥८ ॥

महान् होता ने तीनों लोकों में, अग्नि, वायु, सूर्य— इन तीनों के धारक, सर्दी, गर्मी, वर्षा तथा वायु आदि की व्यवस्था करने वाले इन्द्रदेव का पालन करने वाली, ओषधियुक्त आहुति से सम्पन्न इड़ा, सरस्वती तथा भारती-इन तीनों देवियों का यजन किया । वे हव्यपान कर तृप्त हों । हे याज्ञिक ! आप भी इनके निमित्त यज्ञ करें ॥८ ॥

१५३८. होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम् । पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९ ॥

महान् ऐश्वर्यवान् , दान-दाता, रोगनाशक, श्रेष्ठ याज्ञिक, स्नेही, धन-सम्पन्न, विविधरूप वाले, श्रेष्ठ शक्ति से सम्पन्न त्वष्टदेव का दिव्य होता ने यजन किया । उसके बाद त्वष्टादेव ने इन्द्रदेव के लिए अनेकानेक शक्तियों को प्रदान किया । वे हव्य का पान करें । हे याज्ञिक ! आप भी उन्हीं के लिए यज्ञ करें ॥९ ॥

१५३९. होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१० ॥

दिव्यहोता ने शांति-स्थापक, बहुत कार्य करने वाले, विचारपूर्वक कार्य करने वाले, इन्द्रदेव के हितैषी वनस्पतिदेव का यजन किया और मधुर घृतादि से युक्त यज्ञ को सम्पन्न करके सुगम मार्गों से देवों तक पहुँचाया । वे (देवगण) मधुर घृतयुक्त हवि का पान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१० ॥

१५४०. होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवाऽ आज्यपा जुषाणाऽ इन्द्र ऽआज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥११ ॥

दिव्यहोता ने घृताहुति से, स्निग्ध पदार्थों से, सोमरस से, स्वाहाकारयुक्त हवि से तथा सम्बन्धित श्रेष्ठ मंत्रों का प्रयोग करते हुए इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञ किया । स्वाहा के उच्चारण से हर्षित होकर हव्य पीने वाले देवता तथा इन्द्रदेव उसका पान करें । हे याज्ञिक ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥११ ॥

१५४१. देवं बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत् । वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳ राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१२ ॥

दिन में काटे जाने (पर भी) रात्रि में वेदी पर (कार्य क्षेत्र में) विस्तार पाने वाले, वीरों की भाँति अपने संस्कारों से (परिस्थितियों का) अतिक्रमण करने वाले, इन्द्र, मरुत् आदि देवों का विकास करने वाले बर्हिदेव (कुशादि के अधिष्ठाता देवता) हव्य का पान करें । हे बर्हियुक्त याजको ! ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं धारण के लिए आप भी यजन करें ॥१२ ॥

१५४२. देवीर्द्वार ऽ इन्द्रꣳ सङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणꣳ रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

सामूहिकरूप से देहली-कपाट (आदि रूपों में संव्याप्त) रूप दिव्य शक्तियों ने अपने कर्म से इन्द्रदेव को वृद्धि प्रदान की। (वे इन्द्रदेव) बाल अवस्था अथवा तरुण अवस्था वाले हानिकारक तत्त्वों को आगे जाने से रोकें तथा धूल भरे बादलों को दूर करें। वे (इन्द्र) ऐश्वर्य प्रदान करके, उन्हें (दिव्यशक्तियों को) यजमान के गृह में स्थित करने के निमित्त 'हव्य' का पान करें। हे होता! आप भी यज्ञ करें ॥१३॥

१५४३. देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्। दैवीर्विशः प्रायासिष्टाꣳ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१४॥

हमेशा प्रेम करने वाली, श्रेष्ठ हितैषी उषा और रात्रि देवी, यज्ञ के द्वारा इन्द्रदेव को समृद्ध करें तथा महान् दिव्य प्रजाजनों वसु, रुद्र आदि को हर समय प्रेरित करें। वे याज्ञिक के ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा स्थिरता के निमित्त हव्य पान करें। हे होता! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१४॥

१५४४. देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम्। अयाव्यन्याघा द्वेषाꣳ स्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१५॥

हमेशा प्रेम करने वाली, ज्ञान-संपन्न, ऐश्वर्य धारण करने वाली, अहोरात्र की देवी इन्द्रदेव की वृद्धि करती हुई, (प्रथम) उन (यजमान) के पाप और बुरे भाग्य को दूर करती हैं (तथा दूसरी) महणीय ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। वे यजमान के लिए धन की प्राप्ति और स्थिरता के लिए हव्य का पान करें। हे होता! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें॥

१५४५. देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्र मवर्धताम्। इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥

अन्न, जल एवं कामनारूपी दूध सहित दोनों देवियों ने इन्द्रदेव को वृद्धि प्रदान की। दोनों अन्न-जल रूपी शक्ति को वहन करती हैं। दयायुक्त, रस की वृद्धि करने वाली, तत्त्व को जानने वाली, नये अन्न से पुराने और पुराने से नये अन्न को धारण करती हुई यजमान के लिए महान् ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए वे हव्य का पान करें। हे होता! आप भी इन्हीं के निमित्त यज्ञ करें ॥१६॥

१५४६. देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्धताम्। हताघश ꣳसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१७॥

दुष्कर्मों का दण्ड देने वाली, दुष्टता को नष्ट करके देवत्व को बढ़ाने वाली, दिव्य होतारूप दोनों देवियों ने इन्द्रदेव को वृद्धि प्रदान की और यजमान को वांछित ऐश्वर्य प्रदान किया। वे दोनों यजमान के लिए धन प्राप्ति और उसकी स्थिरता के निमित्त हव्य पान करें। हे होता! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१७॥

१५४७. देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन्। अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१८॥

तीनों देवियों ने पालनकर्ता इन्द्रदेव को संवर्धित किया। इनमें भारती दिव्यलोक को, रुद्रों की सहचारिणी सरस्वती यज्ञ को, वसुमती (इडा) भूलोक को स्पर्श करती हैं। तीनों देवियाँ याजक के लिए धन-प्राप्ति और उसकी स्थिरता के लिए हव्य पान करें। हे होता! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१८॥

१५४८. देवऽ इन्द्रो नराशᳬंसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिः स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१९ ॥

बहु प्रशंसित, तीनों लोकों के स्वामी, ऋक्, यजु, साम की ऋचाओं से युक्त यज्ञदेव ने इन्द्रदेव को वृद्धि प्रदान की। वे काली पीठ वाली हजारों (गौओं या मेघों) के द्वारा सुशोभित होते हैं। इस यज्ञ के होता कर्मशील वरुण, स्तोता बृहस्पति तथा अध्वर्यु दोनों अश्विनीकुमार हैं। वे (इन्द्रदेव) याजक के लिए ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा उसकी स्थिरता के उद्देश्य से हव्यपान करें। हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१९ ॥

१५४९. देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृ ᳬं हीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२० ॥

सुनहरे पत्तों से, मधुमयी टहनियों से, सुस्वादिए फलों से सम्पन्न वनस्पति देव ने देवगणों के साथ इन्द्रदेव को तेजस्विता से संवर्धित किया। वे वनस्पतिदेव अपने अगले भाग से आकाश को तथा जड़ द्वारा धरती को स्पर्श करते हुए विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। वे देव याजक के लिए धन प्राप्ति और उसकी स्थिरता के लिए हव्य पान करें। हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥२० ॥

१५५०. देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीᳬंष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२१ ॥

पानी के बीच में आलोकित, सुखपूर्वक बैठने योग्य, इन्द्रदेव के आश्रययुक्त अनुयाज देव ने इन्द्रदेव को संवर्धित किया। वे आकाशस्थ वस्तुओं को अभिभूत करके, यजमान को ऐश्वर्य देने और उसकी स्थिरता के लिए हव्य पान करें। हे होता ! आप भी इसी के निमित्त यज्ञ करें ॥२१ ॥

१५५१. देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२२ ॥

श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति करने वाले अग्निदेव ने इन्द्रदेव को संवर्धित किया। वे आज श्रेष्ठ कर्म करते हुए हमारे लिए उत्तम फल प्रदान करें और यजमान के ऐश्वर्य प्राप्ति और उसकी स्थिरता के लिए हव्य पान करें। हे होता ! आप भी उन्हीं के लिए यज्ञ करें ॥२२ ॥

१५५२. अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवी वृधत्पुरोडाशेन। त्वामद्य ऋषे ॥२३ ॥

पकने वाली चरु को पकाकर, रोगनाशक दुग्ध के निमित्त बकरी को बाँधकर, इस यजमान ने इन्द्रदेव के निमित्त आज अग्नि को ग्रहण किया। वनस्पतिदेव ने आज परिपाक हवि तथा बकरी के दुग्ध को ग्रहण कर (उससे बने) पुरोडाश के द्वारा इन्द्रदेव को समृद्ध किया। हे ऋषियो ! आपको भी आज इसी तरह करना चाहिए ॥

१५५३. होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द ऽ इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२४ ॥

दिव्य होता ने गायत्री छन्द, इन्द्रियशक्ति, त्र्यवि गौ (प्रकाश, ऊर्जा, गतियुक्त किरणें) एवं आयुष्य धारण करते हुए, प्रदीप्त, तेजस्वी, महान् यशस्वी, आयुष्य बढ़ाने वाले अग्नि एवं इन्द्रदेव के लिए यजन किया। प्रयाजदेव एवं इन्द्रदेव (हवि का) पान करें। (उनकी कृपा प्राप्ति के लिए) याजकगण हव्य की आहुतियाँ प्रदान करें ॥२४ ॥

१५५४. होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् । उष्णिहं छन्दऽ इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२५ ॥

दिव्यहोता ने, उष्णिक् छन्द, इन्द्रियशक्ति, दित्यवाट् गौ (यज्ञीय प्रक्रिया संचालित करने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, अदिति ने जिसे गर्भ में धारण किया, उन आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया । प्रयाज एवं इन्द्रादि देव (हवि का) पान करें । याजकगण आहुतियाँ प्रदान करें ॥२५ ॥

१५५५. होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् । अनुष्टुभं छन्दऽ इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२६ ॥

दिव्य होता ने अनुष्टुप् छन्द, इन्द्रियशक्ति, पंचावि गौ (पंच भूतों में संव्याप्त किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, स्तुतियोग्य, स्तुतियों से प्रशंसित, आनन्द प्रदान करने में सोम के समान समर्थ, आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया । प्रयाजदेव इन्द्रादि सहित (हवि का) पान करें । याजक आहुति प्रदान करें ॥२६ ॥

१५५६. होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेमृतेन्द्रं वयोधसम् । बृहतीं छन्दऽ इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२७ ॥

दिव्य होता ने, बृहती छन्द, इन्द्रिय शक्ति, तीन बछड़ों वाली गाय (जलचर, भूचर, नभचरों को जीवन देने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, पोषण देने वाले, मृत्यु से परे, प्रिय, अमर, पवित्र आसन पर स्थापित होने वाले, आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया । प्रयाजदेव इन्द्रादि सहित हवि का पान करें । याजकगण आहुतियाँ दें ॥२७ ॥

१५५७. होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऽ ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्दऽ इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२८ ॥

दिव्य होता ने पंक्ति छन्द, इन्द्रियशक्ति, तुर्यवाट् गौ (स्वेदज, अंडज, उद्भिज एवं जरायुज चारों को पोषण देने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, जिसमें सुविधापूर्वक जाने के स्थान हैं, ऐसे यज्ञ का विस्तार करने वाली, स्वर्णिम द्वार के समान देवी (यज्ञाग्नि) के माध्यम से आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का यजन किया । प्रयाज एवं इन्द्रादि देव हवि का सेवन करें । याजकगण भी आहुतियाँ दें ॥२८ ॥

१५५८. होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्द ऽ इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥२९ ॥

दिव्यहोता ने त्रिष्टुप् छन्द, इन्द्रियशक्ति, पष्ठवान् गौ (प्रकृति के पोषण का भार वहन करने में समर्थ किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, सुन्दररूप एवं शिल्प वाली, महिमाशालिनी और दर्शनीय रात्रि एवं उषा के माध्यम से आयुष्य बढ़ाने वाले, सर्वव्यापी इन्द्रदेव के लिए यजन किया । वे दोनों (उषा-रात्रि) हवि का पान करें । याजकगण भी यजन करें ॥२९ ॥

१५५९. होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् । जगतीं छन्दऽ इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥३० ॥

दिव्य होता ने जगती छन्द, इन्द्रियशक्ति, शकट खींचने वाले वृषभ (पोषण चक्र को गतिशील बनाने में समर्थ किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुऐ, प्रखर ज्ञानयुक्त, देवताओं में श्रेष्ठ, यश सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का दोनों सहयोगी होताओं सहित यजन किया । प्रयाज एवं इन्द्रदेव हवि का पान करें । याजकगण भी हवन करें ॥३० ॥

१५६०. होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम्। विराजं छन्दऽ इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥

दिव्य होता ने विराट् छन्द, इन्द्रियशक्ति, दूध देने वाली गौ (पोषक किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, सौन्दर्ययुक्त, स्वर्णकान्ति युक्त, बहुत महिमावाली, इडा, सरस्वती एवं भारती देवियों सहित, आयुष्य बढ़ाने वाले, पालनकर्त्ता इन्द्रदेव के निमित्त यजन किया। इन्द्रादिदेव हवि का पान करें। याजकगण भी आहुतियाँ दें ॥३१॥

१५६१. होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धन ꣳ रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्दऽ इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

दिव्यहोता ने द्विपदा छन्द, इन्द्रियशक्ति, सिंचन करने वाली गौ (प्राणवर्धक किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, उत्पादन शक्ति से सम्पन्न, विभिन्न प्राणियों को पोषण देने वाले, पुष्टि को धारण करने वाले त्वष्टादेव एवं आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का यजन किया। त्वष्टा एवं इन्द्रदेव हवि का पान करें। याजक आहुति प्रदसन करें ॥

१५६२. होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्दऽ इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३॥

दिव्यहोता ने ककुप् छन्द, इन्द्रिय शक्ति, वन्ध्या एवं गर्भघातिनी गौ (हानिकारक विकिरण से युक्त विकारों को गर्भ में ही नष्ट कर देने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, हवियों को संस्कारित करने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, सुनहले पत्तों वाली, यज्ञीय सामर्थ्य से युक्त, रज्जुयुक्त, मनोहर, सेवन योग्य वनस्पतियों एवं आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया। वनस्पति एवं इन्द्रदेवता हवि का पान करें। याजकगण हवन करें ॥३३॥

१५६३. होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिच्छन्दसं छन्दऽ इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४॥

दिव्यहोता ने, अति छन्दस् नामक छन्द, इन्द्रियशक्ति, महान् बलिष्ठ गौ (अद्भुत सामर्थ्ययुक्त किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, प्रत्येक यज्ञ में वरण योग्य, ओषधि गुणयुक्त, क्रान्तदर्शी, स्वाहाकारयुक्त अग्नि एवं आयुष्यवर्धक, रक्षा करने वाले इन्द्र के लिए यजन किया। प्रयाजदेव एवं इन्द्रादि देवगण हवि का पान करें। याजकगण आहुतियाँ प्रदान करें ॥३४॥

१५६४. देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत्। गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥३५॥

बर्हिदेव ने गायत्री छन्द द्वारा नेत्रशक्ति, बल, आयुष्य आदि इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए आयुष्य बढ़ाने वाले (इन्द्रदेव) को (यज्ञ हवि द्वारा) वृद्धि प्रदान की। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिरता प्रदान करने के लिए बर्हि देव हवि का पान करें। हे होता ! आप भी यजन करें ॥३५॥

१५६५. देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्धयन्। उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥३६॥

'उष्णिक्' छन्द के द्वारा द्वार-देवियों ने प्राण, बल और आयु को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए, जीवन दाता श्रेष्ठ (इन्द्र) को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर बनाने के लिए द्वार देवियाँ हवि का पान करें। हे होता ! आप भी यजन करें ॥३६॥

१५६६. देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३७॥

अनुष्टुप् छन्द के द्वारा उषा और रात्रि दोनों देवियों ने बल, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए जीवनदाता इन्द्रदेव को हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए उषा एवं रात्रिदेवी हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥३७॥

१५६७. देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३८॥

बृहती छन्द के द्वारा कान्तिमयी, परस्पर प्रेम करने वाली, ऐश्वर्य को धारण करने वाली, दोनों अनुयाज देवियों ने श्रवणशक्ति, इन्द्रिय और आयु को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए, दिव्य जीवनदाता इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिरता प्रदान करने के लिए दोनों अनुयाज देवियाँ हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥३८॥

१५६८. देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३९॥

कामनाओं का दोहन और उसको परिपूर्ण करने वाली, दीप्तिमयी, अन्न-जल प्रदान करने वाली दोनों देवियों ने पंक्ति छन्द के माध्यम से शुक्र (वीर्य), इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके जीवन दाता इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं स्थिर बनाने के लिए दोनों देवियाँ (ऊर्जा एवं आहुति) हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥३९॥

१५६९. देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम्। त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥४०॥

त्रिष्टुप् छन्द के द्वारा दोनों दिव्य होताओं ने तेज, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए, जीवनदाता, दिव्य इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर बनाने के लिए दोनों दिव्य होता हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥४०॥

१५७०. देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन्। जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४१॥

जगती छन्द के द्वारा तीनों देवियों (इडा, सरस्वती और भारती) ने बल, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके, आयु प्रदाता, पोषक इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए तीनों देवियाँ हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥४१॥

१५७१. देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत्। विराजा छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४२॥

विराट् छन्द के द्वारा देवत्व सम्पन्न, बहुप्रशंसित यज्ञदेव ने रूप, बल और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके, आयुष्य प्रदाता दिव्य देवेन्द्र को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए यज्ञदेव हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥४२॥

१५७२. देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत्। द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४३॥

द्विपदा छन्द के द्वारा दिव्य वनस्पतिदेव ने सौभाग्य, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके, दिव्य जीवन प्रदाता इन्द्रदेव को यज्ञ-हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए वनस्पतिदेव हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥४३॥

१५७३. देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्धयत्। ककुभा छन्दसेन्द्रियं यशऽ इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

ककुप् छन्द के द्वारा जलोत्पन्न भेषज के मध्य में प्रकाशमान बर्हिदेव ने यश, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके दिव्य जीवनदाता इन्द्रदेव को यज्ञ-हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए बर्हिदेव हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥४४॥

१५७४. देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत्। अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४५॥

अतिछन्दस् छन्द के द्वारा श्रेष्ठ कर्म करने वाले दिव्य अग्निदेव ने क्षात्रशक्ति, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके दिव्य जीवन के दाता इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया। यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए अग्निदेव हवि का पान करें। हे होता! आप भी यजन करें ॥४५॥

१५७५. अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम्। सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन। त्वामद्य ऋषे ॥४६॥

पकने योग्य चरु को पकाकर, आयुर्वर्धक, रोगनाशक दुग्ध के निमित्त बकरी को (यूप में) बाँधकर, इस यजमान ने इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञीय प्रक्रिया के रूप में अग्नि को, वनस्पतिदेव ने परिपाक हवि-पुरोडाश तथा बकरी के दुग्ध को ग्रहण कर उसके द्वारा इन्द्रदेव को समृद्ध किया। हे ऋषे! आप आज ऐसा यज्ञ करें ॥४६॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— प्रजापति, अश्विनीकुमार, सरस्वती १-२२,२४-४५। स्वस्त्य आत्रेय २३,४६।

देवता— इध्म १। तनूनपात् २,२५। इड ३,२६। बर्हि ४,१२, २१, २७, ३५, ४४। द्वार ५, १३, २८, ३६। उषासानक्ता ६,१४,२९,३७। दिव्य होतागण ७,३०,४०। तीन देवियाँ ८,१८,३१,४१। त्वष्टा ९, ३२। वनस्पति १०, ३३, ४३। स्वाहाकृति ११,३४। द्यावा-पृथिवी अथवा अहोरात्र १५,३८। इन्द्र [वैदिक यन्त्रालय, अजमेर की संहिता के अनुसार] १६, ३९। पार्थिवाग्नि १७। यज्ञ १९। यूप २०। स्विष्टकृत् अग्नि २२। लिंगोक्त २३, ४६। समित् २४। नराशंस ४२। स्विष्टकृत् ४५।

छन्द— निचृत् त्रिष्टुप् १,४,२२। निचृत् अतिजगती २, ५,९,१२,४२, ४३। स्वराट् पंक्ति ३, १४। त्रिष्टुप् ६,२१। जगती ७। निचृत् जगती ८। स्वराट् अतिजगती १०, २७, ४५। निचृत् शक्वरी ११, २६, ३९। भुरिक् शक्वरी १३, ३०,३१,३२। भुरिक् अतिजगती १५, २५, ३७, ३८, ४४। भुरिक् आकृति १६। भुरिक् जगती १७, ४१। अतिजगती १८, ४०। कृति १९, २३। निचृत् अतिशक्वरी २०,२९। स्वराट् जगती २४। स्वराट् शक्वरी २८। निचृत् अत्यष्टि ३३। अतिशक्वरी ३४। भुरिक् त्रिष्टुप् ३५, ३६। आकृति ४६।

॥ इति अष्टाविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

१५७६. समिद्धोअञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः। वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥१ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्ने ! आप विधिवत् प्रज्वलित होकर, मेधावीजन के हृदयगत भाव को व्यक्त करते हुए पौष्टिक तथा मधुर घृत का सेवन करें । यज्ञ हवि को देवगणों के निमित्त ले जाते हुए, उनके प्रिय सहचरों को प्रदान करें ॥१ ॥

१५७७. घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान्। अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳪ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥२ ॥

यह वाजी (शक्तिशाली-शक्तिवर्द्धक-वायुभूत हव्य) यज्ञीय प्रक्रिया को समझता हुआ देवगणों के जाने योग्य मार्ग का घृत द्वारा अभिषिचन करता हुआ, देवगणों को प्राप्त हो । हे अश्व (ऊर्जारूप सूक्ष्मीकृत हव्य) ! सभी दिशाओं में रहने वाले प्राणी आपको जाते हुए अनुभव करें । आप इस यजमान को स्वधा (स्फूर्तिधारण की क्षमता या तुष्टि) प्रदान करें ॥२ ॥

१५७८. ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते। अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥३ ॥

हे वाजिन् (सूक्ष्मीकृत बलशाली हव्य) ! आप प्रार्थनीय तथा वन्दनीय होकर, शीघ्र ही शुद्ध हों । वसुदेवों से प्रेम करने वाले, आत्मज्ञानी अग्निदेव, प्रसन्न होकर आपको देवगणों के निकट ले जाएँ ॥३ ॥

१५७९. स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्। देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥४ ॥

दैवी सम्पदाओं से युक्त, सर्वसुलभ और सुखदायी अदितिदेवी पृथ्वी के विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए कुश-आसन पर बैठकर श्रेष्ठ जनों को बल प्रदान करें ॥४ ॥

१५८०. एता ऽ उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा ऽ उदातैः। ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५ ॥

(हे यजमानो !) यह दिव्यद्वार (सूक्ष्म जगत् से सम्पर्क बनाने वाले) श्रेष्ठ धनयुक्त, सुन्दर, लम्बे आकार वाले, पंख के समान फाटक वाले, आवागमन में उपयोगी, खोलने-बन्द करने पर श्रेष्ठ ध्वनि करने वाले, शोभावाले, सरलता से ले जाए जाने योग्य और दूसरी विशेषताओं से सम्पन्न कपाटों से सुशोभित हों ॥५ ॥

१५८१. अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने। उषासा वाᳪ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६ ॥

द्युलोक और पृथ्वी के बीच में विचरने वाली, सम्पूर्ण यज्ञीय व्यवहारों के विषयवस्तु को प्रकाशित करने वाली, श्रेष्ठ ज्योति सम्पन्न, कुशल शिल्पकारों द्वारा विनिर्मित, हे उषा और नक्ता देवियो ! हम ईश्वर के स्थान रूप इस यज्ञ में आपको स्थापित करते हैं ॥६ ॥

१५८२. प्रथमा वाᳬ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा । अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७ ॥

समान रथ वाले, सुन्दर स्वर्णिम वर्ण वाले, समस्त लोकों को देखने (पालने) वाले आप दोनों (अग्नि तथा वायु) सभी लोगों को निजकर्म में संलग्न करते हैं । सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले आप दोनों दिव्य होताओं को हमने प्रसन्न किया ॥७ ॥

१५८३. आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञᳬ सरस्वती सह रुद्रैर्नऽ आवीत् । इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥८ ॥

देवी भारती आदित्यों के साथ हमारे यज्ञ की रक्षा करें, वसुओं और रुद्रों के साथ देवी इडा तथा सरस्वती हमारे यज्ञ की रक्षा करें, हम उनका आवाहन करते हैं । हे देवियो ! आप हमारे यज्ञ को देवों में स्थापित करें ॥८ ॥

१५८४. त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः । त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥९ ॥

त्वष्टादेव ने दिव्यगुणों की कामना करने वाली वीर सन्तानों को उत्पन्न किया । उन्होंने ही शीघ्रगामी और सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त होने वाला अश्व (सूर्य) उत्पन्न किया । हे याजक ! आप बहुविध विराट् जगत् के निर्माता, उस परमात्मा का इस स्थान में (यज्ञशाला में) यजन करें ॥९ ॥

१५८५. अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२ ऋतुशः पाथ ऽ एतु । वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥१० ॥

घृत द्वारा भली प्रकार सिंचित हुआ अश्व (सूक्ष्मीकृत हव्य) अन्नरूप हवि से युक्त, नियमपूर्वक देवों के पास पहुँचे । देवलोक को जानने वाले वनस्पतिदेव अग्नि के माध्यम से ग्रहणीय हवि अन्य देवों को प्राप्त कराएँ ॥१० ॥

१५८६. प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११ ॥

हे अग्ने ! आप अरणि-मन्थन से तत्काल प्रकट होकर प्रजापति की तपश्चर्या से वृद्धि को प्राप्त करते हुए, यज्ञ को धारण करते हैं । स्वाहाकार पूर्वक समर्पित हवि द्वारा अग्रगामी होकर आप पधारें, जिससे साध्य देवता हमारी हवि को ग्रहण करें ॥११ ॥

१५८७. यदक्रन्दः प्रथमं जायमान ऽ उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१२ ॥

हे अर्वन् ! (चंचल गतिवाले !) बाज के पंखों तथा हिरन के पैरों की तरह गतिशील आप जब प्रथम, समुद्र से उत्पन्न हुए, तब उत्पत्ति स्थान से प्रकट होकर आप शब्द करने लगे, तब आपकी महिमा स्तुत्य हुई ॥१२ ॥

[यहाँ चंचल गतिवाले प्राण-पर्जन्ययुक्त मेघों के लिए अर्वन् सम्बोधन अधिक सार्थक सिद्ध होता है ।]

१५८८. यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र ऽ एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥१३ ॥

वसुओं ने सूर्यमण्डल से अश्व (तीव्रगति से संचार करने वाली ऊर्जा रश्मियों) को निकाला । तीनों लोकों में विचरने वाले वायु ने यम के द्वारा प्रदान किये गये अश्व को रथ में (कर्म में) नियोजित किया । सर्वप्रथम इस अश्व पर इन्द्रदेव चढ़े और गन्धर्व ने इसकी लगाम सँभाली (ऐसे अश्व की हम स्तुति करते हैं !) ॥१३ ॥

१५८९. आस यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन । असि सोमेन समया विपृक्तऽ आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥१४ ॥

हे अर्वन् ! अपने गुप्त व्रतों (जो प्रकट नहीं है, ऐसी विशेषताओं) के कारण आप यम हैं, आदित्य हैं, त्रित (तीनों लोकों अथवा तीनों आयामों) में संव्याप्त हैं । सोम (पोषक प्रवाह) के साथ आप एकरूप हैं । द्युलोक में स्थित आपके तीन बन्धन (ऋक्, यजु, सामरूप) कहे गये हैं ॥१४ ॥

[विज्ञान का सर्वमान्य नियम है कि किसी पिण्ड को स्थिर करने के लिए तीन दिशाओं से संतुलित शक्ति चाहिए । इस सिद्धांत को 'इक्वलीब्रियम ऑफ थ्री फोर्सेज (तीन शक्तियों का संतुलन) एवं ट्रायेंगिल आफ फोर्सेज (शक्ति त्रिकोण), कहते हैं । संभवतः ऋषि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अन्तरिक्ष में भी वही सिद्धांत क्रियान्वित होता देखते हैं ।]

१५९०. त्रीणि त ऽ आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे । उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त ऽ आहुः परमं जनित्रम् ॥१५ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले) ! आपका श्रेष्ठ उत्पादक सूर्य कहा गया है । दिव्यलोक में, जल तथा अन्तरिक्ष में आपके तीन-तीन बन्धन कहे गये हैं । आप वरुणरूप में हमारी प्रशंसा करते हैं ॥१५ ॥

१५९१. इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाᳬ सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशनाऽ अपश्यमृतस्य याऽ अभिरक्षन्ति गोपाः ॥१६ ॥

हे वाजिन् (बलशाली मेघ) ! आपके मार्जन (सिंचन) करने वाले साधनों को हम देखते हैं । आपके खुरों (धाराओं के आघात) से खुदे हुए यह स्थान देखते हैं । यहाँ आपके कल्याणकारी रज्जु (नियंत्रक सूत्र) हैं, जो रक्षा करने वाले हैं, जो कि इस ऋत (सनातन सत्य-यज्ञ) की रक्षा करते हैं ॥१६ ॥

१५९२. आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् । शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥१७ ॥

हे अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुभूत हव्य) ! नीचे के स्थान से आकाश मार्ग द्वारा सूर्य की तरफ जाते हुए आपकी आत्मा को हम विचारपूर्वक जानते हैं । सरलतापूर्वक जाने योग्य, धूलिरहित मार्गों से जाते हुए आपके नीचे की ओर आने वाले सिरों (श्रेष्ठ भागों) को भी हम देखते हैं ॥१७ ॥

१५९३. अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष ऽ आ पदे गोः । यदा ते मर्त्तो अनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठ ऽ ओषधीरजीगः ॥१८ ॥

हे अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुभूत हव्य) ! आपके यज्ञ की कामना वाले श्रेष्ठ स्वरूप को हम सूर्य मंडल में विद्यमान देखते हैं । यजमान ने जिस समय उत्तम हवियों को आपके निमित्त समर्पित किया, उसके बाद ही आपने हव्यरूप ओषधियों को ग्रहण किया ॥१८ ॥

१५९४. अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोनु भगः कनीनाम् । अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥१९ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृतिवाले यज्ञाग्नि) ! रथ (मनोरथ) आपके अनुगामी हैं । आपके अनुगामी मनुष्य, कन्याओं का सौभाग्य तथा गौएँ हैं । मनुष्य समुदाय ने आपकी मित्रता को प्राप्त किया तथा देवगणों ने आपके शौर्य का वर्णन किया है ॥१९ ॥

१५९५. हिरण्यशृङ्गोयो अस्य पादा मनोजवाऽ अवरऽ इन्द्रऽ आसीत् । देवाऽ इदस्य हविरद्यमायन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥२० ॥

सबसे पहले स्वर्ण मुकुट धारण करके अश्व पर आरूढ़ होने वाले इन्द्रदेव थे । इस अश्व के पैर लोहे के समान दृढ़ और मन के सदृश वेगवान् हैं । देवताओं ने ही इसके हविरूप भोजन को ग्रहण किया ॥२० ॥

१५९६. ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳ शूरणासो दिव्यासो अत्याः । हꣳसाऽ इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥२१ ॥

जब पुष्ट जंघाओं और वक्ष वाले, मध्य भाग में पतले, बलशाली, सूर्य के रथ को खींचने वाले और लगातार चलने वाले अश्व (किरणें) पंक्तिबद्ध होकर हंसों के समान चलते हैं, तब वे स्वर्गमार्ग में दिव्यता को प्राप्त होते हैं ।

१५९७. तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातऽ इव ध्रजीमान् । तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥२२ ॥

हे अर्वन् (चञ्चल प्रकृति वाले अग्निदेव) ! आपका शरीर ऊर्ध्वगमन करने वाला और चित्त वायु के समान वेगवाला है । आपकी विशेष प्रकार से स्थित दीप्तियाँ वनों में दावानल के रूप में व्याप्त हैं ॥२२ ॥

१५९८. उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः । अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥२३ ॥

यशस्वी मन के समान तीव्र गति से चलायमान तेजस्वी अश्व (सूक्ष्मीकृत हव्य) ऊपर की ओर देव मार्ग को जाता है । अज (अर्थात् कृष्ण वर्ण धूम्र) आगे चलता है । (सूक्ष्मीकृत हव्य का) नाभि (नाभिक-न्यूक्लियस-मुख्य भाग) उसका अनुगमन करता है । पीछे-पीछे पाठ करते हुए स्तोता चलते हैं (मंत्रों का पाठ होता है ।) ॥२३ ॥

१५९९. उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२ अच्छा पितरं मातरं च । अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या ऽ अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४ ॥

ये शक्तिशाली अर्वन् (चञ्चल प्रकृति वाले सूक्ष्मीकृत हव्य) सर्वश्रेष्ठ उच्च स्थान को प्राप्त करके पालक और सम्माननीय माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) से मिलते हैं । हे याजक ! आप भी सद्‌गुणों से सुशोभित होते हुए देवत्व को प्राप्त करें । देवताओं से अपार वैभव उपलब्ध करें ॥२४ ॥

१६००. समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥२५ ॥

प्राणिमात्र के हितैषी हे मित्र अग्निदेव ! आप प्रज्वलित और महान् गुण सम्पन्न होकर कुशल याजकों द्वारा निर्धारित यज्ञ मण्डप में देवों को आहूत करें तथा यजन करें । आप श्रेष्ठ चेतना युक्त, विद्वान् तथा देवों के दूत हैं ॥

१६०१. तनूनपात्पथ ऽ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२६ ॥

हे शरीर के रक्षक और श्रेष्ठ वाणी वाले अग्ने ! आप सत्यरूप यज्ञ के मार्गों को वाङ्‌माधुर्य से सींचते हुए, हवियों को ग्रहण करें । बुद्धियों द्वारा मननपूर्वक यज्ञ को समृद्ध करें । हमारे यज्ञ को देवों तक पहुँचने योग्य बनाएँ ।

१६०२. नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः । ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवाऽ उभयानि हव्या ॥२७ ॥

हम यज्ञों से पूजित, मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, अग्निदेव की महिमा का गान करते हैं । शुभ कर्मयुक्त पवित्र बुद्धि सम्पन्न देवता, दोनों प्रकार की हवियों (स्थूल एवं सूक्ष्म) से यजन करते हैं ॥२७ ॥

१६०३. आजुह्वान ऽ ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥२८ ॥

देवताओं को आहूत करने वाले हे अग्ने ! आप प्रार्थना करने योग्य, वन्दनीय तथा वसुओं के समान प्रेम करने वाले हैं । अतः आप देवताओं के होता के रूप में यहाँ पधार कर उनके लिए यज्ञ करें ॥२८ ॥

१६०४. प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् । व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥२९ ॥

कुशकण्डिका के रूप में यह बिछी हुई कुशाएँ बहुत ही उत्तम हैं । यह देवताओं तथा अदिति के निमित्त सुखपूर्वक आसीन होने के योग्य हैं । यह यज्ञवेदी को ढकने के लिए फैलायी जाती हैं ॥२९ ॥

१६०५. व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः । देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥३० ॥

जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति के निमित्त अनेक प्रकार से गति (कार्य) करने वाली तथा सुशोभित होकर विश्रान्ति प्रदान करती हैं, वैसे ही देवत्व सम्पन्न महान् द्वार-देवियाँ रिक्त स्थान वाली, सबको आने-जाने के लिए मार्ग देने वाली तथा देवगणों को सुगमता से प्राप्त होने वाली हों ॥३० ॥

१६०६. आ सुष्वयन्ती यजते उपा के उषासानक्ता सदतां नि योनौ । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥३१ ॥

श्रेष्ठ रीति से अपना कार्य सम्पन्न करने वाली, एक दूसरे के समीप, दिव्ययज्ञ स्थान में रहने वाली, श्रेष्ठ आभूषणों से सम्पन्न, शुक्ल तथा कपिश (भूरा) वर्ण से सुशोभित उषा और नक्ता दोनों देवियाँ इस यज्ञ स्थान में भली प्रकार से प्रतिष्ठित हों ॥३१ ॥

१६०७. दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै । प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२ ॥

विराट् प्रकृति यज्ञ के दोनों दिव्यहोता श्रेष्ठ वाणी बोलने वाले हैं । वे पूर्व दिशा से निकलने वाले, आवाहन करने योग्य पुरातन सूर्यरूप ज्योति से यज्ञ करते हैं । मनुष्यों को यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं ॥३२ ॥

१६०८. आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती । तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳसरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥३३ ॥

यहाँ इस यज्ञ में मनुष्यों को ज्ञान और कर्म का समान बोध कराने वाली भारती, इडा तथा सरस्वती तीनों देवियाँ शीघ्रता से पधारकर कुश से निर्मित्त इस कोमल आसन पर आसीन हों ॥३३ ॥

१६०९. य ऽ इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा । तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥३४ ॥

हे यज्ञ करने वाले मेधावी विद्वान् होता ! आज आप इस यज्ञ में त्वष्टादेव का पूजन करें; जो द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्य समस्त लोकों का निर्माण करके उसका स्वरूप प्रकट करते है ॥३४ ॥

१६१०. उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथऽ ऋतुथा हवीꣳषि । वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥३५ ॥

हे याजक ! आप यज्ञ करते समय देवताओं को समर्पित किये जाने वाले हव्य को मधुर रस तथा घृत से सिंचित करते हुए आहुतियाँ प्रदान करें । वनस्पति, शमिता* तथा अग्निदेव उन दिव्य हवियों को ग्रहण करें ॥३५ ॥

[* याग के विधानों में संज्ञपन (शांति) कार्य को सम्पादित करने वाले व्यक्ति को शमिता कहते हैं ।]

१६११. सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः । अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥३६ ॥

उत्पन्न होते ही देवताओं का नेतृत्व करने वाले हे अग्निदेव ! आप देवताओं का आवाहन करने वाले तथा पूर्व दिशा में दिव्य ज्योतिरूप से स्थित हैं । आपके मुख में स्वाहाकार रूप से समर्पित आहुति देवगण ग्रहण करें ॥

१६१२. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥३७ ॥

अज्ञानी पुरुषों को सद्ज्ञान और रूपहीनों को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! आप उषा के साथ समानरूप से उत्पन्न होते हैं ॥३७ ॥

१६१३. जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे । अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥३८ ॥

कवच को धारण करके जब शूरवीर योद्धा संग्राम स्थल के लिए जाते हैं, तब सेना का स्वरूप बादल के सदृश होता है । हे वीरपुरुष ! आप बिना आहत हुए विजय को प्राप्त करें, उस कवच की महान् शक्ति आपकी रक्षा करे ॥३८ ॥

१६१४. धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३९ ॥

हम धनुष की शक्ति से गौओं को जीतें, मार्ग और संग्राम में विजय प्राप्त करें । हमारा धनुष शत्रु को पराजित करता है, ऐसे धनुष की महिमा से सभी दिशाओं को जीतें ॥३९ ॥

१६१५. वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना । योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥४० ॥

संग्राम में विजय दिलाने वाली प्रत्यंचा धनुष पर चढ़कर अव्यक्त ध्वनि करती हुई, प्रिय बाणरूप मित्र से मिलती है । वह योद्धा के कानों तक खिंचती हुई ऐसे प्रतीत होती है, मानो कुछ कहना चाहती है ॥४० ॥

१६१६. ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे । अप शत्रून् विध्यताꣳ संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४१ ॥

समान विचार वाली स्त्री की तरह आकर शत्रुओं को टंकार से संकेत करने वाली यह धनुष की डोरी अपने बीच में बाण को उसी प्रकार धारण करती है, जैसे माँ अपने पुत्र को गोद में ग्रहण करती है । यह धनुष की डोरी शत्रुओं का संहार करे ॥४१ ॥

१६१७. बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य । इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥४२ ॥

यह तरकस अनेकों बाणों का पिता (रक्षक) है । अनेकों बाण पुत्र की तरह इसके आश्रय में रहते हैं । युद्ध भूमि में जाकर ये पुत्रवत् बाण चीत्कार करते हैं । पीठ पर बँधा हुआ यह तरकस आज्ञा मिलने पर सेना के समस्त योद्धाओं पर विजय प्राप्त करता है ॥४२ ॥

१६१८. रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्र-यत्र कामयते सुषारथिः । अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥४३ ॥

रथ पर आरूढ़ हुआ सारथी जहाँ कहीं भी जाना चाहता है, आगे जुड़े अश्वों को इच्छानुसार ले जाता है । वह बागडोर भी प्रशंसनीय है, जो पीछे स्थित होकर अश्वों के मन को अपने काबू में रखती है ॥४३ ॥

१६१९. तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः । अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ१ रनपव्ययन्तः ॥४४ ॥

अश्वों की लगाम जिनके हाथ में है, ऐसे सारथी उच्च जयघोष करते हैं तथा रथों के साथ बल लगाकर चलने वाले घोड़े अपने खुरों से शत्रुओं को घायल करते हैं। वे अश्व स्वयं सुरक्षित रहकर शत्रुओं का विनाश करते हैं ॥४४ ॥

१६२०. रथवाहणᳬ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म । तत्रा रथमुप शग्मᳬ सदेम विश्वाहा वयᳬ सुमनस्यमानाः ॥४५ ॥

जहाँ इस योद्धा के कवच तथा अस्त्र-शस्त्र रखे रहते हैं, उस वाहन का नाम रथ-वाहन है । अनुकूल विचारों से युक्त हम इस सुखकारी रथ को स्थापित करते हैं ॥४५ ॥

१६२१. स्वादुषᳬसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः । चित्रसेनाऽ इषुबलाऽ अमृध्राः सतोवीराऽ उरवो व्रातसाहाः ॥४६ ॥

आराम से (देर तक) आसीन रहने वाले, रक्षा करने वाले, आयु को धारण करने वाले, सहनशील, बल-सम्पन्न, गम्भीर, श्रेष्ठ सेना-युक्त, अस्त्र-शस्त्रों सहित, विशालकाय और शत्रु-सैनिकों का सामना करने वाले हमारे श्रेष्ठ रथ रक्षक हों ॥४६ ॥

१६२२. ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा । पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशᳬस ईशत ॥४७ ॥

ब्रह्मनिष्ठ जीवन जीने वाले ब्राह्मण, सोमरस का पान करने वाले पितर और कल्याण करने वाले देवगण तथा अपराधों को रोकने में सक्षम द्यावा और पृथिवी हमारी रक्षा करें । ये पूषादेव अपराधों से हमारी रक्षा करें और कोई भी पापी व्यक्ति हमारे ऊपर शासन न करे ॥४७ ॥

१६२३. सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता । यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यᳬसन् ॥४८ ॥

जो बाण पक्षी के पंख को धारण करता है, जिसका फलक शत्रुओं को खोजने वाला है । तन्तु से बँधा हुआ वह रिपुओं पर गिरता है । युद्धस्थल पर जहाँ वीर योद्धा इधर-उधर जाते हैं, वहाँ पर यह बाण हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥४८ ॥

१६२४. ऋजीते परि वृङ्ग्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो अधि ब्रवीतु नोदितिः शर्म यच्छतु ॥४९ ॥

हे ऋजुगामी बाण ! आप हमारे ऊपर मत गिरो । हमारा शरीर पत्थर के सदृश मजबूत हो । सोमदेव अनुकूल होते हुए हमारी स्तुति का अनुमोदन करें तथा देवमाता अदिति हमारे लिए कल्याणकारी प्रेरणाओं को प्रेषित कर, हमें प्रसन्नता प्रदान करें ॥४९ ॥

१६२५. आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ उप जिघ्नते। अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥५० ॥

हे अश्वों के प्रेरक कशा (चाबुक) ! आप युद्ध में शौर्य सम्पन्न मांसल वाले अश्वों को प्रेरित करें । आपके द्वारा ही अश्वरोही वीर इन अश्वों के उभरे हुए अंग को आघात करते हैं तथा जंघाओं को चोट पहुँचाते हैं ॥५० ॥

१६२६. अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाᳬंसं परि पातु विश्वतः ॥५१ ॥

प्रत्यंचा के प्रहार को हटाता हुआ, हाथ की रक्षा करने वाले चर्म खेटक बाहु से वैसे ही लिपटता है, जैसे बाहु से साँप । इसी प्रकार सम्पूर्ण युद्ध कौशल को जानने वाला वीरपुरुष अपने नगर वासियों को भली प्रकार से सुरक्षित रखता है ॥५१ ॥

१६२७. वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाऽ अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः । गोभिः सन्नद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२ ॥

काष्ठ निर्मित हे रथ ! आप हमारे मित्र होकर, मजबूत अंग तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से सम्पन्न होकर संकटों से हमें पार लगाएँ । आप श्रेष्ठ चर्म द्वारा बँधे हुए हैं । इसलिए वीरतापूर्ण कार्य करें । हे रथ ! आपका सवार जीतने योग्य समस्त वैभव को जीतने में समर्थ हो ॥५२ ॥

१६२८. दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतᳬं सहः । अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रᳬं हविषा रथं यज ॥५३ ॥

हे अध्वर्युगण ! आप पृथ्वी और सूर्यलोक से ग्रहण किये गये तेज को, वनस्पतियों से प्राप्त बल को, जल से प्राप्त पराक्रम वाले रस को सब तरफ से नियोजित करें । सूर्य किरणों से आलोकित, वज्र के समान सुदृढ़ रथ को यजन कार्य में समर्पित करें ॥५३ ॥

१६२९. इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः । सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥५४ ॥

हे दिव्य रथ ! आप इन्द्रदेव के वज्र तथा मरुतों की सैन्यशक्ति के समान सुदृढ़ हैं । मित्रदेव के गर्भरूप आत्मा तथा वरुणदेव की नाभि के समान हैं । हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्न को प्राप्त कर तृप्त हों ॥५४ ॥

१६३०. उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् । स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥५५ ॥

हे दुन्दुभे ! आप अपनी ध्वनि से भू तथा दिव्यलोक गुंजायमान करें, जिससे जंगम तथा स्थावर जगत् के प्राणी आपको जानें । आप इन्द्रदेव तथा दूसरे देवगणों से प्रेम करने वाली हैं । अतः हमारे रिपुओं को हमसे दूर हटाएँ ॥५५ ॥

१६३१. आ क्रन्दय बलमोजो नऽ आधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः । अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनाऽ इतऽ इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥५६ ॥

हे दुन्दुभे ! आपकी आवाज को सुन करके शत्रु सैनिक रोने लगें । आप हमें तेज प्रदान करके, हमारे पापों को नष्ट करें । आप इन्द्रदेव की मुष्टि के समान सुदृढ़ होकर, हमें मजबूत करें तथा हमारी सेना के समीप स्थित दुष्ट शत्रुओं का पूर्णरूपेण विनाश करें ॥५६ ॥

१६३२. आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्धघोष करके आप दुष्टों की सेनाओं को भलीप्रकार दूर भगाएँ। हमारी सेना विजय उद्घोष करती हुई लौटे। हमारे द्रुतगामी अश्वों के साथ वीर रथारोही घूमते हैं। वे सब विजयश्री का वरण करें ॥५७ ॥

अगले दो मंत्रों में देवताओं से संबंधित पशुओं का वर्णन तथा तीसरे मन्त्र में उनसे संबंधित हवियों का वर्णन है-

१६३३. आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऽ ऐन्द्रोरुणो मारुतः कल्माषऽ ऐन्द्राग्नः सᳬहितोधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्णऽ एकशितिपात्पेत्वः ॥५८ ॥

कृष्ण ग्रीवा वाला पशु अग्निदेवता से, मेषी सरस्वती देवी से, पिंगल रंग का पशु सोमदेवता से, काले रंग का पशु पूषादेवता से, काली पीठ वाले पशु बृहस्पति से, विभित्रि वर्ण के पशु विश्वेदेवों से, अरुण रंगवाला इन्द्रदेव से, चितकबरे वर्णवाला पशु मरुत् से, मजबूत अंग वाला पशु इन्द्र और अग्निदेवता से, अधोस्थान में सफेद रंग वाले पशु सूर्य से, तथा एक पैर सफेद तथा शेष सभी काले अंग वाले वेगवान् पशु वरुणदेवता से सम्बन्धित हैं।

१६३४. अग्नयेनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष ऽ आग्नेयः कृष्णोजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥५९ ॥

लाल चिह्नों वाला वृषभ ज्वाला वाले अग्नि से, नीचे स्थान में सफेद रंगवाले दो पशु सवितादेवता से, नाभि स्थान में चाँदी की तरह शुक्ल रंग वाले दो पशु पूषा देवता से, पीले रंग के सींग रहित दो पशु विश्वेदेवादेवता से, चितकबरे रंग का पशु मरुद्‌देवों से, काले रंग का अज अग्निदेवता से, मेषी सरस्वती देवी से तथा वेगवान् पतनोन्मुख पशु वरुणदेवता से सम्बन्धित हैं ॥५९ ॥

१६३५. अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपालऽ इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविᳬशाभ्यां वैराजाभ्यांपयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र ऽ औष्णिहाय त्रयस्त्रिᳬशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोनुमत्याऽ अष्टाकपालः ॥६० ॥

गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम से स्तुत, अष्टाकपाल* में सुसंस्कृत पुरोडाश (हवि) अग्नि के लिए है। त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदश स्तोम, बृहत्साम से स्तुत, एकादश कपाल में सुसंस्कृत हवि इन्द्रदेव के लिए है। जगती छन्द, सप्तदश स्तोम, वैरूपसाम से स्तुत, द्वादश कपाल में सुसंस्कृत हवि विश्वेदेवों के लिए है। अनुष्टुप् छन्द, एकविंश स्तोम और वैराज साम से स्तुत, दुग्धनिर्मित चरु मित्रावरुण के लिए है। पंक्ति छन्द, त्रिणव स्तोम, शाक्वर साम से स्तुत, चरु बृहस्पतिदेव के लिए है। उष्णिक् छन्द, त्रयस्त्रिंश स्तोम, रैवत साम द्वारा स्तुत, द्वादश कपाल में सुसंस्कृत पुरोडाश हवि सवितादेवता के निमित्त है। प्रजापति के निमित्त चरु, विष्णुदेव की पत्नी और अदिति के निमित्त यज्ञ योग्य पदार्थ, वैश्वानर अग्निदेव के निमित्त-द्वादश कपाल में सुसंस्कृत पुरोडाश-हवि और अनुमति देवता के निमित्त अष्टाकपाल में सुसंस्कृत पुरोडाश समर्पित करना चाहिए ॥६० ॥

[*कपाल एक प्रकार का पात्र है, जिसमें हविष्य पुरोडाश को पकाया जाता है।]

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि—बृहदुक्थ वामदेव्य अथवा अश्व सामुद्रि १-११ । भार्गव जमदग्नि, दीर्घतमा १२-२४ । जमदग्नि २५-३६ । मधुच्छन्दा ३७ । पायु भारद्वाज ३८-६० ।

देवता— समित् १,२५ । तनूनपात् २, २६ । नराशंस ३, २७ । बर्हि ४,२९ । द्वार ५,३० । उषासानक्ता ६,३१ । दिव्य होतागण ७, ३२ । तीन देवियाँ ८,३३ । त्वष्टा ९,३४ । वनस्पति १०, ३५ । स्वाहाकृति ११,३६ । अश्व १२-२४ । इड २८ । अग्नि ३७ । सन्नाहम् ३८ । कार्मुक ३९ । गुण ४० । आर्त्नी ४१ । तूण ४२ । सारथि, रश्मियाँ ४३ । अश्व समूह ४४ । रथ ४५,५२-५४ । रथ-रक्षक ४६ । ब्राह्मण आदि लिंगोक्त ४७ । इषु ४८,४९ । कशा ५० । हस्तघ्न ५१ । दुन्दुभि ५५,५६ । दुन्दुभि, इन्द्र ५७ । पशु-समूह ५८,५९ । अग्नि आदि ६० ।

छन्द—त्रिष्टुप् १,५-९, ११, १२, १७, १८, २७, ३१, ३४, ३९, ४१, ४२, ४४-४६, ४८, ५१ । विराट् त्रिष्टुप् २, १४, १९, २२ । पंक्ति ३ । निचृत् त्रिष्टुप् ४, १०, १६, २०, २४-२६, ३०, ३५, ३६, ३८, ४०, ५४ । भुरिक् त्रिष्टुप् १३, ५५, ५६ । भुरिक् पंक्ति १५, २१, २३, २९, ३३, ५२, ५७ । स्वराट् बृहती २८ । आर्षी त्रिष्टुप् ३२ । गायत्री ३७ । जगती ४३ । विराट् जगती ४७, ५३ । विराट् अनुष्टुप् ४९, ५० । भुरिक् अत्यष्टि ५८ । भुरिक् अति शक्वरी ५९ । विराट् प्रकृति, प्रकृति ६० ।

॥ इति एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥

१६३६. देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥१ ॥

हे उत्पादक सवितादेव ! आप हम सबको शुभ कर्म करने तथा यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के संरक्षण की प्रेरणा प्रदान करें। आप अपने श्रेष्ठ ज्ञान से पवित्र करने वाले हैं। अत: हम सबके विचारों को भी पवित्र करें। आप दैवी गुणों से सम्पन्न वाणी के पोषक हैं, अत: हम सबकी वाणी को सुमधुर बनाएँ ॥१ ॥

१६३७. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२ ॥

हम उन सर्वप्रेरक सविता के तेज को धारण करते हैं, जो हमारी बुद्धि (कर्म) को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें ॥

१६३८. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न ऽ आ सुव ॥३ ॥

हे सर्व उत्पादक सवितादेव ! आप हमारी समस्त बुराइयों (पापकर्मों) को दूर करें तथा हमारे लिए जो कल्याणकारी हो, उसे प्रदान करें ॥३ ॥

१६३९. विभक्तारᳬं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥४ ॥

श्रेष्ठ आश्रयदाता, सर्वोत्कृष्ट सम्पदाओं को बाँटने वाले, सबको सत्कर्म में प्रेरित करने वाले, मनुष्यों के सच्चे उपदेशक उन सर्वप्रेरक सवितादेवता का हम आवाहन करते हैं ॥४ ॥

१६४०. ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीब माक्रयाया ऽ अयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥५ ॥

इस अध्याय में क्र० ५ से क्र० २२ तक के मंत्रों में "वसु विभाग" का वर्णन है। इसमें कुल १८४ मंत्र खण्ड हैं। सबके लिए क्रियापद, अन्त में बाइसवें मंत्र में "आलभते" के रूप में आया है। इस पद का प्रयोग २० अर्थों में होता है-जैसे प्राप्त करना, पूरा करना, सिद्ध करना, उपयोग करना, जोड़ना, स्वीकार करना, अर्पण करना, प्रसन्न करना, स्पर्श करना, निवारण करना, काटना आदि। विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से इस प्रकरण के अनेक प्रकार के अर्थ किये हैं। यहाँ यज्ञीय मर्यादा के अनुरूप सहज बोधगम्य अर्थ लिये गये हैं। यह प्रकरण अश्वमेधादि यज्ञीय प्रयोगों के अंतिम चरण से सम्बद्ध है। यज्ञ के प्रभाव से समाज में श्रेष्ठ यज्ञीय व्यवस्था क्रम लागू करने की दृष्टि से किये जाने वाले नियोजनों एवं निवारणों का उल्लेख इस प्रकरण में किया गया प्रतीत होता है—

ब्राह्मण का ब्रह्मकर्म (यज्ञ, विद्यादान आदि), क्षत्रिय का नीति की रक्षा, वैश्य का पोषण कर्म तथा शूद्र का सेवा कार्य सहज कर्म है। अन्धकार (स्थान के कार्यों) में चोर, नरक के लिए वीरघातक, पापकर्मों के लिए क्लीबत्व (नपुंसकत्व), आक्रय (क्रय-विक्रय) के लिए अयोगु (प्रबल पुरुषार्थी), काम (सेवन) के लिए व्यभिचारी तथा वक्तृता के लिए मागध (योग्य प्रमाण देने वाला) उपयुक्त है ॥५ ॥

१६४१. नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभᳬं हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ॥६ ॥

नृत (अंगविक्षेप) के लिए सूत को, गीत के लिए नट (हाव-भावपूर्ण अभिव्यक्ति में कुशल) को, धर्म के लिए-सभासदों को, नेतृत्व के लिए पर्याप्त सामर्थ्यवान् को, नम्रता के लिए मृदुभाषी को, विनोद के लिए स्वांग भरने वाले को नियुक्त करें । आनन्दप्राप्ति के लिए स्त्रियों के प्रति सख्य भाव को, प्रबल मद (से उन्मत्त) के लिए कुमारी (वीरांगना) पुत्र को, मेधा (बुद्धिमत्तायुक्त कार्य)के लिए शिल्पी को तथा धैर्य (युक्त कार्य) के लिए तक्षों (गढ़ाई करने वालों) को नियुक्त करें ॥६ ॥

१६४२. तपसे कौलालं मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्याया ऽ इषुकारꣳ हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयु मन्तकाय श्वनिनम् ॥

तापक्रिया के लिए कुम्भकार, कुशलता के लिए कारीगर, सौन्दर्य (की परख) के लिए जौहरी, शुभ संस्कारों के लिए बोने -छाँटने में कुशल व्यक्ति, लक्ष्यवेध के लिए बाण बनाने वाले, प्रक्षेपण अस्त्रों के लिए धनुषकार, (प्रक्षेपण) कर्म के लिए प्रत्यञ्चा (डोरी) बनाने वाले, दिष्ट (आज्ञा-आदेश) देने के लिए रस्सी पर चढ़ने-उतरने में कुशल, मृत्युदण्ड के लिए वधिक तथा यम के लिए कुत्तों को ले जाने वाले को नियुक्त करें ॥७ ॥

१६४३. नदीभ्यः पौञ्जिष्ठ मृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्यऽ उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योप्रतिपदमयेभ्यः कितव मीर्यताया ऽ अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥८ ॥

नदियों (को पार करने) के लिए मछुवारों को, रीछ आदि वनचरों के लिए निषादों (वनवासियों) को, व्याघ्र की तरह आक्रामक पुरुष (को नियन्त्रित करने) के लिए प्रचण्ड वीर को, अप्सराओं एवं गन्धर्वों के लिए संस्कार न हुए (व्यक्ति) को, शोधकार्य के लिए उन्मत्त (दत्तचित्त) को, सर्पों, देवों तथा मनुष्यों के लिए (संयुक्त रूप से) अतुलनीय ज्ञानी पुरुष को, पासों के (खेल के) द्यूत कुशल को तथा उन्नति प्रयासों के लिए छलकपट-मुक्त सज्जनों को, पिशाच (प्रकृति वालों) के लिए भेद नीति उत्पन्न कर देने वालों को, यातुधानों (मार्ग के लुटेरों) के लिए अवरोध उपस्थित कर देने वालों को नियुक्त करना चाहिए ॥८ ॥

१६४४. सन्धये जारं गेहायोपपति मार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदान मराध्या ऽ एदिधिषुः पतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥९ ॥

सुलह के लिए वयोवृद्ध, घर के लिए (प्रमुख के अतिरिक्त) उपप्रमुख, आर्तता के निवारण हेतु पर्याप्त सम्पन्न व्यक्ति, आपात स्थिति (भुखमरी-महामारी आदि) में साधन जुटाने में कुशल, (कार्य की) असिद्धि की स्थिति में हित को प्राथमिकता देने में समर्थ, परिशोधन के लिए शुद्धिकरण की प्रक्रिया में कुशल व्यक्ति, सम्यक् ज्ञान प्राप्ति के लिए स्नेहपूर्वक कार्य करने में कुशल व्यक्ति, अचानक कार्य आ पड़ने की स्थिति में सन्निकट व्यक्ति, स्वीकृति प्राप्त करने के लिए अनुरोधाग्रह में कुशल व्यक्ति तथा शक्ति के लिए सहारा देने वाले को नियुक्त करें ॥९ ॥

१६४५. उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्श माशिक्षायै प्रश्निन मुपशिक्षाया ऽ अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥१० ॥

उत्सादन (शत्रुनाश) के लिए खड्गधारी, विनोद के लिए बौने तथा द्वारों (की रक्षा) के लिए परिश्रमी पुरुष को नियुक्त करें । स्वप्न के लिए अन्धे का और अधर्म की स्थिति में बहरे का अनुगमन करें । कायशुद्धि (रोग मुक्ति) के लिए औषधि विशेषज्ञ, विशिष्ट ज्ञान के लिए खगोलविद् , समग्र शिक्षा के लिए (विविध) प्रश्न पूछने (पूछ सकने) वाले,(शिक्षा के) अभ्यास के लिए जिज्ञासु तथा न्याय व्यवस्था के लिए पंच को नियुक्त करना चाहिए ।

१६४६. अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥११ ॥

भारी सवारियों के लिए हस्तिपालक को, तीव्र गति के लिए अश्वपालक को, पुष्टि के लिए गोपालक को, वीर्य के लिए मेषपालक को, तेजस् के लिए अजपालक को, अन्नवृद्धि के लिए (निराई आदि करने वाले) किसान को,

अमृतोपम शुद्ध पेय के लिए अभिषवण विशेषज्ञ को, सुख एवं कल्याणवृद्धि के लिए गृहपालक को,(श्रेष्ठ कार्यों से) श्रेय पाने के लिए सम्पन्नों को तथा अध्यक्षता के लिए निरीक्षक को नियुक्त करना चाहिए ॥११ ॥

१६४७. भायै दार्वाहारं प्रभाया ऽ अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्यऽ उपसेक्तारमव ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥१२ ॥

अग्नि के लिए लकड़हारे को, प्रभा (प्रकाश) के लिए अग्नि जलाने वाले को, सूर्य की उष्णता (गर्मी अधिक पड़ने) वाले स्थान के लिए अभिषेक करने वाले को, स्वर्गोपम सुख के लिए सब ओर से प्रभावित करने वाले को, देवलोक के लिए सुन्दर आकृति बनाने वाले को, मनुष्यलोक के लिए (श्रेष्ठता का) प्रसार करने वाले को, सभी लोकों के लिए सेचन करने वाले (तुष्टि प्रदान करने वाले) को, आक्रमण करके वध करने के लिए खलबली मचा देने वाले को नियुक्त करें, मेधाप्राप्ति के लिए वस्त्र प्रक्षालन जैसी विधा का अनुगमन करें, शोभा के लिए रंजन कला (चित्रकारिता आदि) के ज्ञाता का अनुसरण करें ॥१२ ॥

१६४८. ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तार मौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिन मरिष्ट्या ऽ अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥१३ ॥

शत्रु सैन्य (विनष्ट करने) के लिए गुप्त (रण) नीति रखने वाले को, शत्रु हत्या के लिए चुगलखोर को, भेद (उत्पन्न करने) के लिए विभाजक को,(सूक्ष्मता से) निरीक्षण के लिए निगरानी वाले को, बल के लिए आज्ञानुवर्ती को, क्षेत्र विशेष के लिए परिभ्रमण करने वालों को, प्रिय कार्य के लिए प्रियवादी को, अरिष्ट (निवारण) के लिए अश्वारोही को, स्वर्गीय वातावरण के लिए उचित वितरण करने वाले को तथा श्रेष्ठ सुखों की प्राप्ति के लिए सब ओर से प्रभावित करने वाले को नियुक्त करें ॥१३ ॥

१६४९. मन्यवेयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तार मुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाऽञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥१४ ॥

मन्यु (अनीति प्रतिरोधक) का आदर्श (मोड़ने के लिए) लोहे को तपाने वाला है । क्रोध की शान्ति के लिए दानी (प्रकृति वालों) को, योग (जोड़ने) के लिए योगी (जोड़ने वाले) को, तेजस्विता के लिए अग्रगामी को, क्षेम के लिए (संरक्षण के निमित्त) मुक्ति दाता को, उतार चढ़ाव वाले क्षेत्रों के लिए (ऊँच-नीच से निपटने के लिए) तीनों (ऊँच-नीच -समतल) में दक्ष को, शारीरिक विकास के लिए प्रमाण के अनुसार आचरण करने वालों को, शालीनता के लिए दृष्टि की शुद्धि करने वाले को प्रयुक्त करें । विपत्ति (से बचने) के लिए संचय की नीति वाले को तथा यम (नियम आदि) के लिए निष्पक्षता की प्रवृत्ति वाले को प्रयुक्त करें ॥१४ ॥

१६५०. यमाय यमसूमथर्वभ्योवतोकाꣳ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजाता-मिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरी वत्सराय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योजिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥१५ ॥

इस कण्डिका में यज्ञार्थ विशेष प्रयोजनों के लिए पृथक्-पृथक् गुणों वाली नारियों को नियुक्त करने का संकेत है । इस क्रम में संवत्सर आदि काल खण्डों का उल्लेख भी है । कालक्रम विभाजन में वत्सरों (वर्षों) के पाँच-पाँच के वर्ग बनाये गये हैं । कालक्रम के उक्त वर्ग विशेष में प्रथम वर्ष को संवत्सर, द्वितीय को परिवत्सर, तृतीय को इदावत्सर, चतुर्थ को अनुवत्सर तथा पंचम को उद्वत्सर कहा जाता है । महिलाओं के लिए जो सम्बोधन आये हैं, ये शोध के विषय हैं कि वैदिक काल में किस गुण-धर्म वाली नारी के लिए कौन सा संबोधन प्रयुक्त होता था—

(हे परमात्मन् !) आप को नियम बनाने वालों के लिए नियन्त्रण में समर्थ सन्तानों को जन्म देने वाली को, हिंसा से दूर रहने वालों के लिए अवतोका नामक स्त्री को, संवत्सर के लिए कालक्रम की विधि-व्यवस्था जानने वाली को, परिवत्सर के लिए ब्रह्मचारिणी कुमारी को, इदावत्सर के लिए अत्यधिक गतिशील रहने वाली को, इद्वत्सर या अनुवत्सर के लिए अतिशय ज्ञानवती स्त्री को, वत्सर या अनुवत्सर के लिए जराजीर्ण वृद्धा स्त्री को, संवत्सर के लिए श्वेतकेशी वृद्धा स्त्री को नियुक्त करना चाहिए तथा ऋभुओं के लिए अपराजेय पुरुष से मित्रता रखने वाले को और साध्यों के लिए विशिष्ट ज्ञान (चर्म विज्ञान) युक्त पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए ॥१५ ॥

१६५१. सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्तं तीर्थेभ्य ऽ आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥१६ ॥

सरोवरों के लिए धीवरों, उपवनों के लिए सेवकों, छोटे जलाशयों के लिए निषादों, नड्वल (नरकट) बहुल प्रदेशों के लिए शौष्कल (मत्स्य जीवी) , पार जाने के लिए मार्ग जानने वालों, अवार (उस पार से इस पार आने वाले) के लिए कैवर्त्त (नाविक) , तीर्थ (जल के तटवर्ती क्षेत्रों) के लिए (किनारा) बाँधने वालों, विषम स्थलों से रक्षा हेतु बाड़ लगाने वालों, स्वन (नाद करने) के लिए पर्णक (तुरही बजाने वाले) , गुफाओं के लिए कोल-किरातों, सानु (शिखर) के लिए प्रचण्ड पुरुषों तथा पर्वतों के लिए छोटे कद के पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए ॥१६ ॥

१६५२. बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्या ऽ अपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम् ॥१७ ॥

बीभत्स (घृणित) कार्यों के लिए पौल्कस (अनगढ़ों) को, सुन्दर आकार देने के लिए स्वर्णकार को, तुला व्यवहार (तौलने आदि) के लिए वणिक (व्यापारी) को, बाद में दोषारोपण करने के लिए अप्रसन्न व्यक्ति को, सभी प्राणियों के लिए सिध्मल (सिद्धि प्रदायक पुरुष) को, समृद्धि के लिए जागरूक को, असमृद्धि के लिए आलसी प्रकृति वाले को, पीड़ा (की निवृत्ति) के लिए लोगों को सावधान करने वाले को, वृद्धि के लिए अपगल्भ (निरभिमानी) को तथा बाण प्रक्षेपण के लिए लक्ष्य-वेध में कुशल व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए ॥१७ ॥

१६५३. अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाणऽ उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥१८ ॥

पाँसे खेलने के लिए चतुर पुरुष, कृत (क्रियाशील) के लिए समीक्षक, त्रेता (क्रिया के लिए संकल्पित) के लिए कल्पनाशील, द्वापर (कर्मोन्मुख) के लिए अतिकल्पनाशील, आस्कन्द (आक्रमण की स्थिति में) सभा में स्थिर (प्रत्युत्पन्न) मति वाले, मृत्यु के लिए इन्द्रिय सुखों के पीछे चलनेवाले, अन्तक (यमराज) के लिए गोघाती, क्षुधा (भूखा रहने) के लिए गाय को मारने वाले-भीख माँगते हुए उपस्थित होने वाले, दुष्कृत निवारण के लिए चलते-फिरते रहने वाले आचार्यों तथा पापियों के लिए दुष्टतापूर्वक दण्डित करने वाले को नियुक्त करना चाहिए ॥

१६५४. प्रतिश्रुत्काया ऽ अर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्म मवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोरण्याय दावपम् ॥१९ ॥

प्रतिज्ञा के लिए औचित्य का निर्वाह करने वाले को, घोषणा के लिए (जोर से) बोलने वाले को, अन्त (विवाद के अन्त) के लिए कुशल वक्ता को, अनन्त (विवाद के अनिर्णय) के लिए चुपचाप रहने वाले को, शब्द के लिए

आडम्बराघात (... जोर से वाद्ययन्त्र बजाने वाले) को, महत्त्व के लिए वीणावादक को, तुमुल स्वर के लिए बड़े ढोल बजाने वाले को, मध्यम आवाज के लिए शंख बजाने वाले को, वन (की रक्षा) के लिए वनरक्षक को तथा दूसरे प्रकार के अरण्यों के लिए दावानल से रक्षा करने वाले को नियुक्त करना चाहिए ॥१९ ॥

१६५५. नर्माय पुंश्चलूᳬ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥२० ॥

कौतुक में लगी हुई दुश्चरित्र महिला को, हंसाने में लगे हुए नकल उतारने वालों को तथा जल-जन्तुओं को मारने में प्रवृत्त नीच जातिवालों को दूर हटाना चाहिए । ग्रामाधीश, ज्योतिषियों एवं सबको बुलाने वाले को सत्कार के लिए नियुक्त करना चाहिए । वीणावादक, ताल वाद्य बजाने वाले को तथा स्वर वाद्य बजाने वाले को नृत्य के लिए तथा आनन्द के लिए ताली बजाने वाले को नियुक्त करना चाहिए ॥२० ॥

१६५६. अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वᳬशनर्तिनं दिवे खलतिᳬ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षᳬ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१ ॥

अग्नि के (साथ कार्य करने के) लिए स्थूल पदार्थों (बलवान् पुरुषों) , पृथ्वी के लिए आसन पर बैठकर चलने वालों, वायु (का सामना करने) के लिए प्रचण्ड (कार्य करने वाले) पुरुष, अन्तरिक्ष के कार्य (अधर पर लटककर कार्य करने वाले) के लिए बाँस के ऊपर कला दिखाने वाले, द्युलोक के लिए खगोलविद् , सूर्य के लिए हरितवर्ण वाले, नक्षत्रों के लिए नारंगी रंग पहचानने वाले, चन्द्रमा के लिए किलास (चर्म रोग विशेष) वाले, दिन के लिए सफेद रंग के पीली आँख वालों तथा रात्रि के लिए काले रंग के पीली आँख वालों को नियुक्त करना चाहिए ॥२१

१६५७. अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च । अशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः मागधः पुँश्चली कितवः क्लीबोशूद्रा ऽ अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥२२ ॥

इस प्रकार ऊपर कहे गये तथा इन आठों- अति दीर्घ, अति ह्रस्व, अति स्थूल, अति कृश, अति शुक्ल, अति कृष्ण तथा अति कुल्व (रोम रहित) और अति रोमशों (रोम युक्तों) को तथा इन चार प्रकार के—मागध (चाटुकार) पुंश्चली (दुराचारिणी), कितव (जुवारी) व क्लीब (नपुंसक)— ऐसे अब्राह्मणों और अशूद्रों को (बुद्धि एवं श्रम का कार्य न कर सकने वालों को) प्रजापति (प्रजापालक) को सौंप देना चाहिए । (ताकि पहले आठ के लिए उचित निर्वाह और दूसरे चार के लिए उचित नियन्त्रण की व्यवस्था कर सकें) ॥२२ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— नारायण पुरुष १ । विश्वामित्र २ । श्यावाश्व ३ । मेधातिथि ४-२२ ।

देवता—सविता १-२२ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १ । निचृत् गायत्री २ । गायत्री ३,४ । स्वराट् अतिशक्वरी ५,११ । निचृत् अष्टि ६,७ । कृति ८,१३ । भुरिक् अत्यष्टि ९,१०, २१ । विराट् संकृति १२ । निचृत् अत्यष्टि १४ । विराट् कृति १५,१६ । विराट् धृति १७ । निचृत् प्रकृति १८ । भुरिक् धृति १९ । भुरिक् अतिजगती २० । निचृत् कृति २२ ।

॥ इति त्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकत्रिंशोऽध्याय: ॥

१६५८. सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्। स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठ-द्दशाङ्गुलम् ॥१ ॥

(जो) सहस्रों सिर वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष हैं, वे सारे ब्रह्मांड को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं। ॥१ ॥

[दशांगुलम् -माप में पूर्णांक अर्थात् ९ से भी १ अधिक है।

१६५९. पुरुषऽ एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

जो सृष्टि बन चुकी, जो बनने वाली है, यह सब विराट् पुरुष ही हैं। इस अमर जीव-जगत् के भी वही स्वामी हैं। जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वही स्वामी हैं ॥२ ॥

१६६०. एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुष:। पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

विराट् पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है। इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित हैं ॥३ ॥

१६६१. त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुष: पादोस्येहाभवत् पुन:। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४ ॥

चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार जड़ और चेतन विविधरूपों में समाहित है। इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाये हुए हैं ॥४ ॥

१६६२.ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष:। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर: ॥

उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए। वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया ॥५ ॥

१६६३.तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत: सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

उस सर्वश्रेष्ठ विराट् प्रकृति यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ (जिससे विराट् पुरुष की पूजा होती है)। वायुदेव से संबन्धित पशु हरिण, गौ, अश्वादि की उत्पत्ति उस विराट् पुरुष के द्वारा ही हुई ॥६ ॥

१६६४. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽ ऋच: सामानि जज्ञिरे। छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७ ॥

उस विराट् यज्ञपुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ। उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात् वेद की ऋचाओं का प्रकटीकरण हुआ ॥७ ॥

१६६५. तस्मादश्वाऽ अजायन्त ये के चोभयादत:। गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावय: ॥८ ॥

उस विराट् यज्ञपुरुष से दोनों तरफ दाँत वाले घोड़े हुए और उसी विराट् पुरुष से गौएँ, बकरियाँ और भेड़ें आदि पशु भी उत्पन्न हुए ॥८ ॥

१६६६.तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत:। तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये ॥

मंत्रद्रष्टा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने सर्वप्रथम प्रकट हुए विराट् पुरुष को यज्ञ (सृष्टि के पूर्व विद्यमान महान् ब्रह्माण्डरूप यज्ञ अर्थात् सृष्टियज्ञ) में अभिषिक्त करके उसी परम पुरुष से ही यज्ञ (आत्मयज्ञ) का प्रादुर्भाव किया ॥

१६६७. यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा ऽ उच्येते ॥१० ॥

संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष का, ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं ? उसका मुख क्या है ? भुजा, जंघाएँ और पाँव कौन से हैं ? शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना ? ॥१० ॥

१६६८. ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ꣳ शूद्रो अजायत ॥११ ॥

विराट् पुरुष का मुख ब्राह्मण (ज्ञानीजन) हुए, क्षत्रिय (पराक्रमी व्यक्ति), उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं। वैश्य अर्थात् पोषण शक्तिसम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति, उसके पैर हुए ॥११ ॥

१६६९. चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।

विराट् पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुख से अग्नि का प्राकट्य हुआ ॥

१६७०. नाभ्या ऽ आसीदन्तरिक्ष ꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ॥१३ ॥

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पाँवों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं। इसी प्रकार (अनेकानेक) लोकों को कल्पित किया गया है (रचा गया है) ॥१३ ॥

१६७१. यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽ इध्मः शरद्धविः ॥

जब देवों ने विराट् पुरुषरूप को हवि मानकर यज्ञ का शुभारंभ किया, तब घृत वसंत ऋतु, ईंधन (समिधा) ग्रीष्मऋतु एवं हवि शरद्ऋतु हुई ॥१४ ॥

[यहाँ सृष्टि यज्ञ के प्रारम्भिक स्वरूप का वर्णन है]

१६७२. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५ ॥

देवों ने जिस यज्ञ का विस्तार किया, उसमें विराट् पुरुष को ही पशु (हव्य) रूप की भावना से बाँधा (नियुक्त किया), उसमें यज्ञ की सात परिधियाँ (सात समुद्र) एवं इक्कीस (छन्द) समिधाएँ हुईं ॥१५ ॥

१६७३. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६ ॥

आदिकालीन श्रेष्ठ धर्मपरायण देवों ने, यज्ञ द्वारा यज्ञरूप विराट् का यजन किया। यज्ञीय जीवन जीने वाले (याजक) पूर्वकाल के सिद्ध- साध्यगणों तथा देवताओं के निवास महिमाशाली स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं ॥१६॥

१६७४. अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७ ॥

सर्वप्रथम सब कर्म करने वाले परमात्मा (विश्वकर्मा) ने पृथ्वी एवं जल बनाये और उस जलरूप रस (प्राणतत्त्व) से सृष्टि का निर्माण हुआ। मर्त्य को देवत्व प्रदान करते हुए वह विश्व-निर्माता विश्व का निर्माण करता है ॥१७ ॥

१६७५. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय ॥१८ ॥

सूर्य के समतुल्य तेजसम्पन्न, अंधकाररहित, वह विराट् पुरुष है, जिसको जानने के पश्चात् साधक (उपासक) को मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्षप्राप्ति का यही मार्ग है, इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं ॥१८ ॥

१६७६. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९ ॥

प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान है, वह अजन्मा होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता है। उसकी कारण शक्ति में सम्पूर्ण भुवन समाहित हैं। ज्ञानी-जन उसके मुख्य स्वरूप को देख पाते हैं ॥१९ ॥

१६७७. यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२० ॥

देव समुदाय में अग्रणी एवं उन्हें (देवों को) प्रकाशित करने वाले, जिनका प्राकट्य सब देवों से पहले ही हुआ है, उन तेज सम्पंन्न ब्रह्म को नमन है ॥२० ॥

१६७८. रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽ अग्रे तदब्रुवन्। यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽअसन् वशे ॥२१ ॥

ब्रह्मज्ञानी देवों का प्रारंभिक कथन है कि जो प्रकाशमय ब्रह्म को प्रकट करने वाले ज्ञानी उसको (विराट् सत्ता को) जानते हैं, उनके अधिकार में समस्त देवशक्तियाँ रहती हैं ॥२१ ॥

१६७९. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण ॥२२ ॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! सबको सम्पन्नता प्रदान करने वाली वैभवरूपी लक्ष्मी आपकी पत्नी स्वरूप हैं, भुजाएँ रात्रि और दिन एवं नक्षत्र आपके रूप हैं। द्युलोक एवं पृथ्वी आपके मुख सदृश हैं। इच्छाशक्ति से सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हे ईश्वर !हमारी उत्तम लोकों की प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के लिए आप कृपा करें ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— नारायण पुरुष १-१६। उत्तरनारायण १७-२२।

देवता—पुरुष जगद्बीज १-१६। आदित्य १७-२२।

छन्द—निचृत् अनुष्टुप् १-३, ८-११, १४। अनुष्टुप् ४, ५, ७, १२, १३, १५, २०, २१। विराट् अनुष्टुप् ६। विराट् त्रिष्टुप् १६। भुरिक् त्रिष्टुप् १७, १९। निचृत् त्रिष्टुप् १८। निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् २२।

॥ इति एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

१६८०. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

सर्वव्यापक परमात्मा ही स्वयं प्रकाशित प्रजापति है, वही सभी जगह प्रकाश फैलाने वाले अग्नि, सूर्य के सदृश तेजयुक्त आदित्य, व्यापक (प्राणरूप) वायु, आनन्दमय चन्द्रमा, दीप्तिमान् (शुद्ध और पवित्र) शुक्र, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट पथ- प्रदर्शक ब्रह्म, सब में समाहित जल एवं समस्त प्रजाजनों के पालक (भी) हैं ॥१ ॥

१६८१. सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि। नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२ ॥

परम तेजस्वी सर्वव्यापी परमात्मा से ही सभी काल प्रकट हुए हैं । इस परमात्मा को ऊपर से, इधर-उधर से अथवा मध्य भाग से, पूर्णरूप से कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता । (पूर्णरूप से कोई नहीं जान सकता) ॥२ ॥

१६८२. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भऽ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जातऽ इत्येषः ॥३ ॥

जिस परमात्मा की महिमा का वर्णन 'हिरण्यगर्भः' (२५ ।१०) 'यस्मान्न जातः' (८ ।३६) तथा 'मा मा हिंसीत्' (१२ ।१०२) आदि मंत्रों में किया गया है, जिसका नाम और यश अत्यन्त बड़ा है; परन्तु उसका कोई प्रतिमान नहीं है ॥३ ॥

१६८३. एषो ह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४ ॥

वह परमात्मा सभी दिशाओं-उपदिशाओं, जन्म लिए हुए तथा जन्म लेने के लिए तत्पर (अभी माता के गर्भ में स्थित) सभी प्राणियों में संव्याप्त है । वही जन्म लेकर पुनः -पुनः (आगे भी) जन्म लेने वाला है तथा वर्तमान में भी सर्वत्र वही विद्यमान है ॥४ ॥

१६८४. यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य ऽ आबभूव भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया स ꣳरराणस्त्रीणि ज्योती ꣳषि सचते स षोडशी ॥५ ॥

जो परमात्मा अकेले ही सभी भुवनों में व्याप्त हैं, उनसे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, वह प्रजा के साथ रहने वाले प्रजापति सोलह कलाओं से युक्त तीनों ज्योतियों (अग्नि, विद्युत्, सूर्य) को धारण करते हैं ॥५ ॥

१६८५. येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६ ॥

जिस परमात्मा ने द्युलोक को तेजस्वी बनाया, जिसने सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए पृथ्वी को दृढ़ बनाया और आदित्य मण्डल एवं स्वर्गलोक को स्थिर किया; जिसने आकाश में नाना लोकों का निर्माण किया, उस आनन्दस्वरूप परमात्मा की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं (उसके अतिरिक्त और किसकी अर्चना की जाए ?) ॥६

१६७५. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय ॥१८ ॥

सूर्य के समतुल्य तेजसम्पन्न, अंधकाररहित, वह विराट् पुरुष है, जिसको जानने के पश्चात् साधक (उपासक) को मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्षप्राप्ति का यही मार्ग है, इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं ॥१८ ॥

१६७६. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९ ॥

प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान है, वह अजन्मा होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता है। उसकी कारण शक्ति में सम्पूर्ण भुवन समाहित हैं। ज्ञानी-जन उसके मुख्य स्वरूप को देख पाते हैं ॥१९ ॥

१६७७. यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२० ॥

देव समुदाय में अग्रणी एवं उन्हें (देवों को) प्रकाशित करने वाले, जिनका प्राकट्य सब देवों से पहले ही हुआ है, उन तेज सम्पन्न ब्रह्म को नमन है ॥२० ॥

१६७८. रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽ अग्रे तदब्रुवन्। यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽअसन् वशे ॥२१ ॥

ब्रह्मज्ञानी देवों का प्रारंभिक कथन है कि जो प्रकाशमय ब्रह्म को प्रकट करने वाले ज्ञानी उसको (विराट् सत्ता को) जानते हैं, उनके अधिकार में समस्त देवशक्तियाँ रहती हैं ॥२१ ॥

१६७९. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण ॥२२ ॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! सबको सम्पन्नता प्रदान करने वाली वैभवरूपी लक्ष्मी आपकी पत्नी स्वरूप हैं, भुजाएँ रात्रि और दिन एवं नक्षत्र आपके रूप हैं। द्युलोक एवं पृथ्वी आपके मुख सदृश हैं। इच्छाशक्ति से सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हे ईश्वर! हमारी उत्तम लोकों की प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के लिए आप कृपा करें ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— नारायण पुरुष १-१६। उत्तरनारायण १७-२२।

देवता—पुरुष जगद्बीज १-१६। आदित्य १७-२२।

छन्द—निचृत् अनुष्टुप् १-३, ८-११, १४। अनुष्टुप् ४, ५, ७, १२, १३, १५, २०, २१। विराट् अनुष्टुप् ६। विराट् त्रिष्टुप् १६। भुरिक् त्रिष्टुप् १७, १९। निचृत् त्रिष्टुप् १८। निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् २२।

॥ इति एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

१६८०. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

सर्वव्यापक परमात्मा ही स्वयं प्रकाशित प्रजापति है, वही सभी जगह प्रकाश फैलाने वाले अग्नि, सूर्य के सदृश तेजयुक्त आदित्य, व्यापक (प्राणरूप) वायु, आनन्दमय चन्द्रमा, दीप्तिमान् (शुद्ध और पवित्र) शुक्र, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट पथ- प्रदर्शक ब्रह्म, सब में समाहित जल एवं समस्त प्रजाजनों के पालक (भी) हैं ॥१ ॥

१६८१. सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि। नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२ ॥

परम तेजस्वी सर्वव्यापी परमात्मा से ही सभी काल प्रकट हुए हैं। इस परमात्मा को ऊपर से, इधर-उधर से अथवा मध्य भाग से, पूर्णरूप से कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता। (पूर्णरूप से कोई नहीं जान सकता) ॥२ ॥

१६८२. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भऽ इत्येष मा मा हिंꣳसीदित्येषा यस्मान्न जातऽ इत्येषः ॥३ ॥

जिस परमात्मा की महिमा का वर्णन 'हिरण्यगर्भः' (२५ ।१०) 'यस्मान्न जातः' (८ ।३६) तथा 'मा मा हिंसीत्' (१२ ।१०२) आदि मंत्रों में किया गया है, जिसका नाम और यश अत्यन्त बड़ा है; परन्तु उसका कोई प्रतिमान नहीं है ॥३ ॥

१६८३. एषो ह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४ ॥

वह परमात्मा सभी दिशाओं-उपदिशाओं, जन्म लिए हुए तथा जन्म लेने के लिए तत्पर (अभी माता के गर्भ में स्थित) सभी प्राणियों में संव्याप्त है। वही जन्म लेकर पुनः -पुनः (आगे भी) जन्म लेने वाला है तथा वर्तमान में भी सर्वत्र वही विद्यमान है ॥४ ॥

१६८४. यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य ऽ आबभूव भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥५ ॥

जो परमात्मा अकेले ही सभी भुवनों में व्याप्त हैं, उनसे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, वह प्रजा के साथ रहने वाले प्रजापति सोलह कलाओं से युक्त तीनों ज्योतियों (अग्नि, विद्युत्, सूर्य) को धारण करते हैं ॥५ ॥

१६८५. येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६ ॥

जिस परमात्मा ने द्युलोक को तेजस्वी बनाया, जिसने सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए पृथ्वी को दृढ़ बनाया और आदित्य मण्डल एवं स्वर्गलोक को स्थिर किया; जिसने आकाश में नाना लोकों का निर्माण किया, उस आनन्दस्वरूप परमात्मा की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं (उसके अतिरिक्त और किसकी अर्चना की जाए ?) ॥६

१६८६. यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर ऽ उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम। आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदापः ॥७॥

जिस परमात्मा की शक्ति से पोषक पदार्थों द्वारा प्राणि जगत् को संरक्षण देने वाले द्युलोक और पृथिवीलोक, इनमें रहने वाले ज्ञानीपुरुष मनःशक्ति द्वारा सर्वत्र देखते हैं और जिसमें तेजोमय सूर्य उदित तथा प्रकाशित होता है, उस आनन्दमय परमात्मा की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं। "आपो ह यद् बृहती:" और "यश्चिदापः" इन दो मंत्रों (२७।२५-२६) में उस परमात्मा का विस्तार से वर्णन है ॥७॥

१६८७. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८॥

प्रत्येक पदार्थ में छिपे उस परमात्मा को ज्ञानी-जन नित्य, सम्पूर्ण जगत् को आश्रय देने वाले रूप में जानते हैं। सब प्रजाओं में व्याप्त उस परमात्मा में सभी प्राणी प्रलयकाल में लय हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में उसी से पुनः प्रकट होते हैं ॥८॥

१६८८. प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥९॥

उस परमात्मा के स्वरूप का वर्णन ज्ञानीजन ही कर सकते हैं। बुद्धि में धारण करने पर ही वह परमात्मा सुशोभित होता है। जो उस परमात्मा के तीन पद (तीन स्वरूप-सत्, चित्, आनन्द) को धारण करता है, वह पालकों का भी पालक होता है ॥९॥

१६८९. स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा ऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥१०॥

अमरत्व प्राप्त ज्ञानीजन जिस तीसरे धाम (स्वर्गरूप) में स्वेच्छा से विचरण करते हैं। (उस धाम में व्याप्त) वह परमात्मा हम सबका बन्धु, हम सभी को उत्पन्न करने वाला तथा हर प्रकार से पोषण करने वाला है। वह सभी भुवनों तथा प्राणियों को जानने वाला है ॥१०॥

१६९०. परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥११॥

सभी प्राणियों, सभी लोकों, सभी दिशाओं और उपदिशाओं को जानकर सत्य नियम (वेदत्रयी) पर आधारित सनातनरूप की उपासना करके ज्ञानीजन आत्मरूप से परमात्मा में समाहित हो जाते हैं ॥११॥

१६९१. परि द्यावापृथिवी सद्यऽ इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥१२॥

आकाश से पृथ्वी पर्यन्त सभी पदार्थों, सभी लोकों, सभी दिशाओं एवं आत्मशक्ति को जब ज्ञानीजन जान लेते हैं, तब अटल सत्यरूप में विशेष रूप से बँधे उस परमात्मा की अनुभूति करके वैसे ही बन जाते हैं, जैसे वह पहले (सनातन परमात्मरूप में) थे ॥१२॥

१६९२. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥१३॥

प्राप्त करने योग्य, विलक्षण इन्द्रदेव के मित्र, विश्व के स्वामी (परमात्मा) से सेवन के योग्य धन तथा उत्तम बुद्धि की याचना करते हैं। इसके लिए आहुति समर्पित है ॥१३॥

१६९३. यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१४॥

देवगण तथा पितृगण जिस उत्तम बुद्धि की कामना करते हैं, हे अग्निदेव! उस बुद्धि से आज हमें मेधावी बनाएँ। इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥१४॥

१६९४. मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥१५॥

हे वरुणदेव! हे प्रजापालक अग्निदेव! हे इन्द्र और वायुदेव! हे परमात्मन्! हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करें। इसके लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१५॥

१६९५. इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१६॥

देवगण हमारे इस ज्ञान-तेज तथा हमारे इस क्षात्रबल, इन दोनों को हम में शोभायमान करें। इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥१६॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— ब्रह्म स्वयंभु १-१२। मेधाकाम १३-१५। श्रीकाम १६।

देवता—आत्मा १-१२। सदसस्पति १३। अग्नि १४। वरुण आदि लिंगोक्त १५। श्री मंत्रोक्त १६।

छन्द—अनुष्टुप् १-२, १६। निचृत् पंक्ति ३। भुरिक् त्रिष्टुप् ४, ५। निचृत् त्रिष्टुप् ६, ८-११। निचृत् शक्वरी ७। त्रिष्टुप् १२। भुरिक् गायत्री १३। निचृत् अनुष्टुप् १४। निचृत् बृहती १५।

॥ इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

॥अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

१६९६. अस्याजरासो दमामरित्राऽ अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः। श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥१ ॥

इस यजमान की अग्नियाँ, जरारहित और गृहों की रक्षा करने वाली हैं, अर्चन योग्य, जाज्वल्यमान, पवित्र करने वाली, शुभ्र ऐश्वर्य से युक्त करने वाली, शीघ्र फल देने वाली, प्रजा को पोषण देने वाली, वन (काष्ठों) में व्याप्त, वायु के समान प्राणदायक और यजमान को अभीष्ट प्रदान करने वाली हैं ॥१ ॥

१६९७. हरयो धूमकेतवो वातजूता ऽ उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः ॥२ ॥

हरित वर्ण, धूम्ररूपी ध्वजावाली, वायु से वृद्धि पाने वाली अग्नियाँ स्वर्ग (ऊर्ध्व) गमन के निमित्त निरंतर प्रयत्नशील रहती हैं ॥२ ॥

१६९८. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ२ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥३ ॥

हे अग्ने ! आप हमारे मित्र, वरुण और (अन्य) देवों के लिए यज्ञ करें। साथ ही अपने घर को यज्ञादि शुभ कर्मों से युक्त करें ॥३ ॥

१६९९. युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ अश्वाँ २ अग्ने रथीरिव। नि होता पूर्व्यः सदः ॥४ ॥

हे अग्ने ! देवों का आवाहन करने वाले अश्वों को सारथी के समान श्रेष्ठ रथ में नियोजित करें। आदिकाल से ही बुलाये जाने वाले आप इस यज्ञ में अधिष्ठित हों ॥४ ॥

१७००. द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते। हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥५ ॥

दो भिन्न रूप-रंगवाली स्त्रियों के समान रात्रि और दिन अपने उत्तम कर्मों में तत्पर विविध प्रकार से विचरण करते हैं। उनमें से एक श्यामवर्ण रात्रि के स्वधावान् पुत्र चन्द्र उत्पन्न हुए और दूसरे दिन के उत्तम तेजों से युक्त पुत्र सूर्य प्रकट हुए— ऐसी मान्यता है ॥५ ॥

१७०१. अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे-विशे ॥६ ॥

देवों का आवाहन करने वाले, यज्ञ में अधिष्ठित, सोम-यागादि में स्तुत्य अग्निदेव को यज्ञ स्थान में ऋत्विजों के द्वारा प्रमुखरूप से स्थापित किया गया है। ज्ञानवान् - तपस्वी अप्नवान, भृगु आदि ऋषियों ने प्रत्येक मनुष्य के उपकार के लिए उन विराट् अग्निदेव को, वनों में-यज्ञ स्थानों में प्रज्वलित किया था ॥६ ॥

१७०२. त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥७ ॥

तीन सहस्र, तीन सौ, तीस और नौ अर्थात् तैंतीस सौ उनतालीस देवतागण अग्निदेव की सेवा करते हैं। वे घृत आहुतियों द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, अग्निदेव के लिए कुशाओं का आसन प्रदान करते हैं और फिर उन्हें होतारूप से वरण कर स्थापित करते हैं ॥७ ॥

१७०३. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽ आ जातमग्निम् । कविᳬं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८ ॥

देवगणों ने द्युलोक के शिरःस्थान में आदित्य के रूप में पृथ्वी की सीमा तक प्रकाशित होने वाले वैश्वानर, यज्ञादि में उत्पन्न, क्रान्तदर्शी सम्यक्‌रूप से ओजवान्, समस्त प्रजाजनों द्वारा अतिथिरूप में आदर को प्राप्त, मुख्य होतारूप में विराजित अग्निदेव को सबके रक्षकरूप में प्रज्वलित किया ॥८ ॥

१७०४. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्‌द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्रऽ आहुतः ॥९ ॥

यज्ञ कुण्ड में आमन्त्रित, शुभ्र तेजयुक्त, प्रदीप्त अग्निदेव, हविष्यान्नरूप धन की कामना करते हुए विविध प्रकार की आहुतियों द्वारा पापों (वृत्र) को विनष्ट करते हैं ॥९ ॥

१७०५., विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्नऽ इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१० ॥

हे अग्ने ! मित्रदेव के तेज से युक्त इन्द्र, वायु तथा समस्त देवों के साथ आप सोम रूप मधु का पान करें ॥१० ॥

१७०६. आ यदिषे नृपतिं तेजऽ आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके । अग्निः शर्धमनवद्यं युवानᳬं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ॥११ ॥

जिस समय अन्न और जल के लिए मंत्रों द्वारा पवित्र हुए, देवों के उद्देश्य से यजन करने योग्य तेज का अग्नि में हवन होता है, उस समय अग्निदेव, बल के आश्रयभूत, दोषमुक्त, अनवरत प्रवाहित, सम्यक् विचारणीय, जगत् के बीजरूप जल को स्वर्ग के समीप अन्तरिक्ष में मेघरूप में प्रकट करते हैं और वृष्टिरूप में गिराते हैं ॥११ ॥

१७०७. अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु । सं जास्पत्यᳬं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महाᳬंसि ॥१२ ॥

हे अग्ने ! महान् सौभाग्य के निमित्त अपने बलों को प्रकट करें । आप श्रेष्ठ यशवाले होकर प्रकाशित हों । उत्तम यजमान दम्पती को परस्पर स्नेह भाव से संयुक्त करें और शत्रुता करने वालों की महत्ता को गिरा दें ॥१२ ॥

१७०८. त्वा हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने । इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३ ॥

हे अग्ने ! आप अत्यन्त गम्भीर हैं, ऐसे आपको सूर्य के समान तेजस्वी मंत्रों से हम वरण करते हैं । आप हमारे महान् स्तोत्रों का श्रवण करें । आप बल में इन्द्रदेव और वायु के सदृश हैं । आपको श्रेष्ठ मनुष्य एवं देवगण हवियों से पूर्ण करते हैं ॥१३ ॥

१७०९. त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः । यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्त गोनाम् ॥१४ ॥

हे उत्तम प्रकार से आहूत अग्ने ! मनुष्यों में से जो जितेन्द्रिय-धनवान् पुरुष आपके निमित्त गौओं के दुग्ध, दधि, घृत आदि से युक्त पुरोडाश अर्पित करते हैं, वे तेजस्वी पुरुष आपके प्रिय पात्र हों ॥१४ ॥

१७१०. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥१५ ॥

हे अग्ने ! आप स्तुतियों का श्रवण करनेवाले और हवियों को साथ लेकर वहन करने वाले हैं । आप देवों के साथ हमारे यजन कर्म में स्तोत्रों का श्रवण करें और मित्र, अर्यमा तथा प्रातः सवन में हवि-गृहीता देवों के साथ कुश के आसन पर विराजें ॥१५ ॥

१७११. विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्। अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥१६ ॥

सर्वज्ञ, सम्पूर्ण यज्ञार्ह (यज्ञ योग्य) देवों के मध्य अदिति (दीनता रहित-तेजस्वी) रूप में और सम्पूर्ण मनुष्यों के मध्य में अतिथि के तुल्य पूजनीय अग्निदेव, देवों को हविष्यान्न देते हुए हमें उत्तम सुख देने वाले हों ॥१६ ॥

१७१२. महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१७ ॥

सवितादेव की आज्ञा के अनुगत होकर हम देवों के संरक्षण का वरण करते हैं। हम पूज्य और प्रदीप्त अग्नि के आश्रय को प्राप्त करते हुए मित्र और वरुण के मध्य में अपराधरहित होकर सदा कल्याण को प्राप्त करें ॥१७ ॥

१७१३. आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्तऽ इन्द्र। याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वᳬहि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोतागण आपके यज्ञ को प्राप्त करते हैं और जल आपके बल को अभिवर्द्धित करते हैं। आप हमारे समीप आगमन करें। अपने उन वायु के वेग वाले अश्वों को नियोजित कर अपनी बुद्धि (युक्त कर्मों) द्वारा हमारे समीप अन्नादि के प्रदाता बनकर आएँ ॥१८ ॥

१७१४. गावऽ उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ॥१९ ॥

दिव्य किरणें आकाश और पृथ्वी दोनों रूपों को रक्षित करती हैं। हे स्वर्णिम कर्ण वाली (दो कोनों को मिलाने वाली) किरणो ! आप यज्ञ के पास आकर हमें रक्षित करें ॥१९ ॥

१७१५. यदद्य सूरऽ उदितेनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥२० ॥

आज सूर्य के उदित होने पर पापरहित हुए हमको मित्र, सविता, भग और अर्यमादेव श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें।॥

१७१६. आ सुते सिञ्चत श्रियᳬरोदस्योरभिश्रियम्। रसा दधीत वृषभम्। तं प्रत्नथायं वेनः॥

द्यावापृथ्वी के आश्रय में वर्षणशील सोम का तीव्र प्रवाह अत्यन्त शोभायमान होता है; ऋत्विग्गण उस (जगत् के आधारभूत) सोम प्रवाह को अभिषुत करके सींचते हैं ॥२१ ॥

[इस मंत्र के अन्त में 'तं प्रत्नथा' (७।१२) एवं 'अयं वेनः' (७।१६) के प्रारंभिक शब्द ही प्रतीकात्मक रूप से दिये गये हैं। इनका अर्थ संदर्भित स्थानों पर ही देखा जाय।]

१७१७. आतिष्ठन्तंपरि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः। महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥२२ ॥

सब देवों ने मिलकर, जिस देव को प्रतिष्ठित कर, चारों ओर से घेर कर, खड़े होकर स्तुति आदि की है, ऐसे देव इन्द्र अति तेजस्वी ऐश्वर्यों से सुशोभित होकर विचरते हैं। विश्वरूप वे इन्द्रदेव, जल को वर्षण के लिए प्रेरित करते हैं। वे इन्द्रदेव असुरों का संहार कर महान् यशस्वी होते हैं और अमृत तत्त्वों का पान कर चिरकाल तक उसी प्रतिष्ठा पर विराजते हैं ॥२२ ॥

१७१८. प्र वो महे मन्दमानायान्धसोर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे। इन्द्रस्य यस्य सुमखᳬसहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥२३ ॥

हे ऋत्विजो ! विश्व के उत्पादक, मनुष्यों के लिए अन्नदाता, महान् आनन्द-प्रदायक उन इन्द्रदेव का अर्चन करें, जिनको द्यावापृथिवी भी उत्तम यज्ञ, संघर्षशक्ति, महान् यश और धन आदि पदार्थों को प्रदान करके पूजते हैं ॥

१७१९. बृहन्निदिध्मऽ एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२४ ॥

जिनके मित्र अति तेजवान्, अतिव्यापक, शत्रुओं को तपाने वाले, सामर्थ्यशाली और महान् इन्द्रदेव हैं, उनकी ही बहुत प्रशंसा होती है । ऐसे इन्द्रदेव वन्दनीय हैं ॥२४ ॥

१७२०. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ२ अभिष्टिरोजसा ॥२५ ॥

तेज से सम्पन्न, अत्यन्त महान् और पूजनीय हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ यज्ञशाला में पधारें और सम्पूर्ण सोम के पर्वों (यज्ञोत्सवों) से प्राप्त हुए रस और हविष्यान्न से तृप्ति को प्राप्त हों ॥२५ ॥

१७२१. इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः । अहन् व्यथंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना ऽ अकृणोद्राम्याणाम् ॥२६ ॥

महान् बलशाली, नीति-कुशल, धन हरण करने वाले चोरों को पीड़ित करने वाले इन्द्रदेव, मायावी असुरों को विनष्ट करते हैं, साथ ही वे वृत्रासुर का प्रतिरोध करते, हिंसक दुष्टों का संहार करते एवं देवों को आह्लादित करते हुए, याज्ञिकों की श्रेष्ठ वाणियों को प्रकट करते हैं ॥२६ ॥

१७२२. कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं तऽ इत्था । सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे । महाँ२ इन्द्रो यऽ ओजसा कदा चन स्तरीरसि कदा चन प्र युच्छसि ॥२७ ॥

हे सज्जनों के स्वामी इन्द्रदेव ! आप अकेले कहाँ जाते हैं ? हे महिमावान् ! आपके जाने का अभिप्राय क्या है ? सम्यक् प्रकार से जाते हुए आप पूछे जाते हैं कि हे हरित वर्ण अश्व वाले इन्द्रदेव ! हमसे गमन का कारण कहें ; क्योंकि हम आपके ही हैं । हे महान् इन्द्रदेव ! आप अपने तेज से न कभी हिंसा करने वाले हैं और न कभी प्रमाद करने वाले हैं ॥२७ ॥

१७२३. आ तत्तऽ इन्द्रायवः पनन्ताभि यऽ ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् । सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीᳬं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥२८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो दुष्ट भूमि के मालिक की हिंसा करते हैं; उन्हें आप मारते हैं । जो बहुत से पुत्रों वाली, प्रचुर अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ पृथ्वी का दोहन करते हैं और सहस्रों धाराओं से वर्षणशील द्युलोक का दोहन कर सोम का अभिषव करते हैं; वे मनुष्य आपकी श्रेष्ठता की ही सतत स्तुति करते हैं ॥२८ ॥

१७२४. इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तऽ आनजे । तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२९ ॥

हे महान् इन्द्रदेव ! हम आपकी बुद्धि को धारण करते हैं । आपके निमित्त स्तुति करने में नियोजित बुद्धि, आपकी सामर्थ्य को प्रकट करती है । उसी सामर्थ्य से हमारे उत्सव और प्रसव (जन्मोत्सव) के समय पीड़ा पहुँचाने वाले शत्रुओं को दबाने वाले इन्द्रदेव, बलशाली देवगणों द्वारा अभिवन्दित किये जाते हैं ॥२९ ॥

१७२५. विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥३० ॥

जो वायु के समान प्रचण्ड वेगवान्, विशेषरूप से देदीप्यमान, सम्पूर्ण तेजों से युक्त, अपनी सामर्थ्य से प्रजाओं को सब ओर से रक्षित करते हैं, अनेकों प्रकार से प्रकाशित करते हैं, ऐसे वे सूर्यदेव अपनी रश्मियों द्वारा दिव्य सोमादि मधुर रसों का पान करें ॥३० ॥

१७२६. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥३१ ॥

उन सर्वज्ञाता, सर्वप्रकाशक, महान् सूर्यदेव को, सम्पूर्ण विश्व द्वारा भली-भाँति देखे जाने के लिए किरणें ऊर्ध्वगति प्रदान करती हैं ॥३१ ॥

[सूर्य रश्मियाँ अपवर्तन के गुण के कारण प्रातः कालीन सूर्य को कुछ ऊपर उठाकर दर्शन कराती हैं।]

१७२७. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ अनु। त्वं वरुण पश्यसि ॥३२ ॥

हे पावक (पवित्रकर्ता !) हे वरुणदेव ! जिस सूर्यरूप ज्योति (प्रकाश) से आप अपने स्वर्णिम दिव्यरूप को देखते हैं, उसी ज्योति से आप हम प्रजाजनों को देखें ॥३२ ॥

१७२८. दैव्यावध्वर्यू आ गत ᳪ रथेन सूर्यत्वचा। मध्वा यज्ञ ᳪ समञ्जाथे। तं प्रत्नथायं वेनश्चित्रं देवानाम् ॥३३ ॥

हे दिव्य अध्वर्यु-अश्विनीकुमारो ! आप सूर्य के समान कान्तिमान् रथ के द्वारा यहाँ आएँ और मधुर हवियों द्वारा यज्ञ को उत्तम रीति से सम्पन्न करें ॥३३ ॥

[तं प्रत्नथा, अयं वेनः, देवानां चित्रम् ये तीनों प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। (तं प्रत्नथा एवं अयं वेनः के संदर्भ मंत्र २१ में दिये जा चुके हैं, चित्रं देवानाम् ७।४२ पर है) ।]

१७२९. आ नऽ इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽ एतु । अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४ ॥

हम सभी प्राणियों के परम हितकारी हे सवितादेव ! आप हमारे श्रेष्ठ अन्न से परिपूर्ण, प्रशंसित यज्ञ-गृह में आगमन करें।सदा जीवन्त रहने वाले हे देवो !आप यहाँ तृप्त होकर इस जगत् को अपनी बुद्धि द्वारा तृप्त करें ॥

१७३०. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा ऽ अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥३५ ॥

सूर्य के द्वारा अन्धकार की भाँति शत्रुओं का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप जहाँ कहीं भी उदित होते हैं, वे सब आपके अधिकार में होते हैं ॥३५ ॥

१७३१. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम् ॥३६ ॥

हे सूर्यदेव ! आप संसार को तारने वाले, संसार के दर्शन योग्य और तेज के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। आप संसार को अपनी तेजस्विता से प्रकाशित करने वाले हैं ॥३६ ॥

१७३२. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततᳪ सं जभार। यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥३७ ॥

सूर्यदेव की वह दिव्यता और महत्ता अत्यन्त व्यापक है, जो संसार के मध्य स्थित होकर, विस्तीर्ण ग्रह-मण्डल का निर्माण करने वाली और संहारकर एकीभूत करने वाली है। जब वे देव अपनी हरित-वर्ण-किरणों को आकाश से विलग कर केन्द्र में धारण करते हैं, तब रात्रि इस ब्रह्माण्ड के ऊपर गहन तमिस्रा का आवरण डाल देती है ॥

१७३३. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे। अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥३८ ॥

द्युलोक के अंक में स्थित सूर्यदेव, मित्र और वरुणदेव का वह रूप प्रकट करते हैं, जिससे वे मनुष्यों को सब ओर से देखते हैं। इन सूर्यदेव का एक रूप शुद्ध, चैतन्य, निर्गुण है तथा दूसरा इन्द्रियगम्य सगुण स्वरूप है, उसे दिशाएँ धारण करती हैं ॥३८ ॥

१७३४. बण्महाँ२ असि सूर्य बडादित्य महाँ२ असि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महाँ२ असि ॥३९ ॥

हे सूर्यदेव ! आप निश्चय ही सबसे महान् हैं। हे आदित्य ! आपके महान् होने के कारण आपकी महत्ता की सब स्तुति करते हैं। हे-देव ! आप निश्चय ही सर्वोत्कृष्ट हैं ॥३९ ॥

१७३५. बट् सूर्य श्रवसा महाँ२ असि सत्रा देव महाँ२ असि। मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४० ॥

हे सूर्यदेव ! आप धनादि सम्पदा को प्रकट करने वाले होकर महान् हैं। हे देव ! प्राणियों के हितकारी, देवों में अग्र प्रतिष्ठित, सर्वव्यापक, अविनाशी और तेजस्वी आप यज्ञ करने के कारण महत्ता को प्राप्त हैं ॥४० ॥

१७३६. श्रायन्तऽ इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जाते जनमानऽ ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१ ॥

सूर्य प्रकाश का आश्रय लेकर विस्तार पाने वाली रश्मियाँ समस्त धान्यादि पदार्थों का उपयोग करती हैं। वैसे ही हम लोग अपने लिए और उत्पन्न होने वाली सन्तान आदि के लिए ओजस् के भाग को धारण करें ॥

१७३७. अद्या देवाऽ उदिता सूर्यस्य निरᳫंहसः पिपृता निरवद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥४२ ॥

हे देवो ! आज सूर्योदय काल की दिव्य प्रकाश रश्मियाँ हमें पापों से रक्षित करें और अपयश से दूर करें। मित्र, वरुण, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक हमारी मनोकामनाओं को पूरा करें। ॥४२ ॥

१७३८. आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३ ॥

उषाकाल की रश्मियों रूपी स्वर्णिम रथ पर आरूढ़ सविता देव, गहन तमिस्रायुक्त अन्तरिक्ष पथ में भ्रमण करते हुए, देवों और मनुष्यों को यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में नियोजित करते हैं। वे समस्त लोकों को प्रकाशित करते हुए अर्थात् उनका निरीक्षण करते हुए निकलते हैं ॥४३ ॥

१७३९. प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिटऽ इयाते। विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥४४ ॥

समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए 'नियुत' संज्ञा वाले वाहन में आरूढ़ वायुदेव और पूषादेव, रात्रि के अन्त में उषाकाल के पूर्व मनुष्यों द्वारा बुलाये जाने पर अन्तरिक्ष से इस प्रकार आते हैं, जैसे राजा पधार रहे हों। इन दोनों देवों के लिए यज्ञशाला में उत्तम प्रकार से कुश-आसन प्रस्तुत किये जाते हैं ॥४४ ॥

१७४०. इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्। आदित्यान् मारुतं गणम् ॥४५ ॥

यज्ञशाला में हम इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्यगण और मरुद्गण आदि देवों का आवाहन करते हैं ॥४५ ॥

१७४१. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः ॥४६ ॥

वरुणदेव और मित्रदेव अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य द्वारा हमारी उत्तम प्रकार से रक्षा करें और हमें महान् ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाएँ ॥४६ ॥

१७४२. अधि न ऽ इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना। तं प्रत्नथायं वेनो ये देवास ऽ आ न ऽ इडाभिर्विश्वेभिः सोम्यं मध्वोमासश्चर्षणीधृतः ॥४७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हे विष्णो ! हे मरुतो ! हे अश्विनीकुमारो ! आप सब हमारे सजातीय मनुष्यों के मध्य में आगमन करें। आप हमारे सब प्रकार से संरक्षक हों और हमें धारण करने वाले हों ॥४७ ॥

[तं प्रत्नथा (७।१२) , अयं वेनः (७।१६) , ये देवासः (७।१९) और आ न इडाभिः (३३।३४) , ये चारों मंत्रों के प्रतीक रूप अंश हैं।]

१७४३. अग्नऽ इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो। उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८ ॥

हे अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, मरुतो, और विष्णु आदि देवताओ ! आप हमें सामर्थ्य प्रदान करें। दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, देवपत्नियाँ, पूषा, भग और सरस्वती हमारी हवियाँ ग्रहण करें ॥४८ ॥

१७४४. इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ अपः। हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥४९ ॥

इन्द्राग्नी, मित्रावरुण, अदिति, पृथ्वी, द्युलोक, आदित्य, मरुत्, पर्वत समूह, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, भग और सर्वप्रेरक सविता आदि देवों का हम आवाहन करते हैं। वे यहाँ शीघ्र पधारें एवं हमारी रक्षा करें ॥४९ ॥

१७४५. अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः। यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्रऽ इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२ अवन्तु देवाः ॥५० ॥

जो स्तुति करता है, स्तोत्रों का पाठ करता है, अर्जित धन से हवियों को समर्पित करता है, उस यजमान के लिए और हमारे लिए धन-धान्यादि की वर्षा करने वाले रुद्रदेव तथा वृत्रासुर का नाश करने वाले, पर्वतों का हनन करने वाले, संग्राम में सहायता देने वाले, देवों में वरिष्ठ इन्द्रदेव आदि हमारी रक्षा करें ॥५० ॥

१७४६. अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्। त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥५१ ॥

याज्ञिकों की रक्षा करने वाले हे देवो ! आप हमारे समीप आएँ, जिससे हम भयभीत याज्ञिक हृदय में प्रेम भाव की अनुभूति कर सकें। अत्यन्त हिंसक वृकरूप घोर पापों से हमें मुक्त करें और पापरूप बुरे कृत्यों से हमें रक्षित करें ॥५१ ॥

१७४७. विश्वे अद्य मरुतो विश्वऽ ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवाऽ अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥५२ ॥

आज हमारे इस यज्ञ में समस्त मरुद्गण आगमन करें। रुद्र, आदित्य आदि सब देवगण पधारें। समस्त देवगण हमारी रक्षा के निमित्त आएँ। सम्पूर्ण गार्हपत्यादि अग्नियाँ प्रवृद्ध हों और हमें सब प्रकार का धन-धान्य प्रदान करें ॥५२ ॥

१७४८. विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे यऽ उप द्यवि ष्ठ। ये अग्निजिह्वा ऽ उत वा यजत्रा ऽ आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥५३ ॥

जो अन्तरिक्ष में हैं, जो द्युलोक में हैं, जो द्युलोक के समीप हैं और जो (अग्नि मुख वाले) यजन के योग्य हैं, ऐसे विश्व के समस्त देवता हमारे आवाहन को स्वीकार कर इस कुश-आसन पर विराजमान हों और हमारे द्वारा समर्पित हवियों से तृप्त हों ॥५३ ॥

१७४९. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योमृतत्व ꣳ सुवसि भागमुत्तमम्। आदिद्दामान ꣳ सवितर्व्यूर्णुषेनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥५४ ॥

हे सवितादेव ! उदयकाल में आप यज्ञ के योग्य देवों को अमृतमय सारतत्त्वों का उत्तम भाग प्रदान करते हैं, अर्थात् सबको अग्निहोत्र करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं । फिर उदित होकर दीप्तिमान् रश्मियों को विस्तीर्ण करते हैं और प्राणियों के निमित्त रश्मियों के द्वारा जीवन का विस्तार करते हैं ॥५४ ॥

१७५०. प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववार ꣳ रथप्राम्। द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५ ॥

हे अध्वर्युगण ! आप व्यापक बुद्धि से सम्पन्न यज्ञादि कार्यों में नियुक्त हों। आप महान् ऐश्वर्यसम्पन्न, क्रान्तदर्शी, सब में व्याप्त, रथों से सम्पन्न और तेजस्वी वायुदेव की उत्तम बुद्धि द्वारा स्तुति करें ॥५५ ॥

१७५१. इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि ॥५६ ॥

हे इन्द्र और वायो ! आपके लिए यह सोम रस अभिषुत किया गया है, इस सोम के पान के निमित्त आप यहाँ अतिशीघ्र पधारें । ये सोमदेव आपका स्नेह प्राप्त करने की इच्छा करते हैं ॥५६ ॥

१७५२. मित्र ꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताची ꣳ साधन्ता ॥५७ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले मित्रदेव और पापों का शमन करने में समर्थ वरुणदेव का हम आवाहन करते हैं । वे तेजस् से सिक्त मेधा को धारण करते हैं ॥५७ ॥

१७५३. दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यात ꣳ रुद्रवर्त्तनी । तं प्रत्नथायं वेनः ॥५८ ॥

हे रुद्र के समान प्रवृत्ति वाले, दर्शनीय, अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ आएँ और बिछी हुई कुशाओं पर विराजमान हों तथा प्रस्तुत संस्कारित सोम का पान करें ॥५८ ॥

[तं प्रत्नथा (यजु ७ ।१२) और अयं वेनः (यजु ७ ।१६) दोनों मंत्रांश प्रतीक रूप में हैं ।]

१७५४. विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्य ꣳ सध्र्यक्कः । अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥५९ ॥

उत्तम चरणों में विभक्त, सर्वप्रथम मंत्राक्षररूप में स्फुरित दिव्यवाणी, परम सत्य अमृत तत्त्वों का उपदेश कर हमें आगे बढ़ाती है । इस दिव्य वाणी से सुशोभित विद्वान् यज्ञशाला में प्रस्तर खण्डों द्वारा अभिषुत सोमरस का सेवन करते हैं ॥५९ ॥

१७५५. नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुरऽ एतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता ऽ अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥६० ॥

देवों ने इस विश्व के हितैषी अग्निदेव से भिन्न, सब कार्यों में अग्रणी (अन्य किसी को) नहीं जाना । उन्होंने इनके अविनाशीरूप को जानकर विश्व के हितकारी वैश्वानर अग्नि (प्राणियों में स्थित) को, यजमान द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रवृद्ध किया ॥६० ॥

१७५६. उग्रा विघनिना मृधऽ इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडातऽ ईदृशे ॥६१ ॥

हम उग्र बल वाले, शत्रुनाशक इन्द्राग्नी का आवाहन करते हैं । वे इस प्रचण्ड युद्ध (जीवन संग्राम) में हमारा कल्याण करें ॥६१ ॥

१७५७. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ२ इयक्षते ॥६२ ॥

हे ऋत्विजो ! छन्ने से निस्सृत होने वाले, द्रोणकलश में स्थिर होने वाले, देवों की कामना वाले तथा पवित्र हुए सोम रस के लिए आप स्तुतियों का गायन करें ॥६२ ॥

१७५८. ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ । ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥६३ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! जिन मेधावी मरुद्गणों ने आपको अहि नामक शत्रु का हनन करने में और शंबर को विनष्ट करने में आगे बढ़ाया तथा जिन्होंने गौओं को छुड़ाकर लाते हुए आपकी स्तुतियाँ कीं, वे मरुद्गण सदा आपका अनुमोदन करते हैं । हे हरितवर्ण अश्व वाले इन्द्रदेव ! आप उन मरुद्गणों के साथ सोमपान करें ॥६३ ॥

१७५९. जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्रऽ ओजिष्ठो बहुलाभिमानः । अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥६४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप उग्र, हर्षवर्द्धक, ओजस्वी, अति बलाभिमानी, वेगवान्, साहसीरूप में प्रकट हुए हैं । यहाँ वृत्रवध कार्य में मरुद्गणों ने आपकी स्तुति कर सन्तुष्ट किया, उसी कार्य के निमित्त माता अदिति ने आपको गर्भ में धारण किया, यह कार्य अत्यन्त महान् है ॥६४ ॥

१७६०. आ तू नऽ इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥६५ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप अपने रक्षण कार्यों में महान् हैं, ऐसे आप हमारे पास यज्ञशाला में पधारें और हमारे इस यज्ञस्थल को सुशोभित करें ॥६५ ॥

१७६१. त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वाऽ असि स्पृधः । अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥६६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप युद्ध स्थल पर संग्राम के लिए तत्पर शत्रु-सेनाओं को पराजित करते हैं, आप सुख-उत्पादक, दुष्ट-विनाशक और सब शत्रुओं के नाशक हैं । आप हमारे हिंसक शत्रुओं को विनष्ट करें ॥६६ ॥

१७६२. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा । विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६७ ॥

हे इन्द्रदेव ! शत्रुओं पर शीघ्रता से आघात करने वाले आपके बल की द्यावा-पृथ्वी उसी प्रकार प्रशंसा करती हैं, जिस प्रकार माता-पिता अपने शिशु को मान देते हैं । जब आप वृत्र का मर्दन करते हैं, उस समय सम्पूर्ण शत्रु-सेना भय से शिथिल हो जाती है ॥६७ ॥

१७६३. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥६८ ॥

देवताओं के सुख के निमित्त यज्ञ का प्रयोग करते हैं, अतएव हे आदित्यगण ! आप हम सबके लिए कल्याणकारी हैं । आपकी शुभ संकल्पयुक्त मति हमें उपलब्ध हो । पापात्माओं की जो बुद्धि धनोपार्जन में संलग्न है, वह भी हमारे अनुकूल हो ॥६८ ॥

१७६४. अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ऽ ईशत ॥६९ ॥

हे सवितादेव ! स्वर्णमयी जिह्वा (स्वर्णिम रश्मियों) वाले आप कल्याणकारी रक्षण साधनों से हमारे गृह तथा सुख की रक्षा करें, जिससे कोई हिंसक शत्रु हम पर अधिकार न कर सके ॥६९ ॥

१७६५. प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः । वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥७० ॥

हे यजमान दम्पती ! आप दोनों, अध्वर्युओं द्वारा पाषाणों से कूटकर अभिषुत हुए उत्तमवीर तुल्य पवित्र सोम को तैयार करें । हे वायो ! आप अपने अश्वों को नियोजित कर रथ को लाएँ और यज्ञ के समीप आकर आनन्द प्राप्ति के लिए अभिषुत सोम का पान करें ॥७० ॥

१७६६. गावऽ उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥७१ ॥

हे जलधाराओ ! जिस प्रकार किरणें पृथ्वी और द्यावा दोनों रूपों को व्याप्त कर रक्षित करती हैं, उसी प्रकार स्वर्णिम कानों से (स्तुति सुनकर) आप हमारे यज्ञ के समीप आकर हमारी रक्षा करें ॥७१ ॥

१७६७. काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थऽ आ ॥७२ ॥

विद्वानों के हितैषी हे मित्रावरुणदेव ! यज्ञादि श्रेष्ठ कार्य करने में दक्षता प्राप्त आप इस याजक के यज्ञ स्थान में सोमरस पान एवं यज्ञ कर्म सम्पादन के निमित्त आगमन करें ॥७२ ॥

१७६८.दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञꣳसमञ्जाथे । तं प्रत्नथायं वेनः ।

दिव्य अध्वर्यु हे अश्विनीकुमारो ! आप सूर्य के समान कान्तिमान् रथ में आरूढ़ होकर यहाँ यज्ञस्थल पर पधारें और मधुर हवियों से यज्ञ को सम्पन्न करें ॥७३ ॥

१७६९. तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् । रेतोधाऽ आसन्महिमानऽ आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४ ॥

पवित्र होने वाले सोम की रश्मियों का प्रकाश तिरछा होकर बहुत दूर तक विस्तीर्ण हुआ है । वह नीचे की ओर भी स्थित है और ऊपर की ओर भी है । ये रश्मियाँ वीर्य अर्थात् सृजन- क्षमता को धारण करने वाली हैं और व्यापक महिमा वाली (सामर्थ्यवान्) हैं । संसार को धारण करने वाला कार्य और आत्मा को प्रेरित करने का कार्य बहुत ऊँचा (महान्) है ॥७४ ॥

१७७०. आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् । सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७५ ॥

जिस समय वैश्वानर अग्निदेव उत्पन्न होते हैं, उस समय यजमान यज्ञ स्थान में उन्हें धारण करते हैं । वह द्यावा-पृथ्वी और व्यापक अन्तरिक्ष को प्रकाश से व्याप्त करते हैं । वे क्रांतदर्शी वैश्वानर अग्निदेव हमारे हितकारी यज्ञ के लिए सब ओर से वैसे ही वरण किये जाते हैं, जैसे अश्व अन्न प्राप्ति के लिए सब ओर विचरता है ॥७५ ॥

१७७१. उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥७६ ॥

वृत्रासुर का हनन करने वाले, आनन्ददायी स्वभाव वाले इन्द्र और अग्निदेव की उत्तम स्तोत्रों -उक्थों द्वारा सम्यक्‌रूप से वन्दना करते हैं ॥७६ ॥

१७७२. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥७७ ॥

जो प्रजापतिदेव के पुत्र अविनाशी विश्वेदेवा हैं, वे हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें और भलीप्रकार हमारा कल्याण करें ॥७७ ॥

१७७३. ब्रह्माणि मे मतयः शᳬ सुतासः शुष्मऽ इयर्त्ति प्रभृतो मे अद्रिः। आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥७८॥

(इन्द्र-मरुत् संवाद के अंतर्गत इन्द्रदेव कहते हैं) हे मरुत् ! विद्या से अभिषिक्त हुए मननशील पुरुषों द्वारा की गई स्तुतियाँ अत्यंत सुखद हैं। वे इन उक्थरूप स्तोत्रों को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। हमारे अश्व हमें वहाँ (यज्ञस्थल पर) पहुँचाएँ ॥७८॥

१७७४. अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ अस्ति देवता विदानः। न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥

हे ऐश्वर्यशालिन् (इन्द्र) ! कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो आपके द्वारा संचालित न हो, आपके सदृश विद्वान् देव अन्य कोई नहीं है। हे वृद्धि को प्राप्त देव ! आपके सदृश न कोई पैदा हुआ है, न पैदा होने वाला है। आप जिन कर्मों को करेंगे, उन्हें कोई अन्य न करता है और न कर सकेगा ॥७९॥

१७७५. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञऽ उग्रस्त्वेषनृम्णः। सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥८०॥

सम्पूर्ण लोकों में वह इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जिनसे प्रकाश स्वरूप, ज्योतिष्मान्, श्रेष्ठ सूर्यदेव उत्पन्न हुए हैं, जो उत्पन्न होकर शीघ्र ही तमरूप शत्रुओं को नष्ट करते हैं। रक्षा करने वाले सम्पूर्ण देवगण उनकी प्रसन्नता से प्रसन्न होते हैं ॥८०॥

१७७६. इमाऽ उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोभि स्तोमैरनूषत ॥८१॥

हे बहुल सम्पदा के धनी आदित्य ! हमारी वाणीरूप स्तुतियाँ निश्चय ही आपकी श्री वृद्धि करें। अग्नि के सदृश पवित्र-तेजस्वी रूप को जानने के लिए विद्वान् स्तोत्रों से आपकी सब प्रकार से स्तुतियाँ करते हैं ॥८१॥

१७७७. यस्यायं विश्वऽ आर्यो दासः शेवधिपा अरिः। तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥८२॥

समस्त श्रेष्ठ मानव जिनके (इन्द्रदेव के) सेवक हैं और अनुदारमना जिनके शत्रुरूप हैं, धन की रक्षा के निमित्त आयुधधारी उन देवगणों के उपयोग के लिए ही यह समस्त वैभव प्रकट होता है ॥८२॥

१७७८. अयᳬ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽ इव पप्रथे। सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥८३॥

ये इन्द्रदेव ऋषियों के द्वारा बलों से संयुक्त किये गये हैं। इन कान्तिमान् देव की बल-महत्ता सत्य है। वे समुद्र के समान विस्तीर्ण हैं। हम यज्ञों में विप्रजनों के निर्देशानुसार सहस्रों प्रकार से उनकी महिमा का स्तवन करते हैं ॥८३॥

१७७९. अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वᳬ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्। हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशᳬसऽ ईशत ॥८४॥

हे सवितादेव ! स्वर्णमयी जिह्वा वाले, सत्यभाषी आप आज अपने कल्याणप्रद श्रेष्ठ रक्षण-साधनों द्वारा हमारे गृह को रक्षित करें। नवीन सुख प्राप्ति के निमित्त हमें परिरक्षित करें। हिंसक शत्रु हम पर प्रभुत्व न कर सकें ॥८४॥

१७८०. आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः । अन्तः पवित्रऽ उपरि श्रीणानोयᳪ शुक्रो अयामि ते ॥८५ ॥

हे वायो ! आप हमारे इस दिव्यता का स्पर्श करने वाले श्रेष्ठ यज्ञ में पधारें । ऊपर से सिञ्चित हुआ आकाशीय सोम पात्र में स्थित होता है । श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हुए हम इसे आपके लिए अर्पित करते हैं ॥८५ ॥

१७८१. इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्वऽ इज्जनोनमीवः सङ्गमे सुमनाऽ असत् ॥८६ ॥

यहाँ इस यज्ञ में उत्तम रूप से देखने वाले, उत्तम रूप से आहूत किये जाने योग्य इन्द्र और वायुदेव का हम आवाहन करते हैं, जिससे कि हमारे पुत्र-पौत्रादि जन व्याधिरहित एवं उत्तम मन वाले हों ॥८६ ॥

१७८२. ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये । यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टयऽ आचक्रे हव्यदातये ॥८७ ॥

निश्चय ही जो मनुष्य अभीष्ट लाभ के लिए और हविदान के लिए मित्रावरुणदेव का आवाहन करते हैं, वे मनुष्य देवकर्म करते हुए कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥८७ ॥

१७८३. आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना । दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥८८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे यज्ञ में पधारें और इस यज्ञ की शोभा बढ़ाएँ । यहाँ आकर मधुर रसों का पान करें । हे वर्षणशील देवो और धन के स्वामियो ! आप हमें दुग्धादि पेयों से अभिपूरित करते हुए यहाँ आगमन करें । हमें पीड़ित न करें ॥८८ ॥

१७८४. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९ ॥

ब्रह्मणस्पति हमारे अनुकूल होकर यज्ञ में आगमन करें । हमें सत्यरूप दिव्यवाणी प्राप्त हो । मनुष्यों के हितकारी देवगण हमारे यज्ञ में पंक्तिबद्ध होकर पधारें तथा शत्रुओं का विनाश करें ॥८९ ॥

१७८५. चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि । रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहᳪ हरिरेति कनिक्रदत् ॥९० ॥

चन्द्रमा से निस्सृत, शुभ्र दीप्तियुक्त, तेजस्विता को धारण किये हुए हरिताभ सोम पर्जन्यरूप में घोर गर्जन करते हुए द्युलोक एवं अन्तरिक्ष से गमन करते हैं । वे मनुष्यों द्वारा वाञ्छित स्वर्ण सदृश तेजस्वी धनों को प्रदान करते हैं ॥९० ॥

१७८६. देवं-देवं वोवसे देवं-देवमभिष्टये । देवं-देवᳪ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥९१ ॥

श्रेष्ठ स्तोत्रों से स्तुति करते हुए हम अपनी रक्षा के लिए देवों के अधिपति का आवाहन करते हैं । अभीष्ट सुख प्राप्ति के लिए हम देवाधिपति देव को आहुति समर्पित करते हैं और अन्न प्राप्ति के लिए हम सर्वोच्च देव का इस यज्ञ में आवाहन करते हैं ॥९१ ॥

१७८७. दिवि पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन्। क्ष्मया वृधानऽ ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तम: ॥९२ ॥

सब मनुष्यों के हितैषी महान् अग्निदेव द्युलोक के पृष्ठ में दीप्तिमान् होते हैं। भूलोक में मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवियों से प्रवृद्ध होकर अपने ओज से अन्नादि में वृद्धि कर मनुष्यों का पोषण करते हैं और अपनी ज्योति द्वारा तमिस्रा को नष्ट करते हैं ॥९२ ॥

१७८८. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्य:। हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिꣳशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३ ॥

हे इन्द्राग्नी ! यह उषा पादरहित होकर भी पादयुक्त प्राणियों से पूर्व आगमन करती है। सिररहित होते हुए भी उन प्राणियों के सिरों को प्रेरित करती है। वह प्राणियों की वागिन्द्रिय द्वारा शब्द करती हुई आगे बढ़ती है और एक दिन में तीस पदों (मुहूर्तों) को लाँघकर आगे बढ़ती है ॥९३ ॥

१७८९. देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातय:। ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविद: ॥९४ ॥

वे सब मननशील प्रवृत्ति वाले, दानशील, अति पराक्रमी विश्वेदेवा, समानरूप से हमारे लिए आज धनादि प्रदान करें। वे भविष्य में भी हमारे पुत्र-पौत्रादि के निमित्त विविध ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥९४ ॥

१७९०. अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्। देवास्त ऽ इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥९५ ॥

इन्द्रदेव उच्छृङ्खल पुरुषों को प्रताड़ित करते हैं, हिंसक शत्रुओं को दूर भगाते हैं और अन्नादि ऐश्वर्यों से समृद्ध करते हैं। हे इन्द्रदेव ! हे अग्निदेव ! हे मरुद्गणो ! सब देवगण आपके मित्र-भाव को प्राप्त करने के लिए यत्नशील हैं ॥९५ ॥

१७९१. प्र वऽइन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥९६ ॥

हे मरुद्गणो ! आप लोग व्यापक महिमा वाले इन्द्रदेव के लिए वेद-स्तोत्रों का उच्चारण करें। वह वृत्रहन्ता और शतकर्मा इन्द्रदेव सौ ग्रंथि वाले वज्र से वृत्र-असुर का हनन करते हैं ॥९६ ॥

१७९२.अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳशवो मदे सुतस्य विष्णवि। अद्या तमस्य महिमानमायवोनुष्टुवन्ति पूर्वथा। इमाऽ उ त्वा यस्यायमयꣳसहस्रमूर्ध्व ऽ ऊ षु ण: ॥९७ ॥

वे इन्द्र-विष्णुदेव सोमरस से आनन्दित होकर यजमान के बल-पराक्रम को प्रवृद्ध करते हैं। वे यजमान पूर्वकालीन ऋषियों के समान उन इन्द्रदेव की महिमा की सम्यक्‌रूप से स्तुति करते हैं ॥९७ ॥

['इमा उ त्वा' (३३।८१) "यस्यायम्" (३३।८२), "अयं सहस्रम्" (३३।८३) और "ऊर्ध्व ऊ षु ण:" (११।४२) सन्दर्भित मन्त्रों के प्रतीक अंश रूप हैं।]

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— वत्सप्री १ । विरूप २,४ । गोतम ३ । कुत्स ५, २९, ३७-३८, ४२, ६८ । वामदेव ६, ५४, ६५ । विश्वामित्र ७, २२, २६, ६०, ६३, ७५ । भरद्वाज ८-९, १३, ६१, ६९, ८४ । मेधातिथि १०, ४५-४६, ८१-८३, ९७ । पराशर शाक्त्य ११ । अत्रिदुहिता विश्ववारा १२ । वसिष्ठ १४, १८, २०, ४४, ७०, ७६, ८८ । प्रस्कण्व १५, ३१-३२, ३६ । वामदेव गोतम १६ । लुशोधानाक १७,५२ । पुरुमीढ-अजमीढ १९,७१ । सुनीति, अवत्सार काश्यप, वेन २१ । सुचीक २३ । त्रिशोक २४ । मधुच्छन्दा २५, ५७ । अगस्त्य २७, ३४, ७८-७९ । गौरीविति शाक्त्य २८ । विभ्राट् सौर्य ३० । प्रस्कण्व, अवत्सार काश्यप, वेन, कुत्स आंगिरस ३३ । श्रुतकक्ष-सुकक्ष ३५ । जमदग्नि ३९-४०, ८५, ८७ । नृमेध ४१,६६-६७, ९५-९६ । हिरण्यस्तूप आंगिरस ४३ । कुसीदी काण्व, अवत्सार काश्यप, वेन, कुत्स आंगिरस, अगस्त्य, मेधातिथि, मधुच्छन्दा ४७ । प्रतिक्षत्र ४८ । अवत्सार काश्यप ४९ । प्रगाथ ५० । कूर्म गार्त्समद ५१ । सुहोत्र ५३, ७७, ९३ । आदित्य याज्ञवल्क्य, ऋजिश्वा ५५-५६ । मधुच्छन्दा, अवत्सार काश्यप, वेन ५८ । कुशिक ५९ । देवल अथवा असित ६२ । गौरीविति ६४ । दक्ष ७२ । प्रस्कण्व, अवत्सार काश्यप, वेन ७३ । परमेष्ठी प्रजापति ७४ । बृहद्दिव आथर्वण ८० । तापस ८६ । कण्व ८९ । त्रित आप्त्य ९० । मनु वैवस्वत ९१ । मेध ऐन्द्र ९२ । मनु ९४ ।

देवता— अग्नि १-७, ९-१७ ।वैश्वानर ८,६०, ७५, ९२ । इन्द्र १८-२०, २२-२९, ५९, ६३-६७, ७१, ९०, ९५-९६ । इन्द्र, विश्वेदेवा, वेन २१ । सूर्य ३०-३२, ३४-४३ । सूर्य, विश्वेदेवा, वेन ३३,७३ । विश्वेदेवा ४४-४६, ४८-५४,७७,८९,९१,९४ । सूर्य, विश्वेदेवा, वेन, अग्नि ४७ । वायु ५५,७०,८५ । इन्द्र-वायु ५६,८६ । मित्रावरुण ५७,७२,८७ । अश्विनी कुमार, विश्वेदेवा, वेन ५८ । इन्द्राग्नी ६१,७६, ९३ । सोम ६२ । आदित्य ६८,८१-८३ । सविता ६९, ८४ । भाववृत्त ७४ । इन्द्रामरुत् ७८-७९ । महेन्द्र ८०, ९७ । अश्विनीकुमार ८८ ।

छन्द— स्वराट् पंक्ति १, ५, ७, १६, १८ । गायत्री २, ९, १९, ४५-४६, ५६-५८, ६५,७१,७६ । निचृत् गायत्री ३,४, २०, २१, २४, २५,३१-३३, ३६, ६१,६२, ७२,७३,७७ । भुरिक् त्रिष्टुप् ६, १७, २३, ६० । त्रिष्टुप् ८, ३४, ३७, ३८, ५०, ५१, ५३, ५५, ६३, ६४, ७४, ७९ । विराट् गायत्री १० । विराट् त्रिष्टुप् ११,२७, ४३, ६८, ७०, ७८ । निचृत् त्रिष्टुप् १२, २२, ४२, ४४, ४८, ५२, ५४ । भुरिक् पंक्ति १३, २६, २८, ५९ । अनुष्टुप् १४ । बृहती १५, ३९ । जगती २९ । विराट् जगती ३० । पिपीलिकामध्या निचृत् गायत्री ३५ । भुरिक् बृहती ४०, ९५ । निचृत् बृहती ४१, ८१, ८२,८६-८८, ९०, ९२, ९६ । स्वराट् आर्ची गायत्री ४७ । निचृत् जगती ४९, ६९, ७५, ८४ । भुरिक् अनुष्टुप् ६६, ८९, ९३ । पंक्ति ६७, ८०, ९४ । निचृत् पंक्ति ८३ । विराट् बृहती ८५, ९१ । स्वराट् सतोबृहती ९७ ।

॥ इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुस्त्रिंशोध्यायः ॥

१७९३. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१ ॥

जाग्रत् अवस्था में जिस प्रकार मन दूर-दूर गमन करता है- सुप्तावस्था में भी उसी प्रकार (दूर-दूर) जाता है, वही निश्चितरूप से तेजस्वी इन्द्रियों का ज्योतिरूप (प्रवर्त्तक) है। जीवात्मा का एकमात्र दिव्य माध्यम वही (मन) है। इस प्रकार का वह हमारा मन श्रेष्ठ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो ॥१ ॥

१७९४. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२ ॥

सत्कर्मों में संलग्न मनीषीगण जिस मन से यज्ञीय श्रेष्ठ कर्मों को सम्पादित करते हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में विद्यमान है तथा यज्ञों में अपूर्व एवं आदरणीय भाव से जो सुशोभित होता है, वह हमारा मन श्रेष्ठ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो ॥२ ॥

१७९५. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्नऽ ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३ ॥

प्रखर ज्ञान से सम्पन्न, चेतनशील तथा धैर्य-सम्पन्न जो मन है, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में अमर प्रकाश-ज्योति स्वरूप है, जिसके बिना कोई भी कार्य सम्पादन सम्भव नहीं, ऐसा हमारा मन श्रेष्ठ-कल्याणकारी शुभ संकल्पों से युक्त हो ॥३ ॥

१७९६. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४ ॥

जिस अविनाशी मन की सामर्थ्य से सभी भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल के ज्ञान को प्रत्यक्षीभूत किया जाता है तथा जिससे सप्त याज्ञिकों से युक्त यज्ञ को विस्तारित किया जाता है, ऐसा हमारा मन श्रेष्ठ-शुभ संकल्पों से युक्त हो ॥४ ॥

१७९७. यस्मिन्नृचः साम यजू ँ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५ ॥

जिस मन में वैदिक ऋचाएँ प्रतिष्ठित हैं, जिसमें साम व यजुर्वेद के मन्त्र उसी प्रकार स्थित हैं, जिस प्रकार रथ के पहिये में 'आरे' स्थित होते हैं तथा जिस मन में प्रजाओं के सम्पूर्ण चित्तों का ज्ञान समाहित है, ऐसा हमारा वह मन कल्याणकारी-शुभ संकल्पों से युक्त हो ॥५ ॥

१७९८. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेभीशुभिर्वाजिनऽ इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६ ॥

जिस प्रकार कुशल सारथी लगाम के नियन्त्रण से गतिमान् अश्वों को गंतव्य पथ पर (इधर-उधर) ले जाते हैं, उसी प्रकार जो मन मनुष्यों को लक्ष्य तक पहुँचाता है, जो जरारहित, अति वेगशील इस हृदय स्थान में स्थित है, ऐसा हमारा मन कल्याणकारी-श्रेष्ठ विचारों से युक्त हो ॥६ ॥

१७९९. पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥७ ॥

हम बलोत्पादक, धारण-योग्य अन्न की प्रार्थना करते हैं, जिसकी शक्ति-सामर्थ्य से त्रिलोक-अधिपति इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को खण्ड-खण्ड करके मर्दित किया था ॥७ ॥

१८००. अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र णऽ आयूꣳषि तारिषः ॥८ ॥

हे अनुमते (विशिष्ट देवता) ! आप हमें कल्याणकारी सुख प्रदान करें । बुद्धिबल एवं दक्षता हेतु हमें संवर्धित करें तथा हमारी आयुष्य को निश्चित ही प्रवृद्ध करें अर्थात् बढ़ाएँ ॥८ ॥

१८०१. अनु नोद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ।

हे अनुमते ! आज आप हमारे यज्ञ को देवताओं के निमित्त अनुकूल बनाएँ और हविवाहक अग्निदेव भी हविष्य प्रदान करने वाले यजमान हेतु आनन्दप्रद हों ॥९ ॥

१८०२.सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥

अतिकेशयुक्त सम्पूर्ण प्रजाओं का पालन करने वाली, हे सिनीवाली देवि ! आप देवताओं की बहिन हैं, ऐसी आप हमारे द्वारा विशेष प्रकार से प्रदत्त आहुतिरूप हविष्य को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें । हे दिव्यगुण सम्पन्न देवि ! हमारे लिए सन्तानरूप प्रजा को उपलब्ध कराएँ ॥१० ॥

१८०३. पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥११ ॥

समान स्रोत वाली (श्रेष्ठ प्रवाहशील) पाँच सरिताएँ (नदियाँ) जिस प्रकार महानदी सरस्वती में समाहित हो जाती हैं, उसी प्रकार वही सरस्वती देश में पाँच (नदियों के) रूप में (प्रसिद्ध) हुई (अर्थात् विद्या, पाँच प्रकार की प्रतिभाओं – श्रमपरक, विचारपरक, अर्थपरक, कलापरक और भावपरक को संयुक्त करके उन्हें प्रगतिशील बनाती है) ॥११ ॥

१८०४. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऽ ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा । तव व्रते कवयो विद्मनापसोजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१२ ॥

हे अग्ने ! आप शारीरिक अंगों के प्राणरूप, सर्वद्रष्टा, दिव्यतायुक्त, कल्याणकारी और देवताओं के सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं ।आपके व्रतानुशासन से क्रान्तदर्शी और कर्मों के ज्ञाता मरुद्गण श्रेष्ठ-तीक्ष्ण आयुधों से युक्त हुए हैं ॥१२ ।

१८०५. त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य । त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳरक्षमाणस्तव व्रते ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आप वन्दना के योग्य हैं । अपने अनुशासन के व्रती इस ऐश्वर्यशाली यजमान का संरक्षण करें । हमारी शारीरिक क्षमता को अपनी सामर्थ्य से पोषित करें । शीघ्रतापूर्वक संरक्षित करने वाले आप यजमान के पुत्र-पौत्रादि-सन्तानों और गवादि पशुओं के संरक्षक हों ॥१३ ॥

१८०६. उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान । अरुषस्तूपो रुशदस्य पाजऽ इडायास्पुत्रो वयुनेजनिष्ट ॥१४ ॥

पृथ्वी से उत्पन्न अग्निदेव विशिष्ट ज्ञानयुक्त कर्म के साथ प्रादुर्भूत हुए हैं, इनके प्रज्वलित तेज को जो अरणि ग्रहण करे, वह अरणि प्रेरित होकर ज्वलनशील अग्नि को शीघ्र ही उत्पन्न करती है ॥१४ ॥

१८०७. इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्याऽ अधि । जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! पृथ्वी के केन्द्रीय स्थल उत्तरवेदी के मध्य में हम आपको स्थापित करते हैं । हमारे द्वारा समर्पित हवियों को आप ग्रहण करें ॥१५ ॥

१८०८. प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् । सुवृक्तिभिः स्तुवतऽ ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१६ ॥

हम इन्द्रदेव के शक्ति-संवर्धक स्तवन से परिचित हैं । शक्ति की आकांक्षा से युक्त, श्रेष्ठ वाणियों से सम्पन्न, ज्ञानवान्, नेतृत्व के लिए विख्यात इन्द्रदेव की हम अंगिरा के सदृश स्तुति-मंत्रों से अर्चना करते हैं ॥१६ ॥

१८०९. प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यᳫं शवसानाय साम । येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाऽ अर्चन्तो अङ्गिरसो गाऽ अविन्दन् ॥१७ ॥

हे ऋत्विजो ! आप अति पराक्रमी इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए स्तुतिगान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करें । हमारे पूर्वज ऋषियों ने इसी प्रकार अन्न (हवि) एवं साम (गान) के द्वारा सूर्य मण्डल से तेजस्विता को धारण किया था ॥१७ ॥

१८१०. इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयाᳫंसि । तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी प्रकार के श्रेष्ठ ज्ञान आप से ही उपलब्ध होते हैं । सोमरस विनिर्मित करने वाले आपके मित्ररूप याजक आपकी कामना करते हैं । वे मनुष्यों के कष्टकारी दुर्व्यवहार को सहते हुए भी सोमाभिषवण करते हैं तथा अन्न को धारण करते हैं ॥१८ ॥

१८११. न ते दूरे परमा चिद्रजाᳫंस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् । स्थिराय वृष्णो सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥१९ ॥

हरिनामक अश्वों से युक्त हे इन्द्रदेव ! अग्नि के प्रदीप्त होने की स्थिति में, घनिष्ठ मित्रता के लिए ये प्रातःकालीन यज्ञ (सवन) किये जा रहे हैं । इन अभिषवण प्रस्तरों को आपके लिए नियुक्त किया गया है, इसलिए आप अश्वों के साथ आगमन करें ; क्योंकि अतिदूर का स्थान भी आपके लिए विशेष महत्त्व का नहीं, अर्थात् अधिक दूर नहीं है ॥१९ ॥

१८१२. अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिᳫं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् । भरेषुजाᳫं सुक्षितिᳫं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२० ॥

हे सोम ! संग्रामों में असहनीय पराक्रम दिखाने वाले, शत्रुओं पर विजय पाने वाले, विशाल सेनाओं के पालक, जलदाता, शक्ति-संरक्षक, संग्रामों के विजेता, श्रेष्ठ निवासयुक्त तथा कीर्तिमान् आपके विजयशील स्वरूप से हम प्रसन्न होते हैं ॥२० ॥

१८१३. सोमो धेनुᳫं सोमो अर्वन्तमाशुᳫं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यᳫं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२१ ॥

जो यजमान सोमदेव के लिए आहुति समर्पित करते हैं, उन्हें ये सोम दुधारू गौएँ प्रदान करते हैं । ये सोम अतिगतिशील अश्व प्रदान करते हैं तथा वही सोम कर्मकुशल, गृहकार्य में दक्ष, यज्ञ में पारंगत, सभा-योग्य और पितृ-आज्ञापालक वीर पुत्र प्रदान करते हैं ॥२१ ॥

१८१४. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः । त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२ ॥

हे सोमदेव ! आप इन समस्त ओषधियों को उत्पन्न करते हैं । आपने जल और धेनुओं को उत्पन्न किया है । आपने ही अन्तरिक्ष को विस्तृत किया है और अपनी तेजस्विता से अन्धकार को नष्ट किया है ॥२२ ॥

१८१५. देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳसहसावन्नभि युध्य । मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ ॥२३ ॥

हे दिव्य शक्ति-सम्पन्न सोम ! विचारपूर्वक श्रेष्ठ धन का भाग हमें प्रदान करें । दान के लिए प्रवृत्त हुए आपको कोई प्रतिबन्धित नहीं करेगा; क्योंकि आप ही अति समर्थ कार्यों के साधक हैं । स्वर्गकामना युक्त हमें दोनों लोकों में सुख प्रदान करें ॥२३ ॥

१८१६. अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् । हिरण्याक्षः सविता देव ऽ आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥२४ ॥

हिरण्यदृष्टि (सुनहली किरणों) से युक्त सवितादेव, हविदाता यजमान के लिए श्रेष्ठ रत्नों को प्रदान करने के लिए यहाँ आएँ, वही सवितादेव पृथ्वी की आठों दिशाओं, तीनों लोकों, सप्त सागरों तथा नानाविध योजनाओं को आलोकित करते हैं ॥२४ ॥

१८१७. हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥२५ ॥

विविधरूपों में दर्शनीय, स्वर्णिम रश्मियों से सुशोभित, सर्व-उत्पादक सवितादेव आप द्यावा-पृथिवी के मध्य में सूर्यदेव को प्रेरित करते हैं । इन्हीं से व्याधियों और रोगों को समाप्त करते हैं तथा जब वे अस्ताचल में जाते हैं, तब अन्धकाररूपी कृष्ण-रज से दिव्यलोक को अभिव्याप्त करते हैं ॥२५ ॥

१८१८. हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथःसुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् । अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥२६ ॥

हिरण्य-हस्त (स्वर्णिम तेजस्वी किरणों से युक्त), प्राणदाता, कल्याणकारक, उत्तमसुखदायक, दिव्यगुण सम्पन्न सूर्यदेव, सम्पूर्ण मनुष्यों के समस्त दोषों को, असुरों और दुष्कर्मियों को नष्ट करते हुए उदित होते हैं— ऐसे सूर्यदेव हमारे लिए अनुकूल हों ॥२६ ॥

१८१९. ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोरेणवः सुकृताऽअन्तरिक्षे । तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥२७ ॥

हे सवितादेव ! अन्तरिक्षलोक में रजरहित शाश्वत मार्ग, जो श्रेष्ठ रीति से विनिर्मित हुए हैं, ऐसे उत्तम मार्गों से हमें ले चलें और हमें संरक्षित करते हुए श्रेय मार्ग का संदेश प्रदान करें ॥२७ ॥

१८२०. उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥२८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों इस यज्ञस्थल पर सोमपान के लिए पधारें । आप दोनों ही अक्षय सामर्थ्यों द्वारा हमारे लिए सुखों को उपलब्ध कराएँ ॥२८ ॥

१८२१. अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् । अद्यूत्येवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२९ ॥

हे दर्शनयोग्य, शक्तिसम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी वाणी और बुद्धि को सत्कर्मों में नियोजित करें । हम याजकगण सन्मार्ग से उपलब्ध होने वाले अन्न हेतु आप दोनों का आवाहन करते हैं । आप दोनों ही यज्ञ में हमारी वृद्धि के कारण सिद्ध हों ॥२९ ॥

१८२२. द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन-रात हिंसारहित श्रेष्ठ धन से हमें सभी ओर से संरक्षित करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु , पृथिवी और द्युलोक आपके द्वारा प्रदत्त धन के संरक्षण में सहायक हों ॥३० ॥

१८२३. आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३१ ॥

स्वर्णिम किरणों के रथ पर आरूढ़ होकर भ्रमण करने वाले सवितादेवता अपनी तेजस्विता से पृथ्वी, अन्तरिक्ष आदि लोकों को प्रकाशित करते हैं— निरीक्षण करते हैं । अपनी दिव्यता से देव, मानव आदि सभी प्राणियों को कर्मों में प्रेरित करते हुए पधारते हैं ॥३१ ॥

१८२४. आ रात्रि पार्थिवꣳरजः पितुरप्रायि धामभिः । दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस ऽ आ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥३२ ॥

हे रात्रिदेवि ! आप भूलोक को तथा अन्तरिक्ष लोक के स्थानों को पूर्ण करती हैं । आप महान् दिव्यलोक के स्थानों को संव्याप्त करती हैं । आपकी महिमा से इस प्रकार अंधकार सर्वत्र संव्याप्त होता है ॥३२ ॥

१८२५. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥३३ ॥

धन-धान्य से सम्पन्न हे उषादेवि ! आप हमारे लिए आश्चर्यजनक उत्तम धन-सम्पदा को प्रदान करें-जिसकी सहायता से पुत्र-पौत्रादि का हम भली-भाँति पालन-पोषण कर सकें ॥३३ ॥

१८२६. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम ॥३४ ॥

प्रभातकाल में यज्ञाग्नि के रूप में हम अग्निदेव का आवाहन करते हैं । प्रभात में ही यज्ञ की सफलता के निमित्त इन्द्रदेव, मित्रावरुण, अश्विनीकुमारों , भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रदेव का आवाहन करते हैं ॥३४ ॥

१८२७. प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता । आध्रश्चिद्यं मन्यमान- स्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५ ॥

हम प्रसिद्ध प्रभात वेला में यज्ञ करते समय जयशील, प्रचण्ड-अदितिपुत्र, सूर्य को आमंत्रित करते हैं, जो विश्व के धारणकर्त्ता हैं । निर्धन, रोगी तथा राजा सभी अभीष्ट सिद्धि के लिए जिनके अनुग्रह की कामना करते हैं । सभी "मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें" इस प्रकार से उनकी वन्दना करते हैं ॥३५ ॥

१८२८. भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३६ ॥

हे उत्कृष्ट मार्गप्रेरक भगदेव ! आप अविनाशी धन प्राप्त कराने के माध्यम हैं । हमें सद्‌बुद्धि प्रदान करके हमारा संरक्षण करें । हे भगदेव ! हमें गौ और अश्वादि से समृद्ध करें । भली - भाँति नेतृत्व करने वाले सहायकों (सन्तानों) से हम सम्पन्न हों ॥३६ ॥

१८२९. उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्वऽ उत मध्ये अह्नाम्। उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाᳬसुमतौ स्याम ॥३७ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव (सूर्यदेव) ! हम सूर्योदय काल में, सूर्यास्त समय में और मध्याह्न काल में भी धन-सम्पन्न रहें तथा सदैव देवताओं के अनुरूप श्रेष्ठ-चिंतन में निरत रहें ॥३७ ॥

१८३०. भगऽ एव भगवाँ२ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्वऽ इज्जोहवीति स नो भग पुरऽ एता भवेह ॥३८ ॥

हे देवगण ! समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी भग देवता के अनुग्रह से हम भी समस्त वैभव-सम्पदा से सम्पन्न हों। हे भग (ऐश्वर्यवान्) ! सभी मनुष्य आपको आवाहित करते हैं। हे ऐश्वर्याधिपति ! ऐसे सुप्रसिद्ध आप हमारे अग्रणी होकर समस्त कार्यों को सफल करें ॥३८ ॥

१८३१. समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिनऽ आ वहन्तु ॥३९ ॥

उषाकाल में देवों की प्रसन्नता हेतु श्रेष्ठ यज्ञादिकर्म सम्पन्न होते हैं। जैसे समुद्री अश्व अपने पवित्र पैर बढ़ाने तथा गतिशील घोड़े रथवहन करने हेतु तैयार रहते हैं, वैसे भगदेव श्रेष्ठ ऐश्वर्यों से हमें सम्पन्न करें ॥३९ ॥

[समुद्री अश्व के संबोधन से समुद्र में तीव्र गति से संचरित होने वाले अश्वशक्ति युक्त किसी यान का संकेत यहाँ अनुभव किया जाता है ।]

१८३२. अश्वावतीर्गोमतीर्न ऽ उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४० ॥

अश्वों से युक्त, गौ से युक्त, वीर सन्तानों से सम्पन्न, कल्याण-स्वरूपा प्रभात वेला जिस प्रकार घृतयुक्त दूध को प्रदान करती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त करने वाली प्रभात वेलाएँ (उषाएँ) हमारे अज्ञान रूप बंधनों को भी सदा हटाएँ। हे देवताओ ! आप सभी हमारी रक्षा करते हुए सदैव हमारा कल्याण करें ॥४० ॥

१८३३. पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्तऽ इह स्मसि ॥४१ ॥

हे पूषादेव ! आपके व्रतानुशासन में तत्पर हम कभी भी विनष्ट न हों। यहाँ हम यज्ञादि अनुष्ठानों में आपकी प्रार्थना करते हैं ॥४१ ॥

१८३४. पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम्। स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियᳬसीषधाति प्र पूषा ॥४२ ॥

उत्तम स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जो पूषा देवता हमें सत्य मार्ग की प्रेरणा प्रदान करते हैं, वही हमें आह्लादप्रद और संतापनाशक साधनों को प्रदान करें। वे हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कर्मों में संलग्न करें ॥४२ ॥

१८३५. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा ऽ अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥४३ ॥

सर्वव्यापक, सबके संरक्षक और अविनाशी विष्णु देव तीनों लोकों को विशेष रूप से विनिर्मित करते एवं चलाते हैं तथा अपनी त्रिविध शक्तियों (अग्नि, वायु, आदित्य) से सम्पूर्ण विश्व को धारण किये हुए हैं ॥४३ ॥

१८३६. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाᳬसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥४४ ॥

ब्रह्मनिष्ठ जीवनयापन करने वाले तथा आलस्य-प्रमादादि से रहित सदैव श्रेष्ठ कर्म करने वाले साधक अन्तर्यामी परमेश्वर के सर्वोत्तम परमधाम को प्राप्त करते हैं ॥४४ ॥

१८३७. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥४५ ॥

जलधाराओं से युक्त, समस्त प्राणियों की आश्रयस्थल, व्यापक पृथ्वी मधुर रस के दोहन में समर्थ है। श्रेष्ठ रूपवाली, जरारहित, समस्त सामर्थ्यों की आदि स्रोत द्यावा-पृथिवी वरुणदेव की शक्ति से सुदृढ़ हुई है ॥४५ ॥

१८३८. ये नः सपत्ना ऽ अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्। वसवो रुद्राऽ आदित्याऽ उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥४६ ॥

जो हमारे शत्रु हैं, वे पराभूत हों; हम उन शत्रुओं को इन्द्राग्नी की सामर्थ्य से विनष्ट करते हैं। वसु, रुद्र और आदित्यगण— ये सभी हमें ऊँचे पदों पर आसीन करके पराक्रमी, ज्ञानसम्पन्न तथा सबके अधिपति बनाएँ ॥४६ ॥

१८३९. आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना। प्रायुस्तारिष्टं नी रपाᳬंसि मृक्षतᳬं सेधतं द्वेषो भवतᳬं सचाभुवा ॥४७ ॥

हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! आप दोनों तैंतीस देवताओं सहित हमारे इस यज्ञ में मधुपान के लिए पधारें। हमारी आयु बढ़ाएँ और हमारे पापों को भली-भाँति विनष्ट करें। हमारे प्रति द्वेष-भावना को समाप्त करके सभी कार्यों में सहायक बनें ॥४७ ॥

१८४०. एष व स्तोमो मरुतऽ इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः। एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥४८ ॥

हे मरुद्गण ! सम्माननीय व उत्तम फलप्रदायक, ये स्तोम तथा निष्काम यजमान की सत्यप्रिय वाणीरूप स्तुतियाँ आपके प्रति समर्पित हैं। आप हमारे शरीरों को दीर्घायुष्य और पोषक तत्त्व प्रदान करने के लिए यहाँ पदार्पण करें; जिससे जीवनीशक्ति प्रदायक बलवर्द्धक अन्न का हम उपयोग करें ॥४८ ॥

१८४१. सहस्तोमाः सहच्छन्दसऽ आवृतः सहप्रमा ऽ ऋषयः सप्त दैव्याः। पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा ऽ अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४९ ॥

स्तोम और गायत्र्यादि छन्दों के साथ कर्म में अनुष्ठित, शब्द प्रमाण के परीक्षण में तत्पर, ज्ञानवान्, दिव्य सप्तर्षियों ने पूर्व ऋषियों के मार्ग का अवलम्बन करके इस विराट् सृष्टि यज्ञ का प्रादुर्भाव किया। जैसे अभीष्ट स्थान को पाने की कामना से प्रेरित रथी, लगाम से अश्वों को गन्तव्य तक ले जाते हैं, वैसे ही ये (यज्ञ) भी अभीष्ट स्वर्गस्थान में ले जाने के माध्यम हैं ॥४९ ॥

१८४२. आयुष्यं वर्चस्यᳬं रायस्पोषमौद्भिदम्। इदᳬं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥५० ॥

यह आयु को बढ़ाने वाला, कान्तिमान्, धनरूप, पुष्टिवर्धक, भूमि से उत्पादित, तेजयुक्त, प्रकाशक, स्वर्णरूपी वैभव, विजय के लिए हमें निश्चितरूप से उपलब्ध हो ॥५० ॥

१८४३. न तद्रक्षाᳬंसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजᳬं ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायणᳬं हिरण्यᳬं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥५१ ॥

उस स्वर्ण (दैवी सम्पदा) पर राक्षस आक्रमण नहीं करते और पिशाच भी आक्रमण नहीं करते । निश्चित ही यह सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले देवताओं का तेज है । जो अलंकार रूप (आभूषण) में स्वर्ण को धारण करते हैं, वे (दैवी सम्पदा से विभूषित) मनुष्य भी दीर्घायुष्य को प्राप्त करते हैं ॥५१ ॥

१८४४. यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यꣳशतानीकाय सुमनस्यमानाः । तन्मऽ आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥५२ ॥

दक्षवंशीय ब्राह्मणों ने विचारपूर्वक जिस स्वर्ण (स्वर्णिम विभूतियों) को अनेक सेनाओं से युक्त राजा के लिए बाँधा (धारण किया) था, उसी स्वर्ण को शतायु प्राप्ति के लिए हम अपने शरीर में धारण करते हैं । हम चिरंजीवी होकर वृद्धावस्था तक जीवित रहें ॥५२ ॥

१८४५. उत नोहिर्बुध्न्यः शृणोत्वजऽ एकपात्पृथिवी समुद्रः । विश्वे देवाऽ ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता ऽ अवन्तु ॥५३ ॥

अहिर्बुध्न्य देवता, अज, एकपात्, पृथिवी, समुद्र तथा सर्वदेव समूह हमारे वचनों का श्रवण करें । सत्य के संवर्धक, मन्त्रों द्वारा स्तुत्य, बुद्धिमानों से प्रशंसित तथा हमारे द्वारा आवाहित ये सभी देवता हमें भली-भाँति संरक्षित करें ॥५३ ॥

१८४६. इमा गिरऽ आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि । शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अꣳशः ॥५४ ॥

इन घृतों को, हवन करनेवाली स्तुतियों के द्वारा, बुद्धिरूप जुहू से चिरकाल तक प्रकाशमान आदित्यों के लिए समर्पित करते हैं । मित्र, अर्यमा, भग, त्वष्टा, वरुण, दक्ष और अंश नामक आदित्य ये सभी हमारे द्वारा की जाने वाली उत्तम स्तुतियों का श्रवण करें ॥५४ ॥

१८४७. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् । सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥५५ ॥

शरीर में स्थित त्वक्, चक्षु, श्रवण, रसना, घ्राण, मन, बुद्धि अथवा सप्त प्राणादि रूप सप्तर्षि निरंतर प्रमाद रहित होकर इस शरीर को संरक्षित करते हैं । ये सातों सोते हुए देहधारियों के हृदयाकाश में स्थित विज्ञानात्मा को प्राप्त होते हैं । वहाँ सुषुप्ति को प्राप्त न होने वाले, प्राणियों की रक्षा में सतत संलग्न, यज्ञ में उपस्थित प्राण और अपानरूप देवता जाग्रत् रहते हैं ॥५५ ॥

१८४८. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्र यन्तु मरुतः सुदानवऽ इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥५६ ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! आप तत्पर हों । हम देवत्व के धारण की इच्छा करते हुए आपके आगमन की प्रार्थना करते हैं । श्रेष्ठ दानदाता मरुत्देव आपके समीप आकर रहें । हे इन्द्रदेव ! आप भी साथ रहने के लिए सब प्रकार की शीघ्रता करें ॥५६ ॥

१८४९. प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवाऽ ओकाꣳसि चक्रिरे ॥५७ ॥

ब्रह्मणस्पति निश्चय ही ऐसे स्तुतियोग्य मंत्र को विशेष विधि से उच्चारित कराते हैं, जिस मंत्र में इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देवगण निवास करते हैं ॥५७ ॥

१८५०. ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः। य ऽ इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पितान्नपतेन्नस्य नो देहि ॥५८ ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! आप इस संसार के नियंता हैं। अतएव हमारी प्रार्थना को जानें और हमारी संतानों पर प्रसन्न हों। देवगण जिस कल्याण को पोषित करते हैं, वे समस्त कल्याण हमें उपलब्ध हों तथा श्रेष्ठ वीर पुत्रों से युक्त हम यज्ञ में विशेष महिमा को प्राप्त करें। जो इस सम्पूर्ण विश्व के निर्माता हैं, जो परमेश्वर हमारे पालनकर्त्ता हैं, वे हमारी रक्षा करें। हे अन्नाधिपते ! आप हमारे लिए अन्न-प्रदायक सिद्ध हों अर्थात् हमें श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें ॥५८ ॥

— ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— शिवसंकल्प १-६। अगस्त्य ७-९,४८। गृत्समद १०,११। हिरण्यस्तूप आंगिरस १२,१३,२४-२७,३१। देवश्रवा-देववात भारत १४,१५,१८,१९। नौधा १६-१७। गोतम २०-२३,३३। प्रस्कण्व २८। कुत्स २९, ३०। कशिपा भरद्वाज दुहिता ३२। वसिष्ठ ३४-४०। सुहोत्र ४१। ऋजिश्वा ४२,५३। मेधातिथि ४३,४४। भरद्वाज ४५। विहव्य ४६। हिरण्यस्तूप ४७। यज्ञ प्राजापत्य ४९। दक्ष ५०-५२। कूर्म गार्त्समद ५४,५५। कण्व घौर ५६,५७। गृत्समद, विश्वकर्मा भौवन, नाभानेदिष्ठ ५८।

देवता— मन १-६। अन्न ७। अनुमति ८,९। सिनीवाली १०। सरस्वती ११। अग्नि १२-१५। इन्द्र १६-१९। सोम २०-२३। सविता २४-२७। अश्विनीकुमार २८-३०,४७। सूर्य ३१। रात्रि ३२। उषा ३३,४०। अग्नि आदि ३४। भग ३५-३९। पूषा ४१,४२। विष्णु ४३,४४। द्यावा-पृथिवी ४५। इन्द्राग्नी आदि लिङ्गोक्त ४६। मरुद्गण ४८। ऋषिसृष्टि ४९। हिरण्य ५०-५२। पृथिवी आदि ५३। आदित्यगण ५४। सप्तऋषिगण ५५। ब्रह्मणस्पति ५६-५७। ब्रह्मणस्पति, विश्वकर्मा, अग्नि ५८।

छन्द— विराट् त्रिष्टुप् १, १६, २६, २७, २९, ३१, ४२। त्रिष्टुप् २, ४, ५, १३, १४, ३०, ३९, ४९। स्वराट् त्रिष्टुप् ३,६। उष्णिक् ७। निचृत् अनुष्टुप् ८,९, ११। अनुष्टुप् १०। विराट् जगती १२। विराट् अनुष्टुप् १५। निचृत् त्रिष्टुप् १७-२०, २३, ३५, ३६, ३८, ४०, ५२, ५४, ५८। भुरिक् पंक्ति २१,२४,५३। स्वराट् ब्राह्मी गायत्री २२। निचृत् जगती २५,३४,४५। निचृत् गायत्री २८,४३। पथ्याबृहती ३२। निचृत् पर उष्णिक् ३३। पंक्ति ३७, ४८। गायत्री ४१, ४४ : भुरिक् त्रिष्टुप् ४६। जगती ४७। भुरिक् उष्णिक् ५०। भुरिक् शक्वरी ५१। भुरिक् जगती ५५। निचृत् बृहती ५६। विराट् बृहती ५७।

॥ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

१८५१. अपेतो यन्तु पणयोसुम्ना देवपीयवः। अस्य लोकः सुतावतः। द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥१ ॥

परद्रव्य-हरणकर्त्ता, देवताओं के विद्वेषी, दुःखदायक असुर इस स्थान से पलायन करें। यह स्थान देवों के लिए सोम को तैयार करने वालों (याजकों) का है। यमदेव ऋतुओं, दिनों और रात्रियों द्वारा निर्धारित किये गये श्रेष्ठ स्थान इन (याजकों) के निमित्त प्रदान करें ॥१ ॥

१८५२. सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँल्लोकमिच्छतु। तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥२ ॥

(हे यजमान !) सबके प्रेरक सवितादेव आपके शरीर के लिए इस पृथ्वी में श्रेष्ठ स्थान देने के इच्छुक हों। सविता द्वारा प्रदान किया गया वह संस्कारित क्षेत्र पशुओं से समृद्ध हो ॥२ ॥

१८५३.वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा। वि मुच्यन्तामुस्रियाः ॥३ ॥

हल जोतने के बाद क्षेत्र को वायुदेव पवित्र करें, सवितादेव इस स्थान को पवित्र करें, सूर्य के तेजस्वी प्राण से यह क्षेत्र संस्कारित हो। तत्पश्चात् गौ-पुत्र (बैलों) को हल से विमुक्त कर दिया जाए ॥३ ॥

१८५४.अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥

अश्वत्थ और पलाश (आदि) वृक्षों पर निवास करने वाली हे ओषधियो ! आप यजमान को जीवनीशक्ति प्रदान करके उस पर अनुग्रह करती हैं, जिसके लिए आप विशिष्ट कृतज्ञता के पात्र हैं ॥४ ॥

१८५५. सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थऽआ वपतु। तस्मै पृथिवि शं भव ॥५ ॥

हे यजमान ! सवितादेव आपके शरीरों को पृथ्वी माता की गोद में स्थापित करें। हे पृथिवी ! आप भी इस यजमान का हर प्रकार से कल्याण करें ॥५ ॥

१८५६. प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके नि दधाम्यसौ। अप नः शोशुचदघम् ॥६ ॥

हे मृतक ! आपको जल के समीपवर्ती पवित्र स्थान में प्रजापति की स्मृति में प्रतिष्ठित करते हैं। वे प्रजापतिदेव हमारे पाप-भावों को शीघ्र दूर करें ॥६ ॥

१८५७. परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्यऽ इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬं रीरिषो मोत वीरान् ॥७ ॥

हे मृत्यु ! आपका मार्ग, देवयान मार्ग से भिन्न पितृयान नाम वाला है, अतः आप दूसरे मार्ग से वापस लौट जाएँ। चक्षुयुक्त (श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न) और श्रवण क्षमता-सम्पन्न हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप हमारी प्रजा और वीर पुरुषों का हनन न करें ॥७ ॥

१८५८. शं वातः शᳬं हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः। शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥८ ॥

(हे यजमान !) वायुदेव आपके लिए मंगलकारी हों, सूर्यदेव आपका कल्याण करें। इष्टकाओं से विनिर्मित यज्ञकुण्ड मंगलकारी हों, (पार्थिव) अग्निदेव कल्याणकारी हों, वे आपको संताप न दें ॥८ ॥

१८५९. कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः। अन्तरिक्षᳬं शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥९ ॥

आपके लिए दिशाएँ हितकारी हों, जल आपके लिए मंगलप्रद हो, समुद्र, अन्तरिक्ष तथा सम्पूर्ण दिशाएँ आपके लिए आनन्ददायक हों ॥९ ॥

१८६०. अश्मन्वती रीयते सᳬ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः । अत्रा जहीमोशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१० ॥

हे सखा ! पाषाणयुक्त नदी प्रवाहित हो रही है, आप उसे लाँघने के लिए भली-प्रकार प्रयास करें, खड़े होकर उसके पार जाएँ । इसमें जो कष्टप्रद (असुखकर) और विघ्नकारी पदार्थ हैं, उन्हें दूर करते हैं । सुखदायक अन्न (पोषक-पदार्थ) को इस नदी से प्राप्त करें ॥१० ॥

१८६१.अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः । अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यᳬ सुव ॥

हे दुष्कर्मों के संहारक अपामार्ग ! आप हमारे दुष्कर्मरूपी पापों को नष्ट करें । अपयशकारी शारीरिक दुष्कर्मों को विनष्ट करें ।शत्रु द्वारा प्रयुक्त गुप्त अपराधों तथा दुःस्वप्न के दुःखद परिणामों को भी हमसे दूर करें ॥११ ॥

१८६२सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तुयोस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।

जल और ओषधियाँ हमारे लिए श्रेष्ठ मित्रों के सदृश कल्याणकारक हों । जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनके प्रति हम प्रीतिरहित हैं, उनके लिए ये पदार्थ शत्रुओं के समान पीड़ादायक हों ॥१२ ॥

१८६३. अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयᳬ स्वस्तये । स नऽ इन्द्रऽ इव देवेभ्यो वह्निः सन्तारणो भव ॥१३ ॥

सुरभी गाय के पुत्र (बैल) को हम कल्याण के निमित्त स्पर्श करते हैं । हे वृषभ ! आप हमें लक्ष्य तक पहुँचाएँ । आप इन्द्रदेव के सदृश ही देवताओं की शक्ति के धारणकर्त्ता हैं ॥१३ ॥

१८६४. उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽ उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

हम अंधकारलोक से दूर स्वर्गलोक को देखते हैं । देवलोक में सर्वोत्तम ज्योतिस्वरूप सूर्य को परमात्म-रूप में देखते हुए परब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं ॥१४ ॥

१८६५. इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१५ ॥

(अध्वर्यु का कथन) इस मर्यादा को जीवों के हितार्थ स्थापित करते हैं । इस नीति-मर्यादा के अनुगत होकर आप सब सौ वर्ष पर्यन्त ऐश्वर्य आदि से युक्त सुखी जीवन जिएँ । इस अन्तराल में आगत मृत्यु के मार्ग में (देवगण) पर्वत सदृश बाधाएँ स्थापित करें ॥१५ ॥

१८६६. अग्नऽ आयूᳬषि पवसऽ आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१६ ॥

हे अग्ने ! आप आयुवर्धक यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करने वाले हैं, हमें धन-धान्य और पुष्टिदायक दुग्ध-दधि आदि रस प्रदान करें । आप दूर स्थित दुर्जनों (आने वाले संकटों) के कार्य में बाधक बनें ॥१६ ॥

१८६७. आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१७ ॥

हे आयुष्मान् अग्ने ! आप हवि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाले, घृत भक्षक मुखवाले, घृत से उत्पन्न (वृद्धि को प्राप्त) होने वाले और महान् हैं । आप गौ के मधुर एवं उत्तम घृत का पान करके इन प्राणियों की उसी प्रकार रक्षा करें, जैसे पिता पुत्र को सुरक्षित रखता है । यह आहुति आपके निमित्त अर्पित है ॥१७ ॥

१८६८. परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः कऽ इमाँ२ आ दधर्षति ॥१८ ॥

ये याजक गौ और अन्न के सारभूत रसों की हवियाँ देकर देवों को प्राप्त करते हैं; ऐसे याजकों को भला कौन पराजित कर सकता है ? ॥१८ ॥

१८६९. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः । इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥१९ ॥

हम क्रव्यादि अग्नि को दूर करते हैं । वे यमलोक को प्रस्थान करें । ये जातवेदा अग्निदेव हमारे गृह में प्रवृद्ध होकर अपनी सामर्थ्य से हमारी हवि देवों तक पहुँचाएँ ॥१९ ॥

१८७०. वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके । मेदसः कुल्या ऽउप तान्स्त्रवन्तु सत्याऽएषामाशिषः सं नमन्ताᳪ स्वाहा ॥२० ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप पितरों के लिए हवि के सार भाग को वहन करें ; क्योंकि आप दूर प्रदेश के निवासक इन पितरों को जानते हैं । उनकी रक्षा के निमित्त उनके समीप जल की धाराएँ भी स्रवित हों । उनके आशीष सत्यवाक् होकर भली-भाँति पूर्ण हों । उन पितरों के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२० ॥

१८७१. स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः । अप नः शोशुचदघम् ॥२१ ॥

हे पृथिवीदेवि ! आप हमारे लिए सुखप्रद, संकटों एवं कष्टों से रहित और निवास योग्य हों । आप सम्यक् रूप से विस्तीर्ण होकर हमें सुख एवं शरण प्रदान करें । आप हमारे पापों को भस्मीभूत करके दूर करें ॥२१ ॥

१८७२. अस्मात्त्वमधि जातोसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२ ॥

हे अग्ने ! आप यहाँ इस यजमान के द्वारा उत्पन्न होते हैं । यह यजमान आपके अनुग्रह से अन्नादि ऐश्वर्य को प्राप्त करे । यह यजमान स्वर्ग प्राप्ति के लिए और लोकहित के लिए उत्तम कर्म और न्याय का सम्पादन करे ॥२२ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द, विवरण—

ऋषि-- आदित्य अथवा देवगण १-३, ५-६ । भिषक् आथर्वण ४ । संकसुक ७-९, १५ । सुचीक १० । शुनः शेप ११,१३ । मेधातिथि १२, २१, २२ । प्रस्कण्व १४ । वैखानस १६, १७ । शिरिम्बिठ भारद्वाज १८ । दमन १९, २० ।

देवता— पितर १,२ । वायु आदि लिंगोक्त ३ । ओषधि ४ । सविता ५ । प्रजापति ६ । मृत्यु ७,१५ । विश्वेदेवा ८-१० । लिंगोक्त ११ । वरुण १२ । अनड्वुत् १३ । सूर्य १४ । पवमान अग्नि १६ । अग्नि १७, १९, २२ । इन्द्र १८ । जातवेदा २० । पृथिवी २१ ।

छन्द— निचृत् गायत्री, प्राजापत्या बृहती १ । गायत्री २, १६ । उष्णिक् ३, ६ । अनुष्टुप् ४, ८ । भुरिक् गायत्री ५ । त्रिष्टुप् ७, १५, १९ । स्वराट् बृहती ९ । निचृत् त्रिष्टुप् १० । विराट् अनुष्टुप् ११, १८ । निचृत् अनुष्टुप् १२ । स्वराट् अनुष्टुप् १३ । भुरिक् उष्णिक् १४ । स्वराट् त्रिष्टुप् १७,२० । निचृत् गायत्री, प्राजापत्या गायत्री २१ । स्वराट् गायत्री २२ ।

॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

१८७३. ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१ ॥

हम वाणी-रूप ऋग्वेद, मन-रूप यजुर्वेद तथा प्राण-रूप सामवेद की शरण में जाते हैं। (वेदज्ञान प्राप्ति के लिए) नेत्रों एवं कानों की सामर्थ्य की शरण ग्रहण करते हैं। (वेदज्ञान के विस्तार के लिए) वाणी का ओज तथा (वेदानुशासन के अनुगमन के लिए) प्राण-अपान आदि सहित शारीरिक ओजस् हमारे अंदर स्थापित हो ॥१ ॥

१८७४. यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥२ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे आँख की, हृदय की तथा मन की कमजोरियों को दूर करें। हे भुवनों के पालक ! आप हम सभी का कल्याण करें ॥२ ॥

१८७५. भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३ ॥

उस प्राण स्वरूप, दुःख-नाशक, सुखस्वरूप, प्रकाशवान्, श्रेष्ठ, तेजस्वी, देवत्व प्रदान करने वाले परमात्मा का हम ध्यान करते हैं, जो (वह) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ॥३ ॥

१८७६.कया नश्चित्रऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥४ ॥

सबसे श्रेष्ठ और अद्भुत शक्ति-सम्पन्न परमात्मा, कल्याणकारी शक्तियों एवं रक्षण के साधनों से मित्र के समान हम सबका कल्याण करता है ॥४ ॥

१८७७. कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥५ ॥

(हे इन्द्र !) सोमरस का कौन सा अंश आपको आनन्दित करता है ? जिसे पीकर आप अत्यधिक हर्षित होते हैं और (याजकों के) दुःखों के निवारण के लिए श्रेष्ठ (सुवर्णादि) धन प्रदान करते हैं ॥५ ॥

१८७८. अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हर प्रकार के सैकड़ों उत्तम साधनों द्वारा, मित्रों, उपासकों सहित हम सभी की रक्षा करने वाले हों ॥६ ॥

१८७९. कया त्वं नऽ ऊत्याभि प्र मन्द्से वृषन्। कया स्तोतृभ्यऽ आ भर ॥७ ॥

हे काम्यवर्षक परमात्मन् ! आप किन आनन्दकारी रक्षा-साधनों के साथ हम सबको आनन्दित करते हैं और किस आनन्द से स्तोताओं को धन प्रदान करते हैं ? ॥७ ॥

१८८०. इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥८ ॥

सबके स्वामी ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव आप (दो पैरोंवाले) हम सबका तथा चार पैरवाले (पशुओं) का भी कल्याण करने वाले हों ॥८ ॥

१८८१. शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं नऽ इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९ ॥

सहयोगी रूप मित्रदेव, श्रेष्ठ वरुणदेव, न्यायकारी अर्यमादेव, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव, वाणी के स्वामी बृहस्पतिदेव तथा संसार का पालन करने वाले विष्णुदेव हम सबके लिए कल्याणकारी हों ॥९ ॥

१८८२. शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१० ॥

वायुदेवता एवं सूर्यदेवता हमारे लिए मंगलकारी हों। गर्जना करने वाले पर्जन्यदेव हम सबके लिए कल्याणकारी वृष्टि करें ॥१० ॥

१८८३. अहानि शं भवन्तु नः शᳬ रात्रीः प्रति धीयताम्। शं नऽ इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं नऽ इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं नऽ इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥११ ॥

दिन और रात्रि हम सबके लिए मंगलकारी हों। इन्द्र और अग्निदेव तथा इन्द्र और वरुणदेव हम सभी का कल्याण करें। इन्द्र और पूषादेव मंगलकारी अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करें। इन्द्र और सोमदेव सुसन्तति प्राप्ति के लिए तथा रोगों के शमन और भय दूर करने के लिए (हमारे लिए) मंगलमय हों ॥११ ॥

१८८४. शं नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१२ ॥

दिव्यजल हम सब के लिए अभीष्ट फलदायक तथा तृप्तिदायक बने। वह हमारे रोगों के शमन तथा अनिष्ट हटाने के लिए बरसता रहे, इस प्रकार हमारा सब प्रकार से कल्याण करे ॥१२ ॥

१८८५. स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥१३ ॥

हे पृथिवि ! आप हमारे लिए सुखकारी, निर्विघ्न तथा उत्तम आवास प्रदान करने वाली हों। हमारे लिए सब प्रकार से विस्तृत होकर सुखदायी हों ॥१३ ॥

१८८६. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥१४ ॥

जल निश्चितरूप से सुखकारी है। अतः वह हम सबको अन्न और बल प्रदान करते हुए, श्रेष्ठ-रमणीय दृश्य देखने के लिए दिव्यदृष्टि प्रदान करे ॥१४ ॥

१८८७. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥१५ ॥

हे जलसमूह ! आपका कल्याणकारी रस इस संसार में है। अतः जिस प्रकार स्नेहमयी माताएँ अपने शिशु को दुग्ध पान कराती हैं, उसी प्रकार हम सबको उस (दिव्य) रस का पान कराएँ ॥१५ ॥

१८८८. तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥१६ ॥

हे जलसमूह ! आपके गतिमान् रस को पूर्णरूपेण प्राप्त करने के लिए हम सब आपके पास आये हैं। आप हम सभी को उन्नतिशील बनाएँ ॥१६ ॥

१८८९. द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वᳬ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१७ ॥

स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथिवीलोक हमें शांति प्रदान करें। जल शांतिप्रदायक हो, ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ शांति प्रदान करने वाली हों। सभी देवगण शांति प्रदान करें। सर्वव्यापी परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में शांति स्थापित करें। शांति भी हमें परमशांति प्रदान करे ॥१७॥

१८९०. दृते दृ ꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥

हे परमात्मन्! आप हमें सामर्थ्यवान् बनाएँ। सभी प्राणी हमें मित्रभाव से देखें। हम सभी को मित्रभाव से देखते हैं। हम सभी मित्रभाव से (एक दूसरे को) देखें ॥१८॥

१८९१. दृते दृ ꣳह मा। ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम् ॥१९॥

हे शक्तिमान् परमात्मन्! आप हमें शक्तिमान् बनाएँ। आपके दिव्यदर्शन से हम चिरकाल तक जीवित रहें। आपके दर्शन करते हुए हम दीर्घायुष्य को प्राप्त हों ॥१९॥

१८९२. नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे। अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥२०॥

हे अग्निदेव! आपकी तेजस्वी ज्वालाओं को हम नमस्कार करते हैं। ये ज्वालाएँ पवित्रता को बढ़ाने वाली तथा दुष्टता का हरण करने वाली हों। आपकी ज्वालाएँ शत्रुओं के लिए कष्टकारी तथा हमारे लिए पवित्रता प्रदान करने वाली तथा मंगलकारी हों ॥२०॥

१८९३. नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥

विद्युत् के समान तेजस्वी तथा मेघ के समान गर्जना करने वाले हे परमात्मन्! आपको नमस्कार है। आप हमारे लिए मंगलकारी हैं, अतः आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२१॥

१८९४. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥

हे परमात्मन्! आप जिससे-जिससे चाहें, उससे-उससे हमें भयरहित करें। हमारी प्रजाओं (सन्तानों) का कल्याण करें और पशुओं के लिए अभय प्रदान करें ॥२२॥

१८९५. सुमित्रिया न ऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

हे जल और ओषधियो! आप हम सबके लिए हितकारी हों। जो हम सबसे द्वेष करता है और जिस से हम सभी द्वेष करते हैं, उसके लिए आप कष्टकारक सिद्ध हों ॥२३॥

१८९६. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२४

वे देवगणों द्वारा धारण किये गये, (जगत् के) नेत्रभूत, दीप्तिमान् सूर्यदेव पूर्व से उदित होते हैं। सूर्यदेव की सहायता से हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें, सौ वर्ष तक कानों से सुनें, सौ वर्ष तक उत्तम वाणी बोलें, सौ वर्ष तक दीनतारहित रहें और सौ वर्ष तक शरद ऋतुओं को पूर्ण करते हुए इससे भी अधिक समय तक आनन्दपूर्वक रहें ॥२४॥

—ऋषि, देवता, छन्द, विवरण—

ऋषि—दध्यङ् आथर्वण १, २,७-१२, १७-१९, २१, २२, २४ । विश्वामित्र ३ । वामदेव ४-६ । मेधातिथि १३, २३ । सिन्धुद्वीप १४-१६ । ऋषिसुता लोपामुद्रा २० ।

देवता— विश्वेदेवा १ । बृहस्पति २ । सविता ३ । इन्द्र ४-८ । मित्र, वरुण आदि ९, १० । अहोरात्र, इन्द्राग्नी आदि ११ । आप: (जल) १२, १४-१६, २३ । पृथिवी १३ । लिंगोक्त १७ । महावीर १८-१९ । अग्नि २० । अग्नि (विद्युत) २१,२२ । सूर्य २४ ।

छन्द— पंक्ति १ । निचृत् पंक्ति २ । दैवी बृहती, निचृत् गायत्री ३ । गायत्री ४,१२, १४-१६ । निचृत् गायत्री ५ । पादनिचृत् गायत्री ६, १९ । वर्द्धमाना गायत्री ७ । द्विपदा विराट् गायत्री ८ । निचृत् अनुष्टुप् ९, २१ । विराट् अनुष्टुप् १०, २३ । अतिशक्वरी ११ । पिपीलिका मध्या निचृत् गायत्री १३ । भुरिक् शक्वरी १७ । भुरिक् जगती १८ । भुरिक् बृहती २० । भुरिक् उष्णिक् २२ । भुरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २४ ।

॥ इति षट्त्रिंशोऽध्याय: ॥

॥ अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय के मंत्रों का उपयोग यज्ञीय कर्मकाण्ड के अंतर्गत अग्नि, मृत्तिका, महावीर-सम्भार आदि उपकरणों की प्राप्ति, स्थापना अथवा प्रोक्षण आदि के क्रम में परम्परागत रूप से किया जाता रहा है। उन पात्रों को संबोधित करते हुए ही इन मंत्रों के अर्थ भी किये जाते हैं; किन्तु यज्ञाग्नि एवं देव शक्तियों के संदर्भ में वेद मंत्रों के अर्थ अधिक युक्तिसंगत लगते हैं। इससे क्रिया विशेष के संदर्भ में उन्हें प्रयुक्त करने में भी कोई कठिनाई नहीं होती। इस अनुवाद में इसीलिए देवपरक अर्थ ही किये गये हैं —

१८९७. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे नारिरसि ॥१॥

हे अग्निदेव ! सवितादेव के अनुशासन में रहकर अश्विनीदेवों की बाहुओं तथा पूषादेव के दोनों हाथों से हम आपको ग्रहण करते हैं। आप हमारे शत्रु न हों ॥१॥

१८९८. युञ्जते मनऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥२॥

हे साधको ! जो भुवनपति समूचे विश्व को उत्तम रीति से धारण करते हैं, जो सवितादेव प्रशंसनीय हैं, जिस अनन्त ज्ञानवाले सर्वव्यापी परमात्मा में याज्ञिकजन अपने मन को स्थिर करते हैं और उसी का ध्यान करते हैं, ऐसे परमात्मा की आप सब आराधना करें ॥२॥

१८९९. देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥३॥

हे पृथ्वी और स्वर्गलोक की दिव्य शक्तियो ! आज इस यज्ञस्थल पर देवयज्ञ के निमित्त, मुख्य वेदी में आपको उत्तम रीति से स्थापित करते हैं। हे मृत्तिके ! श्रेष्ठ यज्ञस्थल में यज्ञ के लिए आपको शीर्ष स्थान में ग्रहण (स्थापित) करते हैं ॥३॥

१९००. देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥४॥

हे अग्नि से उत्पन्न ज्वालाओ ! आप प्राणियों से भी पहले उत्पन्न हुई हैं। इस यज्ञस्थल पर ज्ञानीजनों के मध्य प्राणिमात्र के कल्याण के लिए शीर्षरूप आपका सत्कार करते हैं। प्रजापालक यज्ञ के लिए सम्मान के साथ आपको शीर्ष स्थान पर नियुक्त करते हैं ॥४॥

१९०१. इयत्यग्रऽ आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥५॥

हे अग्निशिखाओ ! (यज्ञ की अग्नि) यज्ञीय संगतिकरण रूपी श्रेष्ठता के लिए आप सबको प्रयुक्त करते हैं। इस भूमि के मध्य, यज्ञस्थल में, विद्वानों द्वारा यजन के निमित्त आप सबको भली-भाँति नियुक्त करते हैं ॥५॥

१९०२. इन्द्रस्यौज स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥६॥

हे अग्नि की ज्वालाओ ! इन्द्रदेव के ओज को प्राप्त करने की भाँति, आज इस पृथ्वी के मध्य यज्ञस्थल पर, यज्ञ के मूर्धन्यस्वरूप आप को प्राप्त करते हैं । हम इस शीर्षस्थ मुख्य यज्ञ के निमित्त, उत्तम यज्ञ के सम्पादन के निमित्त, उत्तम गुणों के इस यज्ञ के निमित्त, यज्ञरूप उत्तम व्यवहार के निमित्त, उत्तम विज्ञान के प्रचार के निमित्त, विद्यावर्धक व्यवहार के निमित्त आपको प्राप्त करते हैं । आप सभी श्रेष्ठ गुणों से युक्त हों ॥६ ॥

१९०३. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७ ॥

ब्रह्मणस्पति देव इस यज्ञ में आएं । सत्यवाणी रूपी सरस्वती उत्तम स्थान पर विराजें । बलवान् , सर्वहितकारी, प्रजाजनों को अनुशासन पालन कराने में समर्थ देवगण भी इस यज्ञ को सफल बनाएँ । हे अग्नि ज्वालाओ ! आप यज्ञ के शीर्ष हैं और यज्ञ के लिए हैं, अतः बार-बार [भूः, भुवः (अन्तरिक्ष), स्वः (द्युलोक) में आपको] यज्ञ कार्य के लिए नियुक्त करते हैं ॥७ ॥

१९०४. मखस्य शिरोसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ के शीर्षरूप हैं, अतः यज्ञ के मूर्धन्य कार्य के निमित्त अर्थात् यज्ञ कार्य के सम्पादन के लिए आपको बार-बार नियुक्त करते हैं ॥८ ॥

१९०५.अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥९ ॥

हे वृष्ण (बलशाली) ! आपको पृथ्वी पर देवयजन प्रक्रिया के अन्तर्गत अश्व (यज्ञाग्नि) द्वारा उत्सर्जित (अवशिष्ट अग्नि या ऊर्जा) तथा उसके द्वारा धूपित (संस्कारित) करते हैं । आपको यज्ञार्थ यज्ञ के शीर्ष (श्रेष्ठतम प्रयोजन) के रूप में (तीनों लोकों में) नियुक्त (या प्रयुक्त) किया जाता है ॥९ ॥

[इसी मंत्र को तीन बार दुहराकर क्रिया को तीन बार करने का संकेत, सम्बन्धित भाव को अधिक बल देकर प्रस्तुत करने के उद्देश्य से प्रतीत होता है ।]

१९०६. ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥१० ॥

(हे बलशाली !) आपको सत्य के निमित्त, सज्जनता के निमित्त एवं श्रेष्ठ भूमि (पृष्ठभूमि) के निमित्त, प्रयुक्त (या नियुक्त) किया जाता है । आपको यज्ञार्थ, यज्ञ के श्रेष्ठतम रूप में प्रयुक्त किया जाता है ॥१० ॥

१९०७. यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे । देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि । अर्चिरसि शोचिरसि तपोसि ॥११ ॥

(हे समर्थ अग्निदेव !) दिव्य अनुशासनों, यज्ञीय प्रयोजनों एवं सूर्य के ताप की सार्थकता के लिए आपको नियुक्त किया जाता है । सवितादेवता आपको मधुरता से युक्त करें । पृथ्वी का स्पर्श करके आप (सब प्राणियों की) रक्षा करें । आप ज्वालारूप हैं, विद्युत्‌रूप हैं तथा तप: शक्ति से युक्त हैं ॥११ ॥

१९०८. अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्यऽ आयुर्मे दाः । पुत्रवती दक्षिणतऽ इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः । सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः । आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः । विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्यऽ ओजो मे दा विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥१२ ॥

हे पृथिवि ! शत्रुओं से अहिंसित रहती हुई पूर्व दिशा में अग्नि की रक्षक बनकर हमें आयु प्रदान करें । पुत्रवती होकर दक्षिण दिशा में इन्द्रदेव के स्वामित्व में रहकर उत्तम सन्तान प्रदान करें । हे पृथिवि ! आप सुखदायी हैं, अत: पश्चिम दिशा में सवितादेव के स्वामित्व में रहकर हमें दिव्य दृष्टि प्रदान करें । उत्तम रीति से श्रवण करने वाली होकर उत्तर दिशा में ब्रह्मा के स्वामित्व में रहकर हमें उत्तम धन से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें । ऊर्ध्व दिशा में नाना प्रकार के पदार्थों को धारण करने में समर्थ होकर बृहस्पतिदेव के स्वामित्व में रहकर हमें ओजस्वी बनाएँ । हे पृथिवि !दुष्ट प्रवृत्तियों वाले शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ।आप मनस्वियों की अश्वा (वहन करने वाली) हैं ॥१२ ॥

१९०९. स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व दिवः स ꣳ स्पृशस्पाहि । मधु मधु मधु ॥१३ ॥

हमारी इस आहुति को मरुत्‌देव धारण करें । द्युलोक को स्पर्श करनेवाली हवि, हमारी रक्षा करे । प्राण, अपान और व्यान अथवा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में मधुरता की स्थापना हो ॥१३ ॥

१९१०. गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् । सं देवो देवेन सवित्रा गत स ꣳ सूर्येण रोचते ॥१४ ॥

जो परमात्मा देवों के धारक, ज्ञानीजनों के पालक, प्रजा के रक्षक एवं दिव्यगुण सम्पन्न हैं । वे परमात्मा सम्पूर्ण संसार के प्रेरक, सूर्यदेव के समान प्रकाशित होते हैं, (उन्हें हम स्तुतिपूर्वक नमन करते हैं) ॥१४ ॥

१९११. समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा स ꣳ सूर्येणारोचिष्ट । स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा स ꣳ सूर्येणारूरुचत ॥१५ ॥

वह परमात्मा तेजस्वी अग्नि के समान सवितादेव से एकाकार होकर सूर्यरूप में प्रकाशित है । आहुति दी गई हवि सहित अग्नि, सूर्य के तेज से मिलकर एवं दिव्यगुण युक्त सवितादेव से एकाकार होकर सूर्यदेव के साथ प्रकाशित होता है ॥१५ ॥

१९१२. धर्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः । वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥१६ ॥

ज्ञानीजनों को धारण करनेवाला, दिव्यगुणयुक्त परमात्मा, साधारण मनुष्यों से भिन्न अपनी तपशक्ति से सामर्थ्यवान् होकर, द्युलोक और किरण समूहों को धारण करने वाले सूर्यरूप में पृथ्वी पर सुशोभित होता है । वह परमात्मा हमें दिव्यता धारण करानेवाली वाणी प्रदान करे ॥१६ ॥

१९१३.अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् । स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानऽ आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥१७ ॥

सबकी रक्षा करनेवाले, कभी भी नष्ट न होने वाले, अपने साथ रहनेवाली रश्मियों को धारण करने वाले, समस्त लोकों के मध्य, सबसे ऊपर रहने वाले सूर्यदेव को हम देव मार्ग में आते एवं जाते हुए देखते हैं ॥१७ ॥

१११४.विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते। देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान् पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये। मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ॥१८ ॥

समस्त लोकों के स्वामी, सबके मनों के रक्षक तथा सभी की वाणियों के प्रेरक, प्राणिमात्र की वाणियों के पालक, प्रकाशक, देवताओं में कीर्तिमान् रूप , दिव्यगुणों से युक्त सुखदाता परमात्मा इस संसार में धर्मपथ पर चलने वाले ज्ञानीजनों की रक्षा करें । हे अश्विनीकुमारो ! आप मधुर गुणों से युक्त विद्या, उत्तम रीति से प्रदान करें और मधुर ब्रह्म- विज्ञान के साधकों के साथ देवत्व की प्राप्ति के लिए प्रयासरत ज्ञानीजनों का सरंक्षण करें। हे याजको ! वह परमात्मा आपका सहायक बने ॥१८ ॥

१११५. हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा। ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥१९ ॥

हे यज्ञदेव ! हम हृदय की विशालता के लिए, मन की शुद्धि के लिए तथा सूर्य की तेजस्विता को धारण करने के लिए आपकी स्तुति करते हैं। आप हमारे हव्य को ऊपर देवगणों तक पहुँचाएँ ॥१९ ॥

१११६. पिता नोसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिंᳪ सीः। त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान्पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहᳪ सह पत्या भूयासम् ॥२० ॥

हे यज्ञदेव ! आप हमारे पिता के समान पालक हैं, अतः हमें पिता (गुरु) के समान ज्ञानवान् बनाएँ । इसके लिए हम आपको नमन करते हैं । हम समस्त प्रजा सहित प्रजापति रूप तेजस्वी बनकर आपको प्राप्त करें । आप हमें पशुधन, सन्तान तथा उत्तम प्रजा से युक्त करें । हम आपके साथ कल्याणकारी होकर चिरकाल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें । आप हमें हिंसित न करें ॥२० ॥

१११७. अहः केतुना जुषताᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा। रात्रिः केतुना जुषताᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥२१ ॥

स्वज्योति से ज्योतिर्मान् कर्मयुक्त दिन (सबके लिए) प्रसन्नतादायक सिद्ध हो तथा अपनी ही ज्योति से ज्योतिर्मती रात्रि कर्मयुक्त होकर प्रसन्नतादायी सिद्ध हो—इस निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२१ ॥

— ऋषि, देवता, छन्द विवरण —

ऋषि — दध्यङ् आथर्वण १,३-१६ । श्यावाश्व २ । दीर्घतमा १७-२१ ।

देवता — सविता, अग्नि १ । सविता २ । द्यावा-पृथिवी ३ । वल्मीकवपा ४ । वराहविहत ५ । आदार ६ । घर्म ७-११, १४-१९,२१ । पृथिवी १२ । घर्म, प्राण १३ । घर्म, पत्नी आशीर्वाद २० ।

छन्द — निचृत् उष्णिक् १ । जगती २ । ब्राह्मी गायत्री ३ । निचृत् पंक्ति ४ । विराट् ब्राह्मी गायत्री ५ । भुरिक् अतिजगती ६ । निचृत् अष्टि ८ । स्वराट् अतिधृति८ । (दो) अतिशक्वरी ९ । स्वराट् पंक्ति१० । त्रिष्टुप् ११ । स्वराट् उत्कृति१२ । निचृत् गायत्री १३ । भुरिक् अनुष्टुप् १४ । निचृत् ब्राह्मी अनुष्टुप् १५ । भुरिक् बृहती १६ । निचृत् त्रिष्टुप् १७ । निचृत् अत्यष्टि १८ । विराट् उष्णिक् १९ । निचृत् अतिजगती २० । अनुष्टुप् २१ ।

॥ इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

प्रथम चार मंत्रों का उपयोग कर्मकाण्ड की परम्परा के अनुसार क्रमशः गौ बाँधने की रस्सी प्राप्त करने, गौ को यज्ञ स्थल पर लाने, बछड़े को रस्सी से मुक्त करने तथा दूध दुहने की क्रियाओं के साथ किया जाता है। इस दृश्य प्रक्रिया के साथ एक सूक्ष्म प्रक्रिया का बोध कराया जाता है, जिसके अंतर्गत पोषण देने वाली प्राकृतिक शक्ति धाराओं को प्रभावित करने वाली यज्ञीय ऊर्जा को प्राप्त (उत्पन्न) करना, उसके प्रभाव से पोषक शक्तियों को प्रेरित करना तथा उनसे पोषक प्रवाह को प्रचुर मात्रा में प्राप्त करके सुनियोजित करने के प्रयोग चलते हैं। रास्ना का अर्थ आवृत करने वाली मेखला या शक्ति है। इडा (पृथिवी) अदिति एवं सरस्वती को गौरूप कहा गया है (शत० ब्रा० १४.२.१.७) । यहाँ भावानुवाद उक्त सूक्ष्म प्रक्रिया के अनुरूप ही किया गया है—

१९१८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददेदित्यै रास्नासि ॥१ ॥

(हे यज्ञीय ऊर्जे !) आपको हम सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विनीदेवों (आयुष्य देने वाले देवों) की बाहों और पूषा (पोषण देने वाले देवों) के हाथों से ग्रहण करते हैं। आप अदिति (देवों की माता-दैवी प्रवाह पैदा करने वाली सूक्ष्म प्रकृति) की मेखला (आवृत करके प्रभावित करने वाली) हैं ॥१ ॥

१९१९. इडऽ एह्य दितऽ एहि सरस्वत्येहि। असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥२ ॥

हे इडे (धरती माता) ! हे अदिति ! हे माँ सरस्वती देवि ! आप (गौ के समान पोषण प्रदायक बनकर) यहाँ आएँ। इसी रूप में आएँ ॥२ ॥

१९२०. अदित्यै रास्नासीन्द्राण्याऽ उष्णीषः। पूषासि घर्माय दीष्व ॥३ ॥

(हे यज्ञीय ऊर्जे !) आप अदिति की मेखलारूप हैं, इन्द्राणी (संगठक शक्ति) की पगड़ी (प्रतिष्ठा का चिह्न) हैं। आप पोषण देने में समर्थ हैं, घर्म (हितकारी कार्यों-यज्ञों) के लिए अपनी शक्ति को नियोजित करें ॥३ ॥

१९२१. अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व। स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥४ ॥

(हे गौ की भाँति स्रवित होने वाली सूक्ष्म प्रकृति !) आप अश्विनी (आयुष्य-वर्धक) देवों, सरस्वती (विद्यावर्धक शक्तियों) तथा इन्द्र (संगठक देववृत्तियों) की पुष्टि के लिए क्षरित (प्रवाहित) हों। इन्द्रदेव के (सदृश पोषक प्रवाहों के वर्षण की प्रक्रिया के) लिए यह आहुति समर्पित है, पुनः-पुनः समर्पित है ॥४ ॥

१९२२. यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेकः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥५ ॥

हे माँ सरस्वति (गौ) ! जिस प्रकार माता का स्तन बच्चे को सुख की नींद से सुलाने वाला, आनन्ददायी, उत्तम बल तथा उत्तम गुणों का पोषक होता है, उसी प्रकार आपका दिव्य ज्ञान (दुग्ध) सुख-शांतिदायक तथा मंगलकारी ऐश्वर्य प्रदान करने वाला है। हे सरस्वती देवि ! सम्पूर्ण कार्यों का पोषण करने वाला, उत्तम दानशील, जो ज्ञान है, उस ज्ञान को प्रजा के धारण और पोषण के लिए आप हमें प्रदान करें, जिससे हम विशाल अन्तरिक्ष के अनुगामी बन सकें ॥५ ॥

१९२३. गायत्रं छन्दोसि त्रैष्टुभं छन्दोसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट्। स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप गायत्री छन्द तथा त्रिष्टुप् छन्द से स्तुति करने वालों का संरक्षण करने वाले हैं । हे दोनों अश्विनीकुमारो ! द्युलोक से पृथ्वीलोक पर्यन्त प्रजा की नीरोगता के लिए हम आप दोनों को ग्रहण करते हैं । जिस तरह अन्तरिक्ष, वर्षा तथा वायु के द्वारा सभी के प्राणों की रक्षा करता है, उसी प्रकार प्रजा को ज्ञान तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न करने के लिए हम आप दोनों को स्वीकार करते हैं । हे वसुगण ! मधुररस के समान, मधुर व्यवहारयुक्त पराक्रम को हम सत्यरूप में स्वीकार करते हैं । आप भली प्रकार यज्ञ का सम्पादन करें और वर्षा हेतु सूर्य की रश्मियों की सहायता प्राप्त करने (अर्थात् उत्तम वर्षा-पर्जन्य वृष्टि) के लिए यज्ञ करें ॥६ ॥

१९२४. समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा । अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा । अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, सभी प्राणियों को अभीष्ट प्रदान करने वाले, अखण्ड शक्तिवाले, अपराजित, संरक्षण प्रदान करने वाले, कष्ट दूर करने में सक्षम वायुदेव ! आपके लिए यह आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं, आप इन्हें स्वीकार करें ॥७ ॥

१९२५. इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा। सवित्रे त्वऽ ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥८ ॥

हे वसु (धन) शक्ति से युक्त एवं रुद्र (ओज) शक्ति से युक्त इन्द्रदेव ! आपके लिए आहुति समर्पित है । हे आदित्यों के तेज से युक्त इन्द्रदेव ! आपके लिए यह आहुति है । हे अभिमानियों को नष्ट करने वाले इन्द्रदेव ! आपके लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं । ऋत व ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, अत्यधिक सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्य एवं शक्तिशाली सैन्य बल प्रदान करने वाले सवितादेव के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं । समस्त देवशक्तियों के हितकारी बृहस्पतिदेव के लिए यह आहुति समर्पित है ॥८ ॥

१९२६. यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥९ ॥

पितृगणों तथा अङ्गिराओं से युक्त यम देवता के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं । घर्म (यज्ञ विशेष) के विस्तार के लिए ये आहुतियाँ हैं । पितृगणों की तृप्ति के लिए यह आहुति समर्पित है ॥९ ॥

१९२७. विश्वाऽ आशा दक्षिणसद्विश्वान् देवानयाडिह। स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥१० ॥

इस यज्ञस्थल पर दक्षिण दिशा में बैठे होताओं ने, सभी दिशाओं में रहने वाले समस्त देवगणों एवं विद्वज्जनों का यथोचित पूजन-अर्चन किया है । अतः हे अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ इस यज्ञ मे समर्पित आहुतियों के मधुर रस का पान करें ॥१० ॥

१९२८. दिवि धाऽ इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः । स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥११ ॥

हे याज्ञिको ! यज्ञाग्नि से सुखपूर्वक यज्ञकार्य सम्पन्न करें और इस यज्ञ की हवि को देवलोक तक पहुँचाएँ । यजुर्वेद के मंत्रों का उच्चारण करते हुए आहुतियाँ समर्पित करें ॥११ ॥

१९२९. अश्विना घर्मं पातᳫं हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः। तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपनी रक्षण- शक्तियों से हृदय को प्रिय लगने वाले यज्ञ की दिन-रात रक्षा करें। काल चक्र के प्रवर्त्तक सूर्य और द्युलोक से पृथिवी पर्यन्त सभी दैवी शक्तियों को हमारा नमन है ॥१२ ॥

१९३०. अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमᳫंसाताम्। इहैव रातयः सन्तु ॥१३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे यज्ञ की हर प्रकार से रक्षा करें। द्युलोक तथा पृथिवी लोक के अधिष्ठाता देवता भी आपके कार्य में सहयोगी हों। आप अपने स्थान में ही रहकर हमें यहाँ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१३ ॥

१९३१. इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥१४।

हे यज्ञदेव ! अन्न की वृद्धि तथा बल-पराक्रम के लिए सम्पूर्ण प्रजा को आप पुष्ट बनाएँ। ब्राह्मणत्व तथा क्षत्रियत्व की वृद्धि के लिए प्रजा को पुष्ट बनाएँ। द्युलोक और पृथिवी लोक के विस्तार के लिए प्रजा पुष्ट हो। हे परमात्मन् ! आप उत्तम रीति से समस्त प्रजा एवं राष्ट्र को धारण करने में समर्थ हैं। आप हिंसारहित हैं। मनुष्यों के लिए हितकारी ऐश्वर्य हमें प्रदान करें। आप हमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व तथा व्यापार की क्षमता प्रदान करें ॥१४ ॥

१९३२. स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः। स्वाहा पितृभ्य ऽऊर्ध्वबर्हिभ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳫं स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥१५ ॥

स्नेहकारी पूषा, प्राणों, शब्द करने वाले प्राणियों, सोमपायी, घर्म (यज्ञ विशेष) को पवित्र करने वाले पितृगणों, द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा सम्पूर्ण देवगणों के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥१५ ॥

१९३३. स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः। अहः केतुना जुषताᳫं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा। रात्रिः केतुना जुषताᳫं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा। मधु हुतमिन्द्रतमे अग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते अस्तु मा मा हिᳫंसीः ॥१६ ॥

राक्षसों के संहारक रुद्रदेव के लिए यह आहुति समर्पित है। ज्योति से ज्योति मिलकर भली प्रकार प्रज्वलित हो, इसके लिए आहुति समर्पित है। दिन में प्रज्ञा से युक्त तेज अपने तेज से संयुक्त हो, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। रात्रि में प्रज्ञा से युक्त तेज अपने तेज से संयुक्त हो, इसके लिए यह आहुति समर्पित है। हे दिव्य गुणों से युक्त परमात्मन् !आप तेजस्वी अग्नि में समर्पित की गयी मधुर आहुति को ग्रहण करें और हमारी रक्षा करें ॥१६

१९३४. अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः। उत श्रवसा पृथिवीᳫं सᳫं सीदस्व महाँ२ असि रोचस्व देववीतमः। वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥१७

हे अग्निदेव ! आपकी सुविस्तृत कीर्ति द्युलोक तथा पृथिवीलोक में व्याप्त है। आप सभी देवगणों को तृप्त करने में समर्थ हैं। आप हमारे यज्ञ में भली प्रकार से विराजमान होकर प्रज्वलित हों। हे यज्ञ के योग्य, उत्कृष्ट अग्निदेव ! आप अपने लाल रंग से युक्त, दर्शनीय धूम्र का विस्तार करें ॥१७ ॥

१९३५. या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याᳫं हविर्धाने। सा तऽ आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा। या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे। सा त ऽ आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा। या ते घर्म पृथिव्याᳫं शुग्या जगत्याᳫं सदस्या। सा त ऽ आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥१८ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी जो दीप्ति द्युलोक तथा विशिष्ट यज्ञ में एवं गायत्री छन्द में है; आपकी जो दीप्ति अन्तरिक्ष में एवं अग्नि के समान प्रदीप्त त्रिष्टुप् छन्द में है; आपकी जो दीप्ति पृथिवी में, सभास्थान में एवं जगती छन्द में है; वह दीप्ति विस्तार पाए तथा दृढ़ हो, इसके लिए यह आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥१८ ॥

१९३६. क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि। विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९ ॥

हे परमात्मन् ! शत्रुओं से प्रजा की रक्षा के लिए हम आपका अनुसरण करते हैं । शौर्यवान् क्षत्रियों तथा ज्ञानवान् ब्राह्मणों के शरीरों में विद्यमान शक्तियों की आप रक्षा करें । प्रजा को धर्म मार्ग पर चलाकर उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराने, श्रेष्ठ मार्ग पर चलाने और कर्त्तव्य-पालन के लिए हम आपका अनुसरण करते हैं ॥१९ ॥

१९३७. चतुःस्त्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप द्वेषो अप ह्वरोन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२० ॥

हे परमात्मन् ! आप चतुर्दिक् संव्याप्त एवं यज्ञ-व्यवस्था के केन्द्र हैं । अति विस्तृत यशवाले होकर जीवन पर्यन्त हमारी रक्षा करें । विस्तृत यशवाले आप हमारे कल्याण के लिए दीर्घायु प्रदान करें । द्वेष करने वाले कुटिल शत्रुओं से तथा आवागमन से हमें मुक्त करें । हम अहैतुकी कृपा करने वाले आपकी उपासना करते रहें ॥२० ॥

१९३८. घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥२१ ॥

हे यज्ञदेव ! आप बड़े ऐश्वर्यशाली एवं सामर्थ्यवान् हैं । आपकी समृद्धि और भी बढ़े । इस प्रकार आप पूर्ण समृद्धिशाली हों । हम लोग भी श्रेष्ठ धन एवं पदार्थों से तृप्त होकर पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हों ॥२१ ॥

१९३९.अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । स ँ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥

हे यज्ञ प्रभो ! आप मेघों की भाँति सुखों की वर्षा करने वाले हैं । आप प्रजा के दुःखों को दूर करने वाले, मित्र के समान स्नेह प्रदान करने वाले और सबके द्रष्टा हैं । आप सूर्य के समान अपने तेज से प्रकाशित होने वाले तथा समुद्र की तरह गम्भीर और खजाने के समान ऐश्वर्यों के रक्षक हैं ॥२२ ॥

१९४०. सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३ ॥

हे यज्ञ प्रभो ! हमारे लिए जल तथा ओषधियाँ परम मित्र के समान लाभ पहुँचाने वाली हों । हमसे जो द्वेष करते हैं या जिनसे हम द्वेष करते हैं, उनके लिए यह जल तथा ओषधियाँ शत्रु के समान हानि पहुँचाने वाली हों ॥२३ ॥

१९४१. उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽ उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२४ ॥

हम इस लोक से भी ऊँचे, सुखस्वरूप, सबसे उत्कृष्ट, परम ज्योति स्वरूप, दैवी गुणों से युक्त सूर्यदेव के समान तेजस्वी परमात्मा को देखते हुए अन्धकार से दूर होकर उच्चतम स्थिति को प्राप्त हों ॥२४ ॥

१९४२. एधोस्येधिषीमहि समिदसि तेजोसि तेजो मयि धेहि ॥२५ ॥

हे यज्ञदेव ! आप स्वयं प्रकाशमान हैं । यह प्रकाश सदैव विस्तार पाए । आप प्रज्वलित काष्ठ (समिधा) के समान प्रकाशित तेज स्वरूप हैं, अतः हमें भी तेजस्वी बनाएँ ॥२५ ॥

१९४३. यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे । तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६ ॥

हे यज्ञ प्रभु ! जहाँ तक द्युलोक व भूलोक का विस्तार है और जहाँ तक सातों समुद्र तथा विविध दिशाएँ फैली हैं, वहाँ तक के विस्तृत क्षेत्र में हम (सभी प्राणी) आपकी ऊर्जा ग्रहण करते हैं । इसके लिए (ग्रहण करने की) अक्षुण्ण सामर्थ्य भी हम आपसे प्राप्त करते हैं ॥२६ ॥

१९४४. मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः । घर्मस्त्रिशुग्वि राजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥२७ ॥

जो परमात्मा अग्नि, विद्युत् तथा सूर्य, इन तीनों के सदृश तेजस्वी होकर महान् प्रकाश, विविध तेज तथा ब्रह्मतेज से संयुक्त होकर सुशोभित होते हैं, वे हमें महान् बलशाली बनाएँ, हमें कर्तृत्वशक्ति एवं दक्षता प्रदान करें॥

१९४५. पयसो रेतऽ आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराᳬं समाम् । त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः । इन्द्रपीतस्य प्रजापति-भक्षितस्य मधुमतऽ उपहूतऽ उपहूतस्य भक्षयामि ॥२८ ॥

पयस् (बरसे हुए पोषण) से रेतस् (उर्वरक तेज) प्रकृति में (यज्ञ के प्रभाव से) भर गया है । उसके दोहन की (यज्ञीय) प्रक्रिया का लाभ आगे आने वाले वर्षों में हम (लगातार) प्राप्त ३३ करते रहें । कान्ति (तेजस्विता) को स्वीकार करने वाले, संकल्पों को सिद्धि प्रदान करने में कुशल, आमंत्रित हे यज्ञदेव ! सुखकारक अग्नि (यज्ञाग्नि) में आपके लिए दी गयी आहुतियाँ श्रेष्ठ सुखप्रदायक हैं । इन्द्रदेव के द्वारा पान किये गये, प्रजापति द्वारा सेवन किये गये, मधुरतायुक्त (हव्य) का सेवन हम भी करते हैं ॥२८ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— दध्यङ् आथर्वण १-४ । दीर्घतमा ५-२२, २६-२८ । मेधातिथि २३ । प्रस्कण्व २४, २५ ।

देवता— सविता, रज्जू १ । गौ २ । रज्जू, वत्स ३ । लिंगोक्त, विप्रुष ४ । वाक् ५ । परीशास, महावीर, घर्म, विश्वेदेवा ६ । वातनाम ७, ८ । वातनाम, घर्म ९ । अश्विनीकुमार १०,१३ । घर्म ११, १८-२२ । अश्विनीकुमार आदि १२ । घर्म, खर १४ । पूषा आदि १५ । रुद्र-आदि, पय, घर्म १६ । अग्नि १७ । आपः २३ । सूर्य २४ । समित् २५ । दधिघर्म २६ । यजमान-आशीर्वाद २७ । यजमान-आशीर्वाद , दधिघर्म २८ ।

छन्द— विराट् आर्ची पंक्ति १ । निचृत् गायत्री २ । भुरिक् साम्नी बृहती ३ । आर्ची पंक्ति ४,१२ । निचृत् अतिजगती ५ । निचृत् अत्यष्टि ६ । अष्टि ७, ८ । भुरिक् गायत्री ९ । अनुष्टुप् १०, २१ । विराट् उष्णिक् ११ । निचृत् उष्णिक् १३ । अतिशक्वरी १४ । स्वराट् जगती १५ । भुरिक् अतिधृति १६ । निचृत् अतिशक्वरी १७ । भुरिक् आकृति १८ । निचृत् उपरिष्टात् बृहती १९ । निचृत् त्रिष्टुप् २० । परोष्णिक् २२ । निचृत् अनुष्टुप् २३ । विराट् अनुष्टुप् २४ । साम्नी पंक्ति २५ । स्वराट् पंक्ति २६ । पंक्ति २७ । स्वराट् धृति २८ ।

॥ इति अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

१९४६. स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः। पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥१॥

प्राणों के अधिपति (हिरण्यगर्भ) सहित उत्तम प्राणों के लिए, पृथ्वी के लिए, अग्नि के लिए, अन्तरिक्ष के लिए, वायु देवता के लिए, द्युलोक के लिए तथा सूर्यदेव के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥१॥

१९४७. दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥२॥

सभी दिशाओं के लिए, चन्द्रमा के लिए, नक्षत्रों के लिए, जल समूहों के लिए, नाभि (भुवनस्य नाभिः-यज्ञ देव) के लिए तथा पवित्रता का संचार करने वाले देवता के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥२॥

१९४८. वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा। चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥३॥

उत्तम वाणी के लिए, प्राण वायु को पवित्र रखने के लिए, दोनों आँखों की पवित्रता के लिए तथा दोनों कानों की पवित्रता के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥३॥

१९४९. मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशूनाᳬं रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥४॥

(मनस्वी) अन्तःकरण की कामना की पूर्ति हो तथा वाणी को सत्य बोलने की क्षमता प्राप्त हो। पशुधन से घर की शोभा बढ़े। अन्न के रस, कीर्ति तथा समृद्धि की प्राप्ति हो—इसके लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥४॥

१९५०. प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः सᳬंसन्नो घर्मः प्रवृक्त स्तेजऽ उद्यतऽ आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन्। मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाणऽ आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥५॥

(यज्ञीय प्रयोगों से) पुष्ट होते हुए प्रजापति के लिए, प्रजा द्वारा सम्मानित सम्राट् के लिए, विद्वानों से सम्मानित वैश्वदेव के लिए, उच्चासन प्राप्त तेजस्वी घर्म (यज्ञ विशेष) के लिए, उन्नत पद पर प्रकाशित तेज के लिए, जल से अभिषिक्त अश्विनीकुमारों के लिए, पृथ्वी के हित में प्रवृत्त 'पूषा' के लिए, शत्रुनाशक मरुत् के लिए, कृषि साधनों के विस्तारक मित्र के लिए, युद्ध क्षेत्र में गमनशील वायु के लिए, आहुतियाँ प्राप्त करने वाले अग्नि तथा वाक् देवता के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं ॥५॥

१९५१. सविता प्रथमेहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽ आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम ऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे वरुणो दशमऽ इन्द्रऽ एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ॥६॥

पहले दिन सविता के लिए, दूसरे दिन अग्नि के लिए, तीसरे दिन वायु के लिए, चौथे दिन आदित्य के लिए, पाँचवें दिन चन्द्रमा के लिए, छठे दिन ऋतु के लिए, सातवें दिन मरुद्‌गण के लिए, आठवें दिन बृहस्पतिदेव के लिए, नौवें दिन मित्र के लिए, दसवें दिन वरुण के लिए, ग्यारहवें दिन इन्द्रदेव के लिए तथा बारहवें दिन विश्वेदेवा के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं ॥६ ॥

१९५२. उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७ ॥

उग्र के लिए, भीम के लिए, ध्वान्त (घोर शब्द वाले) के लिए, धुनि (कम्पित करने वाले) के लिए, सासह्वान (पराजित करने में समर्थ) के लिए, अभियुग्वा (शत्रुओं पर चढ़ाई करने वाले) के लिए तथा विक्षिप (छिन्न-भिन्न करने वाले वायु देवता) के लिए —ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥७ ॥

१९५३. अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना । शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥८ ॥

आगे की दो कण्डिकाओं में अंग-अवयवों से देव शक्तियों को तुष्ट-प्रसन्न करने का उल्लेख है । उन अंग-अवयवों में सन्निहित शक्तियों को यज्ञीय प्रयोजनों में नियोजित करने से देवों की प्रसन्नता प्राप्त होने का भाव ग्रहणीय है—

(याजक) हृदय से अग्नि को, हृदय के अग्रभाग से विद्युत् देव को, सम्पूर्ण हृदय से पशुपति देवता को, यकृत् से आकाश को, गुर्दों से जल को, मन्यु से ईशान को, अन्दर की पसलियों से महादेव को, आँतों से उग्र देवता को, हनु से वसिष्ठ को तथा हृदय कोषों से शिङ्गि देवों को तुष्ट (प्रसन्न) करते हैं ॥८ ॥

१९५४. उग्रँल्लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान् प्रमुदा । भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥९ ॥

लोहित से उग्रदेवता को, उत्तम व्रतों के पालन से मित्र देवता को, दुराचार के त्याग से रुद्रदेव को, श्रेष्ठ आचरण से इन्द्रदेव को, बल के सदुपयोग से मरुत् को, प्रसन्नता (दायी कर्मों) से साध्यदेवों को, सुमधुर गायन के आधारभूत कण्ठ से भव देवता को, पसलियों में समाहित शक्तियों द्वारा रुद्र को, सहृदयता से महादेव को, स्थूल आँत में सन्निहित शक्तियों से शर्वदेवता को तथा पुरीतत् (हृदय स्थित नाड़ी की शक्ति) से पशुपति को प्रसन्न करते हैं ॥९ ॥

१९५५. लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा । माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा रेतसे स्वाहा । पायवे स्वाहा ॥१० ॥

इस मंत्र में शरीर के विविध अवयवों की पुष्टि के लिए दो-दो आहुतियाँ दी गयी हैं । प्रथम आहुति व्यष्टि परक तथा दूसरी समष्टि परक मानकर दो-दो बार मंत्र प्रयोग किया गया प्रतीत होता है—

लोमों के निमित्त, त्वचा के निमित्त, लोहित के निमित्त, मेदों के निमित्त, मांसों के निमित्त, स्नायुओं के निमित्त, अस्थियों के निमित्त, मज्जाओं के निमित्त, वीर्य के निमित्त तथा गुदारूप अवयव के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१० ॥

१९५६. आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा । शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥११ ॥

आयास देवता के निमित्त, प्रयास देवता के निमित्त, संयास देवता के निमित्त, वियास देवता के निमित्त, उद्यास देवता के निमित्त, शुच देवता के निमित्त, शोच देवता के निमित्त, शोचमान देवता के निमित्त तथा शोक देवता के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥११ ॥

१९५७. तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा । निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२ ॥

तप के निमित्त, संताप (को प्राप्त होने वाले) के निमित्त, तप्यमान के निमित्त, तप्त के निमित्त; घर्म (यज्ञ विशेष) के निमित्त, निष्कृति के निमित्त, प्रायश्चित्त के निमित्त तथा भेषज के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१२ ॥

१९५८. यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा ॥१३ ॥

यम के निमित्त, अन्तक के निमित्त, मृत्यु के निमित्त, ब्रह्म के निमित्त, ब्रह्म हत्या के (शमन के) निमित्त, सम्पूर्ण देवगणों के निमित्त तथा द्युलोक और पृथ्वीलोक के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१३ ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— दध्यङ् आथर्वण १-६ । परमेष्ठी प्रजापति अथवा साध्य ७-१३ ।

देवता— मान्त्रवर्णिक्य १-३ । यजमान-आशीर्वाद, श्री ४ । प्रायश्चित्त देवता ५ । सविता आदि ६ । मरुद्गण ७ । अग्नि ८-१३ ।

छन्द— पंक्ति १ । भुरिक् अनुष्टुप् २ । स्वराट् अनुष्टुप् ३ । निचृत् बृहती ४ । कृति ५ । विराट् धृति ६ । भुरिक् गायत्री ७ । निचृत् अत्यष्टि ८ । भुरिक् अष्टि ९ । आकृति १० । स्वराट् जगती ११ । त्रिष्टुप् १२ । निचृत् त्रिष्टुप् १३ ।

॥ इति एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

यजुर्वेद के ३९ अध्याय यज्ञीय कर्मकाण्डपरक कहे गये हैं। चालीसवाँ अध्याय विशुद्ध ज्ञानपरक है। इसे ईशावास्योपनिषद् के रूप में मान्यता प्राप्त है। आचार्य महीधर ने भी लिखा है कि यज्ञकर्म से शुद्ध हुए अन्तः करण को आत्मज्ञान—परमात्मज्ञान से संस्कारित करने के उद्देश्य से ऋषियों ने यह अन्तिम अध्याय उत्कृष्ट ज्ञान सूत्रों के रूप में स्थापित किया है। इस भावानुवाद में गूढ़ मंत्रों का केवल सर्वसुलभ लोकोपयोगी अर्थ ही दिया जा रहा है—

१९५९. ईशा वास्यमिदᳬ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१ ॥

इस सृष्टि में जो कुछ भी (जड़ अथवा चेतन) है, वह सब ईश द्वारा आवृत-आच्छादित है (उसी के अधिकार में है)। केवल उसके द्वारा (उपयोगार्थ) छोड़े गये (सौंपे गये) का ही उपभोग करो। (अधिक का) लालच मत करो, (क्योंकि यह) धन किसका है ? (अर्थात् किसी व्यक्ति का नहीं-केवल 'ईश' का ही है) ॥१ ॥

१९६०. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतᳬ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२ ॥

यहाँ (ईश्वर से अनुशासित इस जगत् में) कर्म करते हुए सौ वर्षों (पूर्णायु) तक जीने की कामना करें। (इस प्रकार अनुशासित रहने से) कर्म मनुष्य को लिप्त (विकारग्रस्त) नहीं करते । (विकारमुक्त जीवन जीने के निमित्त) यह (मार्गदर्शन) तुम्हारे लिए है, इसके अतिरिक्त परम कल्याण का और कोई अन्य मार्ग नहीं है ॥२ ॥

१९६१. असुर्या नाम ते लोका ऽ अन्धेन तमसावृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३ ॥

वे (इस अनुशासन का उल्लंघन करने वाले) लोग असुर्य (केवल शरीर एवं इन्द्रियों की शक्ति पर निर्भर-सद्विवेक की उपेक्षा करने वाले) नाम से जाने जाते हैं। वे (जीवन भर) गहन अन्धकार (अज्ञान) से घिरे रहते हैं। वे आत्मा (आत्मचेतना के निर्देशों) का हनन करने वाले लोग, प्रेतरूप में (शरीर छूटने पर) भी वैसे ही (अंधकारयुक्त) लोकों में जाते हैं ॥३ ॥

१९६२. अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽ आप्नुवन् पूर्वमर्शत्। तद्धावतोन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४ ॥

चंचलतारहित वह ईश एक (ही है, जो) मन से भी अधिक वेगवान् है। वह स्फूर्तिवान् पहले से ही है, (किन्तु) उसे देवगण (देवता या इन्द्रिय समूह) प्राप्त नहीं कर पाते। वह स्थिर रहते हुए भी दौड़कर अन्य (गतिशीलों) से आगे निकल जाता है। उसके अंतर्गत (अनुशासन में रहकर) ही गतिशील वायु-जल को धारण किए रहता है ॥४ ॥

१९६३. तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५ ॥

वह (परमात्मतत्त्व) गतिशील भी है और स्थिर (भी) है। वह दूर से दूर भी है और निकट से निकट भी है। वह इस सब (जड़-चेतन जगत्) के अंदर भी है तथा सबके बाहर (उसे आवृत किये हुए) भी है ॥५ ॥

१९६४. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥६ ॥

व्यक्ति (जब) सभी भूतों (जड़-चेतन सृष्टि) को (इस) आत्मतत्त्व में ही स्थित अनुभव करता है तथा सभी भूतों के अंदर इस आत्मतत्त्व को समाहित अनुभव करता है, तब वह किसी प्रकार भ्रमित नहीं होता ॥६ ॥

१९६५. यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक ऽएकत्व-मनुपश्यतः ॥७ ॥

जिस स्थिति में (व्यक्ति) यह (मर्म) जान लेता है कि यह आत्म तत्त्व ही समस्त भूतों के रूप में प्रकट हुआ है, (तो) उस एकत्व की अनुभूति की स्थिति में मोह अथवा शोक कहाँ टिक सकते हैं ? अर्थात् ऐसी स्थिति में व्यक्ति मोह एवं शोक से परे हो जाता है ॥७ ॥

१९६६. स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८ ॥

वह (परमात्मा) सर्वव्यापी है, तेजस्वी है। वह देहरहित, स्नायुरहित एवं छिद्र (व्रण) रहित है। वह शुद्ध और निष्पाप है। वह कवि (क्रान्तदर्शी), मनीषी (मन पर शासन करने वाला), सर्वजयी और स्वयं ही उत्पन्न होने वाला है। उसने अनादिकाल से ही सबके लिए यथा-योग्य अर्थों (साधनों) की व्यवस्था बनायी है ॥८ ॥

१९६७. अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽसंभूतिमुपासते। ततो भूयऽ इव ते तमो यऽ उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥९ ॥

जो लोग केवल असंभूति (बिखराव-विनाश) की उपासना करते हैं (उन्हीं प्रवृत्तियों में रमे रहते हैं), वे घोर अंधकार (अज्ञान) में घिर जाते हैं और जो केवल संभूति (संगठन-सृजन) की ही उपासना करते हैं, वे भी उसी प्रकार के अंधकार में फँस जाते हैं ॥९ ॥

१९६८. अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

जिन देवपुरुषों ने हमारे लिए (इन विषयों को) विशेषरूप से कहा है, हमने उन धीर पुरुषों से सुना है कि संभूतियोग का प्रभाव भिन्न है तथा असंभूति योग का प्रभाव उससे भिन्न है ॥१० ॥

१९६९. सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११ ॥

(इसलिए) संभूति (समय के अनुरूप नया सृजन) तथा विनाश (अवाञ्छनीय को समाप्त करना)—इन दोनों कलाओं को एक साथ जानो। विनाश की कला से मृत्यु को पार करके (अनिष्टकारी को नष्ट करके मृत्युभय से मुक्ति पाकर) तथा संभूति (उपयुक्त निर्माण की) कला से अमृतत्व की प्राप्ति की जाती है ॥११ ॥

१९७०. अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूयऽ इव ते तमो यऽ उ विद्यायाꣳ रताः ॥१२ ॥

जो लोग (केवल) अविद्या (पदार्थ-निष्ठ विद्या) की उपासना करते हैं, वे गहन अंधकार (अज्ञान) से घिर जाते हैं और जो (केवल) विद्या (आत्म-विद्या) की उपासना करते हैं, वे भी उसी प्रकार के अज्ञान में फँस जाते हैं ॥१२ ॥

१९७१. अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽ अन्यदाहुरविद्यायाः। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३ ॥

जिन देवपुरुषों ने हमारे लिए (इन विषयों को) विशेषरूप से कहा है, उन धीर पुरुषों से हमने सुना है कि विद्या का प्रभाव कुछ और है तथा अविद्या का प्रभाव उससे भिन्न है ॥१३ ॥

१९७२. विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥१४ ॥

(इसलिए) इस विद्या (आत्म-विज्ञान) तथा उस अविद्या (पदार्थ-विज्ञान) दोनों का ज्ञान एक साथ प्राप्त करो। अविद्या के प्रभाव से मृत्यु को पार करके (पदार्थ-विज्ञान से अस्तित्व बनाये रखकर), विद्या (आत्म-विज्ञान) द्वारा अमृत तत्त्व की प्राप्ति की जाती है ॥१४ ॥

१९७३. वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्। ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर ॥१५ ॥

यह जीवन (अस्तित्व) वायु-अग्नि आदि (पंचभूतों) तथा अमृत (सनातन आत्म चेतना) के संयोग से बना है। शरीर तो अंततः भस्म हो जाने वाला है। (इसलिए) हे संकल्पकर्ता ! तुम परमात्मा का स्मरण करो, अपनी सामर्थ्य का स्मरण करो और जो कर्म कर चुके हो, उनका स्मरण करो ॥१५ ॥

१९७४. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽ उक्तिं विधेम ॥१६ ॥

हे अग्ने (यज्ञ प्रभु) ! आप हमें श्रेष्ठ मार्ग से ऐश्वर्य की ओर ले चलें। हे विश्व के अधिष्ठातादेव ! आप कर्म मार्गों के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं। हमें कुटिल पापकर्मों से बचाएँ। हम बहुशः (भूयिष्ठ) नमन करते हुए आप से विनय करते हैं ॥१६ ॥

१९७५. हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्। ॐ खं ब्रह्म ॥१७ ॥

सोने के (चमकदार-लुभावने) पात्र से सत्य का मुख (स्वरूप) ढँका हुआ है। (आवरण हटने पर पता लगता है कि) वह जो आदित्यरूप पुरुष है, वही (आत्मरूप में) मैं हूँ। 'ॐ (अक्षर) आकाशरूप में ब्रह्म ही संव्याप्त है ॥

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— दध्यङ् आथर्वण १-१४। दध्यङ् आथर्वण, ब्रह्मा १५,१७। अगस्त्य १६।

देवता— आत्मा १-१४, १७। आत्मा, परमात्मा १५। अग्नि १६।

छन्द— अनुष्टुप् १, ३, ५,९-११, १३, १७। भुरिक् अनुष्टुप् २। निचृत् त्रिष्टुप् ४, १६। निचृत् अनुष्टुप् ६-७, १२। स्वराट् जगती ८। स्वराट् उष्णिक् १४, १५।

॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

॥ इति शुक्लयजुर्वेदसंहिता समाप्ता ॥

ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए सर्वानुक्रम सूत्रकार ने लिखा है— **नमस्ते बृहतीमाग्नेयीमृषिसुता लोपामुद्रा** (सर्वा० २.२४) । आचार्य महीधर ने यही प्रसंग स्पष्ट करते हुए लिखा है— **आग्नेयी बृहती लोपामुद्राद्रष्टा** (यजु० १७.११ मही० भा०)।

३०. और्णवाभ (३.४९-५०) —ऊर्णवाभि के वंशज को और्णवाभ कहा जाता है । कुछ लोगों ने इन्हें कौण्डिन्य का शिष्य भी कहा है । यास्क ने इनका उल्लेख अनेक स्थलों पर आचार्य के रूप में किया है— **जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभः** (नि० (७.१५.१२) । यजुर्वेद (३.४९-५०) के द्रष्टा ऋषि यही हैं । जैसा कि महर्षि कात्यायन प्रणीत सर्वानुक्रमसूत्र में उल्लिखित है— **पूर्णादर्वि द्वे और्णवाभ ऐन्द्र्यावनुष्टुभावन्त्र** (सर्वा० १.१५)।

३१. कण्व घौर (११.४२; १७.७४; ३४.५६-५७) — ऋग्वेद के प्रथम सात मण्डलों के सात प्रमुख ऋषियों में कण्व का नाम आता है । आठवें मण्डल की ऋचाओं की रचना भी कण्व परिवार की ही है, जो पहले मण्डल के रचयिता हैं । ऋग्वेद, अथर्ववेद, वाजसनेयि संहिता तथा पंचविंश ब्राह्मण आदि में कण्व का नाम बार-बार आया है । यही तथ्य यजुर्वेद भाष्य में इस प्रकार प्रतिपादित हुआ है— **अग्निदेवत्योपरिष्टाद् बृहती कण्वदृष्टा** (यजु० ११.४२ मही० भा०); **कण्वदृष्टा सावित्री त्रिष्टुप्** (यजु० १७.७४ मही० भा०)। कण्व को घोर का पुत्र कहा गया है, इसीलिए इनके नाम के साथ 'घौर' शब्द का प्रयोग हुआ है— **घोरपुत्रः कण्व ऋषिः** (ऋ० १.३६ सा० भा०)।

३२. कपि (२.१६) —बोटलिंक के अनुसार काठक संहिता (३०.२) में पाये जाने वाले 'लुश खार्गलि' का ही एक नाम कपि है। संभवतः इनका नाम लुशा कपि रहा हो । यजुर्वेद (२.१६) में मंत्र के दो अंशों के ऋषि नाम में 'कपि' नाम निर्दिष्ट है— **प्रस्ता कपिर्बृहती प्रास्तरीमन्त्यः पाद आग्नेयो** ..... (सर्वा० १.७)। इसी तथ्य को भाष्यकार ने दूसरे शब्दों में व्यक्त किया है— **प्रस्तामिति प्रस्तरदेवत्या बृहती कपिदृष्टा । चतुर्थः पाद आग्नेयः** (यजु० २.१६ मही० भा०)। अन्य किसी वेद में इनका नाम कहीं नहीं आता है ।

३३. कशिपा भरद्वाज दुहिता (३४.३२) — ऋषिका होने की महनीय कीर्ति प्राप्त करने वाली स्त्रियों में 'कशिपा' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । नामोल्लेख से ज्ञात होता है कि आप ऋषि भरद्वाज की पुत्री हैं । महर्षि कात्यायन प्रणीत सर्वानुक्रम सूत्र में आपका उल्लेख इस प्रकार हुआ है— **आ रात्रि पथ्याबृहती ७३ रात्रिदेवत्यां कशिपा भरद्वाजदुहिता** (सर्वा० ४.२)।

३४. काक्षीवत सुकीर्ति (१०.३२) —'सुकीर्ति' कक्षीवत-गोत्रीय होने के कारण काक्षीवत सुकीर्ति कहलाए। जो ऋग्वेद (१०.१३१) सूक्त के ऋषि हैं— **अप प्राच इति सप्तर्चं तृतीयं सूक्तं कक्षीवतः पुत्रस्य सुकीर्तेरार्षम्**........ (ऋ० १०.१३१ सा० भा०)। यजु० में इनका ऋषित्व अध्याय १० के ३२ वें मंत्र में प्राप्त होता है— **तृचं काक्षीवतसुकीर्तिदृष्टम्** (मही० भा० यजु० १०.३२)।

३५. कुत्स (८.४; १२.२) —अष्टाध्यायी (पाणिनि) के सूत्रों में जिन पूर्वाचार्यों के नाम आये हैं, उनमें कुत्स भी हैं । त्रित आप्त्य के वैकल्पिक ऋषि के रूप में कुत्स का नाम स्मरण किया गया है । कुछ स्थलों पर स्वतंत्र ऋषि के रूप में भी इन्हें वर्णित किया गया है— **अनुवर्तमानत्वात् कुत्स ऋषिः** (ऋ० १.१०६.१ सा० भा०)। **अपां पुत्रस्य त्रितस्य कूपे पतितस्य कुत्सस्य वार्षम्** (ऋ० १.१०५.१ सा० भा०)। यजु० में आपके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए सर्वानुक्रमसूत्रकार लिखते हैं— **यज्ञो देवानां कुत्सस्त्रिष्टुभम्** (सर्वा० १.३०); इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य में 'कुत्स' का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

३६. कुमार-वृष (१५.४१-४७) —कुमार और वृष दोनों का समुदित ऋषित्व यजुर्वेद (१५.४१-४७) में एक स्थान पर ही उपलब्ध होता है, जबकि कुमार हारीत, कुमार आग्नेय, कुमार आत्रेय तथा कुमार यामायन के नाम अन्यत्र भी पाये जाते हैं; परन्तु यह कहना बड़ा कठिन है कि जो कुमार, वृष के साथ आये हैं; वे ही हारीत, आग्नेय, आत्रेय एवं यामायन के साथ हैं । यजुर्वेद में इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए सर्वा० सूत्रकार ने लिखा है— **अग्निं तं कुमारवृषौ** (सर्वा० २.२०)। यही मन्त्र ऋ० ५.६.१ तथा साम० ४२५ में भी पठित है, परन्तु वहाँ अनुक्रमणी में इस मन्त्र के ऋषि का नाम कुमार - वृष के स्थान पर वसुश्रुत आत्रेय आया है ।

३७. कुमार हारीत (१२.६९) —'बृहदारण्यक उपनिषद्' में आचार्यों की प्रथम वंश सूची (२.५.२) में गालव के शिष्य कुमार हारीत का उल्लेख है । यजुर्वेद १२.६९ में मंत्रद्रष्टा के रूप में इनका नाम प्रयुक्त है । सूत्रकार ने लिखा है— **शुनं चतस्रः सीतादेवत्याः कुमारहारितो द्वे त्रिष्टुभौ** ___ (सर्वा० २.१०) । आचार्य महीधर ने अपने भाष्य में इसे इस प्रकार उल्लिखित किया है— **कुमारहारितदृष्टाः सीतादेवत्याश्चतस्रः** (यजु० १२.६९ मही० भा०)।

३८. कुरुस्तुति (८.३९) — वैदिक साहित्य में कुरुस्तुति का ऋषित्व अत्यल्प ही पाया जाता है । यजुर्वेद में मात्र एक मन्त्र (८.३९) में ही इनका ऋषित्व विवेचित है । अथर्ववेद में भी मात्र २०.४२ सूक्त का ऋषित्व इनके नाम से उपलब्ध होता है । सर्वानुक्रम सूत्र में इनके सम्बन्ध में लिखा है— **उत्तिष्ठन् कुरुस्तुति ऐन्द्रीमदद्यम्** (सर्वा० १.३२)। आचार्य महीधर ने 'कुरुस्तुति' का ऋषित्व इस प्रकार स्वीकार किया है— **इन्द्रदेवत्या गायत्री कुरुस्तुतिदृष्टा यजुरन्ता** (यजु० ८.३९ मही० भा०)।

३९. कुशिक (३३.५९) —ऐतरेय ब्राह्मण (७.१८) से स्पष्ट है कि वे पुरोहितों के वंश के थे, जो भरतों के पौरोहित्य कार्य में संलग्न थे। यजुर्वेद में 'कुशिक' का ऋषित्व प्रकट करते हुए महर्षि कात्यायन कहते हैं—**विदद्वैन्द्री कुशिको** ___ (सर्वा० ३.२१)। आचार्य महीधर ने इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए लिखा है—**कुशिकदृष्टा त्रिष्टुप् इन्द्रदेवत्या** (यजु० ३३.५९ मही० भा०)।

४०. कुश्रि (११.१३) —यजुर्वेद में मंत्र द्रष्टा के रूप में 'कुश्रि' ऋषि का नाम आता है। बृहदारण्यक उप० की वंशसूची (६.४.३३) में इन्हें वाजश्रवस का शिष्य कहा गया है। सर्वानुक्रमसूत्र में कुश्रि का ऋषित्व इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **युञ्जाथां कुश्रिर्गार्दभी गायत्रीम्** (सर्वा० २.२) । इसी तथ्य को आचार्य महीधर ने इस प्रकार लिखा है— **गर्दभदेवत्या गायत्री कुश्रिदृष्टा** (यजु०-११.१३ मही० भा०)। यजुर्वेद के इस मंत्र के अतिरिक्त इनको ऋषित्व नहीं प्राप्त हुआ है।

४१. कुसीदी काण्व (३३.७७) —कुसीदिन् ऋषि कण्व के पुत्र थे। इन्होंने इन्द्र विषयक ऋचाओं का दर्शन किया था। इसी तथ्य की पुष्टि आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में की है— **कण्वपुत्रस्य कुसीदिन आर्षं गायत्रमैन्द्रम्** (ऋ० ८.८१ सा० भा०)। बृहद्देवताकार ने इन्हें एक द्रष्टा के रूप में विवेचित किया है— **यमोऽग्निस्तापसः कुत्सः कुसीदी त्रित एव च** (बृह० ३.५८)। यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन किया गया है— **कुसीदिदृष्टा गायत्र्याग्निपुरोरुक्** (यजु० ३३.७७ मही० भा०)।

४२. कुसुरुबिन्दु (कौसुरुबिन्दु) (८.४२-४३) — ये यज्ञादि के विषय में एक प्रामाणिक ऋषि हैं। कुसुरुबिन्द औद्दालकि का उल्लेख पंचविंश ब्राह्मण (२२.१५.१.१०) में और तैत्तरीय संहिता (७.२.२.१) में मिलता है। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व का उल्लेख सर्वप्रथम सर्वानुक्रमसूत्र में किया गया है— **आजिघ्रेडे कौसुरुबिन्दुर्गव्ये महापंक्ति-प्रस्तारपंक्ति** (सर्वा० १.३२)। इसी प्रसंग को यजुर्वेद भाष्य में इस प्रकार कहा गया है— **गोदेवत्या महापंक्तिः कुसुरुबिन्दुदृष्टा अष्टार्णषट्पादा** (यजु० ८.४२. मही० भा०)। वेबर के विचार से वे श्वेतकेतु के भाई सिद्ध होते हैं। षड्विंश ब्राह्मण (१.१६) और शांखायन श्रौतसूत्र (१६.२२.१४) में इन्हें 'कुसुरुबिन्दु' कहा गया है।

४३. कूर्म गार्त्समद (३३.५१.) — कूर्म ऋषि को गृत्समद का पुत्र कहा गया है; अतएव कुछ स्थलों पर 'कूर्म गार्त्समद' नाम प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद (२.२७ से २.२९) के ऋषि कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद माने गये हैं। कूर्म ऋषि की यजुर्वेद के अन्तर्गत ऋषित्व पद की प्रतिष्ठा अधोलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती है— **इमा गिरः कूर्मो गार्त्समद आदित्यदेवत्यां त्रिष्टुभम्** —— (सर्वा० ४.३)। यही तथ्य यजुर्वेद भाष्य में भी उपलब्ध है— **कूर्मदृष्टादित्यस्य प्रथमा पुरोरुक्** (यजु० ३३.५१ मही० भा०)।

४४. क्रतु भार्गव (५.३५) —'क्रतु भार्गव' का ऋषित्व वैदिक संहिताओं में अत्यल्प पाया जाता है। यजुर्वेद के ५.३५ वीं कण्डिका का उत्तरार्द्ध आपके द्वारा दृष्ट माना जाता है। भार्गव संज्ञा आपको भृगु गोत्रीय सिद्ध करती है। वस्तुतः आप 'भृगु' ऋषि के पुत्र ही हैं, जैसा कि यजु० ५.३५ के महीधर भाष्य से सिद्ध है— **अवसानरहिता सोमदेवत्या गायत्री भृगुसुतक्रतुदृष्टा** (यजु० ५.३५ मही० भा०)।

४५. गंधर्व (३.१) —यजुर्वेद में संगृहीत अग्न्याधेय मंत्र-समूह में ऋषि-विकल्प उल्लिखित हैं, जिनमें देवा, अग्नि और गंधर्व का विकल्प मिलता है— **अग्न्याधेयं प्रजापतेरार्षं देवानामग्नेर्गन्धर्वाणां वा** (सर्वा० १.१०)। वैदिक साहित्य में अन्यत्र गन्धर्व का ऋषित्व प्राप्त नहीं होता है। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य उवट एवं महीधर के ऋषित्व विवेचन में विभेद है। यहाँ आचार्य उवट ने गन्धर्व के ऋषित्व को प्रमाणित नहीं किया है, जबकि आचार्य महीधर ने सर्वानुक्रम-सूत्रकार के ऋषित्व-विवेचन को ही स्वीकृत किया है— **देवानां प्रजापतेरग्नेर्गन्धर्वाणां वार्षम्** (यजु० ३.१ मही० भा०) ।

४६. गय प्लात (२१.६-७) — ये प्लति के वंशज हैं। ऋग्वेद १०.६३ तथा १०.६४ सूक्तों के ऋषि गय प्लात हैं— **परावतो य इति सप्तदशर्चं तृतीयं सूक्तं प्लतेः पुत्रस्य गयस्यार्षं** (ऋ० १०.६३ सा० भा०)। यजुर्वेद के अन्तर्गत इनके ऋषित्व का उल्लेख करते हुए सर्वानुक्रमसूत्रकार ने लिखा है—**त्रिष्टुबादित्या, सुत्रामाणं गयः प्लातः** ..... (सर्वा० २.४०) । इसी प्रकरण को आचार्य महीधर ने इस प्रकार लिखा है—**अदितिदेवत्या त्रिष्टुप् गयः प्लातदृष्टा** (यजु० २१.६ मही० भा०)।

४७. गर्ग (२०.५०-५२) —गर्ग ऋषि यजुर्वेद में स्वतंत्र मन्त्र द्रष्टा रूप में उल्लिखित हैं। अनुक्रमणी में ऋग्वेद (६.४७) सूक्त के ऋषि का नाम 'गर्ग भारद्वाज' आया है। सायण ने ऋग्वेद (६.४७) के भाष्य में गर्ग को भरद्वाज का पुत्र बताया है ___ **चतुर्थं सूक्तं भरद्वाजपुत्रस्य गर्गस्यार्षम्**। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने यजुर्वेद में इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखा है— **त्रातारं गर्गः** _ (सर्वा० २.३८)। आचार्य महीधर ने **गर्गदृष्टा** कहकर इसे परिपुष्ट कर दिया है।

४८. गालव (१८.५६-५७) —बृहदारण्यक उपनिषद् में आचार्यों की प्रथम दो वंश सूचियों में अर्थात् (२.६.३) तथा (४.६.३) में विदर्भी कौण्डिन्य के एक शिष्य का नाम गालव है। इसी सूची में गालव के शिष्य कुमार हारीत का उल्लेख भी मिलता है। इनका ऋषित्व केवल यजुर्वेद में ही प्राप्त होता है, अन्यत्र नहीं। सर्वानुक्रम सूत्र में आचार्य कात्यायन लिखते हैं— **इष्टो यज्ञो द्व्यृचं यजमानाग्निदेवत्यं गालवः** ....(सर्वा० २.३०)। यही तथ्य यजुर्वेद भाष्य में इस प्रकार व्यक्त हुआ है— **यज्ञदेवत्याग्निगालवदृष्टा अष्टाविंशत्यक्षरत्वात्** (यजु० १८.५६ मही० भा०)।

४९. **गृत्समद (७.९, ३४; ११.२३-२४)** — 'गृत्समद ऋषि' का ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी पर्याप्त ऋषित्व प्राप्त होता है। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इसका विवरण देते हुए लिखा है— **अयं वां गृत्समदो मैत्रावरुणीम्** —(सर्वा० १.२६)। आचार्य महीधर भी लिखते हैं— **मित्रावरुणदेवत्या गायत्री गृत्समदृष्टा यजुरन्ता** (यजु० ७.९ मही० भा०)।

५०. **गोतम राहूगण (३.११,५१;४.३७)** — प्राचीन ऋषियों में राहूगण का वर्णन प्राप्त होता है। इनके पुत्र का नाम गोतम था। इसी कारण इनका उपयुक्त नामकरण किया गया है। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व का प्रतिपादन सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इस प्रकार किया है — **उपप्रयन्तं ...... गोतमो राहूगणो** (सर्वा० १.१२)। यजुर्वेद में इन्हें बहुशः 'गोतम' ही उद्धृत किया गया है, 'गोतम राहूगण' नहीं, यथा यजु० ३.५१-५२ (**अक्षन् द्वे गोतम ऐन्द्र्यौ पङ्क्ती** — सर्वा० १.१५), यजु० ४.३७ (**या ते सौमी त्रिष्टुप् गोतमः**- सर्वा० १.१८)।

५१. **गौरिवीति शाक्त्य (३३.६४)** —गौरिवीति को शक्ति गोत्रज होने के कारण शाक्त्य कहा जाता है। गौरिवीति का उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों में भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है। ऋग्वेद और सामवेद में ये मंत्रों के द्रष्टा के रूप में निरूपित हैं। यजुर्वेद में आपके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए सर्वानुक्रमसूत्रकार ने लिखा है— **आ तद्गौरीविति: शाक्त्य** (सर्वा० ३.१८)। यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि 'गौरिवीति' की जगह सर्वानुक्रम सूत्रकार ने "**गौरीविति**" शब्द माना है। इस सम्बन्ध में आचार्य महीधर लिखते हैं— **गौरीवितिदृष्टा त्रिष्टुप् आदित्यग्रहस्य दधिश्रयणे विनियोगः** (यजु० ३३.२८ मही० भा०)। आगे के मंत्रद्रष्टा ऋषि के रूप में '**गौरिवीतिदृष्टा**' लिखा जिससे सिद्ध होता है कि दोनों नाम प्रायः एक ही व्यक्ति के हैं।

५२. **जमदग्नि (११.७३-७४)** —जमदग्नि की गणना प्रसिद्ध ऋषियों में की जाती है। शतपथ ब्राह्मण में जमदग्नि को दार्शनिक जामा पहनाते हुए उन्हें 'चक्षु' (नेत्र) कहा है, जिससे यह जगत् देखा जाता है-मनन किया जाता है। यजुर्वेद में आपका ऋषि के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सर्वानुक्रम सूत्र में (२.६) आपका उल्लेख मिलता है—**यदग्ने द्वे जमदग्निः**। इस प्रसंग में आचार्य महीधर का कथन है—**द्वे अनुष्टुभौ जमदग्निदृष्टे** (यजु० ११.७३ मही० भा०)।

५३. **जय-ऐन्द्र (१८.७१)** —ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद में जय ऐन्द्र का नाम ऋषि के रूप में एक-एक बार ही विवेचित है। ऐन्द्र विशेषण का प्रयोग अप्रतिरथ, जय, बरु, वसुक्र, वृषाकपि तथा सर्वहरि ऋषियों के साथ भी किया जाता है। आचार्य सायण ने ऐन्द्र का अर्थ इन्द्रपुत्र किया है। इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं— **प्र ससाहिषे इति तृचमेकोनत्रिंशं सूक्तमिन्द्रपुत्रस्य जयस्यार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्** (ऋ० १०.१८० सा० भा०)। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए सर्वानुक्रमसूत्रकार महर्षि कात्यायन ने लिखा है— **मृगो न त्रिष्टुप् .... द्वितीयां जय ऐन्द्रो** (सर्वा० २.३२)।

५४. **जेता माधुच्छन्दस (१२.५६; १५.६१)** —मधुच्छन्दस् का पुत्र होने के कारण इन्हें माधुच्छन्दस कहा गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में इन्हें ११वें सूक्त का ऋषि कहा गया है— '**इन्द्रं विश्वा' इत्यष्टर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दसः पुत्रो जेतृनामक ऋषिः। तथा चानुक्रान्तम्। इन्द्रमष्टौ जेता माधुच्छन्दस' इति** (ऋ० १.११ सा० भा०)। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व की प्रामाणिकता सर्वा० सूत्रकार के शब्दों में सिद्ध हो जाती है— **इन्द्रं जेता माधुच्छन्दस ऐन्द्रीम्**। (सर्वा० २.१)। इससे यह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि जेता (जेतृ) मधुच्छन्दस् के पुत्र थे।

५५. **तक्षा— जीवल चैलकि (३.९ का मंत्रांश)** —सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के नवम मंत्र के तीसरे और चौथे मंत्रांश में ऋषि-नाम 'तक्षा' और पाँचवें मंत्रांश में ऋषि नाम 'जीवल-चैलकि' उल्लिखित किया है। संहिताओं में अन्यत्र कहीं इनका ऋषित्व नहीं मिलता है। सर्वानुक्रम-सूत्र में इनका ऋषित्व इस प्रकार उद्धृत है— **अग्निर्वर्चो द्वे तक्षाऽपश्यत्परां जीवलश्चैलकिः** (सर्वा० १.११)। इसी प्रकार यजुर्वेद भाष्य में आचार्य उवट और महीधर ने भी इनके ऋषित्व का प्रतिपादन अनुक्रमणिका का उद्धरण देकर किया है।

५६. **तापस (अग्नि) (९.२६-३४)** —तापस का संयुक्त ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। इनके साथ विरूप पुत्र सध्रि का नाम लिया गया है। तापस को तपस्-पुत्र कहा जाता है। इनके नाम के साथ घर्म, मन्यु और अग्नि को सम्मिलित किया गया है। इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं—**अग्न इति षड्ऋचं त्रयोदशं सूक्तं। तापस गुणविशिष्टस्याग्नेरार्षं वैश्वदेवमानुष्टुभम्** (ऋ० १०.१४१)। आचार्य महीधर ने भी लिखा है— **तिस्रोऽनुष्टुभस्तापसदृष्टाः** —(यजु० ९.२६ मही० भा०)।

५७. **त्र्यरुण-त्रसदस्यु (२२.१८)** — ऋग्वेद ५.२७ सूक्त के तीन समुदित ऋषि त्र्यरुण त्रैवृष्ण के पुत्र, त्रसदस्यु पुरुकुत्स के पुत्र और अश्वमेध भरत के पुत्र माने गये हैं। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए सर्वानुक्रम सूत्रकार ने लिखा है— **अग्नीजनो हि पावमानी कृति पिपीलिकामध्यामनुष्टुभं त्र्यरुणत्रसदस्यू** (सर्वा० ३.१)। आचार्य महीधर ने त्र्यरुण की जगह 'अरुण' का उल्लेख किया है— **अरुणत्रसदस्युभ्यां दृष्टा पवमानदेवत्या पिपीलिकामध्याकृतिरनुष्टुप्** (यजु० २२.१८ मही० भा०)।

५८. **त्रित आप्त्य (३३.९०)** — एकत, द्वित तथा त्रित ऋषियों को जल से उत्पन्न माना गया है, इसलिए इन्हें आप्त्य कहा गया। कालान्तर में तकार आगम से आप्त्य पद प्रसिद्ध हुआ। यजुर्वेद ११.४३ और १२.१३ में इनका ऋषित्व केवल 'त्रित' नाम से

उल्लिखित है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर इनके नाम और ऋषित्व का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में इनके कूप पतन का उल्लेख भी मिलता है— **अपां पुत्रस्य त्रितस्य कूपे पतितस्य कुत्सस्य वार्षं** (ऋग्वेद १.१०५ सा० भा०) । इनके ऋषित्व का प्रतिपादन सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इस प्रकार किया है—**चन्द्रमा अप्स्वैन्द्रीमाहुतिपरिणामवादिनी त्रित आप्त्यो** (सर्वा० ३.२३)। यजुर्वेद भाष्यकार महीधर ने इस स्थान पर केवल 'त्रित' नाम ही दिया है—**त्रितदृष्टाहुतिपरिणामवादिन्यैन्द्री** (यजु० ३३.९० मही० भा०)।

५९. त्रिशिरा (१३.१५) — त्रिशिरा का ऋषित्व 'त्रिशिरा त्वाष्ट्र' के रूप में ऋग्वेद १०.८९ में निर्दिष्ट हैं। सामवेद में भी अनेक स्थानों पर इनके ऋषित्व का प्रमाण मिलता है। यहाँ भी त्रिशिरा के साथ 'त्वाष्ट्र' शब्द जुड़ा है,जिसका अर्थ है— त्वष्टा का वंशज। सर्वानुक्रम सूत्र में इनका ऋषित्व निम्न प्रकार उद्धृत है— **भुवस्त्रिशिरा आग्नेयी त्रिष्टुबम्** (सर्वा० २.१२)। यजुर्वेद भाष्यकार महीधर ने भी इनके ऋषित्व को निम्न प्रकार स्वीकारा है— **त्रिशिरोदृष्टाग्निदेवत्या त्रिष्टुप्** (यजु० १३.१५ मही० भा०)।

६०. त्रिशोक (७.३२; ३३.२४) — एक प्राचीन देवशास्त्रीय व्यक्ति के रूप में इनका उल्लेख ऋ० १.११२.१२ और अथर्व० ४.२९.६ में मिलता है। इनका ऋषित्व सभी संहिताओं में मिलता है, परन्तु ऋग्वेद और सामवेद में 'त्रिशोक काण्व' के रूप में और यजुर्वेद और अथर्ववेद में केवल 'त्रिशोक' के रूप में मिलता है। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनके ऋषित्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—**आ घ त्रिशोक आग्नैन्द्रीम्** (सर्वा० १.२९)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने इनका ऋषित्व इस प्रकार उल्लिखित किया है— **अग्नीन्द्रदेवत्या गायत्री त्रिशोकदृष्टा** (यजु० ७.३२ मही० भा०)।

६१. दक्ष (३३.७२-७३) —दक्ष प्रजापति का वर्णन वेदों के अनेक संदर्भों में किया गया है। यजुर्वेद में मात्र दक्ष का ही विवरण दिया गया है। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए सर्वानुक्रम सूत्रकार ने लिखा है— **काव्ययोराजानेषु दक्षः** (सर्वा० ३.२२)। यही तथ्य यजुर्वेद भाष्य में इस प्रकार विवेचित हुआ है—**दक्षदृष्टा गायत्री मैत्रावरुणी** ...(यजु० ३३.७२ मही० भा०)।

६२. दधिक्रावा वामदेव्य (९.१४-१५) —'दधिक्रा' शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में दैवी अश्व के रूप में मिलता है (ऋ० ३.२०.१ और ऋ० ४.३९.१ इत्यादि)। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए सूत्रकार ने लिखा है —**वाजिनोऽश्वा, एषस्य द्वे दधिक्रावा वामदेव्योऽश्वदेवत्ये जगत्यौ** (सर्वा० १.३४)। यजुर्वेद भाष्य में यही तथ्य इस प्रकार विवेचित हुआ है—'**एष स्य इति.... अश्वदेवत्ये जगत्यौ दधिक्रावदृष्टे** (यजु० ९.१४ मही० भा०)।

६३. दध्यङ् आथर्वण (३६.१-२; ३८. १-४) — यजुर्वेद में ३६-४० अध्यायों में दध्यङ् आथर्वण ऋषि का ऋषित्व निरूपित किया गया है। सामवेद में भी एक मंत्र ११७ के द्रष्टा रूप में ये उल्लिखित होते हैं, परन्तु ऋग्वेद और अथर्ववेद में इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों का उल्लेख नहीं मिलता। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनके ऋषित्व का स्पष्ट उल्लेख किया है— **ऋचं वाचं पञ्चाध्यायीं दध्यङ्ङाथर्वणो ददर्श** (सर्वा० ४.५)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य उवट और महीधर ने भी इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **परिशिष्टं दध्यङ् आथर्वणोऽपश्यत्** (यजु० ३६.१ उ० भा०)।

६४. दमन (३५.१९) — दमन को यमपुत्र माना गया है। अतएव इनको यामायन कहा जाता है— **यमपुत्रस्य दमनस्यार्षम्** (ऋ० १०.१६ सा० भा०)। यजु० ३५.१९ भी दमन ऋषि द्वारा ही दृष्ट है। इसका प्रतिपादन करते हुए सर्वानुक्रम सूत्रकार ने लिखा है—**क्रव्यादमग्निं त्रिष्टुबमाग्नेयी दमनो** (सर्वा० ४.४) । यजु० भा० में यही तथ्य इस प्रकार विवेचित है—... **क्रव्यादमिति.......अग्निदेवत्या त्रिष्टुप् दमनदृष्टा** (यजु० ३५.१९ मही० भा०)।

६५. दीर्घतमा (औतथ्य) (६.३, १२.४२, ५.१८-२०) — दीर्घतमा ऋषि का ऋषित्व केवल यजुर्वेद में ही प्राप्त होता है। ऋग्वेद में आपको 'औचथ्य' कहा गया है - ...**औचथ्यः उचथ्यस्य पुत्रो दीर्घतमाः** (ऋ० १.१५८.१ सा० भा०)। ममता का पुत्र होने से उन्हें मामतेय भी कहा गया है— **दीर्घतमाः एतन्नामा महर्षि** ...**ममतायाः पुत्रः** ...(ऋ० १.१५९.६ सा० भा०)। यजुर्वेद में अधिकांश स्थलों पर आपका ऋषित्व केवल 'दीर्घतमा' नाम से ही है— **याते दीर्घतमा यूप देवत्या** ...(सर्वा० १.२३)। यजुर्वेद के अध्याय ५वें में कण्डिका संख्या १८-२० के बीच आपका नाम 'उतथ्य' के साथ जुड़ा हुआ प्राप्त होता है— **विष्णोर्नु प्र त दीर्घतमा औतथ्यो** (सर्वा० १.२०)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने 'दीर्घतमा' को ही मान्यता दी है 'औतथ्य' या 'औचथ्य' को नहीं।

६६. देवगण (८.४८-५३) - 'देवगण' मंत्रद्रष्टा ऋषियों में यजु (८.४८-५३) तथा ऋ० १०.५१.१ इत्यादि मंत्रों में निर्दिष्ट हैं। यजु के अनेक मंत्रों के ऋषि 'देवाः' हैं। सर्वा० में देवगण (देवाः) का ऋषित्व इस प्रकार वर्णित है—**अग्नये त्वा देवार्षाण्यदाभ्यदेवत्यानि**। यही प्रसंग इस प्रकार भी उद्धृत है— **अदाभ्य देवत्यानि त्रीणि यजूंषि देवदृष्टानि** (यजु० ८.४७ मही० भा०)।

६७. देवल (२.१७) — यजुर्वेद (२.१७) में एक मंत्र देवल ऋषि के नाम से निर्दिष्ट है। ऋग्वेद का एक मंत्र (९.११.१) यजुर्वेद ३३.६२ में आता है, किन्तु वहाँ उस मंत्र के ऋषि 'असित अथवा देवल' कहे गये हैं। भगवद्गीता १०.१३ में इन दोनों ऋषियों का नाम व्यास के साथ मिलता है— **असितो देवलो व्यासः**...। यजुर्वेद में इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए सर्वानुक्रम-सूत्र में लिखा है— **यं परिधिं देवल आग्नेयीं त्रिष्टुभं विराड्रूपां यजुरन्ताम्** (सर्वा० १.७)। आचार्य महीधर ने भी लिखा है— **अग्नेः प्रियमिति यजुः देवलदृष्टा** (यजु० २.१७ मही० भा०)।

६८. देवश्रवा-देववात भारत (३.१६,९.३७) — देवश्रवा और देववात ऋषि का नाम 'देवश्रवा-देववात भारत' के साथ समुदित रूप में मिलता है। ऋग्वेद ४.१५.४ में '**देववाते सृंजये**' का प्रयोग हुआ है, जिसमें किसी 'देववात' नामक राजा के पुत्र 'सृंजय' का उल्लेख है। ऋ० ३.२३.२ में देवश्रवा-देववात 'भरत' राजा का वर्णन पाया जाता है, जिन्होंने दृषद्वती, सरस्वती और आपया के तट पर यज्ञ किया था— **देवश्रवा देववातः सुदक्षम्**। यजुर्वेद के अन्तर्गत इनके ऋषित्व का स्थापन सर्वानुक्रम सूत्र द्वारा हो जाता है- **अयं ते देवश्रवो देववातश्च भारतौ आग्नेयीमनुष्टुभम्** (सर्वा० १.१२); यही तथ्य यजुर्वेद भाष्य में दूसरे शब्दों में व्यक्त हुआ है— **आग्नेयी त्रिष्टुप् देवश्रवोदेववाताभ्यां दृष्टा** (यजु० ११.३५ मही० भा०)।

६९. ध्रुव (१२.११) — यजुर्वेद का १२.११ मंत्र ध्रुव ऋषि द्वारा दृष्ट है। इन्हें आंगिरस गोत्रीय भी कहा गया है। इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों में राष्ट्र के सुस्थिरता की कामना की गई है तथा उसमें दृढ़ता आदि भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। यजुर्वेद में ऋषि 'ध्रुव' के ऋषित्व का प्रतिपादन सर्वानुक्रम सूत्र में इस प्रकार प्राप्त होता है—**आ त्वा ध्रुवोऽनुष्टुभम्** (सर्वा० २.७)। यही तथ्य अपने शब्दों में प्रकट करते हुए आचार्य महीधर लिखते हैं—**आग्नेय्यनुष्टुप् ध्रुवदृष्टा** (यजु० १२.११ मही० भा०)।

७०. नाभानेदिष्ठ (९.१७) — नाभानेदिष्ठ को मनुपुत्र कहा गया है, अतएव इनके नाम के आगे मानव पद भी जोड़ा जाता है। ऋग्वेद के दो सूक्तों १०.६१-६२ और यजुर्वेद में कुछ मंत्रों के द्रष्टा ऋषि नाम में नाभानेदिष्ठ निर्दिष्ट हैं— **'ये यज्ञेन'..... द्वितीयं सूक्तं मानवस्य नाभानेदिष्ठस्यार्षम्** (ऋ० १०.६२ सा० भा०)। यजुर्वेद के भाष्यकार महीधर ने इनके ऋषित्व को निर्देशित किया है—**नाभानेदिष्ठदृष्टा** (यजु० ९.१७ मही० भा०)। तैत्तिरीय शाखा में भी यही तथ्य उल्लिखित है—**मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् स नाभानेदिष्ठं** (तैत्ति० सं० ३.१.९.४)।

७१. नारायण (३१.१-१६) — प्रसिद्ध पुरुष सूक्त का दर्शन नारायण ऋषि द्वारा ही किया गया है। आचार्य सायण का अभिमत है कि आदि कारण पुरुष का प्रतिपादन करने के कारण इसे पुरुष सूक्त कहा गया है। यजुर्वेदीय सर्वानुक्रम सूत्र में नारायण को ऋषि रूप में अंगीकृत किया गया है— **ष्यायुषं नारायण**—(सर्वा० १.१५)। यजुर्वेद भाष्यकार उवट ने भी इनके ऋषित्व को विवेचित किया है—**पुरुषसूक्तस्य नारायण ऋषिः पुरुषो देवतानुष्टुप् छन्दः** (यजु० ३१.१ उ० भा०)।

७२. नारायण कौण्डिन्य (२०.३२) — कौण्डिन्य को शाण्डिल्य का शिष्य कहा जाता है। यजुर्वेद (२०.३२) में इन्हें वैयक्तिक ऋषि माना गया है। इस मंत्र को सर्वानुक्रम सूत्र में 'नारायणीया पंक्ति' कहा गया है। पंक्ति छन्द वाले इस मंत्र में नारायण की स्तुति है। नारायण की स्तुति होने के कारण ही संभवतः मंत्र के ऋषि कौण्डिन्य के साथ नारायण पद संयुक्त हुआ। सर्वानुक्रम सूत्र में उपर्युक्त तथ्य का सुस्पष्ट उल्लेख किया गया है— **यो भूतानामात्मप्रवादा पंक्तिर्नारायणीया कौण्डिन्यस्य** (सर्वा० २.३८)। कौण्डिन्य उपनाम कण्डिका से सम्बद्ध प्रतीत होता है।

७३. नृमेध (३३.४१) — नृमेध ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्र चारों वेदों में मिलते हैं। ऋग्वेद एवं सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यार्थक पद-नाम आंगिरस भी संयुक्त है; परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में यह पद-नाम संयुक्त नहीं है। यजुर्वेद सर्वानुक्रम-सूत्र एवं यजुर्वेद महीधर भाष्य में इनके ऋषित्व को उल्लिखित किया गया है—**आयन्त इव नृमेधो बृहतीम्** (सर्वा० ३.१९)। **नृमेधदृष्टा बृहती** (यजु० ३३.४१ मही० भा०)।

७४. नृमेध- पुरुषमेध (२०.३०-३१) — यजु० २०.३०-३१ मंत्र में ऋषि नाम में 'नृमेध-पुरुषमेधौ' नाम निर्दिष्ट है। यही मंत्र ऋग्वेद ८.८९.१ में आया है, जहाँ ऋषि नाम नृमेध-पुरुमेधौ उल्लिखित है, अतएव संभवतः 'नृमेध-पुरुमेधौ' के स्थान पर 'नृमेध-पुरुषमेधौ' नाम अशुद्ध है। नृमेध ऋषि का नाम स्वतंत्र रूप से ऋक्, यजु, अथर्व० में मिलता है, परन्तु पुरुमेध के ऋषित्व वाले मंत्र चारों वेदों में कहीं नहीं मिलते। यजुर्वेद भाष्यकार आचार्य महीधर भी युगल-ऋषियों को द्रष्टा के रूप में स्वीकार करते हैं— **नृमेधपुरुषमेधदृष्टा** (यजु० २०.३० मही० भा०)। इसका समर्थन सर्वानुक्रम- सूत्रकार भी करते हैं— **बृहदिन्द्राय बृहती नृमेधपुरुषमेधयोः** _(सर्वा० २.३७)।

७५. नैध्रुवि कश्यप (८.६३) — ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में निध्रुवि काश्यप द्वारा दृष्ट सूक्त एवं मंत्र संगृहीत हैं। ऋग्वेद में एक सूक्त ९.६३ इन्हीं के द्वारा दृष्ट है। इसी सूक्त का एक मंत्र ९.६३.१८ यजुर्वेद में ८.६३ में संगृहीत है, परन्तु यजु० सर्वानुक्रम सूत्र में इनके द्रष्टा का नाम 'नैध्रुविःकश्यपः' निर्दिष्ट है, जो अशुद्ध पाठ प्रतीत होता है— **आ पवस्व सौमी गायत्री नैध्रुविः कश्यपः** (सर्वा० १.३३)। संभव है नैध्रुवि निध्रुव के वंशज हों। यजुर्वेद भाष्यकार महीधर ने इनके ऋषित्व विवेचन में केवल कश्यप नाम ही प्रयुक्त किया है—**सोमदेवत्या गायत्री कश्यपदृष्टा** (यजु० ८.६३ मही० भा०)।

७६. नोधा गोतम (२६.११) — नोधस् नामक कवि का उल्लेख ऋग्वेद के पहले मण्डल के सूक्तों (६१-६२ आदि) में कई बार हुआ है। ऋग्वेद के पहले मण्डल के सूक्तों ५८ से ६४ तक के ऋषि नाम में इनका नाम निर्दिष्ट है— **'नु चित्' इति नवर्चं प्रथमं सूक्तं गौतमस्य नोधस आर्षमाग्नेयम्** (ऋ० १.५८ सा० भा०)। यजुर्वेद में भी नोधा गोतम द्रष्टा रूप में विवेचित हैं- **इन्द्रदेवत्या**

पथ्या बृहती नोधागोतमदृष्टा (यजु० २६.११ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने भी इनके ऋषित्व को विवेचित किया है— **पथ्या बृहती नोधागोतमो**—(सर्वा० ३.६)।

७७. परमेष्ठी प्रजापति (१.१-३१) —संहिताओं और ब्राह्मणों में परमेष्ठी शब्द प्रजापति के लिए निर्दिष्ट है। सामान्यतः परमेष्ठी शब्द परमपद पर अधिष्ठित व्यक्ति के विशेषण के रूप में आया है— **'परमेष्ठी.... प्रजापतिः परमेष्ठी ता हि परमे स्थाने तिष्ठन्ति'**- (शत० ब्रा० ८.२.३.१३)। सर्वानुक्रम सूत्र में परमेष्ठी प्रजापति के ऋषित्व को उपन्यस्त किया गया है- **परमेष्ठी प्राजापत्यो दर्शपूर्णमासमन्त्राणां ऋषिर्देवा वा प्राजापत्याः** (सर्वा० १.२)। आचार्य सायण ने भी अपने भाष्य में इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है—**परमेष्ठी नाम प्रजापतिर्ऋषिः** (ऋ० १०.१२९ सा० भा०)। -द्रष्टव्य- प्रजापति क्र० ८५।

७८. पराशर शाक्त्य (३३.११) —यजुर्वेद ३३.११ में पराशर शाक्त्य को ऋषि का गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है। ऋग्वेद ५.२८ में इनका उल्लेख वसिष्ठ आदि ऋषियों के साथ किया गया है। निरुक्त में इन्हें वसिष्ठ-वंशीय विवेचित किया गया है तथा शक्ति-पुत्र के रूप में उल्लिखित किया है-**पराशरः ऋषिर्वसिष्ठस्य नप्ता शक्तेः पुत्र एव** (निरुक्त ६.३०)। सर्वानुक्रम-सूत्रकार भी इनके ऋषित्व को विवेचित करते हैं- **आद्यस्पराशरः शाक्त्योऽने** (सर्वा० ३.१७)।

७९. परुच्छेप (७.१९-२३, ८.५३) —परुच्छेप ऋषि का ऋषित्व चारों संहिताओं में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद और सामवेद में इस नाम के साथ अपत्यार्थक नाम दैवोदासि भी संयुक्त है; जिसका आशय दिवोदास के वंशज से है। निरुक्त में इन्हें सुस्पष्टतः ऋषि रूप में स्वीकार किया गया है-**परुच्छेपस्य तन्नाम्नो मंत्रदृशः शीलम्** (नि० १०.४२ दु०)। यजुर्वेद भाष्य और यजु० सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनका ऋषित्व विवेचन मिलता है-**वैश्वदेवी त्रिष्टुप् परुच्छेपदृष्टा** (यजु० ७.१९ मही० भा०)। ये देवासः **परुच्छेपो वैश्वदेवी त्रिष्टुभम्** (सर्वा० १.२७)।

८०. पायु भारद्वाज (२९.३८) —पायु भारद्वाज परंपरा के ऋषि हैं। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में अनेक मंत्रों के द्रष्टा पायु हैं- **पायुर्नाम भारद्वाज ऋषि ....** (ऋग्वेद १०.८७ सा० भा०)। इनके द्वारा दृष्ट मंत्र आयुधों से सम्बन्धित हैं— **भरद्वाजसुतः पायुः संग्रामाङ्गानि प्रत्यृचं स्तौति** (यजु० २९.३८ मही० भा०)। सर्वानुक्रम-सूत्र में भी इनका संबंध अस्त्र-शस्त्रों के साथ ही माना गया है—**जीमूतस्येव पायुर्भारद्वाजः संग्रामाङ्गान्यवकसोऽस्तौषीत् सन्नाहं, कार्मुकं, ...** (सर्वा० ३.१२)।

८१. पावकाग्नि (१२.१०६-१११) —पावकाग्नि संज्ञक ऋषिनाम केवल साम और यजुर्वेद में ही निर्दिष्ट है। यजुर्वेद के १२वें अध्याय में इनके द्वारा दृष्ट छः मंत्र (१०६-१११) संगृहीत हैं और सामवेद में तीन मंत्र (९५२-९५४)। यहाँ अपत्यार्थक नाम बार्हस्पत्य भी संयुक्त हुआ है, जिसका आशय बृहस्पति के वंशज के रूप में है। ऋग्वेद संहिता में यहाँ पावक-अग्नि को ही सम्बोधित करके कहा गया है— **यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति। तस्मै पावक मृळय** (ऋ० १.१२.९)। यजुर्वेद के १७वें अध्याय में अनेक स्थानों पर पावक-अग्नि से कल्याणकारक होने की प्रार्थना की गई है—**पावको अस्मभ्यं शिवो भव** (यजु० १७.४)। यजुर्वेद-भाष्य में आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व का स्पष्ट निरूपण किया है—**पावकाग्निदृष्टं षड्चमग्निदैवत्यम्** (यजु० १२.१०६ मही० भा०)।

८२. पुरुमीढ-अजमीढ (२७-३०-३१; ३३.१९) —पुरुमीढ और अजमीढ का सम्मिलित ऋषित्व यजुर्वेद २७.३०-३१ और ३३.१९ में मिलता है, परन्तु यही मंत्र ऋग्वेद में विभिन्न ऋषि नाम से मिलते हैं। ऋग्वेद के ऋषित्व- विवेचन में इन दोनों को सुहोत्र का पुत्र अथवा सुहोत्रगोत्रीय माना गया है—**'क उ श्रवत्' इति सप्तर्चमेकादशं सूक्तम्। सुहोत्रपुत्रौ पुरुमीळ्हाजमीळ्हावृषी**— (ऋ० ४.४३ सा० भा०)। ऋ० ६.३१-३२ के ऋषि विषयक उल्लेख में सुहोत्र को भारद्वाज (भरद्वाज-गोत्रीय) कहा गया है, जबकि सामवेद ६.४९ में पुरुमीळ्ह को आंगिरस (अंगिरस्-गोत्रीय) कहा गया है। बृहद्देवता में पुरुमीळ्ह और उनके भाई तरन्त को विददश्व का पुत्र माना गया—**तरन्त पुरुमीळ्हौ तु राजानौ वैददश्व्यपी** (बृह० ५.६२)। यजु० सर्वानुक्रम सूत्र एवं यजुर्वेद भाष्य में भी इनके ऋषि विषयक उल्लेख प्रतिपादित हैं—**वायो शुक्रः पुरुमीढाजमीढौ** (सर्वा० ३.९)। **अनुष्टुप् पुरुमीढाजमीढदृष्टा** (यजु० २७.३० मही० भा०)।

८३. पुरोधस् (११.१७) —पुरोधा ऋषि के द्वारा दृष्ट मंत्र चारों वेदों में केवल यजुर्वेद ११.१७ में संकलित है। अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रन्थ में इन्हें समादृत पुरोहित या कुलविप्र के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है—**सोऽएष पुरोधा ...**(शत० ब्रा० ४.१.४.५)। आचार्य महीधर ने भी अपने भाष्य में इन्हें उपन्यस्त किया है— **अग्निदेवत्या त्रिष्टुप्पुरोधोदृष्टा प्रथमस्य व्यूहनम्** (यजु० ११.१७ मही० भा०)। सर्वा० में इन्हें मंत्रद्रष्टा ऋषि के रूप में उल्लिखित किया गया है—**आग्नेयी त्रिष्टुप् पुरोधस....** (सर्वा० २.२)।

८४. प्रगाथ (३३.५०) —ऐतरेय आरण्यक २.२.२ में ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ऋषियों को 'प्रगाथ' कहा गया है, क्योंकि उन्होंने प्रगाथ (बृहती या ककुभ और सतोबृहती) छन्दों की रचना की। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इन्हें घोर पुत्र के रूप में विवेचित किया है— **आद्यस्य द्व्यृचस्य तु घोरस्य पुत्रः स्वकीयभ्रातुः कण्वस्य पुत्रतां प्राप्तत्वात् काण्वः प्रगाथाख्य ऋषिः** (ऋ० ८.१

सा० भा०)। इनके द्वारा दृष्ट ऋचाओं का प्रयोग इन्द्र ने वृत्रवध के निमित्त किया था — **आद्या प्रगाथदृष्टा माहेन्द्र पुरोरुक्** (यजु० ३३.५० महीं० भा०)। इसी प्रकार सर्वा० में भी इनके ऋषित्व का विवेचन है— **अग्ने रुद्रा: प्रगाथोऽर्वाञ्चो** ...(सर्वा० ३.२०)।

८५. प्रजापति (३.९) —यजुर्वेद में अनेक अध्यायों के मंत्रों के ऋषि प्रजापति हैं। सामवेद के दस मंत्रों (६४१-५०) के ऋषि प्रजापति हैं। अथर्ववेद के अनेक सूक्तों के ऋषि प्रजापति हैं। संभवत: प्रजापति के साक्षात् द्रष्टा ही अपने पूर्व नाम से मुक्त होकर प्रजापति कहलाये। अनेक स्थानों पर प्रजापति नाम के साथ तीन वैकल्पिक नाम संयुक्त हुए हैं-(i) वाच्य (ii) वैश्वामित्र (iii) परमेष्ठी। प्रजापति शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर सम्पूर्ण जीवों के रचयिता या ब्रह्मा, प्रजापालक, सविता या अग्नि आदि के लिए भी हुआ है— **प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव** (ऋ० १०.१२१.१०)। द्र०—परमेष्ठी प्रजापति ७७।

८६. प्रतिक्षत्र (३३.४८) —यजुर्वेद ३३.४८ के ऋषि-स्थान में प्रतिक्षत्र का नाम निर्दिष्ट है। ऋग्वेद में भी इन्हें मंत्रद्रष्टा के रूप में स्वीकार किया गया है—'**हयो न' इत्यष्टर्चं द्वितीय सूक्तं प्रतिक्षत्रस्यार्षम्** (ऋ० ५.४६ सा० भा०)। आचार्य महीधर ने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व का विवेचन किया है— **प्रतिक्षत्रदृष्टा** ...(यजु० ३३.४८ महीं० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया गया है- **इन्द्र प्रतिक्षत्र** (३.२०)। वैश्वदेव स्तुति के चतुर्थ दिन इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों का विनियोग किया जाता है।

८७. प्रस्कण्व (७.४१; ८.४०) —प्रस्कण्व ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्र चारों वेदों में संगृहीत हैं, किन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्राय: ऋषियों के नाम अपत्यार्थक नाम से रिक्त हैं, जबकि ऋग्वेद एवं सामवेद में इनके साथ काण्व (कण्व-गोत्रीय) पद-नाम संयुक्त है। प्रस्कण्व ऋषि का नाम ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर उल्लिखित है। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व का प्रमाण अनुक्रमणिका के उद्धरण से दिया है— **अग्ने पञ्चोना प्रस्कण्व:काण्व आग्नेयं तु प्रागाथमाद्यो द्वृचोऽन्त्युषसां च इति। कण्वपुत्र: प्रस्कण्व ऋषि:** (ऋ० १.४४ सा० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र एवं यजुर्वेद भाष्य में भी इनके ऋषित्व का विवेचन किया गया है— **उदु त्यं प्रस्कण्व: सौरी गायत्री** (सर्वा० १.२९)। **सौरी गायत्री प्रस्कण्वदृष्टा** (यजु० ७.४१ महीं० भा०)।

८८. प्रादुराक्षि (२६.६) —यजुर्वेद के २६ वें अध्याय में मंत्र द्रष्टा ऋषियों में लौगाक्षि, रम्याक्षी और प्रादुराक्षि का नाम निर्दिष्ट है। अन्य किसी वेद में इनके नाम नहीं मिलते। यहाँ वैश्वानर देव से संबोधित तीन ऋचायें पुरानुवाक्या कही गयी हैं, जिनमें से प्रथम ऋचा के द्रष्टा-रूप में प्रादुराक्षि का नाम उल्लिखित है— **तिस्रो वैश्वानरीया: पुरोनुवाक्या:। आद्या गायत्री प्रदुराक्षिदृष्टा** (यजु० २६.६ महीं० भा०)। यहाँ आचार्य महीधर ने नाम 'प्रदुराक्षि' दिया है और यजुर्वेद सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने वैश्वानराग्नि की स्तुति में विनियुक्त इस मंत्र के द्रष्टा का नाम 'प्रादुराक्षि' लिया है— **प्रादुराक्षिर्वैश्वानरीया** ...(सर्वा० ३.६)।

८९. प्रियमेध ऐन्द्र (१२.५५) —'प्रियमेध' ऋषि के मन्त्र चारों वेदों में मिलते हैं। ऋग्वेद ८.६९ सूक्त के ऋषि नाम में 'प्रियमेध आंगिरस' नाम मिलता है। इसी सूक्त के मंत्र ८.६९.३ को यजु० १५.६० में दो बार संगृहीत किया गया है; परन्तु यहाँ ऋषि नाम प्रियमेध ऐन्द्र उल्लिखित है। इनकी ख्याति इन्द्र के पुत्र के रूप में है, अतएव इन्हें ऐन्द्र उपाधि से विभूषित किया गया है—**इन्द्रपुत्रप्रियमेधदृष्टाद्देवत्यानुष्टुप्** (यजु० १२.५५ महीं० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने भी इन्हें यहाँ ऐन्द्र कहा है— **ता अस्यापी प्रियमेध ऐन्द्र:** ...(सर्वा० २.९)।

९०. बन्धु (३.२५) —बन्धु ऋषि का नाम स्वतंत्र रूप से उल्लिखित नहीं है। ऋग्वेद ५.२४ में बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु आदि का सम्मिलित ऋषित्व प्राप्त होता है— **बन्धु: सुबन्धु: श्रुतबन्धु: विप्रबन्धुश्च क्रमेण चतसृणामृषय:** (ऋ० ५.२४ सा० भा०)। यजुर्वेद भाष्यकार आचार्य महीधर ने बन्धु आदि को द्रष्टा रूप में स्वीकार किया है— **दशार्णपादा विराट् बन्ध्वादिदृष्टा** (यजु० ३.२५ महीं० भा०)। यजु सर्वा० में आग्नेयी ऋचाओं के द्रष्टा को बन्धु कहा गया है—**चतस्रो द्विपदा आग्नेयीर्बन्धु:** (१.१३)।

९१. बुध-गविष्ठिर (१५.२४) —बुध-गविष्ठिर का ऋषित्व यजुर्वेद १५.२४, सामवेद ७३ और ऋग्वेद ५.१ सूक्त में दृष्टिगोचर होता है। ऋ०५.१.१ मंत्र ही यजु० १५.२४ और अथर्व० १३.२.४६ में मिलता है। यजुर्वेद में तो बुध-गविष्ठिर ऋषि-नाम ही उल्लिखित है; परन्तु अथर्ववेद में इस मंत्र के ऋषि 'ब्रह्मा' हैं। ऋग्वेद भाष्य में अनुक्त (अनुल्लिखित) गोत्र होने के कारण आत्रेय मान लिया गया है— **पंचमे मण्डलेऽनुक्तगोत्रम् आत्रेयं विद्याद् इति परिभाषितत्वाद् आत्रेयौ बुधगविष्ठिरावृषी** (ऋ० ५.१ सा० भा०)। यजु सर्वानुक्रम सूत्र में इनके ऋषित्व का स्पष्ट उल्लेख मिलता है— **अबोध्यग्निर्विरूपोऽबोधि बुधगविष्ठिरौ** (सर्वा० २.२०)।

९२. बुध सौम्य (१२.६७-६८) —बुध सौम्य का ऋषित्व यजु० १२.६७-६८ और ऋग्वेद १०.१०१ में दृष्टिगोचर होता है। ऋ० १०.१०१ सूक्त का १२वाँ मंत्र अथर्ववेद २०.१३७.२ में निर्दिष्ट है, परन्तु यहाँ केवल बुध नाम ही विवेचित है। इसी सूक्त के दो मंत्र (३-४) ही यजुर्वेद में इसी ऋषि नाम से संगृहीत हैं। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में सोम पुत्र कहकर इनका ऋषि विवेचन किया है— **'उद्बुध्यध्वम्' इति द्वादशर्चं द्वितीयं सूक्तं सोमपुत्रस्य बुधस्यार्षम्** (ऋ० १०.१०१ सा० भा०)। पंचविंश ब्रा० २४.१८.६ में एक आचार्य 'बुध सौमायन' का उल्लेख मिलता है, जो संभवत: यही हैं; क्योंकि सौमायन का आशय भी 'सोम के वंशज' से है। आचार्य महीधर ने भी सुस्पष्टत: इन्हें सोम-पुत्र कहकर उल्लिखित किया है— **सीरदेवत्ये सोमपुत्रबुधदृष्टे द्वे गायत्री त्रिष्टुभौ** (यजु० १२.६७ महीं० भा०)।

९३. बृहदुक्थ वामदेव्य (२९.१) —बृहदुक्थ को ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद में ऋषित्व प्राप्त है। ऋग्वेद भाष्य में इन्हें वामदेव-गोत्रीय कहकर इनके ऋषित्व को निरूपित किया गया है। इन्हें अन्यत्र याज्ञिक-पुरोहित के रूप में उल्लिखित किया गया है। आश्वमेधिक अध्याय में इन्हें वामदेव का पुत्र कहकर इनके ऋषित्व को उल्लिखित किया गया है। इस अध्याय में अश्व की स्तुति की गयी है—**अश्वस्तुतयो वामदेवपुत्रेण बृहदुक्थेन समुद्रपुत्रेणाश्वेन वा दृष्टाः** (यजु० २९.१ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार भी इनके ऋषित्व को प्रतिपादित करते हैं— **आद्या आप्रीस्त्रिष्टुभ एकादशाश्वस्तुतिर्बृहदुक्थो वामदेव्यो ददर्शाश्वो वा** (सर्वा० ३.११)।

९४. बृहद्दिव (३३.८०) —आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इन्हें अथर्वण ऋषि का पुत्र कहकर इनके ऋषित्व को उल्लिखित किया है—**'तदिद्' इति नवर्चमष्टमं सूक्तमथर्वणः पुत्रस्य बृहद्दिवस्यार्षं** —(ऋ० १०.१२० सा० भा०)। चारों वेदों में इनके द्वारा दृष्ट मंत्र मिलते हैं। यजुर्वेद भाष्यकार महीधर ने इन्हें द्रष्टा रूप में प्रतिपादित किया है— **बृहद्दिवदृष्टा माहेन्द्री त्रिष्टुप्** (यजु० ३३.८० मही० भा०)। यजुर्वेद में मात्र ३३.८० में इनके द्वारा दृष्ट ऋचा संकलित है— **तदिदाथर्वणो बृहद्दिव** (सर्वा० ३.२२)। बृहद्दिव ऋषि को सुमन्यु का शिष्य भी कहा गया है।

९५. बृहस्पति आंगिरस (२.११-१३) —बृहस्पति को मंत्रों का द्रष्टा प्रायः सभी संहिताओं में कहा गया है। इन्हें लोक का पुत्र तथा आंगिरस गोत्रीय माना गया है— **लोकनाम्नः पुत्रो बृहस्पतिराङ्गिरस एव वा बृहस्पतिर्ऋषिः** (ऋ० १०.७२ सायण भा०)। यजुर्वेद में आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व को विवेचित किया है— **तस्याङ्गिरसो बृहस्पतिर्ऋषिः** (यजु० २.११ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने भी इन्हें ऋषि के रूप में निरूपित किया है— **'ब्रह्मत्वं प्रतिष्ठानं' बृहस्पतिराङ्गिरसोऽपश्यद्** —(सर्वा० १.७)।

९६. बृहस्पति-इन्द्र (९.१-१३) — वेदों में देवताओं को भी ऋषित्व प्राप्त है। यजुर्वेद ९.१-१३ में बृहस्पति-इन्द्र का सम्मिलित ऋषित्व प्रतिपादित किया गया है। वाजपेय मंत्रों के ऋषि रूप में सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इन्हें विवेचित किया है—**अथ वाजपेयो-बृहस्पतेरार्षमिन्द्रस्य च, देव सवितः** —(सर्वा० १.३४)। आचार्य उवट-महीधर ने भी अपने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को उल्लिखित किया है—**बृहस्पतेरार्षम् इन्द्रस्य च** (यजु० ९.१ उ० भा०)।

९७. ब्रह्मणस्पति (३.२८-३०) —ब्रह्मणस्पति ऋषि का ऋषित्व केवल यजुर्वेद में ही दृष्टिगोचर होता है, अन्यत्र नहीं। निरुक्त में यास्क के वचनानुसार ब्रह्मणस्पति ब्रह्म के पाता या पालयिता का नाम है— **ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा** (नि० १०.१२)। ब्रह्मणस्पति का उल्लेख दूसरे मण्डल के २३,२४,२५ आदि सूक्तों में बृहस्पति, ब्रह्म, पुरोहित आदि के रूप में विवेचित है। यजु० सर्वानुक्रम-सूत्र में इनके द्वारा दृष्ट मंत्र ब्रह्मणस्पति से ही सम्बन्धित हैं— **सोमानं ब्राह्मणस्पत्यं तृचं गायत्रं ब्रह्मणस्पतिर्मेधातिथिर्वा** (सर्वा० १.१३)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है—**सोमानं स्वरणं तृचो गायत्रो ब्रह्मणस्पति देवत्यस्तेनैव दृष्टः** (यजु० ३.२८ मही० भा०)।

९८. ब्रह्म स्वयंभु (३२.१-१२) —ब्रह्म स्वयंभु यजुर्वेद के मंत्र द्रष्टाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अन्य वेदों में इनके द्वारा दृष्ट मंत्र नहीं मिलते। इनके द्वारा दृष्ट १२ मंत्र यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय (सर्वमेध अध्याय) में मिलते हैं, जिसका विवेचन यजु० सर्वानुक्रम सूत्रकार ने किया है— **तदेव सर्वमेधोऽध्याय आत्मदैवतः सप्तमेऽहनि सर्वहोमे विनियुक्तः, सर्वमेधं ब्रह्म स्वयम्भ्वैक्षत** (सर्वा० ३.१५)। तैत्तिरीय आरण्यक में स्वयंभु ब्रह्म शब्द उल्लिखित है— **तस्मादिदं सर्वं ब्रह्म स्वयम्भ्विति** (तैत्ति आ० १.२३.८)। प्रसिद्ध भाष्यकार उवट ने इनके ऋषित्व पर प्रकाश डालते हुए केवल ब्रह्म शब्द उल्लिखित किया है—**सर्वमेधसंबद्धाः। ब्रह्मण आर्षम्। तदेवाग्निः द्वे अनुष्टुभौ** (यजु० ३२.१ उ० भा०), आचार्य महीधर ने सुस्पष्टतः इनका ऋषित्व उल्लिखित किया है— **अथ सर्वमेधमंत्रा उच्यन्ते प्रवायुमच्छेत्यस्मात्प्राक्। स्वयंभुब्रह्मदृष्टा आत्मदेवत्याः** (यजु० ३२.१ मही० भा०)।

९९. ब्रह्मा (४०.१५) —ब्रह्मा ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्र अथर्ववेद में ही संगृहीत हैं, किन्तु यजुर्वेद ४०.१५ का मन्त्रांश 'ओ३म्' ब्रह्मा द्वारा दृष्ट है। यजुर्वेद सर्वा० सूत्र में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया गया है—**ओ३म् इति परमाक्षरस्य योगिनाम् आलम्बभूतस्य परस्य ब्रह्मणः प्रणवाख्यस्यास्थूलादिगुणयुक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः** (सर्वा० ४९)। आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व को उल्लिखित किया है— **अस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीच्छन्दः परमात्मा देवता** (यजु० ४०.१५ मही० भा०)।

१००. भरद्वाज बार्हस्पत्य (८.६) —भरद्वाज ऋषि मंत्र-द्रष्टा के रूप में विवेचित किये गये हैं। दिवोदास के पुरोहित के रूप में और ब्रह्मनिष्ठ ऋषि के रूप में भी इनका विवेचन मिलता है। बृहस्पति के वंशज होने के कारण इन्हें बार्हस्पत्य कहा गया है। ऋग्वेद षष्ठ मंडल (१-३० सूक्त) के द्रष्टा के रूप में इन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त है— **'बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्।** (ऋ० ६.१ सा० भा०)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व को प्रतिपादित किया है—**सवितृदेवत्या त्रिष्टुब् भरद्वाजदृष्टा** (यजु० ८.६ मही० भा०)।

१०१. भुवन आप्त्य अथवा साधन भौवन (२५.४६) — 'भुवन आप्त्य अथवा साधन' का वैकल्पिक ऋषित्व यजुर्वेद, सामवेद और ऋग्वेद में मिलता है; परन्तु अथर्ववेद में भुवन का स्वतंत्र ऋषित्व भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद भाष्य में आचार्य सायण ने

भुवन को अप्त्य का पुत्र और साधन को भुवन का पुत्र कहा है—'इमा नु कम्' इति पञ्चर्चं षष्ठं सूक्तमप्त्यपुत्रस्य भुवनस्यार्षं भुवनपुत्रस्य साधनसंज्ञस्य वा वैश्वदेवम् (ऋ० १०.१५७ सा० भा०)। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इनके ऋषित्व-विवेचन में विकल्प स्पष्टतः उल्लिखित किया है- **इमा नु द्वैपदं वैश्वदेव तृचं भौवन आप्त्यो वा साधनो भौवनो वा** (सर्वा० ३५)।

१०२. **मधुच्छन्दा वैश्वामित्र (३.२२-२४)** —ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एक से दस सूक्तों के प्रख्यात ऋषि 'मधुच्छन्दा' हैं। एक ऋषि के रूप में कौषी० ब्रा० २८.२ और ऐतरेय आरण्यक १.१.३ में इनका उल्लेख मिलता है। मधुच्छन्दा नाम के साथ वैश्वामित्र (विश्वामित्र गोत्रीय) संयुक्त होता है। ऋग्वेद भाष्य के आदि में आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को विवेचित किया है—**विश्वामित्रपुत्रो मधुच्छन्दो नामकस्तस्य सूक्तस्य द्रष्टृत्वात् तदीय ऋषिः** (ऋ०१.१ सा० भा०)। यजुर्वेद में इनका अपत्यार्थक पद रहित नाम भी उल्लिखित हुआ है— **पावका नो मधुच्छन्दाः सारस्वतीम्** (सर्वा० २.३९)। सर्वानुक्रम सूत्र में वैश्वामित्र पदनाम के साथ भी इनका निरूपण हुआ है— **उप त्वाग्नेय तृचं गायत्रं मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः** (सर्वा० १.१३)। ऐतरेय आरण्यक में इनके नामकरण का कारण इनका मधु से विशेष सम्बन्ध होना बतलाया गया है— **मधु ह स्म वा ऋषिभ्यो मधुच्छन्दाश्छन्दति तन्मधुच्छन्दसो मधुच्छन्दस्त्वम्** (ऐ० आ० १.१.३)।

१०३. **मनसस्पति (२.२१ ; ८.२१)** —'मनसस्पति' का अर्थ 'मनसः पतिः' 'मन का स्वामी' विवेचित किया गया है। यजुर्वेद में ऋषि नाम में यह नाम कई बार उल्लिखित है। ऋ० ५.४४.१० में आचार्य सायण ने मनस् को ऋषि-नाम कहकर निरूपित किया है। यह शब्द ब्राह्मण ग्रन्थ में अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ है— **मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः** (शत० ब्रा० ७.५.२.६)। यजुर्वेद भाष्य में इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों को वात देवता से संबंधित माना गया है— **वातदेवत्या विराट् मनसस्पतिदृष्टा व्याख्यातापि** (यजु० ८.२१ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार भी इसी प्रकार इनके ऋषित्व का विवेचन करते हैं- **देवा मनसस्पतिर्वातदेवत्यां विराजं......**(सर्वा० १.७)।

१०४. **मनु वैवस्वत (३३.९१)** — ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में मनु वैवस्वत द्वारा दृष्ट सूक्त और मंत्र मिलते हैं। विवस्वान् से अश्विनीकुमारों, यम और यमी की उत्पत्ति का सन्दर्भ वेदों में मिलता है, संभवतः विवस्वान् (आदित्य) से ही मनु की उत्पत्ति हुई, जिससे इनके साथ पद-नाम वैवस्वत संयुक्त हुआ। गीता में विवस्वान् ने मनु को योग का उपदेश दिया है— **विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्** (गीता ४.१)। अतएव मनु का विवस्वान् के शिष्य होने की संभावना भी युक्तिसंगत है; परन्तु आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इन्हें विवस्वान् का पुत्र कहकर निरूपित किया है— **विवस्वतः पुत्रो मनुर्ऋषिः** (ऋ० ८.२७ सा० भा०)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने अपत्यार्थक पद-रहित नाम ही विवेचित किया है— **मनुदृष्टा वैश्वदेवी** (यजु० ३३.९१ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने सुस्पष्टतः पद नाम भी उल्लेखित किया है— **देवं देवं वो मनुर्वैवस्वतो वैश्वदेवीं** (सर्वा० ४.२३)।

१०५. **मयोभुव (११.१८-२२)** —अथर्ववेद और यजुर्वेद में मयोभु की गणना ऋषि रूप में की गयी है। यह नाम गुणवाचक प्रतीत होता है। मयस् का आशय सुख से है। इनके द्वारा दृष्ट मंत्र सुखस्वरूप हैं, अतएव यह नामकरण किया गया है। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इनके ऋषित्व को विवेचित किया है— **आगत्य मयोभुव आश्वीमनुष्टुभम्** (सर्वा० २.२)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया है—**अश्वदेवत्यानुष्टुब्मयोभूदृष्टा** (यजु० ११.१८ मही० भा०)।

१०६. **मुद्गल यज्ञपुरुष (२६.१९)** —यजुर्वेद में मुद्गल यज्ञ पुरुष को २६.१९ का ऋषित्व प्राप्त है। ऋग्वेद में भी मुद्गल ऋषि को विवेचित किया गया है, परन्तु यहाँ भाष्य में आचार्य सायण ने इन्हें भर्म्यश्व का पुत्र बताया है—**भर्म्यश्वपुत्रो मुद्गल ऋषिः।** (ऋ० १०.१०२ सा० भा०)। बृहद्देवता में भी इनका उल्लेख मिलता है— **मुद्गलः शाकपूणिश्च आचार्यः शाकटायनः** (बृह० ८.९०)। निरुक्त (९.२३) में भी संग्राम विजय से संबंधित इनका उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर द्वारा भी इनका ऋषित्व उल्लिखित किया गया है— **आशीरियं देवदेवत्या त्रिष्टुप् मुद्गलदृष्टा** (यजु० २६.१९ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में इनके नाम के साथ यज्ञ पुरुष पद भी संयुक्त है— **अनुवीर्मुद्गलो यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभम्** (सर्वा० ३७)।

१०७. **मेध ऐन्द्र (३३.९२)** —यजुर्वेद में मेध ऋषि का वर्णन किया गया है। मेध शब्द यज्ञ-वाचक है। पवित्र यज्ञादि प्रयोग से संबंधित द्रष्टा ऋषि का नामकरण अनन्तर में मेध हो गया होगा। निरुक्त में यह नाम यज्ञ से संबद्ध है— **मेधा यज्ञा इति**—(दु० नि० ३.३.१७)। यजुर्वेद भाष्य में वैश्वानर अग्नि से संबंधित मंत्र के द्रष्टा रूप में इनका निर्वचन उल्लिखित है— **मेधदृष्टा वैश्वानरी** (यजु० ३३.९२ मही० भा०)। सर्वानुक्रम में इनके नाम के साथ ऐन्द्र विशेषण-पद संयुक्त किया गया है— **दिवि पृष्टो मेध ऐन्द्र** (सर्वा० ३.२३)।

१०८. **मेधाकाम (३२.१३-१५)** — यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय के १३-१५ तक के मंत्र पूर्णरूपेण मेधा को समर्पित हैं, जिसमें मेधा प्राप्ति की कामना की गयी है; अतएव इन मंत्रों के ऋषि का औपाधिक नामकरण सम्भवतः मेधाकाम हो गया—**सदसस्पति तृचेन मेधाकामो मेधां याचते...**(सर्वा० ३.१६)। आचार्य महीधर ने भी मेधाकाम ऋषि से सम्बन्धित ऋचाओं में मेधा की कामना की बात प्रतिपादित की है—**इत उत्तरमृक्त्रये मेधा याच्यते** (यजु० ३२.१३ मही० भा०)।

१०९. **मेधातिथि (३.२८-३०; ५.१५)** —चारों वेदों में मेधातिथि द्रष्टा रूप में निरूपित हैं। ऋक्, साम में इनके साथ कण्व-वंशीय (काण्व) पदनाम भी संयुक्त है। अतिथि-सत्कार करने वाले के अर्थ में इनका नाम विशेष रूप से प्रयुक्त होता है। ऋग्वेद भाष्य में आचार्य सायण ने इन्हें कण्व-गोत्रीय के रूप में निरूपित किया है— **मेधातिथिमेध्यातिथिनामानौ ऋषी तौ च कण्वगोत्रौ** (ऋ० ८.१ सा० भा०)। शकट मार्ग पूजन में इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों का प्रयोग होता है। विष्णु देवता से संबंधित ऋचाओं में इनका ऋषित्व उल्लिखित है—**विष्णुदेवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा** (यजु० ५.१५ महो० भा०)। **विष्णुर्मेधातिथिर्वैष्णवीं गायत्रीम्** (सर्वा० १.२०)।

११०. **यज्ञ प्राजापत्य (३४.४९)** —ऋग्वेद १०.१३० में यज्ञ प्राजापत्य ऋषि-स्थान में दृष्टिगोचर होते हैं। इसी सूक्त का एक मंत्र यजुर्वेद (३४.४९) में मिलता है, वहाँ भी उपर्युक्त संज्ञक ऋषि को ही स्वीकार किया गया है। आदि पुरुष प्रजापति ने यज्ञ के साथ ही यह सृष्टि की और तदनन्तर विस्तार किया, उसके द्रष्टा ही संभवतः यज्ञ प्राजापत्य कहलाये। ऐतरेय ब्राह्मण में उपर्युक्त तथ्य की अंशतः पुष्टि होती है— **स प्रजापतिर्यज्ञमतनुत; तमाहरत्; तेनायजत;** (ऐत० ब्रा० ५.३२)। **यज्ञः प्रजापतिः** (ऐ० ब्रा० २.१६)। ऋग्वेद भाष्य में आचार्य सायण ने इन्हें प्रजापति का पुत्र कहकर निरूपित किया है—**'यो यज्ञः' इति सप्तर्चं द्वितीयं सूक्तम् प्रजापतिपुत्रस्य यज्ञाख्यस्यार्षम्** (ऋ० १०.१३० सा० भा०)। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इन्हें ऋषि-सृष्टि का प्रतिपादन करनेवाली ऋचा का द्रष्टा कहा है—**सहस्तोमा ऋषि सृष्टिप्रतिपादिकां त्रिष्टुभं यज्ञः प्राजापत्यः** (सर्वा० ४.३)।

१११. **याज्ञवल्क्य (३३.५५-५६; ३४.१-६)** — याज्ञवल्क्य यज्ञ-विद्या के पुरोधा थे। उन्होंने शुक्ल यजुर्वेद के मंत्रों का दर्शन किया था। वैदिक साहित्य में इन्हें नूतन यज्ञ-विधि प्रचलित करने का श्रेय है। गुरु-विरोध का प्रसंग भी परवर्ती वैदिक साहित्य में मिलता है। इनके गुरु के रूप में उद्दालक आरुणि या वैशम्पायन का नाम प्रसिद्ध है और शिष्य आसुरि के नाम से प्रसिद्ध है—**आसुरिर्याज्ञवल्क्याद्याज्ञवल्क्य उद्दालक** _(शत० ब्रा० १४.९.४.३३)। इन्होंने गुरुज्ञान का वमन करके सूर्य कृपा से नूतन मंत्रों का साक्षात्कार किया और नवीन यज्ञीय व्यवस्था दी-**आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते** (शत० ब्रा० १४.९.४.३३)। आचार्य महीधर ने यजुर्वेद भाष्य के प्रथम-अध्याय के प्रारम्भ में इसी तथ्य की पुष्टि की है— **तत्र व्यासशिष्यो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यादिभ्यः स्वशिष्येभ्यो यजुर्वेदमध्यापयत्। तत्र दैवात्केनापि हेतुना क्रुद्धो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यं प्रत्युवाच मदधीतं त्यजेति। ... ततो दुःखितो याज्ञवल्क्यः सूर्यमाराध्य अन्यानि शुक्लानि यजूंषि प्राप्तवान्** (यजु० अध्याय-१ महो० भा०)। बृह० उप० ३.१.२ में एवं आगे भी इनके वैदेह जनक सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। इनकी दो पत्नियों मैत्रेयी और कात्यायनी सम्बन्धी उल्लेख बृह० उप० २.४.१ में प्राप्त होते हैं। ब्रह्मयज्ञ के मंत्रों को इन्होंने ही देखा है—**ब्रह्मयज्ञाहा आदित्ययाज्ञवल्क्यदृष्टाः पितृमेधपर्यन्तम्...**_(यजु० ३३.५५. महो० भा०)। शिवसंकल्प-सूक्त के द्रष्टा के रूप में भी ये उल्लिखित हैं। समुदित ऋषि के रूप में इनके नाम के साथ आदित्य नाम भी उल्लिखित है— **अथानारभ्याधीतं मन्त्रगणमर्वाक्पितृमेधादादित्ययाज्ञवल्क्यौ ददृशतुः** (सर्वा० ३.२१)।

११२. **रम्याक्षि (२६.४-५)** — इनका वर्णन मात्र यजुर्वेद २६.४-५ में ही प्राप्त होता है। अन्यत्र कहीं इनका ऋषि-विषयक उल्लेख प्राप्त नहीं होता। गोसव यज्ञ के मंत्र का दर्शन इन्हीं के द्वारा किया गया था, इसकी पुष्टि आचार्य महीधर ने अपने भाष्य में की है— **द्वे इन्द्रदेवत्ये गायत्र्यौ, रम्याक्षिदृष्टे गोसवे यज्ञे ग्रहग्रहणे नियुक्ते सोपयामे** (यजु० २६.४ महो० भा०)। **इन्द्र गोमन्नैन्द्र्यौ गायत्र्यौ रम्याक्षिः** (सर्वा० ३.६)।

११३. **लुशोधानाक (१८.३१-४५; ३३.१७)** — लुश ऋषि का वर्णन उपनिषदों में प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कुत्स ऋषि के साथ इनकी प्रतिद्वन्द्विता का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद भाष्य में ऋषि-विषयक उल्लेख में आचार्य सायण ने इन्हें धानाक का पुत्र कहकर विवेचित किया है— **'अबुध्रम्' इति चतुर्दशर्चं षष्ठं सूक्तं धानाकपुत्रस्य लुशस्यार्षं** (ऋ० १०.३५ सा० भा०)। आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व का विवेचन किया है—**लुशोधानाकदृष्टा त्रिष्टुप्** (यजु० ३३.१७ महो० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनके ऋषित्व का विवेचन मिलता है— **महो अग्नेः सावित्रस्य लुशोधानाकोऽनुक्तं गायत्रं त्रैष्टुभं** (सर्वा० ३.१७)।

११४. **लौगाक्षि (२६.२)** — लौगाक्षि को यजुर्वेद २६.२ का ऋषि माना गया है। इन्हें लोगाक्ष का वंशज कहा गया है। कात्यायन श्रौत सूत्र १६.२४ में इन्हें एक आचार्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है— **साम्युत्थानमिति लौगाक्षिः** (का० श्रौ० १६.२४)। आचार्य महीधर ने अपने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व पर प्रकाश डाला है— **प्रियो देवानां मध्येऽवसानरहितानुष्टुप् लौगाक्षिदृष्टा** (यजु० २६.२ महो० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनका ऋषित्व स्पष्ट निर्दिष्ट है— **प्रियो देवानां लौगाक्षिरनुष्टुभमनवसानां** (सर्वा० ३.६)।

११५. **वत्स (४.१६, ७.४०, २६.१५)** —वत्स का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्रायः अपत्यार्थक नाम अनुल्लिखित है, परन्तु ऋग्वेद एवं सामवेद में इनके नाम के साथ काण्व (कण्व-गोत्रीय) नाम संयुक्त है। ऋग्वेद के १०.१८७ सूक्त के द्रष्टा वत्स के साथ आग्नेय नाम संयुक्त है। संभवतः आग्नेयी ऋचाओं का द्रष्टा होने के कारण यहाँ आग्नेय पद संयुक्त हुआ हो। यजुर्वेद ४.१६ में भी आग्नेयी ऋचा के द्रष्टा के रूप में उल्लेख है— **गायत्र्याग्नेयी वत्सदृष्टा** (यजु० ४.१६ महो० भा०)। ऋ० सूक्त ८.६ का पहला मंत्र यजु० ७.४० में संगृहीत है, इसके द्रष्टा वत्स को ही स्वीकार किया गया है— **माहेन्द्री**

गायत्री वत्सदृष्टा (यजु० ७.४० मही० भा०)। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने भी उपर्युक्त तथ्य को स्वीकार किया है— **प्र ओजसा वत्सो गायत्रीम्** (सर्वा० १.२९)।

११६. **वत्सप्रीर्भालन्दन (१२.१८-२९)** —वत्सप्री-भालन्दन का ऋषित्व तीनों वेदों (ऋक्, यजु, साम) में मिलता है। यजुर्वेद में प्रायः अपत्यार्थक नाम भालन्दन अनुल्लिखित है। ऋग्वेद ९.६८; १०.४५-४६ सूक्तों के ऋषि यही हैं, इन्हें यहाँ भलन्दन पुत्र वत्सप्रि कहकर आचार्य सायण ने विवेचित किया है— **तत्र 'प्र देवम्' इति दशर्चं प्रथमं सूक्तं भलन्दनपुत्रस्य वत्सप्रेरार्षम्** (ऋ० ९.६८ सा० भा०)। एक आचार्य के रूप में परवर्ती संहिताओं में इनका उल्लेख आता है, जिन्होंने वात्सप्र नामक साम का दर्शन किया था। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व का विवेचन किया है— **अग्निदेवत्या द्वादश त्रिष्टुभो भलन्दनपुत्रवत्सप्रीदृष्टाः** (यजु० १२.१८ मही० भा०)।

११७. **वरुण (९.३५, १०.१-१७)** —वेदों में प्रायः अनेक देवताओं का भी ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। वरुण का ऋषित्व सामवेद को छोड़कर अन्य तीनों वेदों में मिलता है। सम्पूर्ण भुवनों के सम्राट् के रूप में इनका उल्लेख मिलता है— **आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत् तानि वरुणस्य व्रतानि** (ऋ० ८.४२.१)। इनकी विशेषताओं में प्रमुख है इनका धृतव्रती होना—**त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं ...** (ऋ० २.१.४)। राजसूय मंत्र का प्रारम्भ इन्हीं के द्वारा दृष्ट मंत्रों से होता है— **अथ राजसूयमंत्राः तेषां वरुण ऋषिः** (यजु० ९.३५ मही० भा०)।

११८. **वसिष्ठ (३.६०, ५.१६)** —ऋग्वेद के सातवें एवं नवें मण्डल के अनेक सूक्तों के मंत्रद्रष्टा वसिष्ठ हैं। यजु०, साम० एवं अथर्व० के भी अनेक मंत्रों के ऋषि वसिष्ठ हैं। सामवेद एवं ऋग्वेद में वसिष्ठ के साथ अपत्यार्थक नाम मैत्रावरुण भी संयुक्त है, जबकि यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में केवल वसिष्ठ नाम ही प्रयुक्त है। ऋग्वेद ७.३३.११ के आधार पर वसिष्ठ को मित्रावरुण एवं उर्वशी का पुत्र भी माना गया है— **उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसो ऽधि जातः** (ऋ० ७.३३.११)। आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व का विवेचन किया है— **वैष्णवी त्रिष्टुप् वसिष्ठदृष्टा** (यजु० ५.१६ मही० भा०)। महामृत्युंजय मंत्र वसिष्ठ के द्वारा ही दृष्ट है— **त्र्यम्बकं द्वे अनुष्टुभौ पूर्वस्यां वसिष्ठः** (सर्वा० १.१५)।

११९. **वसुश्रुत (३.२)** — वसुश्रुत ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्र ऋ०, यजु०, साम० तीनों वेदों में मिलते हैं। ऋग्वेद भाष्य में आचार्य सायण ने इन्हें आत्रेय (अत्रि-गोत्रीय) कहकर निरूपित किया है— **त्वमग्ने वरुणः इति द्वादशर्चं तृतीयं सूक्तमात्रेयस्य वसुश्रुतस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयम्** (ऋ० ५.३ सा० भा०)। सर्वानुक्रम- सूत्र में भी इनके ऋषित्व का विवेचन किया गया है— **सुसमिद्धाय वसुश्रुतः** (सर्वा० १.१०)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य उवट-महीधर ने इनके ऋषित्व पर कोई विवेचन नहीं किया है।

१२०. **वसूयव (१७.८)** — वसूयव ऋषि का ऋषित्व केवल ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में मिलता है। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल में दो सूक्त २५-२६ में 'वसूयव आत्रेयाः' का ऋषित्व मिलता है। ऋ० ५.२६ का पहला मंत्र ही यजुर्वेद १७.८ में संगृहीत है, परन्तु यहाँ केवल वसूयव उल्लिखित है। ऋग्वेद भाष्य में आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व का विवेचन किया है— **अग्ने पावक इति नवर्चं द्वादशं सूक्तम्। वसूयव ऋषयः** (ऋ० ५.२६ सा० भा०)। आचार्य महीधर ने आग्नेयी ऋचा के द्रष्टा वसुयु का उल्लेख किया है— **आग्नेयी गायत्री वसुयुदृष्टा** (यजु० १७.८ मही० भा०)। सर्वा० में भी इनके ऋषित्व का वर्णन है— **अग्ने पावक वसूयवः** (सर्वा० २.२४)।

१२१. **वामदेव (३.१५, ३६, १०.२४-२६)** —ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ऋषि के रूप में वामदेव का नाम आता है। चारों वेदों में इनका ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है; परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्रायः ऋषियों के नाम अपत्यार्थक नाम से रिक्त हैं। सामवेद एवं ऋग्वेद में इनके साथ 'गौतम' नाम संयुक्त है। यजुर्वेद सर्वानुक्रम-सूत्र में इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन उल्लिखित है— **अयमिह वामदेवो जगतीम्** (सर्वा० १.१२)। आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **आग्नेयी गायत्री वामदेवदृष्टा जपे विनियुक्ता** (यजु० ३.३६ मही० भा०)। वामदेव का संबंध कश्यप, गौतम अंहोमुक्, दधिक्रावा, बृहदुक्थ और मूर्धन्वान् से निर्दिष्ट है।

१२२. **विदर्भि (२०.५५-८०)** —विदर्भि द्वारा दृष्ट मंत्र केवल यजुर्वेद में संकलित किये गये हैं। इन्हें वत्सनपात् का शिष्य कहा गया है और गालव को विदर्भी कौण्डिन्य का शिष्य कहा गया है (बृ० उ० २.६.३)। यहाँ इनके नाम के साथ 'कौण्डिन्य' अपत्यार्थक नाम भी संयुक्त है। आचार्य महीधर ने अपने यजुर्वेद भाष्य में इन्हें आप्री-संज्ञक सूक्त के द्रष्टा रूप में स्वीकार किया है— **विदर्भिदृष्टा अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्या आप्रीसंज्ञा द्वादशानुष्टुभः** (यजु० २०.५५ मही० भा०)।

१२३. **विधृति (१७.६२-६९)** —वेदों में अनेक मंत्रों में भावनाओं, गुणों, देवों और वस्तु आदि अर्थ में प्रयुक्त नामों का ऋषित्व भी दृष्टिगोचर होता है। यजुर्वेद में विधृति का ऋषित्व केवल १७.६२-६९ में मिलता है। देवों का आवाहन करने वाले यज्ञ को देवहूयज्ञ कहा जाता है। विधृति इसी यज्ञ के मंत्रों के द्रष्टा हैं— **विधृतिदृष्टा यज्ञदेवत्यानुष्टुप्। देवानाह्वयतीति देवहूः देवानामाह्वाता यज्ञो देवानावक्षत् आवहतु** (यजु० १७.६२ मही० भा०)।

१२४. विप्रबन्धु (३.२६) — ऋग्वेद ५.२४ सूक्त का सामूहिक ऋषित्व प्राप्त होता है, जिनमें चार भ्राता ऋषियों का विवरण प्राप्त होता है। उनमें से एक भाई विप्रबन्धु को भी ऋषित्व प्राप्त है। इसी सूक्त के प्रथम चार मंत्र यजुर्वेद ३.२५-२६ में संगृहीत हैं, जिसके ऋषि उपर्युक्त चारों भ्राता हैं। बृहद्देवता में भी इनका विवेचन किया गया है— **बन्धु-प्रभृतीन् दृष्टा येऽग्निमण्डले** (बृह० ७.८६)। यजुर्वेद ३.२६ का मात्र पूर्वार्द्धर्च ही विप्रबन्धु द्वारा दृष्ट है, परन्तु ३.२५ एवं ३.२६ में चारों भाइयों को अर्द्धर्च का ऋषित्व ही प्राप्त होता है— **अग्ने त्वं चतस्रो द्विपदाऽऽग्नेयोर्बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुरेकैकशः** ...(सर्वा० १.१३)।

१२५. विभ्राट् सौर्य (३३.३०) — विभ्राट् सौर्य का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में मिलता है। ऋग्वेद १०.१७० सूक्त के देवता सूर्य हैं तथा ऋषि विभ्राट् सौर्य हैं। सूर्य-पुत्र होने के कारण इनकी उपाधि सौर्य है। सर्वमेध यज्ञ में तृतीय दिन सूर्य स्तुति के सन्दर्भ में दृष्ट मंत्र विभ्राट् सौर्य के ही हैं— **अथ...सूर्यस्तुत्** .... **विभ्राड्दृष्टा जगती एन्द्रवायव्यपुरोरुक्** (यजु० ३३.३० मही० भा०)। विभ्राट् शब्द सूर्य के विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है— **विभ्राट् विभ्राजमानो विशेषेण दीप्यमानः सूर्यः** (ऋ० १०.१७०.१ सा० भा०)।

१२६. विरूप आंगिरस (३.१, ११.७१) —विरूप आंगिरस का ऋषित्व चारों वेदों में निरूपित है। विरूप को 'आंगिरस' पद 'अंगिरस् गोत्रीय' होने के कारण प्राप्त है। यजुर्वेद सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनके ऋषित्व पर प्रकाश डाला है— **समिधा विरूप आङ्गिरसः** (सर्वा० १.१०); परस्या विरूप आङ्गिरसः (सर्वा० २६)। आचार्य महीधर ने पद- नाम उल्लिखित नहीं किया है— **आग्नेयी गायत्री विरूपदृष्टा** (यजु० ११.७१ मही० भा०)।

१२७. विरूपाक्ष आंगिरस (१२.३०) —'विरूपाक्ष' ऋषि का नाम 'संयुक्त ऋषि' के रूप में आता है, जिसके अन्तर्गत दो संयुक्त ऋषि 'विरूप और अक्ष' आते हैं। इन दोनों का पृथक्- पृथक् ऋषित्व भी (ऋ० ८.४३-४४ और १०.३४ में) उपलब्ध होता है। आचार्य महीधर ने विरूपाक्ष के ऋषित्व का विवेचन किया है— **विरूपाक्षदृष्टा आग्नेयी गायत्री व्याख्यातापुच्यते** (यजु० १२.३० मही० भा०)। सर्वानुक्रम-सूत्र में भी उल्लिखित है— **समिधाग्निं विरूपाक्ष आङ्गिरस आग्नेयं गायत्रं** (सर्वा० २.८)।

१२८. विवस्वान् (८.३६-३७) —विवस्वान् को सम्पूर्ण यजुर्वेद का सामूहिक ऋषित्व प्राप्त है—**'इषे त्वादि खं ब्रह्मान्तं' विवस्वानपश्यत्** (सर्वा० १.२), परन्तु विशेष रूप से इन्हें यजुर्वेद ८.३६-३७ एवं ऋग्वेद १०.१३ सूक्त का द्रष्टा माना गया है, यहाँ विवस्वान् के साथ 'आदित्य' नाम भी ऋग्वेद में संयुक्त है। इन्हें आदित्यों में स्थान प्राप्त है और अदिति का पुत्र भी कहा गया है। (बृह० ६.१६३) के अनुसार विवस्वान् ने सरण्यू नामक पत्नी से अश्विनीकुमार को उत्पन्न किया। यम और यमी को भी उत्पन्न किया, इसी कारण वे वैवस्वत कहलाये। यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन आचार्य महीधर ने किया— **इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप् विवस्वद्दृष्टा** (यजु० ८.३६ मही० भा०)। ... **सह प्राणेनेति यजुः विवस्वद्दृष्टा** (यजु० ८.३७ मही० भा०)।

१२९. विश्वकर्मा भौवन (१७.१७-३२) — विश्वकर्मा भौवन का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में मिलता है, यजुर्वेद में कहीं-कहीं 'भौवन' नाम अनुल्लिखित है। इन्हें सम्पूर्ण सृष्टिकर्ता, विश्वकर्ता, विधाता के रूप में भी उल्लिखित किया गया है—**विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्** (ऋ० १०. ८२.२) । आचार्य महीधर ने इन्हें भुवनपुत्र के रूप में निरूपित किया है— **भुवनपुत्र विश्वकर्मदृष्टा विश्वकर्मदेवत्याः षोडश त्रिष्टुभः** (यजु० १७.१७ मही० भा०)। **इन्द्राग्नी विश्वकर्मा च तन्मंत्राणामृषिः** (यजु० १४.११ मही० भा०)।

१३०. विश्वमना (११.४१) —विश्वमना का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद में चार सूक्तों ८.२३-२६ के द्रष्टा यही हैं। ऋग्वेद और सामवेद में इस नाम के साथ अपत्यार्थक नाम वैयश्व भी संयुक्त है। इनका सम्बन्ध वृत्रहन्ता इन्द्र के साथ भी माना जाता है— **विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम** (ऋ० ८.२४.७)। यजुर्वेद भाष्य एवं सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनके ऋषित्व का विवेचन किया गया है— **अग्निदेवत्या पथ्या बृहती विश्वमनोदृष्टा** (यजु० ११.४१ मही० भा०)। **उदु तिष्ठ विश्वमनाः** (सर्वा० २.४)।

१३१. विश्वामित्र (३.३५; ७.३१; ११.६२) —विश्वामित्र ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है, परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में इनका अपत्यार्थक नाम 'गाथिन' अनुल्लिखित है, जो ऋग्वेद एवं सामवेद में मिलता है। इन्हें ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के द्रष्टा के रूप में माना जाता है। विश्वामित्र के वंश को कुशिक के रूप में बताया गया है। निरुक्त में उनके पिता कुशिक को राजा कहा गया है—**प्रजया वाऽऽवनाय कुशिकस्य सूनुः। कुशिको राजा बभूव** (निरु० २.२५) । विश्वामित्र ने शुनः शेप को अपना दत्तक पुत्र बनाया और देवरात नाम रखा। ऐत० ब्रा० में इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। गायत्री मंत्र के द्रष्टा के रूप में ये प्रसिद्ध हैं— **विश्वामित्रदृष्टा सावित्री गायत्री जपे विनियुक्ता** (यजु० ३.३५ मही० भा०)। **तत्सवितुर्विश्वामित्रः सावित्री गायत्रीं** (सर्वा. १.१३)। आचार्य सायण ने इनके ऋषि-विषयक उल्लेख में इन्हें गाथिनः(गाथिन के पुत्र) कहा है—**'अग्ने सहस्व' इति .... ऋषिर्गाथिनो विश्वामित्रः** (ऋ० ३.२४ सा० भा०)।

१३२. विश्वावसु देवगन्धर्व (१२.६६) —ऋग्वेद १०.१३९ और यजु० १२.६६ में विश्वावसु देवगन्धर्व का ऋषित्व विवेचित है। इनका उल्लेख एक गन्धर्व के रूप में वैदिक एवं परवर्ती साहित्य में मिलता है— **विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो** (ऋ० १०.१३९.४)। **गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु** (यजु० २.३)। इनके ऋषित्व का विवेचन आचार्य सायण ने अपने भाष्य में किया है— **विश्वावसुर्नाम गन्धर्व ऋषिः** ।(ऋ० १०.१३९ सा० भा०)। यजुर्वेद १७.५९ के ऋषि-नाम में केवल विश्वावसु नाम उल्लिखित है— **विश्वावसुदृष्टा आदित्यदेवत्या त्रिष्टुप्** (यजु० १७.५९ मही० भा०)। गन्धर्व के रूप में भी स्पष्ट विवेचन उल्लिखित है—**विश्वावसुगन्धर्वदृष्टेन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप्** (यजु० १२.६६ मही० भा०)।

१३३. विश्वेदेवा (१४.७) —विश्वेदेवा, देवा आदि देवगणों का समुदित ऋषित्व वेदों में दृष्टिगोचर होता है। विश्वेदेवा का ऋषित्व केवल यजुर्वेद १४.७ में ही मिलता है। इनके ऋषित्व का विवेचन प्रसिद्ध भाष्यकार उवट एवं महीधर दोनों ने किया है— **विश्वेषां देवानामार्षम्** (यजु० १४.७ उ० भा०)। **विश्वेदेवदृष्टानि विश्वेदेवदेवत्यानि पञ्च यजूंषि** (यजु० १४.७ मही० भा०)। संभवतः अनाम ऋषियों ने जिन देवगणों को लक्ष्य करके मंत्रों का दिग्दर्शन किया, वे उन्हीं के नाम से द्रष्टा कहलाये।

१३४. विहव्य (३४.४६) —विहव्य द्रष्टा का ऋषित्व सामवेद के अतिरिक्त तीनों वेदों में मिलता है। ऋ० १०.१२८ वें सूक्त में ऋषि-विषयक उल्लेख में इनके नाम के साथ 'आंगिरस' पद निर्दिष्ट है, जो यजुर्वेद ३४.४६ एवं अथर्ववेद १०.५.४२-५० में अनुल्लिखित है। इसी सूक्त का नवम मंत्र यजुर्वेद ३४.४६ में संकलित है। सर्वानुक्रम-सूत्र में इनके ऋषित्व का विवेचन मिलता है— **ये नो लिंगोक्तदेवतां त्रिष्टुभं विहव्यः** (सर्वा० ४.३)।

१३५. वेन (७.१६; ३३.२१) — वेन ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद एवं सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यार्थक नाम भार्गव (भृगु-गोत्रीय) संयुक्त है। ये एक मेधा सम्पन्न ऋषि माने गये हैं। इनका पैतृक नाम पृथुवाण भी समझा जाता है—**प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने** (ऋ० १०.९३.१४)। परन्तु आचार्य सायण ने इन्हें स्पष्टतः भृगु-गोत्रीय कहा है— **'इन्द्राय' इति द्वादशर्चमष्टादशं सूक्तं भृगुगोत्रस्य वेनस्यार्षं** (ऋ० ९.८५ सा० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने भी इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **अयं वेनो वेनस्य त्रिष्टुप् सोमस्तुतिरथिदैवतमधियज्ञं च** (सर्वा० १.२७)।

१३६ वैखानस (८.३८; १९.३८; ३५.१७) —वैखानस ऋषि का ऋषित्व केवल यजुर्वेद में मिलता है। ऋग्वेद ९.६६ और सामवेद में अनेक स्थानों पर '**शतं वैखानसाः**' का ऋषित्व मिलता है, जो संभवतः सौ संख्यक वैखानस-गोत्रीय ऋषियों का समूह है। इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में किया है— **अत्रानुक्रम्यते-'पवस्व शतं वैखानसा अष्टादश्यनुष्टुप् परास्तिस्र आग्नेय्यः इति** (ऋ० ९.६६ सा० भा०)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया है— **अग्निदेवत्या गायत्री वैखानसदृष्टा** (यजु० ८.३८ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनके द्रष्टा होने का प्रमाण मिलता है— **अग्ने पवस्व वैखानस आग्नेयीं गायत्रीम्** (सर्वा० १.३२)।

१३७. व्यश्व आंगिरस (२७.३४) —व्यश्व आंगिरस का ऋषित्व ऋग्वेद ८.२६ एवं यजु० २७.३४ में ही मिलता है। ऋग्वेद ८.२६ सूक्त का इक्कीसवां मंत्र ही यजुर्वेद २७.३४ में मिलता है। ऋषि विषयक उल्लेख में आचार्य सायण ने विकल्प रूप से इनके पुत्र विश्वमना वैयश्व को भी इसी सूक्त में ऋषित्व प्रदान किया है। विश्वमना वैयश्व का स्वतंत्र ऋषित्व भी ऋ० ८.२३-२५ में मिलता है— **व्यश्वपुत्रो विश्वमना ऋषिः** (ऋ० ८.२३ सा० भा०)। आचार्य महीधर ने यजुर्वेद भाष्य में केवल व्यश्व नाम निरूपित किया है—**गायत्री व्यश्वदृष्टा** (यजु० २७.३४ मही० भा०)। सर्वानुक्रमसूत्र में भी इनका ऋषित्व उल्लिखित है—**तव वायो व्यश्व आंगिरसो** (सर्वा० ३.९)।

१३८. शंख (१९.४९-७१) —ऋग्वेद में एक सूक्त १०.१५ के ऋषि शंख यामायन हैं। इसी सूक्त के कुछ मंत्र यजुर्वेद १९.४९-७१ में संगृहीत हैं। यहाँ ऋषि नाम शंख और देवता पितर ही उल्लिखित है। आचार्य सायण के अनुसार यम का पुत्र होने के कारण ये यामायन कहलाये। सर्वानुक्रम-सूत्र में भी इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन किया गया है— **उदीरतां त्रयोदशर्चं पित्र्यं त्रैष्टुभं शङ्खः** (सर्वा० २.३५)। आचार्य महीधर ने भी इन्हें ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित किया है— **त्रयोदश शङ्खदृष्टाः पितृदेवत्याः** (यजु० १९.४९ मही० भा०)।

१३९. शंयु बार्हस्पत्य (३.४१-४३; २७.३७-३८) — शंयु बार्हस्पत्य का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है, परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर बार्हस्पत्य नाम अनुल्लिखित है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इनका उल्लेख किया गया है- **शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान्** (कौषी० ब्रा० ३.९)।बृहस्पति पुत्र होने के कारण इन्हें बार्हस्पत्य कहा गया है। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व का विवेचन किया है— **तिस्रोऽपि वास्तुदेवत्याः शंयुदृष्टाः** (यजु: ३.४१ मही० भा०) ।सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इनके ऋषि-विषयक उल्लेख में इन्हें बार्हस्पत्य भी कहा है- **तिस्रोऽपि वास्तव्यः शंयुर्बार्हस्पत्यः** (सर्वा० १.१४)।

१४०. शास भारद्वाज (८.४४-४६; १८.७०) —शास भारद्वाज का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम, तीनों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के एक सूक्त १०.१५२ के द्रष्टा यही हैं, इसी सूक्त का चौथा मंत्र यजुर्वेद के ८.४४ एवं १८.७० में संकलित है। आचार्य

सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इन्हें भरद्वाज-पुत्र के रूप में विवेचित किया है—**भरद्वाजपुत्रस्य शासस्याम आर्षमानुष्टुभमैन्द्रम्** (ऋ० १०.१५२ सा० भा०)। आचार्य महीधर ने पद-नाम उल्लिखित नहीं किया है—**इन्द्रदेवत्यानुष्टुप् शासदृष्टा** (यजु० ८.४४ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में इनका पूरा नाम उल्लिखित किया गया है— **वि न शासो भारद्वाज ऐन्द्रीमनुष्टुभं** (सर्वा० १.३२)।

१४१. शिरिम्बिठ भारद्वाज (३५.१८) —शिरिम्बिठ भारद्वाज का ऋषित्व सामवेद के अतिरिक्त तीनों वेदों में मिलता है। ऋ० के एक सूक्त १०.१५५ के द्रष्टा यही माने गये हैं। इसी सूक्त का पाँचवाँ मन्त्र यजुर्वेद ३५.१८ में संकलित है। आचार्य सायण ने इन्हें भरद्वाज- पुत्र के रूप में निरूपित किया है। आचार्य महीधर ने इन्हें द्रष्टा रूप में विवेचित किया है—**इन्द्रदेवत्यानुष्टुप् भरद्वाजात्मजशिरिम्बिठदृष्टा** (यजु० ३५.१८ मही० भा०)। सर्वा० में भी इनका विवेचन मिलता है— **परीमेऽनुष्टुभमैन्द्री भारद्वाज शिरिम्बिठः** (सर्वा० ४४)।

१४२. शिव- संकल्प (३४.१-६) — शिव- संकल्प का ऋषित्व केवल यजुर्वेद ३४.१-६ में मिलता है। यहाँ प्रत्येक कण्डिका के अन्त में '**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**' पद संयुक्त है, ऋषि की यह प्रार्थना 'मेरा मन शिव-संकल्प वाला हो' प्रत्येक कण्डिका में की गई है। संभवतः ऋषि इन दृष्ट कण्डिकाओं के अनन्तर स्वयं ही शिव-संकल्प कहलाये। इनके देवता मनस् हैं। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन किया है—**षड्चत्रिष्टुभो मनोदेवत्याः शिवसंकल्पदृष्टाः** (यजु० ३४.१ मही० भा०)।

१४३. शुनः शेप (८.२३-२६; १०.२७-३०) — शुनः शेप का ऋषित्व चारों वेदों में मिलता है। ऋग्वेद एवं सामवेद में इनका अपत्यार्थक नाम आजीगर्ति संयुक्त है। ऐतरेय ब्राह्मण में इनका उल्लेख विश्वामित्र के दत्तक पुत्र के रूप में, जो अनन्तर देवरात कहलाये, विवेचित है। इनके पिता अजीगर्त के तीन पुत्रों, जिनमें से मध्यम शुनःशेप थे, का उल्लेख भी इसी में मिलता है— **तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः, शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलाङ्गूल इति** (ऐ० ब्रा० ७.१५)। इनके ऋषि-विषयक उल्लेख में आचार्य सायण ने इन्हें अजीगर्त का पुत्र कहकर निरूपित किया है। आचार्य महीधर ने मात्र इनके ऋषित्व का विवेचन किया है—**वरुणदेवत्या त्रिष्टुप् शुनःशेपद्रष्टा** (यजु० ८.२३ मही० भा०)। इनके द्वारा दृष्ट मंत्र वरुण देवता से संबंधित हैं— **उरुं-हि शुनः शेपो वारुणीं त्रिष्टुभं** (सर्वा० १.३१)।

१४४. शूर्प, यवमान्, कृषि, उद्दालवान्, धानान्तर्वान् (२.१९) —'वैदिक ऋषि : एक परिशीलन' नामक ग्रन्थ में डॉ० कपिलदेव शास्त्री ने पृष्ठ ११६ पर लिखा है— यजुर्वेद २.१९ की अनुक्रमणी में ऋषि के वैयक्तिक नाम के रूप में शूर्प, यवमान्, कृषि, उद्दालवान्, धानान्तर्वान् का नाम लिया गया है। ये नाम भी विचारणीय हैं; क्योंकि ये व्यक्तिगत नाम प्रतीत नहीं होते, अपितु यज्ञ-सम्बन्धी विविध उपकरणों के नाम जान पड़ते हैं। इससे अधिक इनके सम्बन्ध में कुछ भी उल्लेख नहीं उपलब्ध होता।

१४५. श्यावाश्व (५.१४; १२.३-५) —श्यावाश्व द्वारा दृष्ट मन्त्र ऋक्०, यजु, साम तीनों वेदों में मिलते हैं। ऋग्वेद, सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यार्थक पद आत्रेय (अत्रि-गोत्रीय) संयुक्त है। श्यावाश्व ने ऋ० ५.६१ सूक्त में अपने आश्रयदाता तरन्त, पुरुमीळ्ह और रथवीति के नाम दिये हैं। बृहद्देवता में श्यावाश्व को अर्चनानस् का पुत्र और अर्चनानस् को अत्रि का पुत्र निरूपित किया गया है— **स सपुत्रोऽभ्यगच्छत्तं राजानं यज्ञसिद्धये। श्यावाश्वस्यात्रिपुत्रस्य पुत्रः खल्वर्चनानसः** (बृह० ५.५२)। आचार्य महीधर ने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व का उल्लेख किया है—**सवितृदेवत्या जगती श्यावाश्वदृष्टा** (यजु० १२.३ मही० भा०)। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने भी इनके ऋषित्व का विवेचन किया है— **विश्वा श्यावाश्वः सावित्रीं जगतीं** (सर्वा० २.७)।

१४६. श्रुतकक्ष-सुकक्ष (३३.३५) —यजुर्वेद ३३.३५ के ऋषि श्रुतकक्ष-सुकक्ष सम्मिलित रूप से माने गये हैं; किन्तु ऋग्वेद ८.९२ सूक्त के ऋषि यही दोनों वैकल्पिक रूप से माने गये हैं। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में इन्हें आंगिरस (अंगिरस्-गोत्रीय) पद प्रदान किया है— '**पान्तमा वः' इति त्रयस्त्रिंशदृचं द्वादशं सूक्तमाङ्गिरसस्य श्रुतकक्षस्य सुकक्षस्य वार्षमैन्द्रम्** (ऋ० ८.९२ सा० भा०।) आचार्य महीधर ने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **श्रुतकक्षसुकक्षदृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्न्युरोरुक्** (यजु० ३३.३५ मही० भा०)। सर्वानुक्रमसूत्र में भी यही तथ्य उल्लिखित है— **यद्द्य श्रुतकक्ष-सुकक्षौ** (सर्वा० ३.१९)।

१४७. श्रुतबन्धु (३.२६ पूर्वांश, २५.४७) - द्रष्टव्य बन्धु, विप्रबन्धु ऋ० १०.१२४।

१४८. श्रीकाम (३२.१६) — यजुर्वेद के ३२वें अध्याय का १६वाँ मन्त्र श्री (सम्पत्ति) की कामना से संबंधित है, अपने इसी दृष्ट मन्त्र के कारण ही ऋषि का औपाधिक नाम संभवतः श्रीकाम हुआ है। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है-- **इदं मे मान्त्रवर्णिक्यनुष्टुब्वेतया देवेभ्यः श्रीकामो याचते श्रियम्** (सर्वा० ३.१६)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर ने इसी तथ्य की पुष्टि की है— **श्रीकामोऽनया श्रियं याचते** (यजु० ३२.१६ मही० भा०)।

१४९. संकसुक (३५.७; ३५.१५) —संकसुक का ऋषित्व ऋग्वेद १०.१८ सूक्त में मिलता है। इसी सूक्त के दो मन्त्र (१,४) यजुर्वेद ३५.७ और ३५.१५ में संगृहीत हैं। ऋग्वेद में इस नाम के साथ 'यामायन' पद -नाम भी संयुक्त है। बृहद्देवता में इन्हें

यम का सबसे छोटा पुत्र (नाम संकुसुक) कहा गया है—**नाम्ना संकुसुको नाम यमपुत्रो जघन्यजः** (बृह० २.६१)। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इनके ऋषित्व -विवेचन में पद-नाम का उल्लेख नहीं किया है— **परं मृत्यो: संकसुकः त्रिष्टुभं मृत्युदेवत्यां** (सर्वा० ४.४)।

१५०. संवत्सर यज्ञपुरुष (२२.२-८) —संवत्सर यज्ञपुरुष का ऋषित्व केवल यजुर्वेद (२२.२-८) में मिलता है। संवत्सर शब्द सामान्यतया वर्ष आदि का वाचक है। ऋग्वेद के सातवें मण्डल में 'संवत्सरं' से आरम्भ होने वाले सूक्त १०३ में यही आशय व्यक्त हुआ है। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनके ऋषित्व को स्पष्ट प्रमाणित किया है— **इमामगृभ्णन्संवत्सरो यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभं** (सर्वा० ३.१)। आचार्य महीधर ने इसी स्थान पर केवल यज्ञपुरुष को द्रष्टा रूप में निरूपित किया है। ये ऋचाएँ अश्वमेध यज्ञ प्रकरण से संबंधित हैं। संभवतः इसीलिए ऋषि नाम यज्ञपुरुष (पद-नाम) ही प्रचलित हुआ है— **यज्ञपुरुषदृष्टा रशनादेवत्या त्रिष्टुप्** (यजु० २२.२ मही० भा०)।

१५१. संवनन (१५.३०) —संवनन का ऋषित्व ऋग्वेद १०.१९१ सूक्त में मिलता है। इसी सूक्त का प्रथम मंत्र यजु० १५.३० में संकलित है। ऋग्वेद में ऋषि-विषयक उल्लेख में आचार्य सायण ने इन्हें एक आंगिरस (आंगिरस्-गोत्रीय) कहकर निरूपित किया है— **'संसम्' इति चतुर्ऋचं चत्वारिंशं सूक्तं संवननस्यार्षम्**...(ऋ० १०.१९१ सा० भा०)। संवनन शब्द के आशय 'परस्पर स्नेहपूर्वक रहना' के अनुरूप इन मंत्रों में सद्भाव और मैत्रीपरक भावना भरी हुई है। संभवतः दृष्ट मंत्रों में सन्निहित भावों के वाचक रूप संवनन नाम द्रष्टा का प्रचलित हुआ। सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **स—समित् संवननः** (सर्वा० सू० २.२०)।

१५२. संवरण प्राजापत्य (१०.२२-२३) — इनका ऋषित्व ऋग्वेद ५.३३-३४ सूक्तों में दृष्टिगोचर होता है। इनके द्वारा दृष्ट मंत्र इन्द्र देवता से संबंधित हैं। यजुर्वेद १०.२२-२३ में भी इनका ऋषित्व मिलता है। आचार्य सायण ने इन्हें ऋषि-विषयक उल्लेख में प्रजापति-पुत्र के रूप में विवेचित किया है— **प्रजापतिपुत्रः संवरणाख्यः ऋषिः** (ऋ० ५.३३ सा० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **मा ते संवरणः प्राजापत्य ऐन्द्रीं त्रिष्टुभं** (सर्वा० १.३९)। आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व को विवेचित किया है— **इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप् संवरणदृष्टा** (यजु० १०.२२ मही० भा०)।

१५३. सत्यधृति वारुणि (३.३१-३३) —सत्यधृति वारुणि का ऋषित्व ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद तीनों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद १०.१८५ सूक्त के प्रथम तीन मंत्र ही यजु० ३.३१-३३ में संगृहीत हैं। इसी सूक्त का प्रथम मंत्र ही सामवेद १९२ में संकलित है। इन स्थानों के द्रष्टा सत्यधृति वारुणि हैं। आचार्य सायण ने ऋग्वेद-भाष्य में इन्हें वरुण पुत्र के रूप में निरूपित किया है। यजुर्वेद भाष्यकार आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया है— **सत्यधृतिदृष्ट आदित्यदेवत्यस्तृचो** (यजु० ३.३१ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनके ऋषित्व-विवेचन में वारुणि पद भी उल्लिखित किया है—**महि त्रीणां* सत्यधृतिर्वारुणिरादित्यदैवतं** ... (सर्वा० १.१३)।

१५४. सप्तऋषिगण (१७.७९-८७) —सप्तऋषिगण का सम्मिलित ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में मिलता है। ऋग्वेद का ९.१०७ सूक्त, यजु० १७.७९-८७ एवं सामवेद में अनेक मंत्र इनके द्वारा दृष्ट माने गये हैं। वैदिक साहित्य में भरद्वाज बार्हस्पत्य, कश्यप मारीच, गोतम राहूगण, अत्रि भौम, विश्वामित्र गाथिन, जमदग्नि भार्गव तथा वसिष्ठ मैत्रावरुणि के समुदाय को सप्तर्षि कहा गया है। ऋग्वेद में इन ऋषियों का समुदित ऋषित्व भी प्राप्त होता है और स्वतंत्र भी। आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व को उल्लिखित किया है—**सप्तर्षिदृष्टा आग्नेयी भुरिक्त्रिष्टुप्** (यजु० १७.७९ मही० भा०)। सर्वानुक्रमसूत्रकार ने भी इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **सप्त त आग्नेयी त्रिष्टुप्सप्त ऋषीणाम्** (सर्वा २.२७)।

१५५. सरस्वती (१९.१; २८.१) —यजुर्वेद में प्रजापति, अश्विनीकुमारों के साथ सरस्वती का ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। अन्य वेदों में इनका ऋषित्व नहीं मिलता। सर्वानुक्रमसूत्रकार ने सौत्रामणी- अध्याय में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **अथ सौत्रामणी-प्रजापतेरार्षमश्विनोः सरस्वत्याश्च स्वाद्वीं त्वानुष्टुप्**... (सर्वा० २.३३)। आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व को विवेचित किया है— **सौत्रामणीमन्त्राणां प्रजापत्यश्विसरस्वत्य ऋषयः** (यजु० १९.१ मही० भा०)।

१५६. सविता (११.१-११; १३.२६) —यजुर्वेद में सरस्वती, सविता आदि देवगणों का ऋषित्व भी दृष्टिगोचर होता है, अनेक स्थानों पर ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्रों के देवता के आधार पर ही ऋषि-नाम प्रचलित हुआ है। 'सविता' को देवों का उत्पत्तिकारक और प्रजापति रूप भी माना गया है— **सविता वै देवानां प्रसविता** (शत० ब्रा० १.१.२.१७)। ऋषि के रूप में इनका विवेचन सर्वानुक्रम सूत्रकार ने किया है—**युञ्जानोऽष्टौ सावित्राणि सवितापश्यद्** (सर्वा० २.१)। महीधर ने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया है—**अष्टानां सविता ऋषिः देवोऽपि सविता** (यजु० ११.१ मही० भा०)।

१५७. सार्पराज्ञी (३.६-८) —सार्पराज्ञी ऋषिका का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋ० १०.१८९ सूक्त की ऋषिका सार्पराज्ञी ही है। इस सूक्त में तीन मंत्र ही हैं और यही तीनों मंत्र यजु० ३.६-८, साम० ६३०-६३२, १३७६-१३७८ तथा अथर्व० ६.३१.१-३; २०.४८.४-६ में बार-बार संकलित हुए हैं, परन्तु अथर्ववेद ६.३१.१-३ में ऋषि नाम उपरिबभ्रव उल्लिखित

है। बृहद्देवता २.८४ में स्त्री द्रष्ट्रियों के नाम में सार्पराज्ञी नाम उल्लिखित है— **श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा** (बृह० २.८४)। यजुर्वेद भाष्य एवं सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनके ऋषित्व को विवेचित किया गया है— **आयं गौरित्यादीनां तिसृणामृचां सार्पराज्ञीति नामधेयम्** (यजु० ३.६ मही० भा०); **आयं गौः सार्पराज्ञ्यस्तृचो गायत्रोऽग्निः परावरत्वेन देवता** (सर्वा० १.१०)। इनके द्वारा दृष्ट मंत्र अग्न्याधान प्रक्रिया में प्रयुक्त होते हैं।

१५८. साध्या (अ० ११ से-१८ तक) —सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने अग्निचयन मंत्रों के ऋषि रूप में यजुर्वेद अध्याय ११ से १८ तक प्रजापति और साध्या का वैकल्पिक ऋषित्व स्वीकार किया है। इन्हीं अध्यायों में मंत्र द्रष्टा वैयक्तिक ऋषियों के अन्यान्य नाम भी निर्दिष्ट हैं। बृहद्देवता में अनेक स्थानों पर साध्या शब्द देवगण रूप में उल्लिखित है। सर्वानुक्रम सूत्र में इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन मिलता है— **अथाग्निं प्रजापतिरपश्यत् साध्या वापश्यन्त्सोऽग्निः** (सर्वा० २.१)। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य उवट एवं महीधर ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **अष्टावध्याया अग्निसंबद्धास्तान् प्रजापतिर्ददर्श। साध्या वा ऋषयः प्रजापतेः प्राणभूताः** (यजु० ११.१ उ० भा०)।

१५९. सिन्धुद्वीप (११.३८-४०; ११. ५०-६१) —सिन्धुद्वीप द्रष्टा का ऋषित्व चारों वेदों में मिलता है, परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में इनका अपत्यार्थक नाम 'आम्बरीष' अनुल्लिखित है, जो सामवेद एवं ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में १०.९ सूक्त के द्रष्टा सिन्धुद्वीप आम्बरीष के साथ त्रिशिरा त्वाष्ट्र का विकल्प मिलता है— **अम्बरीषस्य राज्ञः पुत्रः सिन्धुद्वीप ऋषिस्त्वष्टृपुत्रस्त्रिशिरा वा** (ऋ० १०.९ सा० भा०)। यजुर्वेद भाष्य एवं सर्वानुक्रम सूत्र में इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन मिलता है— **अब्देवत्या न्यङ्कुसारिणी सिन्धुद्वीपदृष्टा** (यजु० ११.३८ मही० भा०)। **अपो देवीः सिन्धुद्वीप आपीं न्यङ्कुसारिणीं** (सर्वा० २.४)।

१६०. सुचीक (३३.२३; ३५.१०) —यजुर्वेद ३३.२३ एवं ३५.१० के ऋषि सुचीक हैं। अन्यत्र कहीं इनका ऋषित्व नहीं मिलता। आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व को उल्लिखित किया है— **सुचीकदृष्टा त्रिष्टुप् पुरस्ताद्बृहतिपुरोरुक्...** (यजु० ३३.२३ मही० भा०)। सर्वानुक्रमसूत्रकार ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है— **प्र वः सुचीको ...** (सर्वा० ३.१८)।

१६१. सुतम्भर (१५.२७-२८; २२.१५) —सुतम्भर ऋषि का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में चार सूक्त ५.११-१४ इन्हीं के द्वारा दृष्ट हैं, परन्तु यहाँ और सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यार्थक नाम आत्रेय (अत्रि-गोत्रीय) संयुक्त है। इनके ऋषित्व का विवेचन यजुर्वेद भाष्य एवं सर्वानुक्रमसूत्र में किया गया है— **यथाक्रमं सुतम्भर विश्वामित्रविश्वरूपदृष्टाः** (यजु० २२.१५ मही० भा०)। **अग्निं द्वे स्तोमेनाग्नेयं तृचं गायत्रं द्वे सुतंभरो ....** (सर्वा० ३.१)। सुतंभर ऋषि को ऋग्वेद में याग-निर्वाहक भी कहा गया है— **यजमानस्य अवत्सारस्य मम सुतंभरः यागनिर्वाहक एतन्नामा ऋषिः** (ऋ० ५.४४.१३ सा० भा०)।

१६२. सुनीति (३३.२१) —सुनीति द्वारा दृष्ट मंत्र केवल यजुर्वेद ३३.२१ में दृष्टिगोचर होता है। ऋक्, साम और अथर्व में सुदीति ऋषि का ऋषित्व मिलता है, जो यजुर्वेद में नहीं मिलता। संभवतः सुनीति, ऋग्वेद के सुदीति पाठ से अशुद्ध हो अथवा इनके भ्राता आदि में से एक हो अथवा समकक्ष हो। परन्तु ऐसा कोई विवरण उल्लिखित नहीं है। यजुर्वेद भाष्यकार आचार्य महीधर ने ऋषि-विषयक उल्लेख में इनका नाम दिया है— **सुनीतिदृष्टाग्निपुरोरुक् या वामित्यस्याः स्थाने** (यजु० ३३.२१ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने भी इन्हें द्रष्टा के रूप में निरूपित किया है— **आ सुते सुनीतिः** (सर्वा० ३.१८)।

१६३. सुबन्धु (३.२५; २५.४७) — द्रष्टव्य-बन्धु, विप्रबन्धु — क्र० ९०, १२४।

१६४. सुहोत्र (३३.७७; ३३.९३) —सुहोत्र द्रष्टा का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में मिलता है। ऋग्वेद ६.३१-३२ सूक्त इन्हीं के द्वारा दृष्ट हैं, परन्तु यहां इन्हें भारद्वाज (भरद्वाज-गोत्रीय) कहा गया है— **'अभूरेकः' इति पञ्चर्चमष्टमं सूक्तं भरद्वाजस्य सुहोत्रस्यार्षम्** (ऋ० ६.३१ सा० भा०)। यजुर्वेद में इनके द्वारा दृष्ट चार मंत्र (३३.५३, ७७, ९३; ३४.४१) मिलते हैं। इनके ऋषि-विषयक उल्लेख यजुर्वेद भाष्य एवं सर्वानुक्रमसूत्र में द्रष्टव्य हैं— **सुहोत्रदृष्टा वैश्वदेवी गायत्री** (यजु० ३३.७७ मही० भा०)। **उप नः सुहोत्रो वैश्वदेवीं** (सर्वा० ३.२२)। **इन्द्राग्नी अपात्सुहोत्रो** (सर्वा० ३.२३)। पुरुमीळ्ह और अजमीळ्ह को सुहोत्र पुत्र भी कहा गया है— **सुहोत्रपुत्रौ पुरुमीळ्हाजमीळ्हावृषी** (ऋ० ४.४३ सा० भा०)।

१६५. सोमक (११.२५) —सोमक ऋषि का ऋषित्व केवल यजुर्वेद ११.२५ में मिलता है। इन्हें ऋग्वेद में साहदेव्य (सहदेव-पुत्र) भी कहा गया है और सृञ्जयों के राजा के रूप में भी उल्लिखित किया गया है। यजुर्वेद भाष्य में इनका ऋषित्व-विवेचन मिलता है— **आग्नेयी गायत्री सोमकदृष्टा** (यजु० ११.२५ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी इन्हें द्रष्टा रूप में विवेचित किया गया है— **परि सोमको गायत्रीं** (सर्वा० २.२)।

१६६. सोमशुष्म (२.१८) —सोमशुष्म द्रष्टा का ऋषित्व केवल यजुर्वेद २.१८ में मिलता है। जैमि० उप० ब्रा० ३.४०.२ में इन्हें सत्ययज्ञ के शिष्य के रूप में उपन्यस्त किया गया है। ऐ० ब्रा० ८.२१.५ में सोमशुष्म एक पुरोहित के रूप में उल्लिखित हैं, परन्तु

यहाँ पद-नाम वाजरत्नायन (वाजरत्न का वंशज) निर्दिष्ट है । आचार्य महीधर एवं सर्वानुक्रम सूत्रकार ने सोमशुष्म को द्रष्टा रूप में विवेचित किया है— **सोमशुष्म ऋषिः** (यजु० २.१८ मही० भा०)। **स त्वा नः सवाना: सोमशुष्मो वैश्वदेवीं त्रिष्टुभं..**(सर्वा० सू० १.७)।

१६७. सोमाहुति (११.७०; १२.४३-४६) —ऋक्, यजु एवं साम तीनों वेदों में सोमाहुति द्रष्टा के रूप में निरूपित हैं । ऋग्वेद एवं सामवेद में इनके नाम के साथ 'भार्गव' (भृगु-वंशीय) पद निर्दिष्ट है । संभवतः सोम-आहुति (सोम-याग) आदि से विशेष सम्बद्ध होने के कारण इन्हें सोमाहुति कहा गया । यजुर्वेद-भाष्य में आचार्य महीधर ने इनका ऋषित्व विवेचित किया है— **अग्निदेवत्या गायत्री सोमाहुतिदृष्टा** (यजु० ११.७० मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी ऋषि-विषयक उल्लेख में इनका विवेचन किया गया है— **इदं नः सोमाहुतिराग्नेयीं गायत्रीं** (सर्वा० २.६)।

१६८. सौभरि (१५.३८-४०) —सौभरि ऋषि का ऋषित्व यजुर्वेद में १५.३८-४० में मिलता है । ऋग्वेद १०.१२७ के ऋषि विषयक उल्लेख में सौभर कुशिक का नाम निर्दिष्ट है,जो सोभरि के पुत्र कहे गये हैं— **'रात्री' इत्यष्टर्चं पञ्चदशं सूक्तं सोभरिपुत्रस्य कुशिकस्यार्षम्** (ऋ० १०.१२७ सा० भा०)। सामवेद की अनुक्रमणी में इन्हें काण्व (कण्व-गोत्रीय) कहा गया है । सर्वानुक्रम सूत्र में सौभरि का ऋषित्व विवेचित किया गया है— **भद्रो नः सौभरिः** (सर्वा० २.२०)।

१६९.स्वस्त्य आत्रेय (४.८) —बृहदारण्यक उपनिषद् (२.६.३) में वर्णित 'माण्टि' के एक शिष्य की यह पैतृक उपाधि है । ऐतरेय ब्राह्मण में आत्रेय,अङ्ग के पुरोहित कहे गये हैं । शतपथ ब्राह्मण के एक 'आत्रेय' को कुछ यज्ञों का नियमतः पुरोहित कहा गया है । अत्रि की प्रतिष्ठा निर्विवाद है । यजुर्वेद के मंत्रद्रष्टा होने का गौरव इन्हें प्राप्त है— **सवितृदेवत्यानुष्टुप् स्वस्त्यात्रेयदृष्टा** (यजुर्वेद ४.८ मही० भा०)। सर्वानुक्रमसूत्रकार ने लिखा है— **विश्वोदेवस्य स्वस्त्यात्रेयः सावित्रीमनुष्टुभमपश्यत्सामयो:......** (सर्वा० १.१७)।

१७०. हिरण्यगर्भ प्राजापत्य (२५.१२-१३;२७.२५-२६) — हिरण्यगर्भ प्राजापत्य ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के मंत्र द्रष्टा ऋषि के रूप में स्वीकृत किये गये हैं । हिरण्यगर्भ को प्रजापति का पुत्र कहा गया है । इनके द्वारा दृष्ट कुछ मंत्रों (यजु० १२.१०२; १३.४; २३.१-४,६५; २५.१०-११) में 'प्राजापत्य' नाम नहीं है,जबकि ये सभी मंत्र ऋग्वेद १०.१२१ सूक्त में ही पठित हैं— **हिरण्यगर्भदृष्टा प्रजापतिदेवत्या त्रिष्टुप्** (यजु० १३.४ मही० भा०)। कुछ स्थानों (२५.१२-१३; २७.२५-२६) में प्राजापत्य नाम भी उल्लिखित है— **प्रजापतिसुतहिरण्यगर्भदृष्टाः** (यजु० २५.११ मही० भा०)। हिरण्यगर्भ की अर्चना प्रजापति (क) के लिए की गयी है,इस तथ्य की पुष्टि बृहद्देवता ने की है— **हिरण्यगर्भस्त्वेनैनम् ऋषिरर्चन्नुवाच कम्** (बृह० २.४७)।

१७१. हिरण्यस्तूप आंगिरस (३३.४३; ३४.२४-२७) — हिरण्यस्तूप आंगिरस का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में दृष्टिगोचर होता है । ऐतरेय ब्राह्मण में हिरण्यस्तूप आंगिरस द्वारा इन्द्र धाम प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है । निरुक्त में भी इनका उल्लेख ऋषि रूप में किया गया है । बृहद्देवता में हिरण्यस्तूप आंगिरस द्वारा इन्द्र की मित्रता का गान करने का उल्लेख किया गया है— **हिरण्यस्तूपतां प्राप्य सख्यं चेन्द्रेण शाश्वतम्** (बृह० ३.१०६)। आचार्य सायण ने इन्हें आंगिरस् पुत्र कहकर निरूपित किया है— **आंगिरसः अंगिरसः पुत्रः हिरण्यस्तूपः** (ऋ० १०.१४९.५ सा० भा०) यजुर्वेद भाष्य एवं सर्वानुक्रम सूत्र में हिरण्यस्तूप आंगिरस द्रष्टा रूप में स्पष्ट विवेचित किये गये हैं— **चतस्रः सावित्र्यः द्वितीया जगती त्रिष्टुभोऽन्याः हिरण्यस्तूपदृष्टाः** (यजु० ३४.२४ मही० भा०)। **चतुर्ऋचं त्रैष्टुभं१३ सावित्रमांगिरसो हिरण्यस्तूपः** (सर्वा० ४.२)।

१७२. हैमवर्चि (१९.१०-३६) — हैमवर्चि का ऋषित्व केवल यजुर्वेद १९.१०-३६ में निर्दिष्ट है, अन्यत्र कहीं इनका ऋषित्व अथवा नामोल्लेख भी नहीं मिलता । इनके ऋषित्व को आचार्य महीधर ने अपने भाष्य में प्रमाणित किया है— **हैमवर्चिदृष्टा विषूचिका देवत्यानुष्टुप्** (यजु० १९.१० मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी इन्हें द्रष्टा रूप में निरूपित किया गया है— **या व्याघ्रं२३ हैमवर्चेरनुष्टुप् विषूचिकास्तुतिः** (सर्वा० २.३३)।

परिशिष्ट-२

यजुर्वेदीय देवताओं का संक्षिप्त परिचय

१. **अग्नि (१.५. ; २.४)** - सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण इन्हें 'अग्नि' कहा गया है —**स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्रिरग्रिर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते परोऽक्षम्** (शत० ब्रा० ६.१.१.११)। शक्ति तत्त्व होने के कारण सर्वप्रथम प्रजापति ने अग्नि की ही सृष्टि की है — **स वा एतमेतद्ग्रे देवानां (प्रजापतिः) अजनयत। तस्मादग्निरग्रिर्ह वै नामैतद्यदग्निरिति** (शत० ब्रा० २.२.४.२)। अग्नि का प्रकाशकत्व प्रसिद्ध ही है, तत्सम्बन्धी सभी विशेषण अग्नि के साथ सम्बद्ध हैं—भास्वर, हिरण्यरूप आदि-**हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्** (ऋ० ५.२.३)। अग्नि के प्रभासित होते ही अन्धकार का अपनयन हो जाता है — **ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्** (ऋ० १.१४०.१)। इनके पिता द्यौस् हैं। कुछ प्रसंगों में इन्हें आपः, त्वष्टा, सूर्य, यज्ञ, अरणि आदि से भी उद्भूत कहा गया है — **यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः** (ऋ० १०.४५.८)। **स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे** (ऋ० ३.२.२)। **योऽश्मनोरन्तरग्निं जजान** (ऋ० २.१२.३)। अग्निदेव यज्ञोत्पत्ति के मूल हैं। यही देव-दूत हैं। अग्निदेव सभी देवों के अधिष्ठाता देव हैं—**अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा** (शत० ब्रा० १४.३.२.५)। **अग्निर्वै देवयोनिः** (ऐत० ब्रा० १.२२)। अग्निदेव सम्पूर्ण पापों के विनाशक हैं— **अग्निरु सर्वेषां पाप्मनामपहन्ता** (शत० ब्रा० ७.३.२.१६)। अग्निदेव का मूल परम आकाश में अवस्थित है— **स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत** (ऋ० ६.८.२)। यजुर्वेद के प्रमुख देवता अग्निदेव ही हैं।

२. **अग्नीन्द्र (७.३२)** —अग्नीन्द्र को यमल भ्राता कहा गया है, जो एक ही पिता की सन्तान हैं— **बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ। समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा** (ऋ० ६.५९.२)। याज्ञिक पौरोहित्य इस युग्म की विशेषता है—**यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्** (ऋ० ८.३८.१)। ऐश्वर्य प्रदान करने में ये पर्वतों, नदियों आदि से भी बढ़कर हैं — **प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या** (ऋ० १.१०९.६)। कष्टदायक एवं मायावियों का निराकरण करके श्रेष्ठ पुरुषों की सहायता करने में ये सर्वदा तत्पर रहते हैं—**ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्। अप्रजाः सन्त्वत्रिणः** (ऋ० १.२१.५); **आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः** (ऋ० १.१०९.७)। इनके वीरतापूर्ण कृत्य प्रख्यात हैं - **यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि** (ऋ० १.१०८.५)

३. **अदिति (११.५७ ; २१.५)** —अदिति, अष्ट आदित्यगणों की माता कही गयी हैं— **अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा** (अथर्व० ८.९.२१)। **अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्तत उच्छिष्टमाश्नात् सा गर्भमधत्त तत आदित्या अजायन्त** (गो० ब्रा० १.२.१५)। अदिति को प्रतिष्ठा प्रदात्री देवी कहा गया है—**अदित्या अहं देवयज्यया प्रतिष्ठां गमेयम्** (काठ० सं० ५.१)। सम्पूर्ण पृथिवी की देवी अदिति को विश्वदेवी की संज्ञा भी प्राप्त है— **इयं (पृथिवी) वा अदितिर्देवी विश्वदेव्यवती** (मैत्रा० सं० ३.१.८)। इन्हें अनेक तत्त्वों एवं देवों की सृष्टि-कर्त्री के रूप में जाना जाता है—**अदितिः सोमस्य योनिः** (मैत्रा० सं० ३७.८)। सम्पूर्ण विश्व की प्रतिष्ठा एवं भरण-पोषण अदिति के द्वारा ही सम्पन्न होता है —**एवा न देव्यदितिरनर्वा। विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा** (तैत्ति० सं० ३.१.१.४)। अदिति को सौख्य प्रदात्री, पाप-विमोचिनी, दुष्कर्मनाशिनी के रूप में जाना गया है— **यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम** (ऋ० १.९४.१५)।

४. **अप्सरा (१८.३८)** —अप्सराओं को गन्धर्वों और मृगों के साथ विशेष रूप से संबद्ध किया गया है—**अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन्** (ऋ० १०.१३६.६)। अप्सराओं को 'समुद्रिय' विशेषण से भी सम्बोधित किया गया है — **समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन्** (ऋ० ९.७८.३)। गन्धर्वों को पति के रूप में और अप्सराओं को उनकी पत्नी के रूप में भी उल्लिखित किया गया है—**ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः** (अथर्व० २.२.५)। अप्सराओं को गन्ध और जल का प्रेमी कहा गया है — **गन्ध इत्यप्सरसः... उपासते** (शत० ब्रा० १०.५.२.२०); **तस्य (वातस्य) आपोऽप्सरसः** (शत० ब्रा० ९.४.१.१०)। अप्सराएँ मेधा सम्पन्न होती हैं —**अप्सरासु च या मेधा गन्धर्वेषु च यन्मनः। दैवी मेधा मनुष्यजा सा मां मेधा सुरभिर्जुषताम्** (तैत्ति आ० १०.४१)। शब्दकल्पद्रुम का मत है कि जल से उत्पन्न होने के कारण ही इन्हें अप्सरा कहा जाता है - **अद्भ्यः समुद्रजलेभ्यः सरन्ति उद्गच्छन्ति.. अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्मात् वरस्त्रियः। उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्** (श० क० पृ० ७१)।

५. **अर्यमा (९.२७ ; ९.२९)** — 'अर्यमा' देव की गणना आदित्यगण के अन्तर्गत की गई है। अर्यमा एवं सूर्य का पूर्ण तादात्म्य प्राप्त होता है। अर्यमा से स्वर्ग, धन तथा कल्याण की कामना करने वाले को चरु अर्पित करना चाहिए— **अर्यम्णे चरुं निर्वपेत्—यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्युरिति असौ वा आदित्यो अर्यमा यः खलु वै ददाति सोऽर्यमा** (तैत्ति० सं० २.३.४)। ऊपर की दिशा

बृहस्पति से संबंधित मानी गई है। उससे भी ऊपर अर्यमा का मार्ग है — **'एतावा ऊर्ध्वा बृहस्पतेर्दिक्। तदेव उपरिष्टाद् अर्यम्णः पन्था:** (शत० ब्रा० ५.३.१.२)।

६. **अश्विनीकुमार (७.११; १४.१)** — ये यमल भ्राता माने गये हैं, अतएव इनकी उपमा युग्म तत्त्वों से दी गयी है— **हंसाविव पततमा सुतॉं उप** (ऋ० ५.७८.१)। इन्हें द्यौस्, उषा और रात्रि की सन्तान कहा जाता है —**वासात्यो अन्य उच्यते। उषः पुत्रस्त्वान्यः** (नि० १२.२)। एकाधिक प्रकरण में इन्हें शुभस्पती कहा गया है। ये कल्याण और शुभ प्रदान करने वाले के रूप में ख्याति प्राप्त हैं — **ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती** (ऋ० ८.२२.१४)। **उत नो देवावश्विना शुभस्पती** (ऋ० १०.९३.६)। देवताओं में ये निम्नकोटिक देव हैं —**अश्विनौ वै देवानामनुजावरौ** (तैत्ति० सं० २.३.४.२)। ये देवभिषक् हैं —**अश्विनौ वै देवानां भिषजौ** (तैत्ति० सं० २.३.११.२)। रासभ इनके रथ को वहन करते हैं, जिस पर अधिष्ठित होकर ये विजय प्राप्त करते हैं — **गर्दभ रथेनाश्विना उदजयताम्** (ऐत० ब्रा० ४.९)।

७. **असुर (१.२६ ; २. २९)** — सृष्टि सदसत् द्वन्द्व मिश्रित है। मानवीय चेतना, मांगलिक एवं अमांगलिक दोनों शक्तियों पर विश्वास करती है। ये दोनों शक्तियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। देव-विरोधी शक्तियों को असुर कहा जाता है—**अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अपवप ऋजीषिन्** (ऋ० ८.९६.९)। ये बलिष्ठ आसुरी वृत्तियाँ समस्त विश्व के क्रिया-कलापों को प्रभावित करने में सक्षम हैं। वृष्टि-अवरोध, सूर्याच्छादन तथा जल-प्रवाह निरोध आदि इनके विशिष्ट कृत्य हैं। अतएव इन्द्र, विष्णु, अग्नि आदि देवों ने मंत्र एवं शक्ति के माध्यम से इनको पराभूत किया है —**तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम। ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम्** ॥ (ऋ० १०.५३.४)। इन्द्राविष्णु ने शम्बर, पिप्रु आदि के दुर्गों को भूमिसात् करके असुर-सेना का संहार कर दिया —**इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्। शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्** (ऋ० ७.९९.५)। वस्तुतः ये आसुरी शक्तियाँ भी परमात्म शक्ति के लीलासंदोह की अंगभूत हैं। इसीलिए देवों की श्रेणी में इनकी भी परिगणना यजुर्वेद में की गई है। इसी आधार पर 'वैदिक देवता : उद्‌भव और विकास' के सुधी लेखक ने परं चैतन्य को नमन करते हुए लिखा है— **देवयक्षासुराणां यो धृत्वा रूपाणि लीलया । क्रीडत्यखिलविश्वात्मा तस्मै चिद्रूपिणे नमः ॥**

८. **आदित्य-गण (२३. ५ ; ३४.५४)** — आकाशस्थ दिव्यशक्तियों में आदित्य की अद्वितीय प्रतिष्ठा है। अदिति का पुत्र होने के कारण इन्हें आदित्य कहा जाता है, जो अपत्यार्थक अण् प्रत्यय लगाकर सिद्ध होता है— **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** (अ० ४.१.८५)। देवमाता अदिति के पुत्रों की संख्या ऋग्वेद २.२७.१ में छः, ९.११४.३ में सात तथा १०.७२.८ में आठ बताई गई है— **'शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तु विजातो वरुणो दक्षो अंशः'** (ऋ० २.२७.१)। **देवा आदित्या ये सप्त** — (ऋ० ९.११४.३)। **अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि** (ऋ० १०.७२.८)। **अष्टौ ह वै पुत्रा अदितेः** (शत० ब्रा० ३.१.३.३)। इनके नाम सायण ने इस प्रकार बताये हैं —मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंशु, भग, इन्द्र और विवस्वान्—**'ते च तैत्तिरीये' अष्टौ पुत्रासो अदितेरित्युपक्रम्य स्पष्टमनुक्रान्ताः—'मित्रश्च वरुणश्च धाता च अर्यमा च अंशश्च भगश्च इन्द्रश्च विवस्वांश्च इत्येते** (ऋ० २.२७.१ सा० भा०)। शतपथ ब्राह्मण में यह संख्या बढ़कर १२ हो गई —**स द्वादश द्रप्सान् गर्भ्यभवत् ते द्वादशादित्याः असृज्यन्त तान् दिक्षूपादधात्** (शत० ब्रा० ६.१.२.८)। १२ आदित्यों के नाम हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, अंशुमान् तथा विष्णु।

९. **आपः (२.३४; ४. १२)** — 'आपः' अन्तरिक्षस्थ देवता हैं। आपः को सूर्य का समीपवर्ती कहा गया है— **अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह** (ऋ० १.२३.१७)। इन्हें अग्नि का जनक भी कहा गया है — **या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु** (अथर्व० १.३३.१)। इन्हें चराचर सृष्टिकर्ता कहा गया है, अतएव इनकी गणना श्रेष्ठ माताओं में की जाती है — **'यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः** (ऋ० ६.५०.७)। 'आपः' का प्रमुख कार्य शुद्ध और संस्कृत बनाना है। दीर्घायुष्य उपचार, ओषधि रक्षण इनकी विशेषता है। अतएव कल्याणतम 'आपः' रस की प्राप्ति की कामना की गई है—**'यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः'** (ऋ० १०.९.२)। जलों के देवता को 'आपः' कहा जाता है, जो स्वर्गीय धारा से प्रवाहित होता है—**अश्मनो ह्यापः प्रभवन्ति** (शत० ब्रा० ९.१.२.४)।

१०. **इळा (२०.३८, २१.१४)** —'इळा' या 'इला' को गौ का समानार्थक माना गया है। 'इळा' को घृतवती माना गया है। उनके घृत-सिक्त अंगों का वर्णन प्राप्त होता है—**'येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति** (ऋ० ७.१६.८)। **मनुष्वदग्ने सुषिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त** (ऋ० १०.७०.८)। इळा को सरस्वती, भारती आदि देवियों के साथ निकट सम्बन्ध वाली माना गया है और यह मित्रावरुण की पुत्री के रूप में भी उल्लिखित है— **इळासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः** (शत० ब्रा० १४.९.४.२७)।

११. इन्द्र (महेन्द्र, मघवा) (३.३४; ७.३९ ; ७.५) — वेदों में इन्द्र की गणना प्रमुख देवों में की गई है। इन्द्र ने अनेक राक्षसों का संहार किया था, उनमें वृत्र का प्रमुख स्थान था— **अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद** (ऋ० ६.४७.२)। इन्द्र ने वृत्र वध के लिए तीन सोमह्रदों का पान कर लिया था— **त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम्** (ऋ० ५.२९.७)। वृत्र विजय के उपलक्ष्य में ही इन्द्र को महेन्द्र उपाधि से विभूषित किया गया था— **इन्द्रो वा एष पुरा वृत्रस्य वधादथ वृत्रं हत्वा यथा महाराजो विजिग्यान एवं महेन्द्रोऽभवत्** (शत० ब्रा० १.६.४.२१)। धनवान् दानी इन्द्र के विशेषणों में 'मघवा' शब्द भी प्रयुक्त होता है — **स उ एव मखः स विष्णुः । तत् इन्द्रो मखवान भवन्मखवान्ह वै तं मघवानित्याचक्षते परोक्षम्** (शत० ब्रा० १४.१.१.१३)। नमुचि, शम्बर आदि राक्षसों का विनाश इन्द्रदेव ने किया। पणि द्वारा निरुद्ध गौओं को उन्होंने स्वतन्त्र किया।

१२. इन्द्रवायू (७.८; ३३.५६) — युगमदेव-स्तुति वैदिक वैशिष्ट्य है। सर्वप्रथम यह प्रचलन द्यावा-पृथिवी के रूप में दृष्टिगोचर होता है। कालान्तर में अनेक देवताओं का इसी आधार पर विकास हुआ है। इन्द्र-वायू युग्म देवता के रूप में ख्याति प्राप्त हैं-**इन्द्रवायू हि सयुजौ** (तैत्ति० सं० ६.६.८.३)। युद्धकाल में देवनिष्ठ योद्धाओं पर विशेष कृपा इनका प्रधान गुण है — **घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान्** (ऋ० ७.९२.४)। स्तोताओं को प्रभूत धन-धान्य प्रदान करके उन्हें आयुष्मान बनाते हैं —**इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः** (ऋ० ७.९०.६)। यज्ञ स्थल पर स्वर्णिम रथ से आकर कुशा-आसन पर अवस्थित होकर आनन्दित होते हैं — **रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आहि स्थाथो दिविस्पृशम्** (ऋ० ४.४६.४)। **इन्द्रवायू सदतं बर्हिरिदम्** (ऋ० ७.९१.४)। यजुर्वेद में इनके देवत्व का उल्लेख करते हुए सर्वानुक्रम-सूत्रकार ने लिखा है—**इन्द्रवायू मधुच्छन्दा ऐन्द्रवायवी गायत्री** (सर्वा० १.२६)।

१३. इन्द्राग्नी (३. १३; ७. ३१) — इन्द्राग्नी सोम-पायी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। सोमपान के निमित वे रथाधिष्ठित होकर आते हैं— **य इन्द्राग्नी चित्रतमोरथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे** (ऋ० १.१०८. १)। ये दोनों साथ-साथ आकर सोमपान करते हैं— **इन्द्राग्नी सोमपीतये** (ऋ० ८. ३८.७)। शत्रु एवं उनके आवास स्थानों का भेदन इन्द्राग्नी का प्रमुख कार्य है। वज्र, विद्युत और तिग्म इनके आयुध हैं, जिससे सज्जनों की रक्षा संभव होती है — **आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः** (ऋ० १.१०९.७)। याज्ञिक कार्य सम्पन्न कराने के कारण इन्हें पुरोहित भी कहा गया है। इनकी गणना बलिष्ठ देवों के अन्तर्गत की गयी है— **इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ** (ऐत० ब्रा० २.३६)।

१४. इन्द्रापर्वत (८. ५३) — इन्द्रापर्वत देवता को अधिक माहात्म्य प्राप्त नहीं है। शत्रुओं का विनाश करने वालों में इन्हें अग्रगण्य माना गया है। शत्रुओं के विनाश और आत्म-कल्याण की कामना इनसे की गई है— **युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतं । दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् । अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः** (ऋ० १.१३२.६)। इन्द्र का तो सर्वप्रचलित अर्थ ही मान्य है। पर्वत का आशय घुमड़ते हुए बादल से है — **इन्द्रः प्रसिद्धः । पर्वतः पर्ववान्मेघः । तदभिमानी देवः** (ऋ० १.१३२.६ सा० भा०)। इन्द्रापर्वत से विशालाकार रथ पर आसीन होकर आने की कामना की गई है। ये शोभन पुत्रों को यज्ञ-कृत्य के निमित्त वहन करते हैं तथा हव्य एवं स्तुतियों से अत्यधिक प्रमुदित होते हैं — **इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः । वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता** (ऋ० ३.५३.१)।

१५. इन्द्रामरुत् (३. ४६; ७.३५) —इन्द्र के सहयोगी के रूप में मरुद्गण की गणना की गई है। इसी का प्रतिफल है कि इनका युग्म प्रचलित हो गया। देवलोक से अपहृत गौओं को पणि ने अन्धकार में छिपा दिया था। इन्द्रदेव ने मरुतों की सहायता से उन गौओं का अन्वेषण किया था— **पणिभिर्देवलोकात् गावोऽपहृता अन्धकारे प्रक्षिप्ताः । तास्चेन्द्रो मरुद्भिः सहाजयदिति** (ऋ० १.६.५ सा० भा०)। इन्द्र ने वृत्र के यथार्थ देवावाहन किया था, परन्तु सभी देवता वृत्र के मात्र श्वास से ही पलायित हो गये थे। उस समय मरुतों ने ही इन्द्रदेव की सहायता की थी। आचार्य सायण ने इस वृत्तान्त का उल्लेख सुस्पष्ट रूप से किया है — **पुरा कदाचित् वृत्रवधदशायामिन्द्रस्य सखायः सर्वे देवा वृत्रश्वासेन अपसारिताः । तदानीमिन्द्रस्य वृत्रसंबन्धिसकलसेनाजयार्थं मरुद्भिः संगमोऽभूत्** (ऋ० १.६.७ सा० भा०)।

१६. उषा (१३. ३४; ३४. ३३) — उषा को भग की भगिनी और द्युलोक से समुद्भूत कहा गया है —**भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व** (ऋ० १. १२३. ५)। ते (उषाः) ऽमुतः (द्युलोकात्) **आगता अस्यां पृथिव्यां प्रतिष्ठितास्तामनयोर्द्यावापृथिव्यो रसं मन्यन्ते** (शत० ब्रा० २.१.१.६)। उषा को सौन्दर्ययुक्त, भास्वरित एवं अमर द्यौ-पुत्री के रूप में ख्याति प्राप्त है — **अपद्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवोदुहिता ज्योतिषागात्** (ऋ० ५.८०.५)। सतत गतिशील उषा देवी सभी जङ्गम प्राणियों को उद्बुद्ध करती हैं तथा उनमें नवजीवन का संचार करती हैं — **विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती**

(ऋ० १.९२.९)। **प्रबोधयन्ती रुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्** (ऋ० ४.५१.५)। ऋत का पालन करने में उषा अग्रगण्य हैं—**ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति** (ऋ० ५.८०.४)। नियमित यज्ञाग्नि का प्रज्वलन उषः काल में ही होता है तथा याज्ञिक और अग्नि के विविध संबन्ध उषा के साथ निरूपित किये गये हैं—**उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य** (ऋ० १.११३.९)।

१७. उषासानक्ता (२०.४१; २१.१७) —उषा और रात्रि का आवाहन युग्म रूप में किया गया है। इन्हें धन-धान्य युक्त दिव्य युवती के रूप में चित्रित किया गया है – **उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा** (ऋ० २.३१.५)। ये दोनों देवियाँ द्युलोकसुता के रूप में ख्याति प्राप्त हैं—**उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः** (ऋ० ७.२.६)। इन्हें ऋत की माता कहा गया है– **यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत्** (ऋ० १.१४२.७)।

१८. कः (१२. १०२; १३. ४) — अथर्ववेद में प्रजापति के निमित्त हिरण्यगर्भसूक्त का दर्शन किया गया है। इस सूक्त का अन्तिम चरण है—**कस्मै देवाय हविषा विधेम** (अथर्व० ४.२.८)। सायण आदि विद्वानों ने 'क' का अर्थ सुख लिया है तथा सुखमय होने से प्रजापति ही 'क' वर्ण से वाच्य हैं। अतएव 'कस्मै' से प्रजापति अर्थ लिया जाता है—**कं वै प्रजापतिः.....क मे वैष.....प्रजाभ्यः कुरुते** (शत० ब्रा० २.५.२.११)। भागवत आदि पुराणों में 'क' शब्द प्रजापति के अर्थ में रूढ़ हो गया है। 'क' नामकरण पड़ने के विषय में ब्रा० ग्रन्थ में एक आख्यायिका दी गई है— **स प्रजापतिरब्रवीदव कोऽहमिति यदेवैतदवोच इत्यब्रवीत्ततो वै को नाम प्रजापतिरभवत्को वै नाम प्रजापतिः** (ऐत० ब्रा० ३.२१)।

१९. गन्धर्व (१८.३८) —अप्सरा एवं गन्धर्व एक साथ विवेचित किये गये हैं। कालान्तर में गन्धर्व वर्ग नाम से एक पृथक् वर्ग का विधान कर दिया गया है। गन्ध, मोद, प्रमोद इनका विशेष गुण है—**गन्धो मे मोदो मे प्रमोदो मे तन्मे युष्मासु**....(जैमि० उ० ३.५.६.४)। इन्हें रूप-प्रेमी एवं स्त्री-अभिलाषुक कहा गया है— **अथो गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति** (शत० ब्रा० ९.४.१.४)। **योषित्कामा वै गन्धर्वाः** (शत० ब्रा० ३.२.४.३)। गन्धर्वों को सोम रक्षा का उत्तरदायित्व सौंपा गया है—**गन्धर्वः रश्मीनां धारकः सोमः** (ऋ० ९.८५.१२ सा० भा०)। **तमेते गन्धर्वाः सोमरक्षा जुगुपुरिमे** (शत० ब्रा० ३.६.२.९)।

२०. चन्द्रमा (१.२८) — चन्द्रमा नक्षत्रों में प्रमुख है। रात्रि के स्वामी चन्द्रमा ही हैं। चन्द्रमा और सोम में अभिन्नता प्रदर्शित की गई है —**सोमो वै चन्द्रमाः** (कौषी० ब्रा० १६.५)। **एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः** (ऐत० ब्रा० ७.११)। चन्द्रमा का अस्तित्व सूर्य-आधृत है। यही नक्षत्रों की प्रतिष्ठा है—**चन्द्रमा अस्यादित्ये श्रितः नक्षत्राणां प्रतिष्ठा** (तैत्ति० ब्रा० ३.११.१.१२)। परमात्मा के मन से 'चन्द्रमा' की उत्पत्ति हुई है—**चन्द्रमा मनसो जातः** ...(यजु० ३१.१२)। **चन्द्रमा मे मनसिश्रितः** (तैत्ति० ब्रा० ३.१०.८.५)। अमावस्या के दिन चन्द्रमा आदित्य में प्रवेश कर जाता है—**चन्द्रमा वा अमावस्यायामादित्यमनुप्रविशति** (ऐत० ब्रा० ८.२८)।

२१. तिस्रो देव्यः (इळा, भारती, सरस्वती) (२०.४३; २१.१९) — वाजसनेयि संहिता में अनेक स्थानों पर '**तिस्रो देव्यः**' उल्लिखित होती हैं। सर्वा० सूत्र में देवता स्थान में भी '**तिस्रो देव्यः**' सम्मानित हुई हैं। यजुर्वेद की कण्डिकाओं में स्पष्टतः इनके नामोल्लेख भी हुए हैं। ये देवियाँ हवि से वर्धित होने वाली और इन्द्रदेव को हर्षित करने वाली हैं— **तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः। अच्छिन्नं तंतुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः** (यजु० २०.४३)। ये देवियाँ मरुतों के अधीन रहने वाली हैं— **तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः** (यजु० २१.१९)। ये देवियाँ सम्मानपूर्वक कुश पर विराजती हैं —**तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती भारती** (यजु० २७.१९)।

२२. त्वष्टा (२.२४; २०.४४) —'त्वष्टा' देव शिल्पी के रूप में प्रख्यात हैं। विविध निर्माण कला में वे सक्षम हैं— **त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति** (तैत्ति० ब्रा० २.७.२.१)। **त्वष्टा वै रूपाणामीशे** (तैत्ति० ब्रा० १.४.७.१)। देवताओं के निमित्त वज्र, आयस- परशु, भोज्य एवं पानक वस्तुओं के रखने के लिए एक चमस बनाया है—**उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः** (ऋ० १.२०.६)। निर्माण में हाथ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, अतएव त्वष्टा को सुपाणि कहा गया है—**सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्** (ऋ० ३.५४.१२)। त्वष्टा भास्वरित (देदीप्यमान) रूपों के निर्माता हैं — **प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम्** (ऋ० ६.४९.९)। रथ-नियुक्त उनके अश्व भी भास्वरित हैं—**युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति** (ऋ० ६.४७.१९)।

२३. पितर (२.३१; ३५.१) —उच्च स्वर्ग में रहने वाले पुण्यात्मा मृतकों को पितर कहा जाता है। ये मृतकों के गमन के निमित्त पथ-निर्माण करते हैं—**यमो नो गातुं प्रथमो विवेदनैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ अनुस्वाः**

२४. **पूषा (९.३२; ३४.४१)** — पूषा पुष्टि के देवता हैं। उनसे दीर्घायुष्य एवं वर्चस् की अभिवृद्धि की कामना की गई है — **पूष्णः पोषेण मह्यं दीर्घायुत्वाय शतशारदाय शतं शरद्भ्य आयुषे वर्चसे** (तैत्ति० ब्रा० १.२.१.१९)। **पुष्टिर्वै पूषा** (शत० ब्रा० ३.१.४.९)। पूषा-देव पथिकों का विशेष संरक्षण करते हैं— **पूषा वै पथीनामधिपतिः** (शत० ब्रा० १३.४.१.१४)। उनके रथ में अज नियोजित होते हैं—**रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। रायः सखायमीमहे।** ... (ऋ० १.१३८.४)। इनका प्रिय खाद्य करम्भ है और इनका दन्तहीन होना भी सिद्ध होता है—**तस्य दन्तान्परोवाप तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भ भाग इति** (कौषी० ब्रा० ६.१३)। इसी कारण इन्हें पिष्टभाजन (गुंथा भोज्य) और चरुभक्षक के रूप में भी प्रदर्शित किया गया है—**तस्मात् पूष्णे चरुं कुर्वन्ति प्रपिष्टानामेव कुर्वन्ति**...(शत० ब्रा० १.७.४.७)। **तस्मादाहुरदन्तकः पूषा पिष्टभाजन इति** (गो० ब्रा० २.१.२)।

२५. **प्रजापति (७. २९; ९.२०)** —प्रजापति हिरण्यगर्भ के प्रतिरूप हैं—**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम** (ऋ० १०.१२१.१)। प्रारम्भिक काल से ही इनका अस्तित्व माना जाता है—**प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवाऽऽस** (शत० ब्रा० २.२.४.१)। प्रजा-प्राप्ति के लिए प्रजापति का आवाहन किया गया है— **आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिः** (ऋ० १०.८५.४३)। प्रजापति देव को यज्ञजनक के रूप में प्रशंसित किया गया है—**यज्ञः प्रजापतिः** (तैत्ति० सं० ३.२.३.३)। प्रजापति देव को लोकों का अधीश्वर कहा गया है— **प्रजापतिर्वै भुवनस्य पतिः** (तैत्ति० सं० ३.४.८.६)। असुरों की सृष्टि करने वाले भी प्रजापति ही हैं— **सोऽसुरानसृजत** (तैत्ति० ब्रा० २.२.४.४)।

२६. **बृहस्पति (३६.२)** —स्तुति-अधिपति के रूप में बृहस्पति प्रख्यात हैं। इसी कारण इन्हें श्रेष्ठतम कवि उपाधि से विभूषित किया गया है — **कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्** (ऋ० २.२३.१)। मन्त्रोच्चारण एवं पुरोहित-निर्देशन करने के कारण इन्हें वाचस्पति भी कहा जाता है — **बृहस्पतये वाचस्पतये नैवारं चरुम्** (मैत्रा० सं० २.६.६)। बृहस्पति को वाणी और प्रज्ञा का देवता माना जाता है। ऋषि नेतृत्व करने के कारण इनको पुरोधा, ब्रह्मन् आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है—**ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिः** (तैत्ति० सं० २.२.९.१)। बृहस्पति की अनुकम्पा के बिना यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता—**यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन** (ऋ० १.१८.७)। आयु वृद्धि एवं रोग-शमन आदि अनुग्रहवान् होने के कारण इन्हें प्राणिवर्ग का पिता कहा गया है— **एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः** (ऋ० ४.५०.६)। द्युलोक-गो-मोचन, बल-हनन, अन्धकार- निराकरण आदि उनके प्रमुख शौर्य-कृत्य हैं। मरुत्, इन्द्र, वरुण, पूषा के साथ बृहस्पति का विशेष संबंध माना जाता है।

२७. **ब्रह्मणस्पति (३.२८; ३४.५६)** —ब्रह्म और ब्रह्मण दोनों पद मंत्र या स्तुति या देव-प्रशस्ति को व्याख्यायित करते हैं —**ब्रह्म वै मन्त्रः** (शत० ब्रा० ७.१.१.५); **ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः** (कौषी० ब्रा० ८.५)। स्तुति के अधिष्ठाता देवता को ब्रह्मणस्पति कहा गया है — **ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्** (ऋ० २.२३.१)। **वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्माद् ब्रह्मणस्पतिः** (शत० ब्रा० १४.४.१.२३)। बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति को एकीकृत भी किया गया है—**बृहस्पते ब्रह्मणस्पते** (तैत्ति० ब्रा० ३.११.४.२)। इनको अग्नि और मित्र के समान सौन्दर्यशाली माना जाता है—**अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्। अग्निं मित्रं न दर्शतम्** (ऋ० १.३८.१३)।

२८. **भग (३४.३५)** —'भग' की गणना द्वादश आदित्यों में की गई है। कहीं-कहीं भग को यज्ञ-स्वरूप कहा गया है —**यज्ञो भगः** (शत० ब्रा० ६.३.१.१९)। भग की कल्पना नेत्र-हीन के रूप में की गई है। ब्राह्मणों में इस तथ्य का विवरण उद्घाटित है — **तस्य (भगस्य) चक्षुः परापतत् तस्मादाहुरन्धो वै भग इति** (गो० ब्रा० २.१.२)। **तस्य (भगस्य) अक्षिणी निर्जघान तस्मादाहुरन्धो भग इति** (कौषी० ब्रा० ६.१३)।

२९. **मरुद्गण (३.४६;८.३१)** —मरुतों को गण-देवता के रूप में वैदिक देवशास्त्र अङ्गीकृत करता है—**गणशो हि मरुतः** (तां० म० ब्रा० १९.१४.२)। इनकी संख्या अधिकांशतः ७,१४,२१,२८ आदि ७ के गुणक रूप में पाई जाती है — **सप्त हि मरुतः** (मैत्रा० सं० १.१०.६)। **त्रिर्वै सप्त-सप्त मरुतः** (काठ० सं० ३७.४)। देवसेना में मरुद्गण सबसे आगे रहते हैं— **देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रे** (तैत्ति० सं० ४.६.४.३)। मरुद्गण पराक्रम-सम्पन्न देवता हैं। इन्होंने वृत्र का वध किया—**माध्यन्दिनेन वै सवनेनेन्द्रो वृत्रमहन् मरुद्भिर्वीर्येण** (काठ० सं० २८.३)। मरुतों की उत्पत्ति पृश्नि से हुई है— **पृश्न्या वै मरुतो जाता यान्यो वाऽस्या वा पृथिव्याः** (काठ० सं० १०.११)। मरुतों को विशेष रूप से वर्षण कार्य से सम्बद्ध माना जाता है —**मरुतो वै वर्षस्येशते** (मैत्रा० सं० ४.१.१४)। **मरुतो वर्षयन्तु** (तैत्ति० सं० ३.५.५.२)।

३०. **मित्र (९.३३; ११.५३)** —मित्र देवता को शान्ति के देवता के रूप में स्वीकारा गया है— **मित्रो वै यज्ञस्य शान्तिः** (काठ० सं० ३५.१९)। सभी जीवों को अपनी वाणी से प्रेरित करने वाले देवता मित्र को सविता देव से समीकृत किया गया है— **य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन। प्र च सुवाति सविता** (ऋ० ५.८२.९)। नवोत्पन्न अग्नि को वरुण और समिद्ध अग्नि को मित्र

कहा गया है— **त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः** (ऋ० ५.३.१)। विष्णु देव मित्र देवता के नियमों से ही परिक्रमण करते हैं— **यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः** (बालखिल्य ४.३)। रात्रि से सम्बद्ध देव को वरुण एवं प्रातः से सम्बद्ध प्रकाश-देव को मित्र कहा गया है– **स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्** (अथर्व० १३.३.१८)। मित्र द्युलोक एवं पृथिवी लोक के धारणकर्ता हैं— **मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्** (काठ० सं० २३.१२)।

३१. मित्रावरुण (७. ९ ; २१.८) —अनेकानेक देवताओं की स्तुति युग्म रूप में की गई है। इस युग्म में वरुण का प्राधान्य है। इन देवताओं को नित्य युवा कहा गया है— **मित्रः सम्राजो वरुणो युवानः** (ऋ० ३.५४.१०)। इनमें मित्र को पहले और वरुण को बाद में रखा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि मित्र का विशेष महत्त्व था। इस महिमाशाली देवता को सहायता के निमित्त आहूत किया गया है — **आ नो वने अक्षयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा** (ऋ० ७.६२.५)।

३२. राक्षस (रक्ष) (२.२३;६.१६) —राक्षस विघ्नकारी शक्तियों के प्रतीक हैं। भूमण्डल इन शक्तियों से आक्रान्त रहता है। ये सर्वत्रगामी हैं तथा विविध-रूप धारण करने में सक्षम हैं— **उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र** (ऋ० ७.१०४.२२)। रोग-राक्षस की भी कल्पना की गई है, जो पक्षियों के समान उड़ते हुए मानव-शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं— **पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम्** (अथर्व० ७.७६.४)। राक्षसों का विघ्न स्थल मुख्य रूप से यज्ञ स्थान हुआ करता है। यज्ञ-दूषण, हविष-मंथन करते हुए विविध कृत्यों में अवरोध उत्पन्न करते हैं। ये ब्रह्मद्वेषी होते हैं— **तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ** (ऋ० १०.१८२.३)। राक्षसों को दूर करने के लिए यज्ञभूमि में दक्षिण दिशा में दक्षिणाग्नि जलती रहती है।

३३. राक्षसघाती (रक्षोघ्न) (५.२२; ९.३८) —देव-विरोधी शक्तियाँ सत्कार्य में विघ्न डालती हैं। सत्-असत् का द्वन्द्व निरंतर चल रहा है। राक्षसगण यज्ञों को विनष्ट करते हैं, अतएव देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि यज्ञीय कृत्यों को निर्विघ्न पूर्ण करें— **रक्षाᳩसि यज्ञं न हिᳩस्युरिति** (शत० ब्रा० १.८.१.१६)। इन्हीं राक्षसों के निवारण के लिए रक्षोघ्न देवता की कल्पना की गयी है। अनेक प्रकार की याज्ञिक वनस्पतियों को राक्षसनाशिनी कहा गया है — **देवा हऽवा एतं वनस्पतिषु राक्षोघ्नं** .... (शत० ब्रा० ३.४.१.१६)। यज्ञ के द्वारा ब्राह्मण भी राक्षसों का नाश करने में सक्षम हैं—**ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता** (शत० ब्रा० १.१.४.६)। यज्ञीय जल भी अभिमंत्रित होकर असत् प्रवृत्ति वाले असुरों का विनाश करता है— **आपो वै रक्षोघ्नीः** (तैत्ति० ब्रा० ३.२.३.१२)।

३४. रुद्रगण (एक रुद्र, बहुरुद्रगण) (११.५४; १६.१; १६.१७) —वैदिक देवताओं में 'रुद्र' का विशिष्ट स्थान है। शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थानों पर 'रुद्र' और अग्नि को अत्यन्त निकट का माना गया है—**यो वै रुद्रः सो अग्निः** (तैत्ति० ब्रा० ५.२.४.१३)। **पशूनां पती रुद्रः अग्निरिति** (शत० ब्रा० १.७.३.८)। रुद्र को मरुत् पिता कहा गया है—**आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु ।....प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः** (ऋ० २.३३.१)। कण्डिकाओं में अनेक स्थलों पर रुद्राः शब्द प्रयुक्त हुआ है, जो प्रायः ग्यारह (रुद्रों) की संख्या का संकेत करता है— **एकादशरुद्रा एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्** (तैत्ति० सं० ३.४.९.७)। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र रुद्रों की तैंतीस संख्या का भी उल्लेख हुआ है— **त्रिंशत्त्रयश्च गणिनो रुजन्तो दिवं रुद्राः पृथिवीं च सचन्ते** (तैत्ति० सं० १.४.११.१)। इन्हें सर्वव्यापी कहा गया है। ये विविध वेशधारी तथा अनेक कार्यों को सम्पन्न करने वाले माने गये हैं, अतएव रुद्र एवं उनके गणों की स्तुति की जाती है— **नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो**.....(यजु० १६.२५)।

३५. लिंगोक्त (२.२२; १०.२) —लिंगोक्त पद द्वारा दो प्रकार की अवधारणा बनती है (१) प्रथमतः विभिन्न सूक्तों अथवा मंत्रों में प्रतीक-लक्षणों के आधार पर उनमें निहित देवता को मुख्य देवता माना गया है। इनमें सामूहिक देव भी सम्मिलित हैं। (२) अनेक सूक्तों अथवा मंत्रों में एक देवता को ही विविध रूपों में प्रदर्शित किया गया है। इन प्रतीकात्मक देवताओं का उल्लेख वेदों में अनेक स्थानों पर 'लिंगोक्त देवता' के रूप में हुआ है—यहाँ लिंग का अर्थ प्रतीक है— **येन लिंगेन यो देवः सूक्तः समुपलक्ष्यते। तेनैव नाम्ना तं देवं वाच्यमाहुः मनीषिणः** (श० क० पृ० २१७)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने अनेक स्थानों पर लिंगोक्त देवता को इस रूप में प्रतिपादित किया है— **वायुः पुनातु चत्वारि लिंगोक्तानि... अपार्च लिंगोक्त .... देवतां अनुष्टुभं.....** (सर्वा० ४.४)। **निर्वर्तयामि लिंगोक्तदेवतमासीः प्रायम्** (सर्वा० १.१५)।

३६. वरुण (४.३१; १०.७) —वरुण को सम्राट् के रूप में विवेचित किया गया है– **वरुणः सम्राट् सम्राट्पतिः** (तैत्ति० सं० २.५.७.३)। सूर्य के निमित्त मार्ग अन्वेषण इन्हीं के द्वारा किया जाता है –**उरुᳩ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ** (कपि० क० सं० ३.११)। वरुण को देवाधिराज कहा जाता है– **क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः** (तैत्ति० सं० ३.१.२.७)। वरुण अपने द्वारा सम्पादित कार्यों को पूर्णता देने के पक्षपाती हैं। इसीलिए इनको धृतव्रत भी कहा जाता है– **निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वासाम्राज्याय सुक्रतुः** (मैत्रा० सं० २.६.१२)। **वरुणस्त्वाधृतव्रतो धूपयतु** (मैत्रा० सं० ४.९.१)। जल को समावृत करने के

कारण इनको वरुण कहा गया है। कालान्तर में इनको जल देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है- **यच्च (आपः) वृत्वाऽतिष्ठंस्तद्वरणोऽभवत्तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इत्याचक्षते परोक्षेण** (गो० ब्रा० १.१.७)।

३७. वसुगण (९.३४) — वसुगण के देवताओं की संख्या के विषय में मतान्तर है। यह संख्या ८ से लेकर ३३३ तक मानी गयी है—**अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः** (तैत्ति० ब्रा० ३.१.२६); **त्रैन त्रीणि च शतान्यसृजन्त त्रयस्त्रिंशतं च** (तैत्ति० सं० ५.५.२६)। वसुओं का संबंध इन्द्र, पृथ्वी तथा अग्नि से विशेष है— **एते वै त्रया देवाः यद्वसवो रुद्रा आदित्याः** (शत० ब्रा० १.३.४.१२)। **त्रया वै देवाः । वसवो रुद्रा आदित्याः** (शत० ब्रा० ४.३.५.१)। वसुगणों को घृतप्रिय माना जाता है—**घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वेदेवा आदित्या यज्ञियासः** (ऋ० २.३.४)।

३८. वाक् (३८.५; १.१६) —वाक् की गणना अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में की गयी है— **तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते** (नि० ११.२७)। ऋग्वेद के वाक् सूक्त की ऋषिका वागाम्भृणी हैं। अम्भृण ऋषि की पुत्रिका के रूप में इनकी ख्याति है। 'वाक्' सूक्त में आत्म-कथन किया गया है। वाणी का सम्बन्ध बृहस्पति से माना गया है— **बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः** (ऋ० १०.७१.१)। वाक् को राष्ट्री और दिव्या कहा गया है—**यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा** (ऋ० ८.१००.१०)। **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्** (ऋ० १०.१२५.३)।

३९. वायु (७.७; १४.१२) — वायु अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं— **वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः** (नि० ७.५)। **अयं वायुरन्तरिक्षस्य पृष्ठम्** (जैमि० ब्रा० ३.२५२)। वायु प्रवाह तिर्यग्गति युक्त होता है— **अयं वायुरस्मिन्नन्तरिक्षे तिर्यङ् पवते** (जैमि० ब्रा० ३.३१०)। वायु ही सभी प्राणियों की पूर्णता है— **एष हि सर्वेषां भूतानामाशिष्ठः** (शत० ब्रा० ८.४.१.९)। प्रजापति के प्राण से वायु तत्व की सृष्टि हुई है— **प्राणाद्वायुरजायत** (ऋ० १०.९०.१३)। दीर्घायुष्य प्रदान करना इनकी विशेषता है। अमृतत्व की अक्षय-शक्ति वायु में विद्यमान है — **यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ततो नो देहि जीवसे** (ऋ० १०.१८६.३)। वायु को देवताओं में ओजिष्ठ कहा गया है— **वायुर्वै देवानामोजिष्ठः क्षेपिष्ठः** (मैत्रा० सं० २.५.१)। वायुदेव देवों में शीघ्रगामी हैं— **वायुर्वै देवानामाशुः सारसारितमः** (तैत्ति० सं० ३.८.७.१)। वायु समस्त देवताओं की आत्मा हैं— **सर्वेषामु हैष देवानामात्मा यद्वायुः** (शत० ब्रा० ९.१.२.३८)।

४०. वास्तु (३.४१) — वास्तुदेव का आशय गृह-देवता से है— **ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः** (ऋ० १.१५४.६)। यह पशुओं और प्रजाओं का कल्याणकारी देवता है— **पेसुकं वै वास्तु पिस्यति ह प्रजया पशुभिर्यस्यैवं विदुषोऽनुष्टु भी भवतः** (शत० ब्रा० १७.३.१८)। वास्तुदेव को अभिवर्द्धनशील भी कहा गया है— **एष वास्तु पेसुकम् अभिवर्द्धनशीलं अतएव तद्वानन्यान् च** (शत० ब्रा० १७.३.१८ हरि० भा०)। मैत्रायणी संहिता में वास्तु के अधिष्ठाता रुद्रदेव को माना गया है — **वास्तोर्वै वास्तवं जातं, वास्तवमयं खलु वै रुद्रस्य** (मैत्रा० सं० २.२.४)।

४१. विश्वकर्मा (८.४५; १७.१७) — जगत् स्रष्टा को विश्वकर्मा के रूप में जाना जाता है—**अथो विश्वकर्मणे विश्वं वै तेषां कर्मकृतं सर्वं जितं भवति** (शत० ब्रा० ४.६.४.५)। **विश्वा मे कर्म कृतानीति विश्वकर्मा ह्यभवत्** (काठ० सं० ३६.१०)। ये सम्पूर्ण लोकों के ज्ञाता हैं। नाम-धारण एवं सृष्टि-प्रलय के उपरान्त संसार उन्हीं में विलीन हो जाता है—**यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या** (ऋ० १०.८२.३)। सभी देवों में विश्वकर्मा महान् देवता माने जाते हैं— **विश्वकर्मा विश्वेदेवा महाँअसि** (ऋ० ८.९८.२)। परवर्ती साहित्य में प्रजापति और विश्वकर्मा का तादात्म्य स्थापित किया गया है— **प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा** (शत० ब्रा० ८.२.१.१०)। सम्पूर्ण संसार का इन्हें धाता एवं विधाता कहा जाता है— **विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्** (ऋ० १०.८२.२)।

४२. विश्वेदेवा (२.१८; ७.१२) —देवताओं का समष्टिगत विवरण प्राप्त होता है, इन्हें विश्वेदेवाः कहा जाता है। ये सम्पूर्ण देवों के प्रतिनिधि के रूप में यज्ञ-स्थल पर आहूत किये जाते हैं। यज्ञ में इनका सायुज्य अवश्यमेव प्राप्त किया जाता है— **विश्वेषामहं देवानां देवयज्यया प्राणानाꣳ सायुज्यं गमेयम्** (काठ० सं० ५.१)। इनकी संख्या तीन से लेकर ३३ करोड़ तक मानी गयी है। इस गण में सभी देवों का समाहार हो जाता है, कोई भी देवता अवशिष्ट नहीं रहता— **एते वै सर्वे देवा यद्विश्वेदेवाः** (कौषी० ब्रा० ४.१४)। एक होते हुए भी ये अनेक रूपों में विचरण करते हैं—**एकं सन्तं बहुधा विहरन्ति तदस्य वैश्वदेवं रूपम्** (ऐत० ब्रा० ३.४)। देव-मण्डल में सर्वाधिक प्रख्यातगण यही हैं— **विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः** (शत० ब्रा० १३.१.२.८)। इनकी परिकल्पना इसलिए की गई है कि यज्ञ में कोई भी देवता भागीदारी से वञ्चित न रह जाएँ, अतएव इन्हें अनन्त भी माना गया है — **अनन्ता विश्वेदेवाः** (शत० ब्रा० १४.६.१.११)।

४३. विष्णु (५.१५; ६.४) — वैदिक देवताओं में 'विष्णु' का स्थान श्रेष्ठ है। इनकी गणना द्युस्थानीय देवताओं के अन्तर्गत की जाती है। विष्णुदेव को 'उरुगाय' और 'उरुक्रम' विशेषण से विभूषित किया गया है— **उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे**

परमे मध्व उत्सः (ऋ० १.१५४.५)। विष्णुदेव के पद मधुपूर्ण हैं— यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि (ऋ० १.१५४.४)। विष्णुदेव के तीनों पाद सम्पूर्ण प्राणियों के आश्रयदाता हैं। विष्णुदेव के तीनों प्रकाशित पाद नीचे की ओर लटकते रहते हैं। विष्णुदेव के गमन मार्ग पर विचरण करने के लिए सभी प्राणी उत्सुक रहते हैं— तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम्... (ऋ० १.१५४.५)। यज्ञ वेदिका की परिकल्पना विष्णुदेव ने ही की है— यन्वेवास्य विष्णुरन्वविन्दत्तस्माद्वेदिर्नाम (शत० ब्रा० १.२.५.१०)। विष्णु को यज्ञ का प्रतीक माना जाता है—यज्ञो वै विष्णुः (मैत्रा० सं० ४.१.१२)।

४४. वेन (७.१६, ३३.२१) — वेन को विशेषतया प्राण से संबद्ध माना गया है— अयं वै वेनोऽस्माद्धा ऊर्ध्वा अन्ये प्राणा वेनन्त्यवाङोऽन्ये तस्माद्वेनः (ऐत० ब्रा० १.२०)। आदित्य, इन्द्र और आत्मा को वेन के साथ समीकृत किया गया है— असौ आदित्यो वेनो यद्वै प्रजिज्ञानिषमाणोऽवेनत्तस्माद्वेनः (शत० ब्रा० ७.४.१.१४)। इन्द्र उ वै वेनः (कौषी० ब्रा० ८.५); आत्मा वै वेनः (कौषी० ब्रा० ८.५)।

४५. वैश्वानर (७.२४; १८.७२) — विश्व के सभी मनुष्यों से सम्बन्धित अग्नि को वैश्वानर कहा गया है। यह सर्वव्यापक है, जिससे सम्पूर्ण प्राणी प्राणवान् रहते हैं— असौ वै वैश्वानरो योऽसौ तपति (कौषी० ब्रा० ४.३)। इसी अग्नि से अन्नादि के पाचन की प्रक्रिया होती है तथा पुरुष के शरीर में इसी अग्नि का संचार होता रहता है — अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते (शत० ब्रा० १४.८.१०.१)।

४६. सदसस्पति (३२.१३) —यज्ञ-गृह को सदस् या सदः कहा जाता है। यज्ञाधार होने के कारण इसे उदर भी माना जाता है— उदरं वा एतद् यज्ञस्य यत् सदः (काठ० सं० २८.१)। यदस्मिन् विश्वेदेवा असीदंस्तस्मात्सदो नाम... (शत० ब्रा० ३.५.३.५)। प्रजापति की कुक्षि ही सदस् है— प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः (तां० म० ब्रा० ६.४.११)। यज्ञगृह के देवता को सदसस्पति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है— सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषं स्वाहा (यजु० ३२.१३)। आचार्य सायण ने सदसस्पति के साथ देवता रूप में विकल्पतः नराशंस को उल्लिखित किया है — इत्येतस्या नवम्याः सदसस्पतिर्नराशंसो वा विकल्प्यते (ऋ० १.१८ सा० भा०)।

४७. सरस्वती (२०.८४; ३४.११) —सरस्वती को वाणी की देवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है— वाग्वै सरस्वती पावीरवी (ऐत० ब्रा० ३.३७)। ये वाणी की उत्प्रेरिका देवी के रूप में उल्लिखित हैं— अथ यत्स्फूर्जयन् वाचमिव वदन्दहति तदस्य सारस्वतं रूपम् (ऐत० ब्रा० ३.४)। सरस्वती से सम्पूर्ण वेदों की उत्पत्ति हुई है— सरस्वत्याः सर्वे वेदाः अभवन् (गो० पू० ब्रा० ४.५.९)। ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ (तैत्ति० ब्रा० १.४.४.९)। सरस्वती का अधिष्ठान जिह्वा को माना गया है—जिह्वा सरस्वती (शत० ब्रा० १२.९.१.१४)। बौद्धिक पुष्टि-प्रदात्री होने के कारण इसे पुष्टि पत्नी और उसके पति के रूप में प्रस्तुत किया गया है— सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी (तैत्ति० ब्रा० २.५.७.४)। सरस्वती पुष्टिं पुष्टिपतिः (शत० ब्रा० ११.४.३.१६)।

४८. सविता (३.३५; ४.८) —अंधकार निवृत्ति के अनन्तर सविता का काल प्रारम्भ होता है। सायण का अभिमत है कि उदय-पूर्व सूर्य को सविता कहा जाता है— उदयात् पूर्वभावी सविता उदयास्तमयवर्ती सूर्य इति (ऋ० ५.८१.४ सा० भा०); जो द्युलोक एवं पृथिवी लोक के मध्य विचरण करते हैं — हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते (ऋ० १.३५.९)। सविता को देवताओं का जनक कहा गया है— सविता वै देवानां प्रसविता (शत० ब्रा० १.१.२.१७)। ये उद्भूत सभी प्राणियों के अधिपति हैं— सविता वै प्रसवानामीशे (ऐत० ब्रा० १.३०)। सविता का अनेक देवों के साथ तादात्म्य दिखाया गया है —प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत (तैत्ति० ब्रा० १.६.४.१)। सत्यम् एव सविता (जैमि० उप० ब्रा० ४.२७.३)। सविता राष्ट्राध्यक्ष के रूप में प्रख्यापित हैं, क्योंकि भुवन को आश्रय देने वाले सविता देवता ही हैं— सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः (शत० ब्रा० ११.४.३.१४)। ये सभी के प्राण तत्त्व हैं— प्राणो ह वाऽअस्य सविता (शत० ब्रा० ४.४.१.५)। गायत्री या सावित्री मंत्र इन्हीं को सम्बोधित करके पढ़ा जाता है—भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् (यजु० ३६.३)।

४९. सिनीवाली (११.५५; ३४.१०) —सिनीवाली धन और सम्पत्ति की देवी हैं, उनसे मंगल की कामना की जाती है — या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती। इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये (ऋ० २.३२.८)। इनके शारीरिक सौन्दर्य का अनुपम वर्णन प्राप्त होता है। इन्हें देवताओं की पुत्री कहा गया है — सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा (ऋ० २.३२.६)। सिनीवाली प्रकाश की देवी हैं—दृष्टचन्द्रा अमावास्या सिनीवाली (ऋ० २.३२.६ सा० भा०)।

५०. सूर्य (२.२६; ४.३५) —देवताओं में सूर्य को स्थूलाकार एवं श्रेष्ठ माना गया है। सूर्य को अग्नि और मित्रावरुण से विशेषतया सम्बद्ध माना गया है— चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः (ऋ० १.११५.१)। सूर्य को सर्वेक्षक के रूप में विवेचित किया गया है। समस्त प्राणियों के कर्म-द्रष्टा सूर्य ही हैं — सूराय विश्वचक्षसे (ऋ० १.५०.२)। इनके जनक के रूप में इन्द्र, विष्णु, वरुण तथा सोम आदि का नाम आता है — यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः (ऋ० २.१२.७)। प्रकाशक के रूप में सूर्य का विशेष

स्थान है। विश्व के कल्याणार्थ अन्धकार का विनाश करना इनका मुख्य कार्य है— **येन सूर्यज्योतिषा बाधसेतमः** (ऋ० १०.३७.४)। सूर्य सभी देवताओं की आत्मा है — **सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा** (शत० ब्रा० १४.३.२.९); **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** (यजु० ७.४२)। सूर्य से सामवेद की उत्पत्ति हुई है— **सूर्यात् सामवेदः (अजायत)** (शत० ब्रा० ११.५.८.३)।

अन्य देव समुदाय

वेद का अभिमत है कि मंत्रद्रष्टा को ऋषि तथा मंत्रोक्त को देवता कहा जाता है— **यस्य वाक्यं स ऋषिर्या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०)। इसी आधार पर यजुर्वेद में उन सभी को देवता की संज्ञा प्रदान की गई है, जो प्रचलित इन्द्र, अग्नि, सूर्य से भिन्न अचेतन, अमूर्त, स्थानविशेष, द्रव्यविशेष, गुण-विशेष आदि के रूप में प्रायः जाने जाते हैं। इन सभी को गुण-धर्म के आधार पर पृथक्-पृथक् वर्गों में प्रविभक्त कर विवेचित किया गया है।

क. मानव वर्ग — देव-मानव का तादात्म्य सर्वविद् है — **उभये ह वा ऽ इदमग्ने सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च** (शत० ब्रा० २.३.४.४)। कतिपय तत्त्व देवताओं के लिए प्रत्यक्ष हैं तथा मानव के निमित्त कुछ तत्त्व परोक्ष हैं। प्रत्यक्षत्व एवं परोक्षत्व ही देव-मानव अन्तर को अभिव्यक्त करता है— **यद्वै मनुष्याणां प्रत्यक्षं तद्देवानां परोक्षमथ यन्मनुष्याणां परोक्षं तद्देवानां प्रत्यक्षम्** (ता० म० ब्रा० २२.१०.३)। देवगण दीर्घायुष्य प्राप्त हैं तथा मानव-आयु तुलनात्मक दृष्टि से स्वल्प है, परन्तु स्वल्पायु होने पर भी देव-कार्य-सम्बद्ध होने के कारण मानव भी देवत्व प्राप्त कर लेता है— **द्राघीयो हि देवायुषं ह्रसीयो मनुष्यायुषम्** (शत० ब्रा०७.३.१.१०)। ब्राह्मण-यजमान आदि को भी देवत्व प्रदान किया गया है— **ब्राह्मणो वै सर्वा देवताः** (तैत्ति० सं० १.४.४.२); **बहूनां यजमानानां यो वै देवताः** _(तैत्ति० सं० १.६.६.१)। यजुर्वेद में मनुष्यों को भी देव-श्रेणी में परिगणित किया गया है, जो इस प्रकार हैं— अध्वर्यु, उद्गाता, ऋत्विक्, कुमारी, क्षत्ता, क्षत्रिय, त्रित-द्वित-एकत, पत्नी, परिवृक्ता, पालागली, ब्रह्मा, ब्राह्मणादि, महिषी, यजमान, योद्धागण, रथ-रक्षक, वावाता, सारथी, होता इत्यादि।

ख. पशु या प्राणी वर्ग— वैदिक साहित्य पशु-माहात्म्य से परिपूर्ण है। मानव उपयोगी तत्त्वों से स्व-तादात्म्य संस्थापन कर लेता है। मानवीय आकारधारी देवताओं ने भी सहायक होने के कारण पशुओं से सम्बन्ध जोड़कर उन्हें दिव्य शक्ति सम्पन्न बना दिया। अनेकानेक अवसरों पर देवोपयोगी होकर पशु-जगत् ने जनमानस को प्रभावित किया है। देव- अवधारणा में पशु-जगत् के सद्गुणों को ही निरूपित किया गया है, असद् वृत्तियों को नहीं। असद् वृत्ति-प्रतीक के रूप में अर्द्ध-पशु का विवेचन किया गया है, जो अर्द्धदेव या दानव का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्यतया यज्ञीय सहायक पशुओं को ही देवता के रूप में स्थान प्राप्त हुआ है। इन्हीं से यज्ञ की प्रतिष्ठा होती है— **पशून् यज्ञः (अनु प्रतितिष्ठति)** (तैत्ति० सं० ५.१.३.१)। **यज्ञो वै पशूनामायतनम्**— (मैत्रा० सं० ४.२.४)। यज्ञीय पशु स्वर्ग ले जाने वाले होते हैं— **स्वर्ग्यो वै सर्वः पशुः** (मैत्रा० सं० ३.१०.४)। यजुर्वेद में अधोलिखित पशुओं को देवत्व प्रदान किया गया है– अजा, अनड्वुत्, अश्व, गर्दभ, रासभ, वत्स, सर्प इत्यादि।

ग. पात्र अथवा उपकरण वर्ग —वैदिक अवधारणा अचेतन पदार्थों की मूर्तवत् उपासना की पक्षपाती रही है। अचेतन पदार्थों के अन्तर्गत विविध यज्ञीय उपकरण भी परिगणित हुए हैं। चैतन्य एवं अचेतन पदार्थों को विग्रहवत्ता प्रदान करने के कारण ही याज्ञिक सर्वदेववाद को मान्यता प्राप्त हुई। यज्ञोपयोगी समस्त पदार्थ दिव्य-गुण-सम्पन्न हैं एवं दैवशक्ति सञ्चालित हैं। मंत्र-पूत होने के अनन्तर अचेतन भी चैतन्य एवं अलौकिक हो जाता है। यज्ञीय पात्र यज्ञोपयोगी होने के कारण इसी विशेषता से समन्वित हैं। इनको देवक्षेत्र कहा जाता है— **पात्राणि वा व देवक्षेत्रम्** (मैत्रा० सं० ४.५.६)। यज्ञीय पात्र आयुर्दा होते हैं — **आयुषो दुर्वं प्रतिष्ठाया ऋतुपात्रे**। (तैत्ति० सं० १.५.४.२)।

यज्ञ- प्रधान यजुर्वेद में 'यज्ञीय-पात्रों' एवं उपकरणों* को भी देव-श्रेणी में परिगणित किया गया है, जो इस प्रकार हैं— अक्षधुरी, अदाभ्य, अभ्रि, अवट, असि, आर्ली (रज्जु), आसन्दी, इध्म, इषु (बाण), उखा, उपभृत्, उपल, उपवेश, उपांशु (ग्रह), उलूखल, कशा, कार्मुक, कृष्णविषाण दण्ड, कृष्णाजिन, ग्रह, घर्मासन्दी, चर्म, जुहू, तूण, दर्वि, दृषत्, धनुष, ध्रुव, निमाभ्या, पयोग्रह, परीशास, पात्र, बर्हि, मन्थी, मन्थिग्रह, महावीर, मुसल, मेखला, यूप, योक्त्र (जुआ बाँधने की रस्सी), रज्जु, रथ, रास्ना, रुक्म, शकल, शतमान, शम्या, शास, शुक्र, शुक्रामन्थी, सुराग्रह, सोमग्रह, सोमांशु, स्रुव, स्रुक्, स्रुची, स्फ्य, स्वयमातृण्णा (अग्नि रखने का पात्र), स्वरु, हविर्धान, हिरण्यशकल इत्यादि।

घ. स्थान वर्ग — मानव की आराध्य शक्ति देवी, देव या देवता के रूप में सर्व स्वीकृत है। प्राकृतिक दृश्य, शक्ति, स्थान, भौगोलिक-परिवेश तथा कृत्रिम पदार्थों को भी देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। अन्तरिक्ष, द्युस्थानीय, पृथिवी तथा पृथिवी-तल के विविध प्राकृतिक एवं यज्ञोपयोगी कृत्रिम पदार्थ देवता ही हैं। लोक, वेदिका एवं भूभाग तथा उस पर आश्रित यज्ञीय-निर्मिति भी दिव्य-तत्त्व से समन्वित निरूपित किये गये हैं— **द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम्** (शत० ब्रा० १४.३.२.८) **देवक्षेत्रं वा एतद् यत् छन्दांसि** (ऐत० ब्रा० ५.९); **वेदिर्वै देवलोकः** (शत० ब्रा० ८.६.३.६)। यथोचित स्थान में श्रौत देवयजन सम्पन्न किया जा सकता

है, जो दिव्य-गुण-युक्त ही होता है। यजुर्वेद में अधोलिखित स्थानों को देवत्व प्रदान किया गया है— अयं लोक, असौ लोक, उत्तरवेदिका, उपरव, खर, दक्षिणोत्तर वेदिका, पन्था, बहिष्पवमान देश, भाग, भूमि, वेदि, सद, समुद्रादि, सिन्धु इत्यादि।

ङ. **हव्य वर्ग** — देवताओं को समर्पित यज्ञीय पदार्थ को हव्य कहा जाता है। यज्ञ को देवताओं की आत्मा कहा गया है — **यज्ञ उ देवानामात्मा** (शत० ब्रा० ८.६.१.१०)। याज्ञिक कृत्यों में दिव्य-शक्ति युक्त अन्न हवि रूप में देवताओं के प्रीणनार्थ आहुत किया जाता है। देव-कार्य प्रयुक्त होने के कारण अन्नादि पदार्थ भी देवत्व प्राप्त कर लेते हैं —**यज्ञ उ देवानामन्नम्** (शत० ब्रा० ८.१.२.१०); **एतद्वै देवानां परममन्नं यन्नीवाराः** (तैत्ति० ब्रा० १.३.६.८)। यज्ञ-प्रयुक्त अन्न को देवत्व प्रदान किया गया है- **आहुतिभिरेव देवान् हुतादः प्रीणाति** (मैत्रा० उ० १.४.६)। यजुर्वेद में अधोलिखित हव्यान्न को देवता का स्थान दिया गया है- अन्न, आज्य (अतप्त घृत), ओषधि, तण्डुल (चावल), धाना (भुना हुआ जौ), नवनीत, पय, पुरीष, पुरोडाश, यव, वल्मीकवपा, वसा, सन्नाह (सान्नाय्य-दूध + दही), हवि इत्यादि।

च. **वस्तु या द्रव्य वर्ग**— वैदिक निधि अनेक रहस्यों को समाहित किये हुए है— **एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सरहस्याः सब्राह्मणाः** (गो० ब्रा० २.१)। इन रहस्यों को भली-भाँति आत्मसात् करके लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित ऋषियों ने श्रौत-कर्मानुष्ठान को प्रमुखता दी है। इनमें इष्ट लाभ और अनिष्ट-निरसन के उपाय निरूपित हैं। यज्ञ-विधान अनेकानेक साधनों की अपेक्षा रखते हैं- **अश्वमेधादयो यज्ञा बहुसंभारविस्तराः** (भ० पु० १५.१.११)। याज्ञिक कृत्यों में प्रयुक्त प्रत्येक वस्तु या द्रव्य यज्ञ-मय होती हुई दिव्यता प्राप्त कर लेती है। यजुर्वेद में अनेक वस्तु अथवा द्रव्य को देवता रूप में निर्देशित किया गया है, जो इस प्रकार हैं— अञ्जन, इष्टका (ईंट), उपांशु-सवन (बट्टा), उष्णीष (पगड़ी), औदुम्बर, कुशतरुण, कूर्म, क्षुर, गुलगुल्व आदि संभार, ग्रावा (बट्टा), चात्वाल, तार्प्य (घृताक्त वस्त्र), दर्भतरुण, दूर्वेष्टका (दूर्वा + इष्टका), द्वार, धात्र आदि। धू (धुरा), नीवि (वस्त्र या नाड़ा), पवमान, परिधि, परिश्रित, पाप्द्व (वस्त्र), पुष्करपर्ण, प्रस्तर, प्राजहित, बर्हि, ब्रह्मासन, मूत्र, मृत्पिण्ड, मेखला, लोकंपृणा, लोष्ट, वपाश्रपणी, वराहविहत (महावीर पात्र के निर्माण की मिट्टी), वास, विधृती, शामित्र, समित्, सिकता (बालू), सोम सम्पत्, स्वर्ग्या-नौ (स्वर्ग नौका), स्वर्ण-निष्क, हिरण्य इत्यादि।

छ. **अमूर्त या भावात्मक देव वर्ग** — वैदिक ऋषियों ने यज्ञ के माध्यम से अनेक देवों के प्रति भक्ति-युक्त अभिव्यक्ति की है। वैविध्य होने पर भी ऐक्य-भाव सर्वत्र द्रष्टव्य है। कालान्तर में ऋषि-दृष्टि अमूर्त और भावात्मक देवताओं की ओर जाती हुई प्रतीत होती है। कतिपय देवता मनोभावों के मानवीकरण रूप हैं। देव-सम्बद्ध भावनाएँ अमूर्त रूप में साकार होती हैं। ये देवता प्रत्यक्षतः भावों के प्रतिरूप हैं। ये भाव देवता-विशेष या देवता-सामान्य के विशेषण हैं। कालान्तर में इन भावों ने स्वतंत्र देवत्व प्राप्त कर लिया। यजुर्वेद में जिन्हें अमूर्त या भावात्मक देवता के रूप में निरूपित किया गया है, वे इस प्रकार हैं— अनुमति, अश्वस्तुति, अहोरात्र, आग्रयण, आभिचारिक, ऋक्-साम, ऋषि-सृष्टि, काम, गर्भ, गुण, घर्म (याग-कर्म), चक्षु, छन्द-समूह, दधिघर्म, देवयान-पितृयान, द्वेष, धी, निर्ऋति (पापादि), पुरुषजगद्बीज, पत्नी-आशीर्वाद, प्रति प्रश्न, प्रश्न, प्राणोदान देवता, प्रायश्चित्त, प्रैष, बाहु, भाववृत्त, भूति (वैभव), मन, मान्त्रवर्णिक्य, मृत्यु, मृत्युनाशन, यजमान आशीर्वाद, यजमानानामात्म स्तुति, यज्ञ, विद्युत्-गर्जन, विप्रुष (होम), विश्वज्योति, विषूचिका, शरीर-अवयव, श्रोत्र, षोडशी (याग-कर्म), सीर, सीता, सुख, सुन्वन, स्वाहाकृति, हस्तघ्न, हृदय, हृदय-शूल इत्यादि।

ङ.	न्यङ्कुसारिणी बृहती	८+१२+८+८	३६	११.३८
च.	पथ्या बृहती	८+८+१२+८	३६	३.३४ ; ३४.३२
	विराट् पथ्या बृहती		३४	११.४५
छ.	पिपीलिका मध्या बृहती	१३+८+१३	३४	१७.६७
ज.	ब्राह्मी बृहती	९+१८+२७	५४	२.११ ; ७.१०
	निचृत् ब्राह्मी बृहती		५३	२.५ ; ८.५७
	भुरिक् ब्राह्मी बृहती		५५	२.२१
	विराट् ब्राह्मी बृहती		५२	४.३६ ; ८.१०
	स्वराट् ब्राह्मी बृहती		५६	५.१ ; ७.२६
झ.	याजुषी बृहती +(स्वराट् ब्राह्मी अनुष्टुप् + स्वराट् ब्राह्मी उष्णिक्)	९	९	५.२३
ञ.	सतोबृहती	१२+१२+१२	३६	
	स्वराट् सतोबृहती		३८	३३.९७
ट.	साम्नी बृहती +(साम्नी उष्णिक्)	९+९	१८	४.२८
	भुरिक् साम्नी बृहती		१९	३८.३
१९.	विकृति	८x१०+१२	९२	९.३६
	निचृत् विकृति		९१	१४.२८; १७.२
	भुरिक् विकृति		९३	१४.२४; २१.६१
	स्वराट् विकृति		९४	२५.५
२०.	शक्वरी	८+८+८+८+ +८+८+८	५६	१६.२४
	निचृत् शक्वरी		५५	१६.२७; १७.८६
	भुरिक् शक्वरी		५७	१६.२५; १८.११
	स्वराट् शक्वरी		५८	१८.१७; २४.३४
२१.	संकृति +(विराट् संकृति)		९६	१८.२४
	निचृत् संकृति		९५	२४.२
	भुरिक् संकृति		९७	२४.१
	विराट् संकृति		९४	३०.१२
	स्वराट् संकृति		९८	११.६०; १४.२५

परिशिष्ट-४

यज्ञीय व्यक्ति, पदार्थ, पात्र-परिचय

१. **अग्निहोत्रहवणी** — अग्निहोत्रहवणी एक प्रकार की सुची का ही नाम है। यह बाहुमात्रलम्बी, आगे हंसमुखी और चार अंगुल गर्त वाली होती है। इसमें स्रुवा से आज्य लेकर अग्निहोत्र किया जाता है, जिससे यह अग्निहोत्र-हवणी कही जाती है—**दक्षिणेनाऽग्निहोत्रहवणीं सव्येन शूर्पं वेषाय त्वा इति** (बौ० श्रौ० १.४)। दस यज्ञायुधों में इसका उल्लेख अनेक स्थानों में हुआ है— **स्फ्यश्च कपालानि चाऽग्निहोत्रहवणीं च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शम्या चोलूखलं च मुसलं च दृषच्चोपला चैतानि वै दश यज्ञायुधानि....** (तै० सं० १.६.८)।

२. **अतिग्राह्यपात्र** — सोमाभिषव काल में दक्षिण शकट के पास तीन पात्र क्रम से रखे जाते हैं। ये पात्र हैं— आग्नेय पात्र, ऐन्द्रपात्र, सौर्यपात्र। इस पात्र-समूह को ही अतिग्राह्य भी कहा जाता है। कात्यायन श्रौतसूत्र में प्रातःकालीन यज्ञ में अतिग्राह्य को ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है— **प्रातः सवनेऽतिग्राह्यान्गृहीत्वा** (का० श्रौ० १४.१.२६)। **ध्रुवसदमिति प्रतिमन्त्रमतिग्राह्यानग्निष्टोमे** (का० श्रौ० १४.२.१); **वीर्याय इत्यतिग्राह्यं वा षोडशिनं वावेक्षते** (बौ० श्रौ० १४.८)।

३. **अदाभ्य पात्र** —यह सोमरस रखने का गूलर की लकड़ी का बना एक पात्र है, जो अग्निष्टोम आदि याग में प्रयुक्त होता है। सोम के साथ 'अदाभ्य' नाम उल्लिखित होता है— **यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा** (मैत्रा० सं० १.३.४)। **अथातोऽ— शदाभ्ययोरेव ग्रहणम्। अथांश्वदाभ्यौ ग्रहीष्यन्नुपकल्पयते द्वे औदुम्बरे नवे पात्रे .... श्लक्ष्णमदाभ्यपात्रम्** (बौ० श्रौ० १४.१२)।

४. **अध्वर्यु**— याग में सोलह ऋत्विजों के वरण की बात कही गयी है, जिसमें से चार प्रमुख हैं— ब्रह्मा, उद्‌गाता, होता और अध्वर्यु। **षोडशर्त्विजो ब्रह्मोद्गातृहोत्रध्वर्यु...** (का० श्रौ० ७.१.७)। इनमें प्रत्येक के अन्य तीन-तीन सहयोगी ऋत्विज् भी होते हैं— **चत्वारस्त्रिपुरुषाः। तस्य तस्योत्तरे त्रयः** (आश्व० श्रौ० ४.१.४-५)। इनका नामोल्लेख महर्षि कात्यायन ने इस प्रकार किया है— **ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतृमैत्रावरुणप्रतिप्रस्थातृपोतृप्रतिहर्त्रच्छावाकनेष्ट्रग्नीत्सुब्रह्मण्यग्रावस्तुदुन्नेतॄन्वृणीते** (का० श्रौ० ७.१.७)। अध्वर्यु श्रौतयाग के प्रमुख ऋत्विज् हैं, जो प्रार्थना आदि के साथ यजुर्वेद के अनुसार यज्ञ का व्यावहारिक कार्य करते हैं— **तमेतमग्निरित्यध्वर्यव उपासते। यजुरिति** (शत० ब्रा० १०.५.२.२०)। **अध्वर्युः पुरो वाचं विसृजति मैत्रावरुणः पश्चात्** (मैत्रा० सं० ३.६.८)। याग का आरम्भ और समापन इन्हीं के द्वारा होता है। अध्वर्यु द्वारा प्रैष करने पर होता मंत्रोच्चारण करते हैं — **अध्वर्युर्वाऽनूक्तमयत्वयं** (का० श्रौ० ३.५.११)। अध्वर्यु के तीन अन्य सहयोगी ऋत्विज्— प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता होते हैं— **अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाता नेष्टोन्नेता..** (आश्व० श्रौ० ४.१.६)। इन्हें यज्ञ की प्रतिष्ठा कहकर सम्मानित किया गया है— **प्रतिष्ठा वा एषा यज्ञस्य यदध्वर्युः** (तैत्ति० ब्रा० ३.३.८.१०)।

५. **अन्तर्धानकट** — यह एक अर्धचन्द्राकार यज्ञ पात्र है, जो गार्हपत्य अग्नि पर पत्नी-संयाज (कर्मकाण्ड-विशेष) करने के समय अध्वर्यु द्वारा अपने और यजमान-पत्नी के बीच रखा जाता है, उसी समय देवपत्नियों का आवाहन होता है। यह बारह अंगुल लम्बा, छः अंगुल चौड़ा पात्र होता है, जैसा कि कहा गया है— **अन्तर्धानकटस्त्वर्धचन्द्राकारो द्वादशाङ्गुलः**।

६. **अभ्रि** —यह एक नोकदार (तीक्ष्णमुख) वाले डण्डे के आकार का तथा एक हाथ लम्बा उपकरण है, जो वेदिका- खनन के काम आता है। अभ्रि की तुलना वज्र से भी की गयी है— **वज्रो वाऽअभ्रिः** (शत० ब्रा० ६.३.१.३९)। **अभ्रिं व्याममात्रीं वारत्निमात्रीं वोभयतः क्ष्णुं मृदं च.... अन्तर्वेद्यभ्रिं निदधाति। अभ्रया प्रहरति ऋष्यास्मद्य मखस्य शिरः इति** (बौ० श्रौ० ९-१.२)।

७. **अरणि-मंथन**—अग्निहोत्री, जिससे श्रौताग्नि को प्रकट करता है, उसे अरणि कहते हैं। इसके चार अंग होते हैं— अधरारणि, उत्तरारणि, ओविली और नेत्र। अधरारणि पर मन्थी रखकर अग्नि-मंथन किया जाता है। मन्थी में उत्तरारणि (लम्बा काष्ठ) का टुकड़ा काटकर काम में लेते हैं। इस मन्थी को दबाने के लिए ओविली (१२ अंगुल लम्बा काष्ठ) प्रयुक्त करते हैं। मंथन में उपयोग में आने वाली डोरी को नेत्र कहते हैं। **[illegible] रशने अरणी अभिमन्थनः शकलोवृषणौ...** (शत० ब्रा० ३.६.३.१०)। यह सब मिलकर अरणि-मन्थन का उपकरण पूरा होता है।

८. **अवट** —अवट, कूप और गर्त के अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। उखा निर्माण के संबंध में इसका विवेचन होता है— हे अवट कूप ! **उखां अवटधातु** (यजु० ११.६१ उवट भा०)। **हे अवट गर्त ! अदितिर्देवी पृथिव्याः सधस्थे सहस्थाने उपरिभागे त्वा त्वां खनतु** (यजु० ११.६१ महीं० भा०)। **तदवटं परिलिखति** (शत० ब्रा० ३.६.१.३)।

९. **असि** —छेदन और विदारण कार्य में प्रयुक्त होने वाली लोहे की नुकीली शलाका को 'असि' कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में वज्र को ही असि कहा गया है— **वज्रोवाऽ असिः** (शत० ब्रा० ३.८.२.१२) ; **असिं वै शास इत्याचक्षते** (शत० ब्रा० ३.८.१.४)।

१०. **आज्य** — तप्त घृत को आज्य कहा गया है। स्रुवा पात्र से स्रुची में लेकर आज्य होम किया जाता है। रस रूप द्रव्य को भी आज्य कहा गया है— **रस आज्यम्** (शत० ब्रा० ३.७.१.१३)। देवगण आज्य से ही संतुष्ट होते हैं— **एतद्वै जुष्टं देवानां यदाज्यम्** (शत० १.७.२.१०)। अखण्ड हवन में सूर्यास्त के बाद के प्रत्येक प्रहर में क्रमशः आज्य, सत्तू, धाना और लाजा से हवन करने को कहा गया है— **आज्यसक्तुधानालाजानामेकैकं जुहोति** (का० श्रौ० २०.४.३२)।

११. **आज्यस्थाली** —याग में आज्य रखने के पात्र को आज्यस्थाली कहते हैं। आज्यस्थाली में से चार स्रुवा आज्य जुहू में, आठ स्रुवा उपभृत् में और चार स्रुवा ध्रुवा में भरने को कहा गया है— **स्रुवेणाज्यग्रहणं चतुर्जुह्वा....। अष्टावुपभृति ....। ध्रुवायाञ्च जुहूवत्** (का० श्रौ० २.७.९-१०,१५)। **वेदं होता स्रुचं स्रुवमध्वर्युराज्यस्थालीमग्नीदादाय** (का० श्रौ० ३.६.२१)।

१२. **आदित्य-ग्रह** — आदित्य ग्रह प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज् से सम्बद्ध है, जो द्रोणकलश से सोम को आदित्य ग्रह में लेकर होम करते हैं— **होमाय प्रतिप्रस्थाता आदित्यग्रहपात्रेण द्रोणकलशात् सोमं गृह्णाति**। यजुर्वेद भाष्यकार उवट और महीधर ने आदित्य ग्रह से संबन्धित इसी तथ्य की पुष्टि की है— **आदित्यग्रहसंज्ञकोत्पात्रं प्रतिप्रस्थाता आदित्यपात्रे द्रोणकलशादुपयामगृहीतोऽसीति गृहीत्वा द्विदेवत्यानमुजुहोति** (यजु० ८.१ उ० भा०)। **अष्टमे तृतीयसवनगता आदित्यग्रहादिमंत्रा उच्यन्ते** (यजु० ८.१ महीं० भा०)। आदित्यग्रह रस-युक्त ही रहता है— **अथैष सरसो ग्रहो यदादित्यग्रहः** (कौषी० ब्रा० १६.१)। आदित्यग्रह से याग करने से गौओं की वृद्धि होती है— **आदित्यग्रहं (अनु) गावः (प्रजायन्ते)** (तैत्ति० सं० ६.५.१०.१)।

१३. **आसन्दी** —आसन्दी आसन या आश्रय फलक के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। औदुम्बर, खदिर आदि काष्ठ की मूंज की डोरी से बीनी हुई खटौली को आसन्दी कहते हैं। वाजपेय याग और सौत्रामणी याग में यजमान को इस पर बिठाकर उनका अभिषेक किया जाता है। अग्निष्टोम याग में घर्मपात्र रखने के लिए घर्मासन्दी और सोमपात्र रखने के लिए सोमासन्दी होती है। अग्निचयन याग में इस पर उखा रखी जाती है। उद्‌गाता, राजा आदि को बिठाकर अभिषेक करने की आसन्दी उद्‌गातृ-आसन्दी, राजासन्दी आदि कही जाती है— **पुरस्तादुद्गात्रासन्दीवदासन्द्यां चतुरश्राद्न्याम्** (का० श्रौ० १६.५.५)। आसन्दी पर अधिष्ठित होने की महत्ता ब्राह्मण ग्रन्थ में दी गयी है— **इयं वा आसन्द्यस्यां हीदं सर्वमासन्नम्** अर्थात् यह आसन्दी है, क्योंकि इस पर सब कुछ आसन्न (रखा हुआ) है (शत० ब्रा० ६.७.१.१२)।

१४. **इडापात्री** — अध्वर्यु, याग के बाद शेष बचे हविर्द्रव्य को इडापात्री में रखकर होता को देते हैं। इडा पात्री में शेष इस द्रव्य को '**इडा**' कहते हैं। होता द्वारा मन्त्र पाठ के अनन्तर ऋत्विज् और यजमान इडा-भक्षण करते हैं— **इडां होत्रे प्रदायाविसृजन् दक्षिणाऽतिक्रामति** (का० श्रौ० ३.४.५)। इडापात्री एक हाथ लम्बी, छह अंगुल चौड़ी एवं बीच में गहरी होती है।

१५. **इष्टका** —अग्निचयन के प्रसंग में **इष्टकाओं** (ईंटों) का प्रयोग होता है। चिति-संरचना ईंटों के माध्यम से की जाती है। ईंट निर्माण की मिट्टी में राख का मिश्रण उचित होता है। चिति निर्माण में विकृत, भंग और अधपकी ईंटों के प्रयोग को निषिद्ध कहा गया है— **न भिन्नां न कृष्णामुपदध्यात्** (शत० ब्रा० ८.७.२.१६)। ईंटों के यजुष्मती, मण्डल, वृषभ, विकर्णी आदि भेद भी उल्लिखित हैं— **मण्डलमृषभं विकर्णीमितीष्टकासु लक्षणानि प्रतीयात्** (बौधा० शु० २.१९)।

१६. **उखा** —मिट्टी की बनायी मंजूषा को उखा कहते हैं। अग्निहोत्री वनीवाहन कर्म में उखा पात्र में अग्नि को लेकर प्रवास में जाते हैं। उखा पात्र में अंगप्रयण भी होता है। उखा पात्र में अग्नि की स्थापना करके उसका भरण करना उखा संभरण कहलाता है— **उखा संभरणमष्टम्याम्** (का० श्रौ० १६.२.१)। शतपथ ब्रा० के अनुसार उखा की ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई एक प्रादेश (बालिश्त) की होती है— **तां प्रादेशमात्रीमेवोर्ध्वाम् करोति** (शत० ब्रा० ६.५.२.८)। इसे यज्ञ की मूर्धा (सिर) भी कहा गया है— **शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा** (का० सं० १९.६)।

१७. **उद्‌गाता** —सामगान के पाँच भेद पाये जाते हैं— प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन। उद्‌गाता ऋत्विज् सामगान के उद्‌गीथ अंश का गान करते हैं— **उद्गीथ एवोद्गातॄणाम्** (तैत्ति० सं० ३.२.९.५)। उद्‌गाता के तीन अन्य सहयोगी ऋत्विज—प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य होते हैं— **उद्गाता प्रस्तोता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्य इति** (आश्व० श्रौ० ४.१.६)। प्रस्तोता प्रस्ताव का, उद्‌गाता उद्‌गीथ का, प्रतिहर्ता प्रतिहार का, उपगाता (सुब्रह्मण्य) उपद्रव का और ये सब ऋत्विज् निधन का पाठ करते

हैं। शतपथ ब्राह्मण में इन्हें वर्षा से सम्बद्ध किया गया है— **वर्षा उद्गाता तस्माद् यदा बलवद् वर्षति साम्न इवोपब्दिः क्रियते** (शत० ११.२.७.३२)। **पर्जन्यो वा उद्गाता** (शत० ब्रा० १२.१.१.३)।

१८. **उपभृत्** —यह जुहू के नाप और आकार की अश्वत्थ (पीपल) काष्ठ की बनी एक स्रुची है। जुहू का आज्य समाप्त होने पर इसके आज्य को जुहू में लेकर आहुति दी जाती है— **आश्रव्युपभृत्** (का० श्रौ० १.३.३६)। आज्यस्थाली में से चार स्रुवा आज्य जुहू में, आठ स्रुवा उपभृत् में और चार स्रुवा ध्रुवा में रखने का विधान है। जुहू के उत्तर में उपभृत् और उसके उत्तर में ध्रुवा पात्र रखे जाते हैं। 'वाचस्पत्यम्' में भी इसे एक स्रुचि भेद कहा गया है— **आश्वत्थे यज्ञाङ्गपात्रभेदे स्रुचि** (वा० पृष्ठ १२३३)। **पाणिभ्यां जुहूं परिगृह्योपभृत्या धानम्** (आश्व० गृ० १.१०.९)।

१९. **उपयमनी**— उपयमनी अग्नि प्रस्थापन करने का मिट्टी का एक पात्र है। चातुर्मास्य याग में अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता गार्हपत्य अग्नि में से इन पात्रों में अग्नि निकालकर उत्तरवेदी और आहवनीय में अग्नि का प्रस्थापन करते हैं। जुहू से बड़े आकार की एक स्रुची भी उपयमनी कहलाती है। उपयमनी से घर्मपात्र में आज्य लेने को कहा गया है—**उपयमन्यासिञ्चति घर्मे** (का० श्रौ० २६.६.१)। वाचस्पत्यम् में इसका सम्बन्ध अग्न्याधान से बताया गया है- **अग्न्याधानाङ्गे सिकतादौ** (वा० पृ० १२८२)। **उपयमनीरुपकल्पयन्ति** (शत० ब्रा० ३.५.२.१)। **उपयमनीरुपनिवपति** (का० श्रौ० ५.४.१८)।

२०. **उपयाम** —'उपयाम' याग का काष्ठ निर्मित एक ग्रह पात्र है,जो सोम आदि द्रव रखने के उपयोग में आता है— **यज्ञाङ्गे ग्रहरूपे पात्रभेदे** (वा० पृ० १२८३)। यजुर्वेद में उपयाम शब्द अनेक बार उल्लिखित हुआ है— **उपयाम गृहीतोऽसि** (यजु० ७.४)। **वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेण...** (यजु० २५.२)। यही तथ्य संहिता में भी उल्लिखित है— **उपयाममधरेणौष्ठेन** (मैत्रा० सं० ३.१५.२)।

२१. **उपवेष (धृष्टि)** —यह यज्ञ का एक काष्ठ पात्र है। इसका आकार आगे से पंजे का और पीछे डंडे जैसा तथा नाप में एक हाथ लम्बा होता है। अग्निहोत्री इसका उपयोग 'खर' की अग्नि को इधर-उधर हटाने में करते हैं— **अङ्गार विक्षेपणार्थे काष्ठे** (वा० पृ० १३३०)। इसे धृष्टि भी कहते हैं— **स उपवेषमादत्ते धृष्टिरसीति** (शत० ब्रा० १.२.१.३)। **धृष्टिरसी त्युपवेषमादायापाग्न इत्यङ्गारान् प्राक्तः करोति** (का० श्रौ० २.४.२५)। **उपवेषोऽङ्गारापोहन समर्थ हस्ताकृति काष्ठम्** (का० श्रौ० २.४.२५ क० भा०)। पलाश शाखा के मूल को काटकर उपवेष निर्माण करने को कहा गया है— **मूलादुपवेषं करोति** (का० श्रौ० ४.२.१२)।

२२. **उपसर्जनी**— ताँबे की जिस बटलोई में याग के लिए जल लिया जाता है,जल सहित वह पात्र उपसर्जनी कहलाता है। उपसर्जनी (जलपात्र) को गार्हपत्य अग्नि पर तपाना उपसर्जनी अधिश्रयण कहलाता है— **उपसर्जनीरधिश्रयति** (का० श्रौ० २.५.१)। इसके बाद इसे अध्वर्यु के निकट लाने को कहा गया है— **उपसर्जनी रानयन्त्यन्यः** (का० श्रौ० २.५.१२)।

२३. **उपांशु (ग्रह)** —जिन पात्रों को हाथ में लेकर यज्ञ कार्य सम्पन्न किया जाता है,उन्हें ग्रह कहते हैं— **तद्यदेनं पात्रैर्व्यगृह्णत तस्माद्ग्रहा नाम** (शत० ब्रा० ४.१.३.५)। अध्वर्यु उपांशु ग्रह से याज्ञिक कार्य (सोमाहुति) करते हैं—**उपांशु यजुषा...** (मैत्रा० सं० ३.६.५)। उपांशु ग्रह को मंत्र से शुद्ध करके हवन करना चाहिए—**उत्तरादुपांशुं जुहुयात्...** (कपि० क० सं० ४२.१)। याग के बाद भी उसका सम्मार्जन किया जाता है—**उपांशुग्रहं हुत्वा पात्रमार्जनं कुर्यात्** (यजु० ७.३ मही० भा०)। उपांशु सवन (बट्टा) को उपांशु (ग्रह) के निकट रखा जाता है।

२४. **उलूखल** —उलूखल हवि रूप द्रव्य पदार्थ को कूटने का एक काष्ठ पात्र है। पुरोडाश निर्माण के निमित्त जौ या व्रीहि भी इसी से कूटा जाता है— **धान्यादिकण्डनसाधने काष्ठमये पात्रे तच्च यज्ञियपात्रभेदः** (वा० पृ० १३७०)। कात्यायन श्रौत सूत्र में उलूखल-मुसल का उल्लेख मिलता है— **उलूखलमुसले स्वयमातृण्णामुत्तरेणारत्निमात्रेऽऔदुम्बरे प्रादेश मात्रे चतुरस्रमुलूखलं मध्यसङ्गृहीतमूर्द्ध वृत्तं** (का० श्रौ० १७.५.३)। **अथोलूखलमुसलेऽ उपदधाति** (शत० ब्रा० ७.५.१.१२)।

२५. **ऋतुग्रह** —अग्निष्टोम याग में ऋतुग्रह नामक उपयाम पात्र का समानयन किया जाता है। ऋतुग्रह से सोम रसाहुति दी जाती है। इस कार्य के ऋत्विज् ,अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता होते हैं। ऋतुओं की संख्या बारह है, अतएव ऋतुग्रह से बारह सोम आहुतियां समर्पित की जाती हैं—**ऋतु ग्रहैश्चरतः...**(का० श्रौ० ९.१३.१)। **द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य तस्मात् द्वादशगृह्णीयात्** (शत० ब्रा० ४.३.१.५) ऋतु ग्रह से प्रातः सवन में आहुतियों का विधान है— **ऋतुग्रहैः प्रातः सवनमृतुमत्** (मैत्रा० सं० ४.६.८)। ऋतुग्रहों की उत्पत्ति सोम-पानक इन्द्र के साथ हुई,बताया गया है— **सोमपा इन्द्रस्य सजाता यद् ऋतुग्रहाः** (कपि० क० सं० ४४.२)। ऋतुग्रह पात्र से आहुति देने पर प्राणियों की वृद्धि होना बताया गया है— **ऋतुपात्रमेवान्वेकशफं प्रजायते** (शत० ब्रा० ४.५.५.८)।

२६. **करम्भपात्र** —चातुर्मास्य याग में प्रतिप्रस्थाता जौ के आटे का करम्भपात्र बनाता है। इसका आकार डमरू जैसा और नाप अंगुष्ठ पर्व जितना होता है। इनकी संख्या यजमान की प्रजा (सन्तान) से एक अधिक रखी जाती है— **तेषां करम्भपात्राणि कुर्वन्ति**

यावन्तो गृह्याः स्युस्तावन्त्येकेनातिरिक्तानि (शत० ब्रा० २.५.२.१४)। पूर्वेद्युर्दक्षिणाग्नौ निस्तुषाम भृष्टयवानां करम्भपात्रकरणम्। यावन्तो यजमानगृह्या एकाधिकानि (का० श्रौ० ५.३.२-३)।

२७. कुश (दर्भ) — कुश का प्रयोग याज्ञिक कृत्यों में विशेषतः किया जाता है। चारों दिशाओं में कुशकण्डिका, आस्तरण एवं जल प्रोक्षण के निमित्त इसका प्रयोग होता है। शोधन-कारक होने के कारण इसे जल रूप भी माना गया है— **आपो हि कुशा** (शत० ब्रा० १.३.१.३)। कुश का पर्यायवाची शब्द दर्भ माना गया है। दर्भ को मन्युशमन करने वाला कहा गया है। दर्भ का औषधीय प्रयोग द्रष्टव्य है— **उभयं वेतदन्नं यद्दर्भा आपश्च ह्येता ओषधयश्च** या (शत० ब्रा० ७.२.३.२)। अपां वा एतदोषधीनां तेजो यद्दर्भाः (काठ० सं० ३०.१०)। दर्भ की शुद्धता याज्ञिक कृत्य में महत्त्वपूर्ण होती है— **ते हि शुद्धा मेध्याः** (शत० ब्रा० ७.३.२.३)।

२८. ग्रह पात्र—जिन पात्रों में हवन सामग्री या द्रव पदार्थ रखे जाते हैं, उन्हें ग्रह कहा गया है। सोमाभिषव काल में निचोड़े हुए सोम को एकत्र करने के लिए इस ग्रह पात्र को छन्ने के नीचे रखा जाता है—**यद् गृह्णाति- तस्माद् ग्रहः** (शत० ब्रा० १०.१.१.५)। यद्विलं (यज्ञम्) **ग्रहैर्व्यगृह्णत तद् ग्रहाणां ग्रहत्वम्** (ऐत० ब्रा० ३.९)। इनका पवित्र प्रोक्षण करने के बाद इसे ग्रहण कर सोमाहुति दी जाती है— **तान् पुरस्तात् पवित्रस्य व्यगृह्णात् ते ग्रहा अभवन्** (तैत्ति० ब्रा० १.४.१.१)।

२९. चमस (होतृ, अच्छावाक, उद्गातृ आदि) — चमस यज्ञीय सोमपात्र को कहते हैं— **पलाशादिकाष्ठ जाते यज्ञियपात्रभेदे तल्लक्षणभेदादिकं यज्ञपार्श्वे। सोमपानपात्रभेदे च** (वा० पृ० २८९५)। **तत्त्वाविशेषेऽपि सति चतुरस्त्र स्यात् "चमसेनापः प्रणयति" इति** (का० श्रौ० २.३.१ क० भा०)। अच्छावाक होता का सहकारी ऋत्विज् होता है। इनके द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले अच्छावाक चमस और उद्गाता एवं अध्वर्यु के नाम पर क्रमशः उद्गातृ चमस एवं चमसाध्वर्यु प्रयुक्त किये जाते हैं। **सोमस्य प्रतिष्ठा चमसो ऽस्य प्रतिष्ठा सोमः स्तोमस्य स्तोम उक्थानां ग्रहं वा गृहीत्वा चमसं** (बौधा० श्रौ० १४.२)। **अच्छावाकचमसमेवैते त्रयः समुपहूय भक्षयन्ति** (बौधा० श्रौ० ७.२०)।

३०. चर्म (कृष्णाजिन, शार्दूल, आदि) — याज्ञिक कार्यों में चर्म का विविध प्रयोग पाया जाता है। इनका प्रयोग मुख्यतः आस्तरण के रूप में किया जाता है। फलों पर बिछाकर उनकी रक्षा की जाती थी। चर्म पर सोम को पत्थर से कूटते थे तथा उसके रस को निकालते थे। गाय, मृग, मेष, व्याघ्र आदि के चर्म का उल्लेख यज्ञ-कार्यों में हुआ है— **व्याघ्र-चर्मारोहति** (यजु० १०.५ उ० भा०)। पौर्णमासयाग में अध्वर्यु कृष्णाजिन को हाथ में लेकर विविध क्रियाएँ करते हैं—**कृष्णाजिनादानम्** (का० श्रौ० २.४.१)। चर्म से चमस बनाकर भी याज्ञिक-कार्य सम्पन्न होते हैं— **अथ होत्राणां चमसानभ्युन्नयन्ति** (शत० ब्रा० ४.२.१.३१)। कृष्ण मृग के चर्म को कृष्णाजिन और व्याघ्र या सिंह के चर्म को शार्दूल कहा जाता है: **कृष्णाजिनमादत्ते** (शत० ब्रा० १.१.४.४)। **मृत्योर्वा एषवर्णः। यच्छार्दूलः** (तैत्ति० ब्रा० १.७.८.१)

३१. चात्वाल—चातुर्मास्य या अग्निष्टोम याग की वेदिका से उत्तर की ओर चात्वाल बनाया जाता है। यह एक विशेष यज्ञकुण्ड होता है, जिसकी नाप ३२ x ३२ x ४ अंगुल है। इसका उल्लेख कात्यायन श्रौतसूत्र में अनेक स्थानों पर मिलता है— **शम्यामादाय चात्वालं मिमीते** (का० श्रौ० ५.३.१९)। **किददग्निरिति चात्वाले प्रहरति** (का० श्रौ० ५.३.२३)। **चात्वालोत्करावन्तरेण सञ्चरः** (का० श्रौ० १.३.४१)। वाचस्पत्यम् में इसका एक अर्थ है— उत्तरवेदी में स्तूप का स्थान— **उत्तरवेद्यङ्गे मृत्स्तूपे** (वा० पृ० २९१२)

३२. जुहू—याग में हविर्द्रव्य अर्पित करने के निमित्त प्रयुक्त होने वाली स्रुची को जुहू कहते हैं। यह पलाश काष्ठ की, एक अरत्नि (बाहुमात्र नाप की, आगे से चार अंगुल गर्तवाली और हंसमुखी होती है — **यज्ञिये स्रुगाख्ये पात्रभेदे सा च पलाशघटिता** (वा० पृ० ३१४२)। **पालाशी जुहूः** (का० श्रौ० १.३.३५)। **पर्णमयी जुहूः** (तै० सं० ३.५.७.२)। इसे यज्ञ का मुख और द्युलोक की उत्पत्तिकारक कहा गया है—**जुहूर्वै यज्ञमुखम्** (मैत्रा० सं० ३.१.१)। **जुह्वेहि घृताची द्यौर्जन्मना**...(काठ० सं० १.११)।

३३. दण्ड—अग्निष्टोम याग में यजमान को ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन यापन करते हुए, परिभ्रमण करना पड़ता था, इसलिए उस समय दण्डधारण का विधान आत्मरक्षार्थ किया गया था— **दण्डो देवता। हे वनस्पते वृक्षावयव दण्ड, उच्छ्रयस्व उन्नतो भव। ऊर्ध्वो भूत्वा अंहसः पाप्मनः मा मां पाहि रक्ष। तत्र कालावधिरुच्यते** (यजु० ४.१० मही० भा०)। याग में यजमान को, मुंह के बराबर तक ऊंचाई वाला औदुम्बर काष्ठ का दण्ड धारण कराया जाता है— **मुखसम्मितमौदुम्बरं दण्डं प्रयच्छति** (का० श्रौ० ७.४.१)। दण्ड को वज्र का प्रतीक माना गया है— **वज्रो वै दण्डो विरक्षस्तायै** (शत० ब्रा० ३.२.१.३२)।

३४. दर्वि—यह विकङ्कत काष्ठ की बनी हुई और कलछुल के आकार की होती है। चातुर्मास्य याग में इसी से हवि रूप द्रव्य की आहुतियाँ दी जाती हैं— **दर्व्याऽऽदत्ते पूर्णादर्वीति** (का० श्रौ० ५.६.३०)। **अग्निहोत्रं च हुत्वा अहुत्वा वा दर्विहोमः कर्तव्यः** (का० श्रौ० ५.६.३० क० भा०)। **एष खलु वै क्रिया हस्तो यद् दर्विः** (मैत्रा० सं० १.१०.१६)।

३५. **द्रोणकलश**— द्रोणकलश में सोमरस छाना जाता है। यह विकङ्कत काष्ठ का मध्य में गर्तवाला और चारों ओर परिधि वाला होता है। इसकी लम्बाई अठारह अंगुल और चौड़ाई बारह अंगुल रहती है— **अतिरिक्तं वा एतत् पात्राणां यद् द्रोणकलशः** (कपि० क० सं० ४४.१)। **आहवनीयं गच्छन्त्यादाय ग्रावद्रोणकलश- सोमपात्राणि** (का० श्रौ० ८.७.४)। **द्रोणकलशस्य स्वशब्दाभिधानात् सोमपात्रशब्देन ग्रहपात्राणि गृह्यन्ते** (का० श्रौ० ८.७.४ क० भा०)। **सुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे....**(यजु० १८.२१)।

३६. **धृष्टि**—यह एक हाथ लम्बा पलाश काष्ठ का पात्र है, जो कपाल उपधान से पूर्व अग्नि हटाने के काम आता है— **धृष्टिरसीत्युपवेषमादाय इत्यङ्गारानग्रतः करोति** (का० श्रौ० २.४.२५)। इसे उपवेश रूप वाला यज्ञीय पात्र भी माना गया है— **धृष्टिरस्यपाग्ने अग्निमामादं** _ (यजु० १.१७)। हे **उपवेश, त्वम् धृष्टिरसि प्रगल्भोऽसि** (यजु० १.१७ मही० भा०)। अनेनाग्निर्धृष्टमुपचरतीति **धृष्टिः** (यजु० १.१७ उ० भा०); **धृष्टी शलमाने** (का० श्रौ० २६.२.१०)। **धृष्टिभ्यां भस्मना परिकीर्याङ्गारैश्च** (का० श्रौ० २६.३.९)। **स यदनेन अग्निं धृष्णिवोपचरति तेन धृष्टिः** (शत० ब्रा० १.२.१.३)।

३७. **ध्रुवा**— यह जुहू के नाप और आकार की एक स्रुची है। इसी पात्र का आज्य, स्रुवा से लेकर जुहू में छोड़ते हैं और हवन करते हैं— **एत्य जुह्वाऽभिघारणं ध्रुवाया हविषऽउपभृतश्च** (का० श्रौ० ३.३.९)। **आप्यायतां ध्रुवा हविषा घृतेन यज्ञम्** (का० श्रौ० ३.३.१२)। यज्ञ की उत्पत्ति ध्रुवा से मानी गयी है— **ध्रुवाया एव सर्वो यज्ञः प्रभवति** (शत० ब्रा १.३.२.२)

३८. **निग्राभ्या**—यह पात्र सोमाभिषव में प्रयुक्त होता है। द्रोण-कलश के ऊपर दशापवित्र छन्नक रखते हैं। पवित्र के मध्य में सुवर्ण रखते हैं। उसके ऊपर निग्राभ्या पात्र रखते हैं। इसमें सोमरस छोड़ते हैं, जो छनकर नीचे रखे ग्रहपात्रों में एकत्र होता है। सोमाभिषव में यजमान को जो होतृ चमस देते हैं, उसे निग्राभ्या भी कहते हैं। इसके जल को सोम पर छिड़कने का विधान है—**तदेना उरसि (इन्द्रः) न्यगृह्णीत तस्मान्निग्राभ्या नाम** (शत० ब्रा० ३.९.४.१५) ।**या मैत्रावरुणस्य चमसे यश्च निग्राभ्यास्ता** (मैत्रा० सं० ४.५.२)।

३९. **पयोग्रह**—सौत्रामणीयाग में जिस ग्रहपात्र से पयोहवन होता है उसे पयोग्रहपात्र कहते हैं—**पयसो दुग्धस्य ग्रहः, ग्रह आधारे अच्। यज्ञिय पात्र भेदे** (वा० पृ० ४२३२)। पयोग्रह का याग उत्तरवेदी में होता है। गोदोहन करके उत्तरवेदी में पयोग्रह और दक्षिणवेदी में सुराग्रह का एक चतुरस्र खर पर आसादन करते हैं— **उत्तरेऽग्नौ पशुभिः पुरोडाशैः पयोग्रहैरिति चरन्ति** (शत० १२.९.३.१४)। अध्वर्यु पयोग्रह पात्र को स्पर्श करते हैं— **पयोग्रह सम्मर्शनम्** (का० श्रौ० १९.२.२१)।

४०. **परिस्तरण**—तीन दर्भ को एकत्र करके मूल में एक गाँठ लगाकर परिस्तरण तैयार करते हैं। इन्हें गार्हपत्य इत्यादि खरों के चारों ओर रखते हैं— **तृणैरग्नीन्परिस्तीर्य** (का० श्रौ० २.३.६)। **दर्भैः स्तृणन्ति हरितैः सुवर्णैः _ आचरन्ति हि दर्भैः परिस्तरणम्** (का० श्रौ० २.३.६ क० भा०)। ये पूर्व और पश्चिम दिशा में उदग्र और उत्तर तथा दक्षिण दिशा में पूर्वाग्र रखे जाते हैं।

४१. **परीशास** —परीशास महावीर पात्र को अग्नि से पकड़कर उठाने का काष्ठ का एक सन्दंश (चिमटा) है— **परीशासावादत्ते** (का० श्रौ० २६.५.१३)। **ताभ्यां महावीरं प्रतिगृह्णाति** (का० श्रौ० २६.५.१५)। **'ताभ्याम्' इति परीशासावुच्येते** (का० श्रौ० २६.५.१५ कर्क भा०)। प्रवर्ग्य विधान में गार्हपत्य के सामने जोड़े के रूप में ये पात्र रखे जाते हैं— **उपयमनीं महावीरं परीशासौ पिन्वने** — (शत० ब्रा० १४.१.३.१)।

४२. **पुरोडाश पात्री** — संस्कार के अन्तर पुरोडाश रखने का पात्र पुरोडाश-पात्री कहलाता है। यह प्रादेशमात्र एक चतुरस्र पात्र है। पुरोडाश हव्य और भोज्य दोनों रूप में प्रयुक्त होता है। यह जौ या व्रीहि के आटे का बनता है। इसका पाचन कपालों पर किया जाता है। पौर्णमासयाग में पुरोडाश पात्री के सम्मार्जन का विधान बताया गया है— **तूष्णी प्राशित्रहरणं शृतावदानं पात्रीं च। सम्मार्ज्यनान्यपास्यति** (का० श्रौ० २६.४२-४३)।

४३. **प्रणीता** —यह वारण (काला शीशम) काष्ठ की विनिर्मित बारह अंगुल लम्बी, छह अंगुल चौड़ी होती है। यह चार अंगुल गहरी और परिधियुक्त होती है, जिसमें जल भरकर रखा जाता है। इसके मूल में दो अंगुल डण्डा होता है। दर्शपौर्णमास याग में अध्वर्यु ब्रह्मा से अनुमति लेकर प्रणीता को आहवनीय के उत्तर में रखता है—**उत्तरेणाऽऽहवनीयं सम्पति निदधाति** (का० श्रौ० २.३.३)। **प्रणीतानाम् आपो मन्त्रसंस्कृता आहवनीयस्योत्तरतो निहिताः** (आप० श्रौ० १.१४ नारा० वृ०); **यदापः प्रणयंस्तस्मादापः प्रणीतास्तत्प्रणीतानां प्रणीतात्वम्** (शत० ब्रा० १२.१.३.८)।

४४. **प्राशित्र** —इस पात्र में हविर्द्रव्य रखकर अध्वर्यु इसे ब्रह्मा को निवेदित करते हैं। एक दूसरे पात्र से इसे ढक भी दिया जाता है। ब्रह्मा इसी पात्र में हविर्द्रव्य को प्रसादस्वरूप ग्रहण करते हैं। यह पात्र आयताकार होता है, जो पाँच अंगुल लम्बा और चार अंगुल चौड़ा होता है। इसमें रखा घृतसिक्त पुरोडाश का ब्रह्मा द्वारा भक्षण प्राशित्रप्राशन कहलाता है— **ननु प्राशित्रसमर्पणार्थं कस्मान्न भवति।_प्राशित्रमिति ब्रह्मणो भागः** (का० श्रौ० ३.४.१ क० भा०)। **सञ्चरमभ्युक्ष्य प्राशित्रमवद्यति** (का० श्रौ० ३.४.१)। **मित्रस्य**

त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इति प्राशित्रं प्रतीक्षते (का० श्रौ० २.२.१३)। यत्प्राशित्रं तदस्मै पर्याहार्षुस्तत्प्राशीदथ यमस्मै ब्रह्मभागं पर्याहरन्ति (शत० ब्रा० १.७.४.१८)।

४५. **प्रोक्षणी** —याज्ञिक कार्य के लिए यज्ञोपयोगी समस्त पदार्थों का शुद्धिकरण किया जाता है। हविर्द्रव्य, पात्र-उपकरण, वेदिका आदि का जल से मंत्र- अभिषिञ्चन ही प्रोक्षण है। अभिषिञ्चन के समय जल अग्निहोत्रहवणी में रखा जाता है। प्रोक्षण-जल को आश्रय देने वाली पात्री प्रोक्षणी कही जाती है— **प्रोक्षितास्थेति तासां प्रोक्षणम्** (का० श्रौ० २.३.३५)। **असञ्चरे प्रोक्षणीर्निधाय** (का० श्रौ० २.३.३९)। **प्रोक्षणीरासादयेध्मं** (का० श्रौ० २६.२६)।

४६. **ब्रह्मा** — यह श्रौतयाग के प्रमुख ऋत्विज् हैं। श्रौतयाग के यथाविधि सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व इन्हीं का होता है। याग के कार्यों में इनसे अनुमति ली जाती है। याग कर्म में वैषम्य होने पर इन्हें प्रायश्चित करना पड़ता है— **ब्रह्मानुज्ञातोनुयाजैः** (का० श्री ३.५.५)। **न्यायतो हि प्रैषसमनन्तरं प्रैषार्थः प्राप्नोति तन्मा भूदित्यत इदमुच्यते 'ब्रह्मानुज्ञात' इति** (का० श्रौ० ३.५.५ क० भा०)। ब्रह्मा की आज्ञा पाकर होतृगण देव-आवाहन करते हैं— **एतर्हि देवानां ब्रह्मानिरुक्तं गच्छतुर्होतारः** (काठ० ९.१६)। ब्रह्मा के तीन अन्य सहयोगी ऋत्विज्- ब्राह्मणाछंसी, आग्नीध्र और पोता होते हैं— **ब्रह्मा ब्राह्मणाच्छंस्याग्नीध्रः पोता** (आश्व० श्रौ० ४.१.६)। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार इन्हें अथर्ववेद का ज्ञाता होना चाहिए—**एष ह वै विद्वान्सर्वविद् ब्रह्मा यद् भृग्वङ्गिरोविद् (अथर्ववेदविद्)** (गो० ब्रा० १.२.१८); **यज्ञस्य हैष भिषग्यद् ब्रह्मा यज्ञायैव तद् भेषजं कृत्वा हरति** (ऐत० ब्रा० ५.३४)। इन्हें यज्ञ का हृदय भी कहा गया है— **हृदयं (वै यज्ञस्य) ब्रह्मा** (शत० ब्रा० १२.८.२.२३)।

४७. **मणिका** —यह एक विशाल आकार का पात्र होता है, जिसमें प्रचुर मात्रा में जल भरा रहता है। इसे यज्ञशाला में सुरक्षित रखा जाता है। आवसथ्याधान के अनन्तर अग्नि से रक्षा के निमित्त यह जल अत्यन्त उपयोगी होता है। अग्निष्टोम याग में यज्ञोपयोगी जल का आनयन सूर्यास्त से पूर्व नदी से किया जाता है। यदि सूर्यास्त से पूर्व जल का आनयन न हो, तो मणिका पात्र से ही जल की पूर्ति की जाती है।

४८. **महावीर** —अग्निष्टोम इत्यादि याग में प्रवर्ग्य-विधान विहित है। महावीर पात्र सम्बन्धी कृत्य प्रवर्ग्य-विधान के अंतर्गत आते हैं। प्रवर्ग्य और घर्म परस्पर पर्याय हैं। महावीर पात्र आज्य बनाने के लिए प्रयोग किये जाने वाले मिट्टी के पात्र होते हैं। इसे बीच में दो जगह कुछ संकरा बनाया जाता है। इसमें घी भरकर खूब तप्त किया जाता है। इस तप्त घृत (आज्य) में दूध छोड़ते हैं। दूध छोड़ते ही तेज आवाज के साथ ज्वालायें निकलती है। तत्पश्चात् आहवनीय में उसी पात्र से हवन करते हैं। आहुति से बचे हविर्द्रव्य का ऋत्विज् लोग पान करते हैं- **महावीरं परिषिञ्चति स्रुवेण प्रतिप्रस्थाता** (का० श्रौ० २६.४.५)। **तेषु महावीरमाज्यवन्तमर्चिरसीति** (का० श्रौ० २६.३.४)। **तदेतं प्रवरणीयं महावीरमाज्येन समनक्ति** (शत० ब्रा० १४.१.३.१३)। इसे यज्ञ का शिर कहा गया है— **शिरो वा एतद्यज्ञस्य यन्महावीरः** (कौषी० ब्रा० ८.३)।

४९. **माहेन्द्र ग्रह**—माहेन्द्र माध्यन्दिनीय ग्रह माना गया है। इसके सवन से यजमान की कामनाओं की सिद्धि होती है— **माहेन्द्रग्रहः इति माध्यन्दिनीया ग्रहा... तत्सवनाच्च बहवो यजमानस्य कामाः सिध्यन्ति** (य० स० पृ० १५४)। माहेन्द्र ग्रह को शुक्रपात्र में ग्रहण करना चाहिए— **अथ माहेन्द्रग्रहं शुक्रपात्रेण गृह्णीयात्** (य० स० पृ० १८५)। **माहेन्द्रं गृह्णाति वैश्वदेवन्महाँ इन्द्र इति** (का० श्रौ० १०.३.११)। माहेन्द्र ग्रह से दक्षिण नाम होम और आग्नीध्र अग्नि में आज्याहुति दी जाती है।

५०. **मुसल**— यह खदिर काष्ठ का एक यज्ञ पात्र है। यह बारह अंगुल लम्बा और गोल आकार का होता है। जौ, व्रीहि इत्यादि हविर्द्रव्य इसी उपकरण से कूटे जाते हैं। सोमाभिषव कार्य में सोम भी इसी से कूटा जाता है— **मुस्यति खण्डयति इति मुसलम्**। बौधायन श्रौतसूत्र में उलूखल- मुसल द्वारा दक्षिणाभिमुख होकर हविर्द्रव्य कूटने का विधान पाया जाता है— **चर्मण्युलूखलमुसले विधायावहन्ति सकृदेव दक्षिणामुखः** ।(श्रौ० को० पृ० ३०९)। दस यज्ञायुधों के अन्तर्गत मुसल का नामोल्लेख पाया जाता है— **स्फ्यश्च कपालानि चाऽग्निहोत्रहवणी च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शम्या चोलूखलं च मुसलं च दृषच्चोपला चैतानि वै दशयज्ञायुधानि**— (मै० सं० १.६.८)।

५१. **यूप** —पशु याग में पशु बन्धन के निमित्त यूप का प्रयोग किया जाता है। यह तीन, पांच से लेकर इक्कीस हाथ तक लम्बा रखा जाता है। ये यूप पलाश, बिल्व, खदिर आदि काष्ठ के लिये जाते हैं— **पशवे वै यूपमुच्छ्रयन्ति** (शत० ब्रा० ३.७.२.४)। अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता को यूप के निकट पशु लाने का प्रैष करते हैं। अध्वर्यु यूप में पशु का नियोजन और प्रोक्षण करते हैं। यूप के खण्ड या टुकड़े को 'यूप शकल' कहते हैं। इसे वज्र का प्रतिरूप माना गया है— **वज्रो वै यूपशकलः** (शत० ब्रा० ३.८.१.५)। शत० ब्रा० में पालाश यूप की महत्ता कही गयी है— **य: पालाशं यूपं कुरुते तस्मात्पालाशमेव यूपं कुर्वीत** (शत० ब्रा० ११.७.२.८)।

५२. **रज्जु** —बन्धन कार्य के निमित्त रज्जु का प्रयोग किया जाता है। यज्ञ में काष्ठ- बन्धन एवं पशु-नियोजन में इसका उपयोग किया जाता है— **या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य** (ऋ० १.१६२.८)। रज्जु को अश्विनी और पूषा की भुजायें कहा गया है- **हे रज्जो! सवितुर्देवस्याज्ञायां वर्तमानोऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वामाददे गृह्णामि** (यजु० ३८.१ महीο भा०)। रज्जु को वरुण से सम्बद्ध भी माना गया है— **वरुण्या वै यज्ञे रज्जुः** (शत० ब्रा० ६.४.३.८)।

५३. **रथ (सोमरथ)** — रथ एवं उसके विविध अङ्गों का उपयोग वेदों में सर्वत्र प्राप्त होता है। यजुर्वेद में याज्ञिक कार्यों में प्रतीकात्मक रथ का उपयोग किया जाता है। वाजपेय याग के प्रसंग में रथ-स्तुति की गयी है। आयुधों को इसी रथ में स्थापित किया जाता है— **शकटद्वारा रथः स्तूयते। अस्यानसो रथवाहणं नाम रथं वहतीति रथवाहनम्। वाजपेयेऽनसि रथस्यारोप्यमाणत्वात्** (यजु० २९.४५ महीο भा०) **तद्विवास भुवनेषु ज्येष्ठमिति रथस्य हैतद्रूपम्** (जैमि० ब्रा० २.१२)।

५४. **वसतीवरी** — सोमयाग में यज्ञ प्रारम्भ होने के एक दिन पूर्व नदी में से घड़ों में जल का आनयन किया जाता है। उसी जल का उपयोग सोमाभिषव-आदि याज्ञिक कार्यों में किया जाता है। यज्ञ कार्य के उपयोगी इस जल का नाम वसतीवरी है। सोमलता को कूटकर जो रस निकाला जाता है, उसे बढ़ाने के लिए उसमें वसतीवरी संज्ञक जल मिलाते हैं। इसमें विश्वेदेवा का वास माना जाता है— **वसतु नु इदमिति तद् वसतीवरीणां वसतीवरीत्वम्** (तैत्ति० सं० ६.४.२.१)। **तदासु विश्वान्देवान्संवेशयत्येते वै वसतां वरं तस्माद्वसतीवर्यो नाम** (शत० ब्रा० ३.९.२.१६)। देवयजन में इस जल का आनयन ऋत्विग्गण, यजमान और उसकी पत्नी द्वारा किया जाता है।

५५. **वास** —वस्त्र का सामान्यतया वैदिक प्रयोग वास कहलाता है— **युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायं सेन्या भवतं मनीषिभिः** (ऋ० १.३४.१)। व्यक्ति शोभन वस्त्रों से ही सुशोभित होता है—**तस्माद् सुवासा एव बुभूषेत्** (शत० ब्रा० ३.१.२.१६) । अग्निष्टोम याग में मेखला नीवी बन्धन के अनन्तर यजमान द्वारा वस्त्र धारण किया जाता है। मंत्र युक्त वस्त्र देवत्व को प्राप्त कर लेते हैं— **सौम्यं हि देवतया वासः** (तैत्ति० सं० १.६.१.११)।

५६. **शकट** — शकट शब्द वेदों में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है— **उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति** (ऋ० १०.१४६.३)। पौर्णमास याग, अग्निष्टोम और सोम याग में शकट का प्रयोग हवि और सोम आनयन के निमित्त किया जाता है— **सोमसम्बद्धश्शकटं योगः तद्धि तत्र युज्यते** (नि० ६.२२ दु०)। हवि रूप द्रव्य आनयन के निमित्त प्रयुक्त होने के कारण इसे 'हविर्धान शकट' भी कहा जाता है।

५७. **शतमान** —एक सौ रत्ती स्वर्ण खण्डों से गुँथी माला को शतमान कहते हैं। शतमान स्वर्णदक्षिणा देने का विधान यज्ञों में किया जाता है— **सौवर्णं शतमानं दक्षिणा**— (दे० प० पृ० ६४०)। **ते सुवर्णं रजताभ्यां रुक्माभ्यां पर्यस्ते भवतः शतमानं च हिरण्यम्** (बौधा० श्रौ० १४.१२)।

५८. **शम्या** — शम्या यज्ञीय काष्ठ यन्त्र है। जौ या व्रीहि पीसने के समय शिला के मध्य अवस्थित कील के अर्थ में तथा जुए के दोनों कोनों पर बैलों को नियोजित करने वाले काष्ठ खण्ड के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है— **पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्धपृच्छन्** (ऋ० १०.३१.१०)। यह बारह अंगुल लम्बी और आगे से नुकीली होती है।

५९. **शुक्रपात्र** —जिस पात्र में विशुद्ध या निर्मल सोम रखा जाता है,उसे शुक्रपात्र कहते हैं। निर्मल सोम देवों को अतिशय रुचिकर है— **शुक्रः (निर्मलः) सोमः** (ता० म० ब्रा० ६.६.९)। **शुक्रो देवेषु रोचते** (मैत्रा० सं० २.७.५)। विधान के अनुसार उसमें मधु, दधि, दुग्ध आदि मिश्रित करके यज्ञोपयोगी बनाया जाता है। शुक्रपात्र का प्रयोग प्रजावृद्धि कारक है— **शुक्रपात्रमेवानु मनुष्याः प्रजायन्ते** (शत० ब्रा० ४.५.५.७)। **शुक्रपात्रं प्रयुज्यते श्रीरेव तत् प्रजा अनुप्रजायन्ते** (काठ० सं० २८.१०)।

६०. **शूर्प** —कूटे गये हविर्द्रव्य के अनिच्छित अंश को निकालने हेतु शूर्प का प्रयोग किया जाता है। यज्ञीय द्रव्यों में अपद्रव्य को शूर्प से हवा करके साफ किया जाता है। यह बाँस या नरकट का बना हुआ होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ में इसे विवेचित किया गया है— **इत्थं पात्राण्युदाहरति शूर्पञ्चाग्निहोत्र**— (शत० ब्रा० १.१.१.२२)। व्रीहि परिष्कार के निमित्त शूर्प के मंत्रपूर्वक ग्रहण करने का उल्लेख है— **अथ शूर्पं चाग्निहोत्रहवणीं चादत्ते** (शत० ब्रा० १.१.२.१)। **यत्र हविः तदिह निर्वापकाले व्रीहिरूप्यम्। तदग्निहोत्रहवण्या शूर्पे निर्वपन् वेवेष्टीव** (शत० ब्रा० १.१.२.१ हरिस्वामी भा०)।

६१. **समित्**— यज्ञ में हवि,ईंधन,काष्ठ खण्डों को समित् या समिधा कहा जाता है। यज्ञ,वेदिका में इन काष्ठ खंडों को प्रज्वलनार्थ विधिपूर्वक रखा जाता है— **यदेनं समयच्छन् तत्समिधः समित्त्वम्।** (तैत्ति० ब्रा० २.१.३.८)। इसकी लम्बाई बाहुमात्र तथा मोटाई अंगुली के समान होती है। इसे सड़ी या घुनी नहीं होना चाहिए— **प्रादेशमात्रीं पालाशीं समिधमादाय**— (शां० श्रौ० २.८.२२)।

६२. **सुराग्रह** —सौत्रामणी याग में जिस ग्रहपात्र से सुरा का हवन होता है, वह सुराग्रह पात्र है । सुराग्रह का हवन प्रतिप्रस्थाता की दक्षिण वेदि में आहवनीय अग्नि में किया जाता है । सुरा आसवन में लावा, गुड़, नग्नहु चूर्ण (दालचीनी, त्रिफला, सोंठ, पुनर्नवा इत्यादि) और दुग्ध डालकर चार दिन रखा रहने दिया जाता है, पुन: उसका आसवन किया जाता है— **अपां च वा एष ओषधीनां च रसो यत्सुरा** (श० ब्रा० १२.८.१.४)। सुराग्रह से देवों के निमित्त सुरा की आहुति दी जाती है— **सुराग्रहान् श्रीणाति** (का० श्रौ० १९.२.२३)। याग के उपरान्त सुराग्रह में अवशिष्ट सुरा के पान का विधान अथवा निषेध प्रतिप्रस्थाता द्वारा प्राप्त होता है । सामान्यतया सुरा उन्मादित करने वाली थी, अतएव ब्राह्मणों के लिए उसके पान का निषेध किया गया है— **तस्मात् सुरां पीत्वा रौद्रमना:** (श० ब्रा० १२।७.३.२०) । **तस्माद् ब्राह्मण: सुरां न पिबेत्, पाप्मनात्मानं नेत्संसृजा इति** (मैत्रा० सं० २.४.२)।

६३. **सोमग्रह** —सोमरस का संग्रह जिस पात्र में किया जाता है, वह सोमग्रह पात्र कहलाता है । सोमग्रह देवलोक विजय का प्रतीक है— **देवलोकमेव सोमग्रहैरभिजयति** (का० सं० १४.६)। अग्निष्टोम याग में सोमग्रह का संस्पर्श यजमान स्वयं करता है तथा पत्नी सुराग्रह का स्पर्श करती है— **आत्मानमेव सोमग्रहैस्स्पृणोति पत्नीं सुराग्रहै:** (का० सं० १४.६)। अध्वर्यु सोम की आहुति उपांशु ग्रह से देता है ।

६४. **स्फ्य** — यह खदिर काष्ठ का एक हाथ लम्बा धारदार और आगे से नुकीला यज्ञपात्र है, जिसे आग्नीध्र नामक ऋत्विज् ग्रहण करते हैं— **खादिर: स्रुव:, स्फ्यश्च** (का० श्रौ० १.३.३३-३४) **स्फ्योऽस्याकृतिरादर्शाकृति:** (का० श्रौ० १.३.४०)। स्फ्य को वज्र का प्रतीक माना गया है— **स यत्स्फ्यमादत्ते । यथैव तदिन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छदेवम्** (श० ब्रा० १.२.४.३)। यह उदपात्र के रूप में भी उल्लिखित हुआ है— **उदपात्रं निधाय जघनेन गार्हपत्य ॅं स्फ्यं निदध्यात् । स्फ्योपरि पात्रीम्** (बौधा० श्रौ० २५.८)।

६५. **स्रुक् (स्रुची या स्रुच्)** — घृताहुति स्रुक् से प्रदान की जाती है । घृत का संग्रह भी इसी पात्र में किया जाता है— **घृतं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन्स्रुचौ बाहू** (मैत्रा० सं० ३.८.२)। स्रुच् आहुत घृत, वज्र-स्वरूप होकर वृत्रवध में सक्षम होता है । स्रुच् बाहु का प्रतीक है— **आज्येन वै वज्रेण देवा वृत्रमघ्नन् स्रुग्भ्याम् बाहुभ्याम्** (काठ० सं० २४.९)। स्रुक् अरत्निमात्र विशाल पात्र होता है— **अरत्निमात्री स्रुग्भवति** (काठ० सं० ६.१)। यज्ञ में स्रुच् द्वय के प्रयोग का विधान है— **युञ्जौ ह वाऽ एते यज्ञस्य यत्स्रुचौ** (शत० ब्रा० १.८.३.२७)। दो जुहू, दो उपभृत् और एक ध्रुवा इन पाँच स्रुचियों को स्रुक्पंचक कहते हैं ।

६६. **स्रुव** —जिस पात्र से अग्नि में आज्य की आहुति दी जाती है, उसे स्रुव कहते हैं । यह अरत्नि मात्र लम्बा और आगे में आज्य लेने हेतु अंगुष्ठ पर्व मात्र गर्त वाला होता है । यह खदिर काष्ठ का बनता है—**खादिर: स्रुव:** (का० श्रौ० १.३.३३)।

६७. **होता** —ये श्रौतयाग और सोमयाग के एक प्रमुख ऋत्विज् हैं । ये ऋग्वेद के अनुसार देवों का आवाहन और स्तुति-आदि करते हैं । दूसरे शब्दों में इन्हें ऋचा-गान करने वाले ऋत्विज् और देवों के आह्वाता कहा गया है— **यद्वा स तत्र यथाभाजनं देवता अमुमावहामुमावहेत्यावाहयति तदेव होतुर्होतृत्वम्** (ऐत० ब्रा० १.२)। वेदी के पश्चिम में उत्तरश्रोणी के निकट इनके बैठने का स्थान होता है, जिसे होत्रासन कहते हैं । सामिधेनी संज्ञक ऋचाओं का पाठ होता-गण ही करते हैं— **एषा तऽ इति होताऽनुमन्त्रयते** (का० श्रौ० ३.५.२)। होता के अन्य तीन सहयोगी होते हैं— **होता मैत्रावरुणोऽच्छावाकोग्रावस्तुत्** (आश्व० श्रौ० ४.१.६)। इन्हें यज्ञ का नाभि (केन्द्र) भी कहा गया है— **नाभिर्वा एषा यज्ञस्य यद्धोता** (काठ० सं० २६.१)।

उपभृत्
अग्निहोत्रहवणी
शूर्प
उखा
कुश (दर्भ)
महावीर
उपयमनी स्रुक
दण्ड

उलूखल
मुसल
पुरोडाशपात्री
द्रोणकलश
रथ (सोमशकट)
शार्दूल चर्म
शकट (हविर्धानशकट)
कृष्णाजिन
सुपर्ण चिति
श्येन चिति
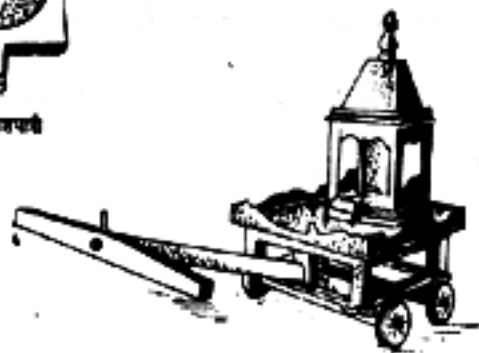
ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

*

*

स्वर्ग लोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथिवीलोक हमें शांति प्रदान करें। जल शांति प्रदायक हो, ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ शांति प्रदान करने वाली हों। सभी देवगण शांति प्रदान करें। सर्व व्यापी परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में शांति स्थापित करे। शांति भी हमें परमशांति प्रदान करे।

—यजु० ३६.१७

*

*